स्वामी रामचरण : जीवनी एवं कृतियों का अध्ययन

डॉ० माधवप्रसाद पाण्डेय

शक १९०४ : सन् १९८२ ई०
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशक
प्रभात शास्त्री
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
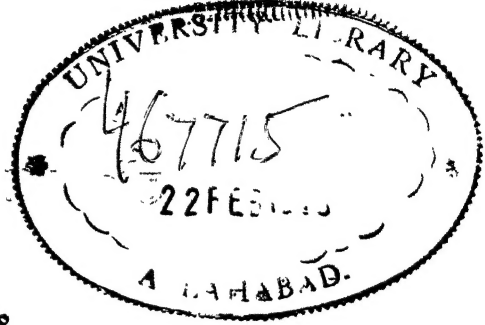
संस्करण : प्रथम
प्रकाशन-वर्ष : १९८२ ई०
प्रतियाँ : ११००
मूल्य : ५०.०० (पचास रुपये मात्र)

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

नामदेव पुंडरपुर भणीजै।
ज्यूं कबीर कासी में गिणीजै।
रामचरण भीलाड़े ऐसै।
तामैं भूल न लावो संसै।

—जगन्नाथ

प्रकाशकीय

मध्यकालीन भारतीय समाज को श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान और जीवनानुभव से अनुप्राणित करने का कार्य भक्तों और सन्तों ने लोकभाषा के माध्यम द्वारा प्रभावी रूप में किया था। इस सन्त-परम्परा का गहन प्रभाव लोकजीवन में देखा जा सकता है। नाना सम्प्रदायों के माध्यम से पुराणों द्वारा प्रतिपादित भक्ति का व्यापक स्तर पर प्रचार करने में सन्तों और भक्तों का बहुत योग रहा है। भक्ति के विभिन्न सम्प्रदायों की भी ऐतिहासिक भूमिका रही है, किन्तु गुह्यसाधनाओं के प्रभाव से मध्यकालीन भक्ति का तत्त्वज्ञान दीक्षित व्यक्तियों को ही देने की परम्परा परिलक्षित होती है। अतएव बहुत-सा सन्त-साहित्य भारत के आधुनिक पुनर्जागरण के पूर्व मात्र सम्प्रदाय के आचार्यों और भक्तों के बीच ही सीमित रहा।

भारतीय संस्कृति और भारतीयता को उद्घाटित करने की भावना जब से देशी विद्वानों में उत्कट रूप में जगी, तभी से मध्यकालीन साम्प्रदायिक साहित्य के सम्बन्ध में इतस्ततः जानकारी मिलने लगी थी।

स्वामी रामचरण के जीवन और कृतित्व संबंधी सामग्री भी सम्प्रदाय के वेष्टनों में सुरक्षित थी; किन्तु कैप्टन वेस्मकट नामक विदेशी सज्जन ने शाहपुरा के पाँचवें महन्त नारायणदास की सहायता से स्वामी रामचरण की कुछ रचनाओं का अध्ययन किया और स्वामी रामचरण जी के कुछ छन्दों का अनुवाद एशियाटिक सोसायटी के फरवरी १८३५ के जर्नल में प्रकाशित भी किया। इसके पश्चात् सन् १९२५ में ११०० पृष्ठों की "अणभै वाणी" का प्रकाशन हुआ और विद्वानों का ध्यान इस सम्प्रदाय और इसके श्रेष्ठ आचार्य की ओर आकृष्ट हुआ। फलतः कई आधुनिक विद्वानों ने इस सम्बन्ध में सुन्दर कार्य किये हैं, जिनमें उसी सम्प्रदाय के साधु मनोहरदास, डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी, डॉ० अमरचन्द वर्मा के ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

यह प्रसन्नता का विषय है कि डॉ० माधवप्रसाद पाण्डेय ने पूर्ववर्ती शोधकों की सरणि को आगे बढ़ाने का स्तुत्य कार्य किया है। सम्प्रदाय के आचार्यों की कृपा से डॉ० पाण्डेय को कुछ ऐसी सामग्री भी शोध-निमित्त प्राप्त हुई है, जो कभी किसी विद्वान् को उपलब्ध नहीं थी। अतएव उनकी लम्बी यात्राओं और गम्भीर साहित्यानुशीलन से सम्पन्न इस ग्रन्थ को प्रकाशित करते हुए सम्मेलन गर्व का अनुभव करता है। विश्वास है कि "स्वामी रामचरण : जीवनी एवं कृतियों का अध्ययन" शीर्षक इस ग्रन्थ का हिन्दी-जगत् में स्वागत किया जायगा।

—डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
साहित्यमंत्री

दीपावली, संवत् २०३९ वि०

ममतामयी अम्मा

और

देवतुल्य बाबू

की

पावन-स्मृति

को

भूमिका

समय की गति द्रुत है और नियति की लीला विलक्षण। किसी भी बात का होना इन्हीं पर निर्भर है। बात पुरानी हुई। सन् १९५२ में एम० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद शोधकार्य में लगने की कामना ने निश्चय का रूप ले लिया। अपने एम० ए० के अध्ययन-काल में ही मैं गुरुवर डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी से रिसर्च-सन्दर्भ छेड़कर अपनी रुचि व्यक्त कर चुका था। उनके प्रेरक एवं उदार व्यक्तित्व से प्रभावित मेरे मन को शोध की धुन सवार हो गयी और उन्हीं के निर्देशन में खोज-कार्य प्रारम्भ करने का निश्चय हुआ। स्वामी रामचरण पर कार्य करने की प्रेरणा भी मुझे उन्हीं से मिली। मैं शोधछात्र के रूप में दो वर्षों तक नियमित रूप से कार्यरत रहा, पर समय और नियति के सामने अपना वश नहीं चला। इन्दौर की यात्रा से वापस हुआ था, बात सन् १९५५ की है। मेरा बाक्स चोरी चला गया—कुछ कपड़े, कुछ पैसे और थोड़े-से कागज़-पत्र। ये वही कागज़-पत्र थे जिन्हें शोध के नाम पर लिखा-पढ़ा गया था। मन बोझिल हो गया, वह निराशा का घर बन गया और मैं भगवान अमिताभ की धरती का वासी बना। पर शोधकार्य की ललक मन से न जाती। बरबस भूलना चाहता लेकिन उसकी याद पत्थर पर बनी लकीर सदृश अमिट थी। परन्तु याद-ही-याद थी, मन तो टूट गया था और इस प्रकार आगया सन् १९७२। स्मृतियाँ टूटे मन को सहारा देकर उठाने में सफल हो गयीं। समय की दूरी के चिह्न जैसे मिटने लगे और मैं पुनः शोध से जुड़ गया।

जब मैंने कार्यारम्भ किया था, उस समय तक स्वामी रामचरण पर कोई विशेष कार्य नहीं हुआ था। मेरी दृष्टि में फरवरी, सन् १८३५ के 'जर्नल ऑव दी एशियाटिक सोसाइटी' के अंक में कैप्टेन वेसमकट का रामसनेही सम्प्रदाय पर लिखित विस्तृत लेख ही एक महत्त्वपूर्ण कार्य था। इसके अलावा साधु मनोहरदास जी ने 'रामस्नेही धर्म दर्पण' नाम की एक पुस्तक भी प्रकाशित की थी। इस बीच रामसनेही सम्प्रदाय और स्वामी रामचरण पर कुछ कार्य हुए हैं। मुझे स्वामी रामचरण का प्रथम अध्येता बनने का सौभाग्य तो अवश्य प्राप्त हुआ पर मेरा यह ग्रन्थ प्रथम नहीं कहा जा सकता। रामसनेही सम्प्रदाय पर गोरखपुर विश्वविद्यालय में डॉक्टर भगवतीप्रसाद सिंह के निर्देशन में डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर चुके हैं। इस शोध-प्रबंध में तीनों रामसनेही सम्प्रदाय एवं उनके साम्प्रदायिक साहित्य पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। दूसरा शोध-प्रबंध, गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत डॉ० अमरचन्द वर्मा का है। डॉक्टर वर्मा ने 'स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन' विषय पर शोध-कार्य किया है।

डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी की शोधकृति में रामसनेही नाम के जो तीन सम्प्रदाय प्रचलित हैं, उन तीनों के साम्प्रदायिक साहित्य एवं उनके सर्जकों का सम्यक् विवेचन मिलता है। स्वामी रामचरण शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय के मूलाचार्य थे, अतः स्वामी जी के जीवन एवं कृतित्व पर भी उन्होंने संक्षेप में विचार किया है। डॉक्टर अमरचन्द वर्मा की शोध-रचना विषय से सीधा सम्बन्ध रखती है। उनका अध्ययन सम्यक् पर संक्षिप्त है।

उक्त दोनों शोध-प्रबंधों के अवलोकन के बाद भी मैं इस निष्कर्ष पर रहा कि स्वामी रामचरण के जीवन एवं कृतित्व के विस्तृत अध्ययन की अभी अपेक्षा है। डॉ० त्रिपाठी का शोध-प्रबंध विषय से सीधे संबंधित नहीं है, फिर [illegible] स्वामी रामचरण के अध्ययन में सहायता मिलती है। डॉक्टर वर्मा का अध्ययन इस विषय पर अवश्य प्रथम प्रकाशित शोध-रचना है। डॉक्टर वर्मा इस ग्रंथ के 'प्राक्कथन' में लिखते हैं—"इस सम्प्रदाय के संतों के सम्पर्क में होने के कारण मैं अन्य व्यक्ति की तुलना में प्रचुर मात्रा में सामग्री प्राप्त करने तथा उनके वैज्ञानिक परीक्षण में साम्प्रदायिक महत्त्व के व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने में अधिक सफल हो सकूँगा, ऐसा हुआ भी।"[1] इसी सन्दर्भ को वे आगे बढ़ाते हैं—"सम्प्रदाय के संतों एवं अनुयायियों से आशा के अनुरूप ही सामग्री प्राप्त हुई, परन्तु उसमें साम्प्रदायिक दृष्टिकोण इतना तीव्र था कि उसमें से वैज्ञानिक पद्धति पर सब स्वीकृत तथ्यों को निकाल पाना सरल न था।"[2] सम्प्रदाय-विशेष के प्रवर्त्तक के अध्ययन में [illegible] दृष्टिकोण की महत्ता अवश्य रहती है। उसे कैसे नकारा जा सकता है, किन्तु जहाँ दृष्टिकोण रूढ़िग्रस्त फलतः अप्रामाणिक प्रतीत हों, वहाँ उनके आवर्त्तों से निकल पाना अवश्य समस्या होती है। ऐसे कतिपय स्थल हैं जहाँ मैं डॉक्टर वर्मा के दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो पाया। मैंने उन स्थलों की समीक्षा कर अपने निष्कर्ष दिये भी हैं। साम्प्रदायिक व्यक्तियों से जुड़े होने के कारण अध्ययन को वैज्ञानिक दृष्टि देना कठिन नहीं। मैं भी इस अध्ययन के सन्दर्भ में अनेक संतों एवं गृहस्थों के सम्पर्क में आया और उनसे अध्ययन में पर्याप्त सुविधा भी मिली। स्वामी रामचरण के जीवन को चामत्कारिक घटनाओं से जोड़ने का प्रयास साम्प्रदायिक साहित्य में जहाँ कहीं दृष्टिगत हुआ है, मैंने अपने अध्ययन को उससे अप्रभावित ही रखा है। डॉक्टर वर्मा कहीं-कहीं साम्प्रदायिक आवर्त्त से प्रभावित हो गये हैं। यथा—स्वामी जी को किसी स्त्री द्वारा विष दिया जाना और उस विष की प्रभावहीनता, भील द्वारा उन पर वार और फिर क्षमायाचना आदि।

अपने अध्ययन में मैंने स्वामी रामचरण के जीवनवृत्त से संबंधित साम्प्रदायिक और असाम्प्रदायिक साक्ष्यों की तुलना करके निष्कर्ष पर पहुँचने की चेष्टा की है। यद्यपि साम्प्रदायिक साक्ष्य पर्याप्त सबल हैं, उनका जीवनीकार जगन्नाथ सफल जीवनीकार सिद्ध

---

१. डॉक्टर अमरचन्द वर्मा—स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, प्राक्कथन, पृ० १।
२. वही।

हुआ है पर असाम्प्रदायिक साक्ष्यों में से भी कतिपय को नकारा नहीं जा सकता। यथा— कैप्टेन वेस्मकट का एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित सन् १८३५ ई० के फरवरी अंक का लेख। जनश्रुतियों को प्रमाण रूप में ग्रहण करने का अवसर बहुत कम यानी नहीं के बराबर आया है। एकाध ही स्थल ऐसे मिलेंगे। इसी प्रकार अन्तःसाक्ष्यों का भी अभाव है। एकाध ही स्थल उसके भी मिलते हैं। सम्पूर्ण अध्ययन को मैंने तीन खण्डों एवं आठ अध्यायों में विभाजित किया है—

(क) प्रथम खण्ड—परिचय

प्रथम अध्याय—अध्ययन के सूत्र
द्वितीय अध्याय—स्वामी रामचरण का जीवन-वृत्त
तृतीय अध्याय—स्वामी रामचरण का पंथ—रामसनेही सम्प्रदाय
चतुर्थ अध्याय—स्वामी रामचरण की रचनाएँ

(ख) द्वितीय खण्ड—विचारधारा

पंचम अध्याय—विचारधारा : अध्यात्मपक्ष
षष्ठ अध्याय—विचारधारा : लोकपक्ष

(ग) तृतीय खण्ड—काव्यत्व

सप्तम अध्याय—काव्यत्व : अनुभूति पक्ष
अष्टम अध्याय—काव्यत्व : अभिव्यक्ति पक्ष
उपसंहार

अपने इस अध्ययन को मैंने भरसक पूर्ण बनाने की चेष्टा की है। इसे कहाँ तक पूर्णता मिल पायी है, इसका निर्णय तो सुधीजन ही कर सकेंगे। इस कार्य को जिन श्रद्धास्पद, स्नेही स्वजनों के कारण पूर्णता मिल सकी है उन्हें स्मरण कर उनके प्रति अपने भावों को अभिव्यक्त करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। सर्वप्रथम मैं अपने पूज्य आचार्य गुरुवर डॉक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, अवकाश प्राप्त अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय के चरणों में भाव-प्रसून समर्पित करता हूँ, जिनके व्यक्तित्व की स्नेहिल छाँह में मेरा विकास हुआ है। बी० ए०, एम० ए० की पढ़ाई से लेकर रिसर्च स्कॉलर बनने की सम्पूर्ण प्रक्रिया में उनका प्रेरणादायी व्यक्तित्व ही मुझे प्रोत्साहित करता रहा है। इस ग्रन्थ का प्रस्तुतीकरण भी उन्हीं के प्रोत्साहन, आशीर्वाद एवं शुभेच्छाओं का परिणाम है। स्वामी रामचरण के ये शब्द मेरे भावों के प्राण बन रहे हैं—'शीश धरूँ गुरुचरण तल।'

इस शोध-कार्य के सिलसिले में मुझे शाहपुरा, भीलवाड़ा (राजस्थान) और इन्दौर (मध्यप्रदेश) की यात्राएँ करनी पड़ी थीं। शाहपुरा और भीलवाड़ा इन दोनों स्थानों से स्वामी रामचरण का घना लगाव रहा है। शाहपुरा तो उनके पंथ का केन्द्र ही है। इन दोनों

स्थानों की यात्रा मैंने सन् १९५३ में फूलडोल के अवसर पर की थी। उस समय सम्प्रदाय के आचार्यपीठ पर स्वर्गीय स्वामी निर्भयराम जी विराजमान थे और भण्डारी पद पर स्वर्गीय नानूराम जी। वर्तमान आचार्य स्वामी रामकिशोर जी और इन्दौर गोराकुण्ड रामद्वारा के संत एवं मेरे परमस्नेही मित्र श्री सन्मुखराम जी से भी वहीं सम्पर्क स्थापित हुआ था। पूज्य आचार्य श्री निर्भयराम जी एवं परमादरणीय भण्डारी जी श्री नानूराम जी के स्नेह भरे आशी-र्वचन आज भी मेरे स्मृति-पटल पर अंकित-से हैं। उन लोगों को यह जानकर अपार हर्ष हुआ था कि मैं मूलाचार्य स्वामी रामचरण पर ग्रंथ लिख रहा हूँ। आज जब अध्ययन पूर्ण हुआ है, दोनों ही महापुरुष इस संसार में नहीं हैं। मैं दोनों ही महापुरुषों के प्रति अपनी मौन श्रद्धा समर्पित करता हूँ। मैं शाहपुरा में लगभग १५ दिनों ठहरा था। भण्डारी जी एवं स्वामी रामकिशोर जी (वर्तमान आचार्य) की मुझ पर विशेष कृपा थी। भण्डारी जी सदैव मेरी चिन्ता करते एवं सुविधाओं पर दृष्टि रखते थे। उन्हीं की कृपा एवं स्वामी रामकिशोर जी की प्रेरणा से मैं अणभैवाणी की प्राचीनतम प्रति (स्वरूपाबाई की पोथी) देख सका था। स्वामी रामकिशोर जी महाराज बराबर मुझे अपने स्नेह एवं आशीर्वाद से प्रेरणा देते रहे। स्वामी जी महाराज का मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ। इस अवसर पर मैं मुनिद्वारा भीलवाड़ा के संत श्री नैनूराम जी के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी कृपा से मैं कुहाड़ा की पावन भूमि का दर्शन कर सका था। मुनिद्वारे का दो दिनों का निवास आज भी मेरी स्मृति में है।

इस अध्ययन को पूर्णता दिलाने में शाहपुरा से कम महत्त्व इन्दौर का भी नहीं है। इन्दौर के संत श्री सन्मुखराम जी मेरे मित्र हैं। उनकी प्रेरणा एवं स्नेह से मैंने इन्दौर की कई यात्राएँ की हैं। संत सन्मुखराम जी ने मुझे सर्वाधिक प्रेरित किया है और हर संभव सहयोग से इस प्रबंध को पूर्णता दिलायी है। उन्होंने उज्जैन तक से शोध-सामग्री मँगवाकर दी और मेरे लिए अनेक ग्रंथ पहले से ही एकत्र कर रखे थे। उनके स्नेह एवं सहयोग को धन्यवाद या आभार प्रदर्शित कर हल्का नहीं करना चाहता। इसी सन्दर्भ में मैं उनके पूज्य गुरु स्वर्गीय नवनिद्ध राम जी का भी स्मरण कर श्रद्धावनत हूँ जिनकी कृपा सदैव मुझ पर रही। गुरुलीला विलास, परची, रामपद्धति आदि ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ उन्होंने मुझे पहली यात्रा में ही दे दी थी। ये सभी ग्रंथ उनकी पूजा की वस्तु थे, पर उन्होंने इन सब को मुझे सोल्लास दे दिया था। उनकी स्मृति का रूप इन ग्रंथों ने ले लिया है। इन्दौर छत्रीबाग के संत श्री कनीराम जी का भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे अपने सुझावों एवं समाधानों से उपकृत किया है। इनके साथ मैं उज्जैन के साधु श्री उम्मेदराम, श्री सरोवरराम जी आदि का भी आभारी हूँ। इन सभी का सहयोग मेरा संबल रहा है।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के रीडर डॉक्टर रामचन्द्र तिवारी ने समय-समय पर मुझे अपने अमूल्य सुझाव दिये हैं। उनकी प्रेरणा से मैं सदैव उत्साह ग्रहण करता रहा हूँ। एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ। मेरे अनुज श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय एवं प्रिय शिष्य श्री सुमिरन शर्मा तथा श्री ब्रह्मानन्द सिंह की अभिरुचि, सेवा एवं शुभेच्छाएँ भी इस अवसर पर स्मरणीय हैं। ये सभी लोग मेरे स्नेह के पात्र हैं। अंत में मैं अपनी अच्छी-बुरी

परिस्थितियों को धन्यवाद देते हुए भगवान तथागत की सोयी प्रतिमा के समक्ष नतमस्तक हूँ जिनकी छत्रछाया में इस ग्रंथ का प्रणयन पूर्ण हुआ है।
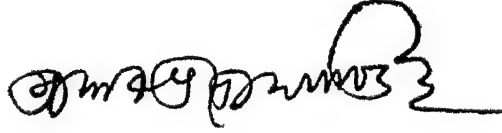
प्रणयन से प्रकाशन तक की लम्बी यात्रा में इस ग्रंथ ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे, अन्ततः यह प्रकाश में आ रहा है। प्रकाशन की इस उल्लासमयी वेला में अपने परम कृपालु एवं स्नेही सुहृद्जनों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन मैं अपना पावन कर्त्तव्य समझता हूँ। सर्वप्रथम मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री श्री प्रभात शास्त्री के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी अनुकम्पा मेरे ऊपर सदैव रही है। उनका स्नेह इस ग्रंथ की प्रकाशन-यात्रा का संबल रहा है। सम्मेलन के सहायकमंत्री श्री श्यामकृष्ण पाण्डेय मेरे अनन्य हैं, इस ग्रंथ का प्रकाशन उनकी रुचि, लगन एवं प्रीतिवश ही सम्भव हुआ है। आभार-प्रकाशन के द्वारा मैं उनके स्नेह को ससीम नहीं करना चाहता। साहित्य-विभाग के अध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय मेरे मित्र हैं, उनके परिश्रम एवं लगन के फलस्वरूप ही ग्रंथ को यह कलेवर प्राप्त हुआ है। एतदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ। अन्त में, मैं सम्मेलन मुद्रणालय के सहायक व्यवस्थापक श्री शिवनारायण झा एवं उनके सहयोगियों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने बड़ी रुचि के साथ इसका मुद्रण-कार्य सम्पन्न किया।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जन्मशती
रविवार १, अगस्त १९८२ ई०
बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कुशीनगर, देवरिया

शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य
स्वामी जी श्री १००८ श्री रामकिशोर जी महाराज

अनुक्रम

[क] प्रथम खण्ड : परिचय

[ग] तृतीय खण्ड : काव्यत्व

स्वामीजी श्री १००८ श्री रामचरण जी महाराज

श्री रामनिवासधाम, शाहपुरा

वारहधरी श्रीरामद्वारा, भीलवाड़ा
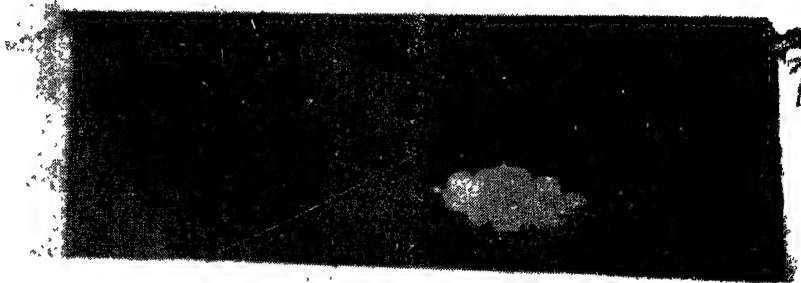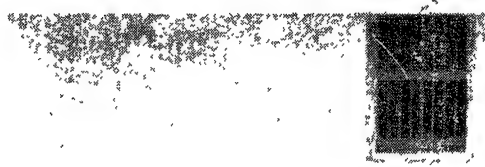
स्वामीजी श्री १००८ श्री रामचरण जी महाराज की तपस्थली
सेठ मयाचन्दजी की बावड़ी, भीलवाड़ी

प्रथम अध्याय

अध्ययन के सूत्र

हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्वामी रामचरण और उनके द्वारा स्थापित रामसनेही सम्प्रदाय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके जीवन और कृतित्व के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए निम्नलिखित उपलब्ध प्रकाशित-अप्रकाशित सामग्री से अत्यधिक सहायता प्राप्त होती है—

१. तासी कृत हिन्दुई साहित्य का इतिहास : अनु० डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

स्वामी रामचरण की जीवनी एवं कृतियों के अध्ययन का संदर्भ-सूत्र सर्वप्रथम मुझे गार्साँ द तासी लिखित 'इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी' के हिन्दी अंश के अनुवाद की अनुक्रमणिका तैयार करते समय हाथ लगा। गुरुवर डॉक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी ने 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' नाम से यह अनुवाद प्रस्तुत किया है। इस इतिहास ग्रंथ में तासी महोदय ने स्वामी रामचरण की जीवनी एवं उनकी रचनाओं की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है। स्वामी जी के जीवनवृत्त से संबंधित निम्नलिखित सूचनाएँ इस ग्रंथ में मिलती हैं—

१. स्वामी रामचरण रामसनेही हिन्दू संप्रदाय के संस्थापक एक वैरागी थे।

२. उनका जन्म सन् १७१९ में जयपुर राज्यान्तर्गत सोरहचसन नामक गाँव में हुआ था। उन्होंने सन् १७५० ई० में अपना जन्मस्थान त्याग दिया था और घूमते-फिरते उदयपुर राज्य के भीलवाड़ा नामक स्थान पर पहुँचकर दो वर्ष तक वहाँ निवास किया।

३. मूर्तिपूजा का विरोधी होने के कारण स्वामी रामचरण को महाराणा भीमसिंह ने ब्राह्मणों द्वारा प्रेरित होने पर कष्ट दिया, जिसके कारण उन्होंने भीलवाड़ा का शीघ्र त्याग कर दिया।

४. भीलवाड़ा छोड़कर स्वामी जी शाहपुरा आए। शाहपुरा के शासक भीमसिंह ने उन्हें अपने दरबार में शरण देकर उनकी रक्षा की। वे सन् १७६७ ई० में शाहपुरा आ गए थे। भीलवाड़ा से उन्हें लाने के लिए सेवकों का एक समूह हाथियों समेत गया था। किन्तु स्वामी जी उन साधनों की सेवा अस्वीकृत कर पैदल ही चलकर शाहपुरा पहुँचे।

५. इसके दो वर्ष बाद अर्थात् सन् १७६९ ई० में शाहपुरा में बस जाने के बाद उन्होंने अपने संप्रदाय की स्थापना की।

६. स्वामी रामचरण की मृत्यु के संबंध में तासी महोदय लिखते हैं कि अपनी ७९वीं वर्ष की अवस्था में, सन् १७९८ ई० के अप्रैल मास में मृत्यु को प्राप्त हुए।

तासी महोदय ने लिखा है कि भीलवाड़ा का सूबेदार देवपुर जाति का बनिया था जो स्वामी रामचरण का कट्टर विरोधी था। उसने इन्हें जान से मार डालने के लिए एक सिंगी को भेजा था। मारने की नीयत से पहुँचा सिंगी स्वामी रामचरण के अलौकिक गुणों से प्रभावित हो गया और उनके चरणों पर गिरकर क्षमा-याचना की।

तासी ने अन्त में उनकी रचनाओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि रामचरण जी ने छत्तीस हजार दो सौ पचास शब्दों या भजनों की रचना की है। देवनागरी लिपि में लिखे इन शब्दों या भजनों की भाषा प्रधानतः हिन्दी है, जिसमें अरबी-फारसी और संस्कृत-पंजाबी शब्दों के मिश्रण मिलते हैं। तासी ने उपर्युक्त जानकारी कैप्टन वेस्मकट के उस लेख से प्राप्त की है, जिसे वेस्मकट महोदय ने कलकत्ते की एशियाटिक सोसायटी के फरवरी, १८३५ ई० के जर्नल में प्रकाशित कराया था।

२. जर्नल ऑव द एशियाटिक सोसायटी (फरवरी, १८३५)

प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में जर्नल की यह जिल्द मुझे प्राप्त हुई थी। जर्नल के इस अंक में कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट का एक लेख 'Some account of a sect of Hindu Schismatics in Western India, calling themselves Ramsanehis of friends of God' प्रकाशित है। मेरी दृष्टि में उक्त लेख प्रथम महत्त्वपूर्ण सामग्री है जो स्वामी रामचरण, उनके द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय एवं उनके विचारों की जानकारी देता है। कैप्टेन वेस्मकट भारत के गवर्नर-जनरल के वैयक्तिक सचिव के सहायक थे। उन्होंने शाहपुरा जाकर संप्रदाय संबंधी जानकारी एकत्र की थी। इस लेख के अन्तर्गत विभिन्न उपशीर्षकों मे लेखक ने स्वामी रामचरण के जीवनवृत्त, सम्प्रदाय के संगठनात्मक स्वरूप, सम्प्रदाय के उत्सव फूलडौल आदि की विस्तार से चर्चा तो की ही है, साथ ही शाहपुरा से प्राप्त कुछ कविताओं की पाण्डुलिपि का अंग्रेजी अनुवाद भी जोड़ दिया है। इस अनुवाद में लेखक को कलकत्ता के बाबू काशीप्रसाद घोष से सहायता मिली थी जिसके लिए उन्होंने आभार भी व्यक्त किया है।[1] वेस्मकट महोदय सम्प्रदाय के तत्कालीन महंत स्वामी नारायणदास जी से मिले भी थे। उन्होंने स्वामी जी से हुए वार्तालाप का संक्षेप में उल्लेख भी किया है। वेस्मकट ने शाहपुरा जाकर स्वामी नारायणदास जी से तीन बार भेंट की थी। इस संदर्भ में उनका यह कथन द्रष्टव्य है—

"It may be right to mention in this place, that many of the reasons given for the institution of particular rites were received from the chief

---

1. I have to acknowledge my obligations to Babu Kasi Prashad Ghos of Calcutta, for his courtesy in assisting me with a translation of these papers. He purposely rendered it as literal as possible, and I am not sure if it would not have been better had I left it in that form.

—Journal of the Asiatic Society, Feb; 1835, p. 78.

of the Ramsanehis to whom I made three visits. He usually delivered himself in Sanskrit verse, which he afterwards explained in local dialects, for the instruction of his hearers."[१]।

३. द निर्गुण स्कूल ऑव हिन्दी पोएट्री : डॉ० पी० डी० बड़थ्वाल
[हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय : डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल]

संत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने अपने शोध-प्रबन्ध 'द निर्गुण स्कूल ऑव हिन्दी पोएट्री' के पृष्ठ ३०७ पर शाहपुरा के स्वामी रामचरण का उल्लेख रामसनेही पंथ के संस्थापक के रूप में किया है। इस पंथ का विकास अठारहवीं शताब्दी में हुआ था। स्वामी रामचरण की बानी का विशाल संग्रह डॉक्टर बड़थ्वाल को बाद में प्राप्त हुआ था जिसमे कबीर की विचारधारा प्रतिध्वनित हुई है। कबीर के लिए स्वामी रामचरण के मन मे बड़ा आदर था।

४. प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज का चौदहवाँ वार्षिक विवरण (सन् १९२९-३१ ई०) : डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

स्वर्गीय डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल द्वारा प्रस्तुत की गई यह खोज-रिपोर्ट काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित है। इस खोज-रिपोर्ट के अनुसार स्वामी रामचरण रामसनेही पंथ के संस्थापक और नवलराम के गुरु थे। रिपोर्ट मे उनके निम्नलिखित ग्रंथों का उल्लेख मिलता है—

१. जिज्ञास बोध	[निर्माण-काल सं० १८४७ वि०]
२. विश्राम बोध	[,, सं० १८५१ वि०]
३. नमनानिबास	[,, सं० १८५२ वि०]
४. विश्वास बोध	[,, सं० १८४९ वि०]
५. अमृत उपदेश	[,, सं० १८४४ वि०]
६. रामचरण के शब्द	
७. अणभै विलास	[,, सं० १८४५ वि०]
८. रागरसायनि	
९. सुख विलास	[,, सं० १८४६ वि०]

रिपोर्ट में डॉक्टर बड़थ्वाल ने लिखा है कि इनमें से अब तक कोई भी ग्रंथ खोज मे नहीं मिला था। इसी रिपोर्ट के अनुसार 'विनोद'[२] के नं० १०७५ पर इनके रचे पाँच ग्रंथों का उल्लेख मिलता है जो इस रिपोर्ट में १, २, ४, ६, और ७ हैं। 'वाणी' नामक ग्रंथ की

१. Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835. P 69.

२. मिश्रबन्धु विनोद।

सूचना भी इसी रिपोर्ट में मिलती है। 'विनोद' में उल्लिखित 'रसमालिका' ग्रंथ के रचनाकार स्वामी रामचरण के विषय में डॉ० बड़थ्वाल ने लिखा है कि ये रामचरण अयोध्या के महंत थे, जो ठीक भी है।

खोज-रिपोर्ट में डॉक्टर बड़थ्वाल आगे लिखते हैं कि स्वामी रामचरण राजपूताने के शाहपुरा नामक स्थान के निवासी थे। 'अमृत उपदेश' एवं 'शब्द' नामक ग्रंथों की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करके उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि उनके गुरु का नाम कृपाराम या कृपालराम था—

"सिर ऊपर सतगुरु तपै, कृपाराम जी संत।
रामचरण ता सरणि में, ऐसो पायो तंत।।"

—अमृत उपदेश

"सतगुरु संत कृपाल जी रामचरण सिष तासु के।
कारिज करि कारण मिले तुम गुरु रामजनदास के।।"

—शब्द

स्वामी रामचरण ने अपने सभी ग्रंथों का आरंभ जिस प्रसिद्ध दोहे से किया है, उसका उल्लेख भी इस खोज-रिपोर्ट में है।[१] इसी रिपोर्ट में आगे डॉक्टर बड़थ्वाल ने 'राम रसायनि' के कुछ दोहे उद्धृत किए हैं।[२] इस उद्धरण के साथ उन्होंने यह आशंका व्यक्त की है कि क्या सचमुच इन ग्रंथों की रचना एक ही व्यक्ति ने की है। पर ग्रंथ के अन्त में—इति श्री राम-रसाइनि ग्रंथ रामचरणकृत सम्पूर्ण समाप्त—लिखित वाक्य से यह संदेह दूर हो जाता है।

विवरणकार आगे लिखता है कि रामचरण जी को उनका शिष्य समुदाय 'राम' नाम से भी अभिहित करता था। इसी संदर्भ में उसने स्वामी जी के शिष्य नवलराम जी रचित 'नवल सागर' का एक दोहा भी प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया है जो इस प्रकार है—

"राम गुरु उर में बसे अनन्त कोटि जन सीस।
नवलौ अनुचर रावरौ मानूं बिसवा बीस।।"

विवरण में 'अणभै विलास' ग्रंथ की चर्चा स्वामी रामचरण के गुरु कृपाराम की मृत्यु-तिथि एवं स्वामी रामचरण की जन्मतिथि के संदर्भ में विवरणकार करता है। साथ

---

१. रमतीत राम गुरुदेव जी पुनि तिहूं कालके सत।
जिनकूं रामचरण की, वंदन बार अनन्त।

२. सवद एक महराज का नग मोताहल जोइ।
ग्रंथ जोड़कर रामजन षानाजाद जु होइ।
ये वाहक उधार करण कूं रामचरण जी भाषै।
राम रसाइनि रस का भरिया आप सबन कूं दाषै।
ताकी जोड़ ग्रंथ यह परगट रामजंन बणवायो।
ज्ञान भगति वैराग जुगति मुक्ती पंथ बतायो।।

ही 'राम रसाइनि' की अन्तिम पंक्तियों से स्वामी रामचरण का निधन-काल भी ढूंढ़ निकालने मे सफल हो गया है। डॉक्टर बड़थ्वाल ने यहीं यह शंका उठाई है कि ग्रंथकर्त्ता ने अपना मृत्यु-काल कैसे लिख दिया होगा ? यह संदिग्ध है। उनका यह अनुमान है कि वह उनके किसी शिष्य या प्रतिलिपिकार ने पीछे से जोड़ दिया होगा और उनका यह अनुमान सत्य प्रतीत होता है।

डॉक्टर बड़थ्वाल इसी खोज-रिपोर्ट में स्वामी रामचरण के जन्मकाल के संदर्भ में निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं—

"अठारै से षट वर्ष मास फागुन बदि सातैं।
संत पधारे धाम सनीचर वार विष्यातैं।।"

इन पंक्तियो से उन्होंने यह अर्थ निकाला है कि स्वामी रामचरण का जन्म-संवत् १८०६ वि० के फागुन महीने की बदी ७, शनिवार को हुआ था। डॉक्टर बड़थ्वाल के इस कथन से असहमत होते हुए मेरा निवेदन यह है कि **धाम पधारने का अर्थ मृत्यु है, जन्म नहीं**—पुनश्च, प्रकाशित 'वाणी' के आरंभ में स्वामी रामचरण के दादा गुरु स्वामी संतदास जी की 'वाणी' संगृहीत है। उसके अन्त में संग्रहकार ने एक कुण्डलिया लिखी है। शीर्षक के साथ वह कुण्डलिया यहाँ दी जाती है—

'स्वामी जी श्री संतदास जी परमधाम पधार्या जी सभै का ।।कूंडल्य ।।

अठारा सै षट वर्ष में संत भये निरकार।
बुध फागुण तिथि सप्तमी बार सनीसरबार।
बार सनीसर बार डार के अधम सरीरा।
प्रथम ही मिल रहे जे संघट भरीयो नीरा।
परापरे पदलीन था भिन्न दृष्टिरूप अपार।
अठारा सै षट वर्ष में संत भये निरकार।।'[1]

अतः यह स्पष्ट हो गया है कि यह स्वामी संतदास जी की मृत्यु-तिथि है। न जाने कैसे डॉक्टर बड़थ्वाल को यह तिथि स्वामी रामचरण की जन्मतिथि प्रतीत हुई। मैंने 'अणभै विलास' ग्रंथ की प्रकाशित प्रति का अवलोकन किया, किन्तु डॉक्टर बड़थ्वाल द्वारा उद्धृत पंक्तियाँ इसमें नही मिलीं। मुझे ऐसा लगता है कि किसी भक्त प्र[illegible] ने अपने लिए 'अणभै विलास' की प्रतिलिपि की होगी और अंत में स्वामी संतदास एवं स्वामी कृपाराम की मृत्युतिथियाँ भी लिख दी होंगी। डॉक्टर बड़थ्वाल द्वारा उद्धृत स्वामी कृपाराम की मृत्यु-तिथि भी शुद्ध है पर 'अणभै विलास' से उद्धृत पंक्तियाँ[2] मुझे प्रकाशित 'अणभै विलास' में

---

१. अ० वा०, पृ० ६३ (संतदास जी की वाणी)।

२. 'बत्तीसै किरपाल भाद्रपद सुदि सुकर।
छोड़े आप सरीर परमपद पहुँचे मुकर।'

—[प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज का चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृ० १३८]। उद्धृत पंक्तियाँ 'अणभै वाणी' के अंत में पृ० १०६९ पर अंकित हैं।—लेखक

नहीं मिलीं। उद्धृत पंक्तियों के तथ्य संतदास जी की वाणी के संग्रह के अंत में उद्धृत पंक्तियों वाले ही हैं। अतः स्वामी कृपाराम की मृत्युतिथि संवत् १८३२ भाद्रपद सुदी ६, शुक्रवार सही है।[1]

डॉक्टर बड़थ्वाल ने स्वामी रामचरण की भाषा और कविता के विषय में भी लिखा है। उनके अनुसार स्वामी जी की भाषा में राजस्थानी के अतिरिक्त फारसी और अरबी के बहुत से शब्द आये हैं। इनकी रचना का सार गुरुमहिमा का गान, संसार से विरक्ति और केवल राम से नाता है। उदाहरणों द्वारा अपने कथन की पुष्टि भी करते गये हैं।

५. प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज (सन् १९३८-४०)

इस खोज विवरण में स्वामी रामचरण को रामसनेही पंथ का प्रवर्त्तक कहा गया है। इनके शिष्य रामजन थे, जिन्होंने इनके ग्रन्थ 'दृष्टान्त सागर' की टीका लिखी है। यह सूचना इस विवरण से प्राप्त होती है।

६. श्री रामकृष्ण सेंटिनरी मेमोरियल, वॉल्यूम २ : [द कल्चरल हेरिटेज ऑव इंडिया]

इस खण्ड के अन्तर्गत आचार्य क्षितिमोहन सेन का 'द मिस्टिक्स ऑव नॉर्दर्न इंडिया ड्यूरिंग द मिडिल एज' नामक लेख प्रकाशित है। इस लेख में विद्वान् लेखक ने स्वामी रामचरण का संतराम या रामचरण नाम से उल्लेख किया है, जिनका जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत सूरसेन गाँव में हुआ था। उनकी जन्म-तिथि सन् १७१५ से सन् १७२० के बीच अनुमानित है। उनके शिष्यों को रामसनेही कहा जाता है। रामसनेही मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं करते और भगवान् की प्राप्ति के लिए प्रेमपथ का अवलम्बन करते हैं।

---

१. अथ स्वामीजी श्री संतदास जी के शिष्य स्वामी जी श्री कृपाराम जी परमधाम पधार्‌या जी समैं का कवित्त—

> अठारा सैं बत्तीस वर्ष भादू सुदी होई।
> छठ सुक दिन पहर ड्योढ़ उद्दोत जु सोई।
> करत कूंच किरपाल दर्स सबही कूं दीन्ही।
> झूठी झुंगी डार परमपद बास जु कीन्हीं।
> सरणैं संत दयाल के नग्र दांतड़े धाम।
> साध सिख सेवग मिले कहत राम ही राम।।

—स्वामी संतदास जी महाराज की वाणी, पृ० ६३

७. मिस्टिक्स एसेटिक्स एण्ड सेण्ट्स ऑव इंडिया : जॉन कैम्पवेल ओमेन

जॉन कैम्पवेल ओमेन ने अपनी उक्त पुस्तक में स्वामी रामचरण को अठारहवी शताब्दी पूर्वार्द्ध का एक सुधारक कहा है। मूर्तिपूजा का विरोधी होने के कारण वे ब्राह्मणों द्वारा प्रपीड़ित हुए थे। उनके द्वारा स्थापित रामसनेही सम्प्रदाय में हिन्दुओं के सभी वर्गों एवं जातियों को प्रवेश की सुविधा थी। सम्प्रदाय के सभी सदस्य शुद्ध शाकाहारी होते है और उन्हें तम्बाकू आदि मादक पदार्थों के सेवन से वंचित रहना पड़ता है।

'राम' सम्प्रदाय के विशेष उपास्य है। दैनिक उपासना में स्त्री-पुरुष दोनों भाग लेते है किन्तु दोनों की एक ही समय पर आराधना वर्जित है। लेखक ने सम्प्रदाय की उपासना-पद्धति के संबंध में एक विचित्र जानकारी दी है जो संभावनाओं के सर्वथा विपरीत है। वह कहता है—

"The religious services of the Ramsanehis are said to have a strong resemblance to those of Musulmans."[१]

वह राजपूताना के शाहपुर नामक स्थान को रामसनेहियों का प्रमुख पीठ कहता है।

८. ए हिस्ट्री ऑव हिन्दू सिविलाइज़ेशन ड्यूरिंग ब्रिटिश रूल, वॉल्यूम १ : प्रमथनाथ बोस

उक्त ग्रंथ के लेखक श्री प्रमथनाथ बोस ने रामसनेही सम्प्रदाय संबंधी सूचना के लिए श्री अक्षयकुमार दत्त के 'उपासक सम्प्रदाय' ग्रंथ को आधार माना है। वे फुटनोट मे लिखते हैं—

"For information regarding the Ramsanehi sect I am indebted to Akshaya Kumar Dutt's Upasaka Sampradaya."[२]

श्री बोस ने स्वामी रामचरण के विषय में निम्नलिखित सूचनाएँ दी हैं—

१. रामसनेही सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी रामचरण का जन्म सन् १७१९ ई० में जयपुर के सूरसेन नामक ग्राम में हुआ था।

२. वे मूर्तिपूजा के विरोधी थे। गाँव के ब्राह्मणों से तंग आकर उन्होंने घर छोड़ दिया और भारत के विभिन्न भागों का भ्रमण करते हुए उदयपुर राज्य में आकर बस गये। ब्राह्मणों द्वारा उभारे जाने पर उदयपुर के राजा ने स्वामी रामचरण को पीड़ा पहुँचाना आरंभ किया। रामचरण जी ने शाहपुरा के राजा की शरण ली। राजा ने उन्हें निमंत्रित किया। दो वर्ष बाद उन्होंने अपने पंथ की स्थापना की। सन् १७९८ ई० में उनका देहावसान हो गया।

---

1. Mystics Ascetics and Saints of India. p. 133.

2. A History of Hindu Civilisation During British Rule, Vol. I, p. 131.

३. स्वामी रामचरण के १२ प्रमुख शिष्य थे। प्रत्येक शिष्य को आर्थिक एवं शैक्षिक व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सौंपे गये थे। एक भण्डारगृह का अधिकारी होता था, दूसरा सेवकों द्वारा भेंट में दिये गये वस्त्रों और कम्बलों की व्यवस्था का अधिकारी होता था। तीसरा पंथ के अन्य सदस्यों के आचरण पर दृष्टि रखता था। चौथा विशेष रूप से स्त्रियों को धार्मिक शिक्षा देने के लिए चुना जाता था, आदि।

४. यदि पंथ का कोई सदस्य गंभीर अपराध करता था तो उसे शाहपुरा लाकर उन्हीं बारह में से आठ सदस्यों की पंचायत द्वारा उसके मामले पर विचार किया जाता था। अपराध सिद्ध होने पर उसके सिर के बाल काट दिये जाते और उसे पंथ से बहिष्कृत कर दिया जाता।

५. साधु बनने के लिए नाम-परिवर्त्तन और केश-मुण्डन आवश्यक है। दो माह से अधिक एक स्थान पर रहना उनके लिए वर्जित है।

६. रामसनेही साधुओं का प्रधान जो शाहपुरा की गद्दी पर आसीन होता है, महंत कहा जाता है।

७. सभी जाति के लोग पंथ में प्रवेश पाते हैं।

८. रामसनेही मूर्तिपूजा के विरोधी हैं।

९. वे रामोपासक हैं।

१०. रामसनेहियों का उपासना-स्थल रामद्वारा कहलाता है। शाहपुरा के अतिरिक्त जयपुर, जोधपुर, नागौद, उदयपुर तथा अन्य स्थानों पर भी रामद्वारे हैं।

११. प्रातःकालीन उपासना महत्त्वपूर्ण होती है जिसमें सभी का सम्मिलित होना आवश्यक है। किन्तु संध्योपासना में केवल पुरुष ही भाग लेते हैं।

१२. फागुन के महीने में रामसनेही फूलडोल का उत्सव मनाते हैं। यह रामसनेहियों का वार्षिकोत्सव है, किन्तु हिन्दुओं के परम्परागत त्यौहार फूलडोल से इन लोगों का फूलडोल महोत्सव बिल्कुल भिन्न है।[1]

९. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास : आचार्य चतुरसेन

आचार्य चतुरसेन लिखित इस इतिहास से मात्र इतनी जानकारी मिलती है कि रामसनेही सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी रामचरण राजपूताना में रहते थे। पहले ये मूर्ति

---

१. कर्नल जेम्स टॉड ने अपने ग्रंथ 'राजस्थान का इतिहास' में मेवाड़ राज्य के महत्त्वपूर्ण त्यौहारों का वर्णन किया है। फूलडोल के विषय में उनका निम्नलिखित कथन इस बात का प्रमाण है कि हिन्दुओं द्वारा परम्परागत ढंग से मनाया जाने वाला फूलडोल रामसनेहियों के फूलडोल से भिन्न है। टॉड महोदय लिखते हैं—"**फूलडोल**-बरसात के आरम्भ में इस त्यौहार का उत्सव होता है। इस त्यौहार की शुरुआत तलवार की पूजा से होती है। यह पूजा प्रत्येक राजपूत के घर से लेकर राणा के महल तक होती है। इस त्यौहार को राजपूत लोग बड़े उत्साह से मनाते हैं और अपनी तलवारों की पूजा करते हैं।"

—कर्नल जेम्स टॉड : राजस्थान का इतिहास, हिन्दी संस्करण, पृ० ३०७

पूंजक थे। पीछे इन्होंने रामसनेही-पंथ की स्थापना की। इनके उपदेश 'वाणी' नामक संग्रह में संकलित है।

१०. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा : पं० मोतीलाल मेनारिया

पंडित मोतीलाल मेनारिया ने अपने उक्त ग्रंथ के चौथे अध्याय में रामसनेही पंथ एवं स्वामी रामचरण के सम्बन्ध में संक्षिप्त जानकारी दी है। शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय के अलावा खैड़ापा और रैण के रामसनेही सम्प्रदायों एवं उनके सस्थापकों—क्रमशः हरिरामदास और दरियाव जी का संक्षिप्त परिचय दिया है। मेनारिया जी ने स्वामी रामचरण एवं उनके द्वारा संस्थापित रामसनेही पंथ के सम्बन्ध की कतिपय और सूचनाएँ इस प्रकार दी हैं—

१. स्वामी रामचरण के अनुयायी निर्गुण परमेश्वर को राम के नाम से जानते है और उसी का ध्यान करते हैं।

२. रामसनेही साधु सिर्फ लंगोट बाँधे रहते है और ऊपर से चादर ओढ़ लेते है।

३. ये लोग विवाह नहीं करते और किसी उच्च वर्ण के बालक को चेला बना लेते हैं। प्रथम शिष्य, गुरु की गद्दी का अधिकारी होता है। बड़े शिष्य को छोटे शिष्य नमस्कार करते हैं और उन्हें गुरु सदृश आदर देते है। ये साधु रामद्वारों में निवास करते है और कथा-वाचन तथा भजन करते हैं।

४. वैसे सभी जातियों में इन लोगों के लिए आदर भाव है किन्तु अग्रवाल और माहेश्वरी बनियों की भक्ति इनके लिए विशेष होती है।

५. शाहपुरा का रामद्वारा रामसनेहियो का गुरुद्वारा है जहाँ प्रति वर्ष फाल्गुन सुदी १ से चैत्र वदी ६ तक मेला लगता है।

६ स्वामी जी के जन्मस्थान, जन्मसंवत् तथा गुरु कृपाराम एवं उनसे इनके दीक्षित होने का उल्लेख भी मिलता है।

७. शाहपुरा में राजाधिराज रणसिह ने इन्हें सम्मान दिया और शाहपुरा में इनकी गद्दी स्थापित करवायी।

८. इनके २२५ शिष्य थे, जिनमे से रामजन इनके उत्तराधिकारी हुए थे।

९. मेनारिया जी का अनुमान है कि इनकी वाणी मे छन्दों की संख्या ८००० के लगभग है।

११. कबीर एण्ड हिज़ फॉलोअर्स : एफ० ई० के

१२. ए हिस्ट्री ऑव हिन्दी लिटरेचर : एफ० ई० के

श्री के महोदय के उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों मे रामसनेही सम्प्रदाय एवं उसके संस्थापक स्वामी रामचरण की संक्षिप्त चर्चा है।

१३. 'कल्याण' का 'संत अंक'

'कल्याण' के 'संत अंक' में 'श्री श्रीरामचरणजी रामसनेही' शीर्षक एक संक्षिप्त लेख प्रकाशित है। इस लेख के लेखक साधु श्री नैनूराम जी हैं। यह संक्षिप्त लेख इस दृष्टि मे

महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें स्वामी जी के जन्मस्थान, जन्मसंवत् के अतिरिक्त इनके पिता एवं इनके वैरागी होने के पूर्व के नामों का उल्लेख है। आधुनिक बाह्य साक्ष्यों में यह मेरी जानकारी में पहला सूत्र है जिसके द्वारा विदित होता है कि इनका जन्म श्री बखतराम की धर्मपत्नी के गर्भ से हुआ था और इनका नाम रामकृष्ण था।

स्वामी रामचरण के वैराग्य ग्रहण करने के पीछे जो ख्याति चली आ रही है, उसका उल्लेख करते हुए लेखक लिखता है कि—"जब आप इकतीस वर्ष के हुए तब सोते समय इनके चरणों में वज्र का चिह्न देखकर एक ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो गया और सोचने लगा कि यह तो कोई संत है। अब तक गुप्त क्यों है?" फिर रामकृष्ण जी को स्वप्न में नदी की धारा में बहते हुए अज्ञात संत द्वारा बचाये जाने की बात भी लिखी हुई है। मेवाड़ के दांतड़ा नामक ग्राम में इनकी स्वामी कृपाराम जी से भेंट हुई थी। ये वही महात्मा थे जिन्हें रामकृष्ण जी ने स्वप्न में देखा था। कृपाराम जी ने इन्हें भगवत्-तत्त्व का उपदेश देकर इनका नाम रामचरण रख दिया था। इसी प्रकार गूदड़ वेश धारण कर ९५ वर्ष तक गुफा में तप करने की बात भी नैनूराम जी ने लिखी है। इस लेख के लेखक के अनुसार स्वामी रामचरण जी ने छत्तीस हजार साखियों की रचना की जो अनुभवों से भरी हुई है तथा रामनाम महामंत्र के उपदेशों से पूर्ण हैं। लेख के अन्त में मृत्यु-संवत् का भी उल्लेख है।

१४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉक्टर रामकुमार वर्मा ने अपने इस प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ में स्वामी रामचरण जी की चर्चा की है। उन्होंने इनका आविर्भावकाल संवत् १७७५ वि० माना है, जबकि उनके प्रामाणिक जीवनी ग्रंथों में स्वामी जी का जन्म संवत् १७७६ वि० है। डॉक्टर वर्मा ने स्वामी जी को रामोपासक और मूर्तिपूजा का विरोधी कहा है। उनके द्वारा संस्थापित रामसनेही सम्प्रदाय के विषय में डॉक्टर वर्मा लिखते हैं कि, "रामसनेही मत मुसलमानी मत से बहुत कुछ मिलता है . . . दिन में पाँच बार नमाज की तरह निराकार ईश्वर की आराधना होती है।"[१]

डॉक्टर वर्मा के इस बृहत् इतिहास ग्रंथ में आलोच्य कवि के अध्ययन की दृष्टि से कुछ विशेष या नया नहीं प्राप्त होता, प्रत्युत् भ्रामक एवं गलत सूचनाएँ मिलती हैं। ऐसा प्रतीत होता है डॉक्टर वर्मा ने जॉन कैम्पबेल ओमेन के ग्रंथ—'मिस्टिक्स एसेटिक्स एण्ड सेण्ट्स ऑव इंडिया' से स्वामी रामचरण सम्बन्धी जानकारी एकत्र की है। ओमेन महोदय को रामसनेहियों का मुसलमान मत से प्रभावित होने का भ्रम है।

मैंने स्वयं शाहपुरा में फूलडोल महोत्सव के अवसर पर उपस्थित होकर रामसनेही सम्प्रदाय की उपासना-विधि को ध्यानपूर्वक देखा है। किन्तु नमाज जैसी उपासना-विधि मेरी दृष्टि में नहीं आई। रामसनेही सम्प्रदाय के एक मर्मज्ञ विद्वान् संत (अब सम्प्रदाय

---

१. डॉ० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४११।

के आचार्य) पंडित रामकिशोर जी महाराज से मैंने जिज्ञासा की कि क्या पाँच बार नमाज की भाँति की उपासना-पद्धति पंथ में प्रचलित थी? उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया था।

१५. भारतीय अनुशीलन ग्रंथ : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (विभाग-३ : मध्यकाल)

इस ग्रंथ में आचार्य क्षितिमोहन सेन का 'मध्ययुग में राजस्थान और बंगाल के बीच साधना सम्बन्ध' शीर्षक लेख प्रकाशित है। इस ग्रंथ के २३वें पृष्ठ पर सन्त राम या रामचरण के सम्बन्ध में दो-तीन पंक्तियों में उल्लेख मिलता है। सेन महोदय ने जयपुर के सूरसेन नामक ग्राम को स्वामी रामचरण का जन्मस्थान बतलाया है। उनके मठों का विस्तार गुजरात तक है और बंगाल में भी उनके भक्त कहीं-कहीं हैं।

१६. भारत का धार्मिक इतिहास : पं० शिवशंकर मिश्र

पंडित शिवशंकर मिश्र लिखित इस धार्मिक इतिहास ग्रंथ में स्वामी रामचरण एवं उनके द्वारा संस्थापित रामसनेही सम्प्रदाय की जानकारी प्राप्त होती है—

१. जयपुर निवासी रामचरण एक रामानंदी साधु थे।

२. शाहपुरा में राज्याश्रय प्राप्त कर उन्होंने संवत् १८२४ वि० में रामसनेही पंथ की स्थापना की।

३. रामसनेही जन गुरु को परमेश्वर से भी बड़ा मानते हैं। स्त्रियाँ पति-सेवा से भी बढ़कर गुरु-सेवा को प्रधान धर्म समझती हैं।

४. इनमें ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं है।

५. रामनाम इनका महामंत्र है। 'रामरटन' से ही मुक्ति मिलेगी, ऐसा इनका विश्वास है।

१७. रामस्नेही धर्म-दर्पण : साधु मनोहरदास जी

रामसनेही सम्प्रदाय के संत श्री मनोहरदास जी महाराज की 'रामस्नेही धर्म-दर्पण' नामक पुस्तक मुझे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के संग्रहालय में मिली थी। यह पुस्तक रामसनेही सम्प्रदाय के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करती है। ग्रंथलेखक साधु मनोहरदास जी ने रामसनेही सम्प्रदाय का मूल रामानुज सम्प्रदाय को माना है। पुस्तक की भूमिका का यह अंश इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य है :—

"विदित हो कि भारत प्रख्यात श्रीमत् रामानुज सम्प्रदाय से आविर्भावित श्री रामानन्द साधु सम्प्रदाय हुआ। इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत आगे चलकर गलता (जयपुर राज्य) में श्री पैहारी महाराज तथा श्री अग्रदास जी महाराज बड़े प्रख्यात संत हुए। इन्हीं की शिष्य-परम्परा में गूदड़ वेशधारी महात्मा श्री संतदास जी तथा उनके शिष्य श्री कृपाराम जी हुए। इन्ही श्री कृपाराम जी महाराज के श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, शाहपुरा (मेवाड़) के मूल आचार्य श्री १००८ श्री रामचरण जी महाराज प्रगट हुए। आप परम निर्गुण गायक संत थे। आपकी

समाधि-स्थिति में जो-जो ब्रह्मानुभूतियाँ हुईं, वही अनुष्टुप श्लोकाक्षर संख्या प्रमाण में सवा छत्तीस हजार सरस 'अनुभववाणी' के नाम से प्रसिद्ध हुई हैं।"[1]

१८. उत्तरी भारत की संत परम्परा : पं० परशुराम चतुर्वेदी

पण्डित परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' संत-साहित्य का गम्भीर एवं पूर्ण अध्ययन है। अपने इस विशाल ग्रंथ में चतुर्वेदी जी ने निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रामसनेही सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी रामचरण एवं सम्प्रदाय के विषय में अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख किया है—

१. संत रामचरण का संक्षिप्त परिचय—इस शीर्षक के अन्तर्गत विद्वान् लेखक ने स्वामी रामचरण के जन्मस्थान, जन्मतिथि, जाति एवं इनके पूर्व नाम का उल्लेख करते हुए ३१वें वर्ष में स्वामी कृपाराम का स्वप्न में दर्शन प्राप्त कर उनकी खोज में निकल पड़ने की बात लिखी है। दाँतड़ा ग्राम में उन्हें स्वामी कृपाराम का दर्शन मिला। वे स्वामी जी के शरणागत हुए। स्वामी कृपाराम जी ने इन्हें दीक्षित करके इनका नाम रामकृष्ण से रामचरण रख दिया। इसी में आगे स्वामी संतदास जी की मृत्युतिथि, स्वामी कृपाराम जी की मृत्युतिथि, स्वामी रामचरण द्वारा तपस्या करने की तिथि एवं अवधि का उल्लेख मिलता है।

२. मत—इस शीर्षक के अन्तर्गत सम्प्रदाय स्थापना का समय, देवी-देवताओं की पूजा का विरोध; फलस्वरूप लोगों द्वारा उत्पीड़न की बात लिखी है। चतुर्वेदी जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि 'रामावत' एवं 'रामानंदी सम्प्रदाय' का प्रभाव तपस्या के बाद जाता रहा और ये निराकार ईश्वर की उपासना में विश्वास करने लगे। इसी में निर्गुण राम के नामस्मरण की चर्चा के साथ लेखक 'नमाज की भाँति पाँच बार प्रार्थना' की बात भी कह गया है।

३. प्रेम-साधना—संत रामचरण द्वारा प्रेम-साधना की महत्ता के प्रतिपादन के सन्दर्भ में लेखक का कहना है कि "वास्तव में प्रेम को यह महत्त्व प्रदान करने के ही कारण इनके पंथ का नाम 'रामसनेही सम्प्रदाय' हो गया।"[2] स्वामी रामचरण रचित 'शब्द प्रकाश' की पंक्तियों को उद्धृत कर लेखक ने उनके द्वारा राम ब्रह्म की उपासना-पद्धति के स्वरूप की चर्चा की है।

४. मृत्यु व शिष्य—इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्नलिखित विषय की सूचनाएँ संकलित मिल जाती हैं—

(क) किसी राजकर्मचारी द्वारा स्वामी रामचरण की हत्या का षड्यंत्र। किन्तु हत्या करने के उद्देश्य से किये गये व्यक्ति पर स्वामी जी के कथन एवं व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ना तदुपरांत उसके द्वारा क्षमा-याचना।

---

१. साधु श्री मनोहरदास जी : रामस्नेही धर्म-दर्पण, पृ० १।

२. पं० परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६१६

(ख) स्वामी जी की मृत्यु-तिथि का उल्लेख।

(ग) उत्तराधिकारी का समय एवं नामोल्लेख।

(घ) स्वामी रामचरण के प्रमुख एवं सामान्य शिष्यों की संख्या का उल्लेख।

(ङ) प्रकाशित 'वाणी' एवं ग्रंथों का उल्लेख।

५. **अनुयायी**—इस परिच्छेद में रामसनेही सम्प्रदाय के अनुयायियों से सम्बन्धित चर्चा मिलती है—

(क) रामसनेही साधु गले में माला पहनते हैं और ललाट पर श्वेत चन्दन का तिलक लगाते हैं।

(ख) ये अहिंसा में पूर्ण विश्वास करते हैं। दीपक जलाकर उसे ढँक देते हैं, जिससे कोई कीड़ा उससे न जल मरे। रात में खाना-पीना नहीं करते। 'आधे अषाढ़ से आधे कातिक के समय तक ये अत्यन्त आवश्यक कार्य पड़ने पर ही घर से बाहर निकलते हैं, क्योंकि उस समय कीड़ों के कुचले जाने की आशंका रहती है।'[१]

(ग) पंथ मे जात-पाँत का भेदभाव नहीं है। किन्तु पंथ में प्रवेश से पूर्व उन्हे महंत के पास परीक्षा देनी पड़ती है। बैरागी बनने के लिए ४० दिनों तक उन्हें शिक्षा दी जाती है।

(घ) बारह व्यक्तियो का समुदाय पंथ का संचालन करता है। उनमें से किसी के मरने पर योग्य व्यक्ति द्वारा उसके स्थान की पूर्ति कर ली जाती है।

(ङ) साधु बनते ही सिर के बाल शिखा छोड़कर कटा देते हैं। 'बंदीही'[२] और 'मौनी' साधुओं की दो कोटियाँ होती हैं।

(च) महंत के मरने पर उसके उत्तराधिकारी का चुनाव शाहपुरा में एकत्र साधुओं एवं गृहस्थों की सभा द्वारा योग्यता के आधार पर होता है।

(छ) अंत में रामसनेही सम्प्रदाय की वंशावली भी दी हुई है।

(ज) लेखक ने फुटनोट में प्रोफेसर वी० वी० राय की 'सम्प्रदाय' पुस्तक का हवाला दिया है जो मिशन प्रेस, लुधियाना से सन् १९०६ में प्रकाशित हुई थी। पं० परशुराम चतुर्वेदी से, जब वे एक बार प्रयाग आए थे, मैंने प्रो० वी० वी० राय और 'सम्प्रदाय' की चर्चा की थी। श्री चतुर्वेदी जी ने बतलाया कि प्रो० राय ईसाई थे और संदर्भित पुस्तक उर्दू में है।

(झ) पुस्तक के पृष्ठ ६१९-२० पर रामसनेही सम्प्रदाय की वंशावली और स्वामी रामानन्द जी की शिष्य-परम्परा से इसका विकास भी दिखलाया गया है, जो इस प्रकार है:—

---

१. पं० परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ६१९।

२. वास्तव में यह 'विदेही' शब्द है। सम्प्रदाय में मौनी, विदेही और परमहंस साधुओं की तीन कोटियाँ हैं। मैं समझता हूँ यह भ्रम उर्दू पुस्तक 'संप्रदाय' (लेखक वी० वी० राय) से इस शब्द के लेने से हुआ है।—लेखक

उपर्युक्त वंशावली के अंतिम महात्मा स्वामी संतदास जी के शिष्य स्वामी कृपाराम जी हुए। ये ही स्वामी कृपाराम जी रामसनेही सम्प्रदाय के मूलाचार्य स्वामी रामचरण जी के गुरु थे। ये स्वामी कृपाराम जी दाँतडा की वैष्णव-गद्दी के महन्त थे। स्वामी रामचरण से अब तक की वंशावली इस प्रकार है—

स्वामी रामचरण
|
रामजन
|
दूल्हेराम
|
चतुर दास
|
नारायणदास
|
हरिदास
|
हिम्मतराम
|
दिलशुद्धराम
|
धर्मदास
|
दयाराम
|
जगरामदास
|
निर्भयराम[1]

---

१. निर्भयराम जी के बाद दर्शराम जी आचार्य हुए थे, किन्तु उन्होंने आचार्य पद का परित्याग कर दिया। वर्त्तमान आचार्य स्वामी रामकिशोर जी हैं।—लेखक

१९. संतकाव्य : पं० परशुराम चतुर्वेदी

संतकाव्य ग्रंथ वस्तुतः संग्रह ग्रंथ है। इसमें संत कबीर से लेकर आधुनिक युग के संतों का परिचय एवं उनकी रचनाओं में से चुनकर कुछ कविताएँ सकलित हैं। स्वामी रामचरण का संक्षिप्त परिचय एवं उनकी 'अणभै वाणी' से चुनकर कुछ अंश दिये गये हैं। आरम्भ में एक अच्छी भूमिका भी है।

२०. द कल्चरल हेरिटेज ऑव इंडिया : सं० हरिदास भट्टाचार्य

श्री रामकृष्ण जन्मशती प्रकाशन समिति द्वारा जन्मशती स्मारिका के रूप में इस ग्रंथ का प्रकाशन तीन भागों में सन् १९३७ में हुआ था। लगभग २०० पृष्ठों के इस ग्रंथ के दूसरे भाग में पृ० २६८ पर आचार्य क्षितिमोहन सेन द्वारा स्वामी रामचरण एवं उनके पंथ की चर्चा हुई है।[१] सन् १९५३ में इस ग्रंथ के नवीन सशोधित एव परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन हुआ। अब सेन महोदय का यह लेख अंग्रेजी में 'द मिस्टिक्स ऑव नॉदर्न इंडिया' के नाम से संगृहीत हुआ।[२]

२१. वीर विनोद – भाग २ : कविराजा श्यामलदास

इस इतिहास ग्रंथ में यद्यपि स्वामी रामचरण का कोई उल्लेख नही है किन्तु फूलडोल महोत्सव की चर्चा अवश्य मिलती है। सम्प्रदाय के सातवें महंत हिम्मतराम जी द्वारा राणा शम्भूसिंह के आग्रह पर उदयपुर जाकर फूलडोल मनाना इस ग्रंथ के पृष्ठ २११७ पर वर्णित है। विनोदकार लिखता है—"विक्रमी फाल्गुन शुक्ल ७ (हि० १२९१ ता० ५ मुहर्रम, ई० १८७४ ता० २३ फरवरी) को शाहपुरा के रामसनेही महंत हिम्मतराम अपनी सम्प्रदाय की रीति का फूलडोल करने के लिए उदयपुर आये।"

इसी पृष्ठ पर फुटनोट में रामसनेहियों के फूलडोल पर्व का संक्षेप में उल्लेख मिलता है। लेखक लिखता है—"शाहपुरा के रामसनेही साधु होली के दिन फूलडोल का उत्सव मनाते हैं। इस उत्सव पर दूर-दूर से रामद्वारों के रामसनेही साधु आकर अपने महंत को हाजिरी देते हैं और उनको मानने वाले हजारों यात्री भी दर्शन करने को आते हैं। यह जलसा हर साल शाहपुरे में होता है, लेकिन इस वर्ष का उत्सव महाराणा साहिब की इच्छानुसार उदयपुर में किया गया।"

२२. सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी दयानन्द सरस्वती

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में रामसनेही सम्प्रदाय एवं स्वामी रामचरण की समीक्षा के नाम पर कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं। पंथ एवं पंथ-प्रवर्त्तक का उल्लेख करने के बाद लेखक ने खण्डन आरम्भ कर दिया है। 'सत्यार्थ

---

१. यह संदर्भ पीछे आ चुका है, दे० श्री रामकृष्ण सेंटिनरी मेमोरियल, वॉल्यूम २।
२. द कल्चरल हेरिटेज ऑव इंडिया, पृ० ३७७।

प्रकाश' में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने रामसनेही सम्प्रदाय का सही चित्र न देकर छीछालेदर करने का प्रयास किया है। एक उपेक्षाभरी दृष्टि से सम्प्रदाय को देखकर स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं—"थोड़े दिन हुए कि एक 'रामसनेही' मत शाहपुरा से चला है। उन्होंने सब वेदोक्त धर्म को छोड़कर 'राम-राम' पुकारना अच्छा माना है।... परन्तु जब भूख लगती है तब रामनाम में से रोटी शाक नहीं निकलता।"[1]

राम के नाम-स्मरण भाव पर खिल्ली उड़ाने के बाद स्वामी दयानन्द रामसनेहियों पर व्यंग्यात्मक आक्षेप करते हैं—"वे भी मूर्तिपूजा को धिक्कारते हैं परंतु आप स्वयं मूर्ति बन रहे हैं।"[2]

'सत्यार्थ प्रकाश' में रामसनेही सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का खण्डन तो हुआ ही है, संतों के चरित्र पर भी कीचड़ उछाला गया है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है—"स्त्रियों के संग में बहुत रहते हैं क्योंकि रामजी को 'राम की' के बिना आनंद भी नहीं मिल सकता था।"[3]

पंथ के सिद्धान्तों एवं संतों के आचरण के प्रति अपशब्दों का प्रयोग करने के बाद स्वामी महाशय ने पंथ-प्रवर्त्तक स्वामी रामचरण के प्रति भी अनादर भाव के वचनों का प्रयोग किया है। वे लिखते हैं—"अब इनका जो गुरु हुआ है रामचरण... यह ग्रामीण एक सादा सीधा मनुष्य था। न वह कुछ पढ़ा था, नहीं तो ऐसी गपड़चौथ क्यों लिखता।"[4]

'सत्यार्थ प्रकाश' में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा सम्प्रदाय एवं उसके प्रवर्त्तक के सबन्ध में लिखित विचारों का अध्ययन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि लेखक स्वस्थ समीक्षक नहीं है। उसे रामसनेही सम्प्रदाय में दोष ही दृष्टिगोचर हुए हैं। साथ ही पथ-संस्थापक स्वामी रामचरण के प्रति अनादर भाव व्यक्त करने के लिए उन्हें ग्रामीण, अनपढ़ आदि कहना किसी भी दशा में उचित नहीं। पर उनके मस्तिष्क की हीन भावना अपनी सीमा पार कर तब व्यक्त होती है जब उन्हें रामस्नेही और रांडस्नेही में कोई अन्तर ही नहीं प्रतीत होता।

स्वामी दयानन्द के इन विचारों से स्वामी रामचरण एवं उनके पंथ रामसनेही सम्प्रदाय के अध्ययन में कोई सहायता नहीं मिलती। हाँ, सम्प्रदाय की एक भद्दी तस्वीर पंथ-प्रवर्त्तक का एक विरूप चेहरा देखने को मिलता है। सम्प्रदाय के सम्बन्ध में ऐसी भ्रामक एवं गलत सूचनाएँ स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे समाज-सुधारक से नहीं अपेक्षित थी।

२३. स्वामी रामचरण—एक अनुशीलन : डॉ० अमरचन्द वर्मा

स्वामी रामचरण के जीवन एवं विचारों से सम्बन्धित यह शोध-प्रबंध गुजरात विश्व-विद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है। इस ग्रंथ के प्रकाशक श्री छगनलाल भगवानदास जरीवाला एवं श्री छगनलाल भूखणदास जरीवाला सूरत [गुजरात]

---

१. स्वामी दयानन्द सरस्वती : सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३७१।
२. वही, पृ० ३७१।
३. वही, पृ० ३७१।
४. वही पृ० ३७२।

है। यह शोध प्रबंध छः अध्यायों में लिखा गया है। लेखक डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने स्वामी रामचरण की जीवनी, रचनाओं, सम्प्रदाय, विचारदर्शन आदि विभिन्न विषयों का अध्ययन परिश्रमपूर्वक किया है। इस अध्ययन के कतिपय स्थलों पर मैं डॉक्टर वर्मा से सहमत नहीं हूँ, फिर भी यह पुस्तक विषय के अध्ययन से सीधे संबद्ध है। मतभेदों के बावजूद भी मेरे अध्ययन में यह पुस्तक उपयोगी रही है। इस अध्ययन में डॉक्टर वर्मा तटस्थता, सहृदयता एवं वैज्ञानिकता का दावा करते हैं। पुस्तक के 'प्राक्कथन' में 'इस अध्ययन की विशेषताएँ' शीर्षक के अन्तर्गत ८वीं [illegible] संबद्ध है। वे लिखते हैं—'प्रस्तुत प्रबंध के तथ्यों का अध्ययन करते समय पूर्णतः तटस्थ रहा गया है। किन्तु तथ्यों के विवेचन में सहृदयता बरती गई है। अध्ययन को अधिक से अधिक वैज्ञानिक बनाने का विनम्र प्रयास किया गया है।'[1]

२४. रामसनेही सम्प्रदाय[2] : डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी

डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी लिखित शोध प्रबंध 'रामसनेही सम्प्रदाय' गोरखपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है। इस ग्रंथ की जानकारी प्राप्त होते ही मैंने गोरखपुर विश्वविद्यालय के ग्रंथालय से सम्पर्क स्थापित किया। यह शोध प्रबन्ध तीनों रामसनेही सम्प्रदायों क्रमशः शाहपुरा, खैड़ापा और रैण के मूलाचार्यों तथा तीनों ही सम्प्रदाय के अन्य संत कवियों का संक्षिप्त विवरण तो प्रस्तुत करता ही है, रामसनेही सम्प्रदाय के स्वरूप एवं दर्शन पर भी प्रकाश डालता है। लेखक ने तीनों सम्प्रदायों में कोई भेद नहीं देखा है और तीनों को एक ही वृक्ष की तीन शाखाओं के रूप में निरूपित किया है।

इस संबंध में मेरा निवेदन है कि इन तीनों ही रामसनेही सम्प्रदायों का एक वृक्ष की शाखा जैसा कोई संबंध नहीं है। तीनों ही एक दूसरे से असम्बद्ध सम्प्रदाय हैं तथा तीन आचार्यों द्वारा अलग-अलग स्थानों पर स्वतन्त्र रीति से स्थापित किये गये हैं। यह एक संयोग ही है कि तीनों आचार्यों ने अपने-अपने सम्प्रदाय का नाम रामसनेही रखा है। मैंने शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय के अधिकारी संतों से जब तीनों सम्प्रदायों के आपसी संबंधों की बात पूछी तो उन लोगों ने ऐसे किसी संबंध को स्पष्टतया अस्वीकृत कर दिया। इन्दौर के संत श्री सन्मुखराम जी ने मुझे बताया कि न तो शाहपुरा का रामसनेही सम्प्रदाय रैण या खैड़ापे में से किसी की शाखा है और न रैण या खैड़ापा के पंथ शाहपुरा की शाखा हैं।

सन् १९५३ में फूलडोल पर्व के अवसर पर मैं शाहपुरा गया था। वहाँ मैंने दाँतड़ा की वैष्णव गद्दी के महंत का आगमन देखा।[3] एक दादू पंथी संत भी वहां दिखाई पड़े थे, किन्तु

---

१. स्वामी रामचरण—एक अनुशीलन : प्राक्कथन, पृ० च।

२. रामसनेही सम्प्रदाय : डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी, आनन्द प्रकाशन, दीवानी मिसिल, फैजाबाद, १९७३ ई०।

३. स्मरणीय है कि दाँतड़ा की वैष्णव गद्दी के पीठाचार्य स्वामी कृपाराम जी स्वामी रामचरण के गुरु थे। स्वामी रामचरण दाँतड़ा गद्दी को गुरुगद्दी होने के कारण बड़ा सम्मान

रैण या खैड़ापा के रामसनेही पंथों का कोई भी साधु वहाँ नहीं आया था। वैद्य केवलराम स्वामी ने 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के 'प्रकाशकीय' में इस संदर्भ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—'नाम साम्य से जनसाधारण को ही नहीं, विद्वानों तक को एक सम्प्रदाय होने की भ्रान्ति हो जाती है।'[1]

अतः मैं इस निष्कर्ष पर हूं कि तीनों सम्प्रदायों का अलग-अलग अध्ययन अपेक्षित है। कम से कम शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय का विशाल साहित्य तो कई खण्डों में विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा रखता है। समीक्षा के साथ-साथ सम्प्रदाय के संत कवियों द्वारा रचित ग्रंथों के पाठ-सम्पादन की समस्या है। फिर भी डॉक्टर त्रिपाठी का यह शोधप्रबन्ध एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

अब विवेच्य कवि के अध्ययन में सहायक साम्प्रदायिक सूत्रों की समीक्षा प्रस्तुत है।

२५. गुरलीला विलास : जगन्नाथ

इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति मुझे गोराकुण्ड रामद्वारा, इन्दौर के संत श्री रन्मुखराम जी से प्राप्त हुई थी। इस हस्तलिखित संग्रह में तीन पुस्तकें हैं—

१. रामपद्धति, २. गुरलीला विलास, ३. श्री दुल्हेराम जी म्हाराज की म्हेमा। इस हस्तलिखित संग्रह ग्रंथ के प्रतिलिपिकर्त्ता श्री नोनंदराम हैं जिन्होंने पौष कृष्ण १२, संवत् १९७९ वि० को इसकी प्रतिलिपि इन्दौर के गोराकुण्ड रामद्वारा में पूर्ण की।

'गुरलीला विलास' जगन्नाथ माहेश्वरी द्वारा लिखित ग्रंथ है। जगन्नाथ स्वामी रामचरण के शिष्यो में से एक थे। 'गुरलीला विलास' के अंत में ग्रंथकार ने ग्रंथ-परिचय इस प्रकार दिया है—

"साहिपुर सुषधाम राजकरे अमरेस नर्प।
जगन्नाथ सो नाम जात जेकि मुमेसरी॥
अठारा सै अरसाठ माघ सुध पंचमी।
ग्रंथ बनायो हाट बार शनीचर जानिऐ॥
गुरलीला ज विलास बुध माफक बरन्यौ कछू।
जगन्नाथ जग्यास किरपा सुत जानीऐ॥
ऐ हे ग्रंथ बांचे सुणै हिरदे करे विचार।
रामभजन जन संग करे तो तिरतां लगै न बार॥"[2]

देते थे। दाँतड़ा के आचार्य को सम्मान देने की यह परम्परा तभी से चली आ रही है। आज भी दाँतड़ा के आचार्य के आगमन पर उन्हें शाहपुरा में ससम्मान आचार्य के समकक्ष आसन मिलता है।—लेखक

१. वैद्य केवलराम स्वामी : श्री रामस्नेही संप्रदाय, प्रकाशकीय, पृ० १।

२. गुरलीला विलास की हस्तलिखित प्रति

उपर्युक्त के अनुसार यह ग्रंथ शाहपुरा में निर्मित हुआ था। ग्रंथकार ने अपना परिचय 'जगन्नाथ मुमेसरी' और 'किरपा सुत' लिखकर दिया है अर्थात् इनके पिता का नाम किरपा था और ये मुमेमरी जाति के थे। ग्रंथ 'गुरलीला विलास' की रचना इन्होंने माघ सुदी पंचमी, संवत् १८६० वि० शनिवार के दिन हाट में की थी। अंतिम दो पक्तियो मे ग्रंथ की महिमा लिखी हुई है।

'गुरलीला विलास' मे जगन्नाथ ने स्वामी रामचरण के जीवन की आद्यन्त कथा लिखी है। जीवन की आरंभिक कथा कवि ने कानों सुनी थी पर अन्त की उसकी अपनी आँखो देखी थी—

> **"आदि कथा श्रवणां सुनी निजर्यां देखी अंत।**
> **जगन्नाथ वरणी उभे सो सुणियो बुधवन्त।।"[१]**

प्रामाणिकता

इस 'गुरलीला विलास' ग्रथ का रचयिता जगन्नाथ मुमेसरी स्वामी रामचरण के जीवन-वृत्त के सदर्भ में लिखे गए विवरण की प्रामाणिकता के विषय मे भी अन्त में लिखता है जिससे ग्रंथ की प्रामाणिकता मे कोई सदेह नही रह जाता। ग्रंथकार के अनुसार यह गुरलीला अमृत की बूटी सदृश है जिसे उसने जैसा सुना व देखा था, बुद्धि के अनुसार कह डाला—

> **"गुरलीला इम्रत की बुटी।**
> **सो हम भणी सुणी सब दीठी।।"[२]**

वह कहता है कि रामचरण महाराज १८५५ बरस मे शरीर त्याग निर्वाण मे लीन हुए. यह सारी दुनिया जानती है। जगन्नाथ उस दिन वहाँउपस्थित था, किन्तु उस दिन लीला नहीं लिखी गई। यह लीला पाँच वर्ष बाद लिखी गई—

> **"रामचरण महराज जन, तन तज गऐ निरवाण।**
> **अठारा सै पचपन बरस जाणे सकल जहान।।**
> **ता दिन लीला ना लिखी हाजर था जगन्नाथ।**
> **पांच बरस पाछे लिखी जाको इ अचरज आथ।।"[३]**

जगन्नाथ ने इसी संदर्भ मे लिखा है कि एक चतुर भाई ने जिज्ञासा की कि तुमने जन्म-कथा कान से सुनी है, स्वय तुम नही जानते। इसलिए मेरे मन मे शंका उत्पन्न हुई है। तुम इसका समाधान करो कि अस्सी बरस की वार्ता कैसे तुम्हारे हाथ लगी—

> **"जनम कथा काणै सुणी तुम नहीं जानत आप।**
> **ऐसे सै उर ऊपजी, जाको करो निसाफ।।**

---

१. गुरलीला विलास, हस्तलिखित प्रति ।

२. वही।

३. वही।

असी बरस की वार्ता, कैसे आई हाथ।
ताको ऊतर अब कहूं सो बरणों जगन्नाथ।।"[1]

इस प्रश्न का उत्तर भी इसी सिलसिले में कवि ने दिया है—

'एक बार रामजन महाराज ने चाटसूँ में चौमासा किया। हम सभी रामसनेही दर्शनार्थ वहाँ गए। मार्ग में तीसरा विश्राम पार कर सोडा पहुँच गए। गुरुदेव की जन्मभूमि को हमने प्रणाम किया और उस नगर में दो पहर ठहरे। यह संयोग १८६० के वर्ष में बना था। वहाँ सभी गुरुदेव की आदि कथा कहने लगे। तभी वहाँ हम लोगों को एक शतवर्षीय व्यक्ति प्रेमपूर्वक मिला। उसने बीजावर्गी जाति की कथा कह सुनायी। उस वृद्ध पुरुष ने स्वामी जी के माता-पिता का नाम बतलाया और जिस घर में उनका जन्म हुआ था, उसे भी दिखलाया। उसने सभी बातें अलग-अलग बतलाईं और हमने उसे हृदयस्थ कर लिया'।[2]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण की आदि कथा का जो वर्णन जीवनीकार जगन्नाथ ने किया है, वह प्रामाणिक है। जगन्नाथ ने स्वयं संवत् १८६० वि० में सोडा जाकर छानबीन की थी। वहाँ उन्होंने एक शतवर्षीय पुरुष से भेंट की; जिससे उन्हें स्वामी रामचरण के आरंभिक जीवनवृत्त की जानकारी मिली। स्वामी जी के जन्म-सदन को भी जीवनीकार ने अपनी आँखों देखा था। उनके पिता और माता का नाम भी उन्हें वहीं उसी शत वर्षीय वृद्ध मनुष्य से ज्ञात हुआ। इसके अतिरिक्त जीवन के शेष विवरण का साक्षी वह स्वयं है। अतः मैं इस निष्कर्ष पर हूँ कि इस ग्रंथ में लिखित स्वामी रामचरण का जीवनवृत्त प्रामाणिक है।

२६. ब्रह्मसमाधिलीन जोग : जगन्नाथ

'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' ग्रंथ स्वामी रामचरण की रचनाओं के संग्रह 'अणभै वाणी' के अन्त में पृ० १०७५ से १०८६ पर मुद्रित है। इस ग्रंथ के रचयिता भी स्वामी जी के शिष्य

---

१. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. जनमभूमि गुरुदेव की पल से करी प्रनाम।
पहर दोइ ता नगर में सबही कीयो मुकाम।
बरस साठ के साल से ऐसो वण्यो संजोग।
आदि कथा गुरुदेव की कहन लगे सब लोग।
सो बरसां को पुरस इक मिलीयो हेत लगाइ।
विजा बरगी जात को सब विधि कही सुणाइ।
मात पिता का नाम बताया।
जनम लीयो सो भवन दिखाया।
सारी बात भिनोभिन कही।
सो सब हम हिरदे धर लही।
—वही

एवं जीवनीकार जगन्नाथ ही हैं। जगन्नाथ ने इस ग्रंथ के रचना-काल का उल्लेख निम्नलिखित पंक्तियों में इस प्रकार किया है—

"अठारा से पचपन बरस, रवि चवदश वैशाख।
ग्रंथ सम्पूरण जगन्नाथ, पुनि जानो सुदि पाख।।"[1]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि इस ग्रंथ की रचना-समाप्ति वैसाख सुदी चतुर्दशी रविवार, संवत् १८५५ वि० को हुई थी। इस संदर्भ में यह स्मरणीय है कि स्वामी रामचरण की मृत्यु वैसाख बदी पंचमी बृहस्पतिवार, संवत् १८५५ वि० को हुई थी, अर्थात् स्वामी जी के निधन के चौबीसवें दिन यह ग्रंथ लिखकर पूर्ण हो गया था। संभव है कि स्वामी जी के ब्रह्मलीन होने के दिन से ही जगन्नाथ ने इस ग्रंथ का लेखन आरंभ कर दिया हो।

'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में जीवनीकार ने स्वामी रामचरण का संक्षिप्त जीवन-चरित, क्रमशः जन्मसंवत्, जन्मस्थान, गृहत्याग, वैराग्यधारण करने से लेकर पंथ-स्थापन, शिष्य-समाज, भीलवाड़ा-शाहपुरा, शाहपुरा के नरेश भीमसिंह, अमरसिंह, फूलडोल, वाणी रचना एवं मृत्यु तक का विशद वर्णन किया है। जगन्नाथ जी स्वामी रामचरण के बहुत निकट सम्पर्क में थे। उन्होंने स्वामी जी की ब्रह्मलीन-अवस्था की बड़े विस्तार के साथ चर्चा की है। ग्रंथ का अधिकांश वर्णन आँखों देखा हाल है।

स्वामी रामचरण के उत्तराधिकारी स्वामी रामजन जी ने अपने ग्रंथ 'रामपद्धति' में स्वामी रामचरण के निधन-प्रसंग की चर्चा की है और इस संदर्भ में उन्होंने जगन्नाथ रचित इस ग्रंथ 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।[2] स्वामी रामचरण के अध्ययन में यह ग्रंथ भी अत्यन्त प्रामाणिक एवं उपयोगी है।

२७. रामपद्धति : स्वामी रामजन

ग्रंथ 'रामपद्धति' प्रकाशित 'अणभै वाणी' के अन्त में पृष्ठ १०७१ से १०७५ पर मुद्रित है। इस लघुग्रंथ के रचयिता रामसनेही सम्प्रदाय के द्वितीय आचार्य स्वामी रामजन जी हैं। स्वामी रामजन, स्वामी रामचरण के शिष्य एवं उत्तराधिकारी थे। इस लघुग्रंथ में उन्होंने अपने गुरु की महिमा का गान किया है। एकाध स्थल पर उन्होंने स्वामी जी के जीवन का प्रसंग भी उपस्थित कर दिया है। जैसे स्वामी रामचरण की मृत्यु तिथि का स्पष्ट उल्लेख[3] एवं

---

१. 'अणभै वाणी', पृ० १०८६।

२. जाकी रैस जो अनुक्रम्मसूं, जगन्नाथ कछु भाखी।
ब्रह्म समाधि लीन ग्रंथ जो, ताके मांही दाखी।
—अ० वा० में संगृहीत 'रामपद्धति,' पृ० १०७४

३. रामहिं राम भई ध्वनिसार,
संवत अष्टादश पचपन्ना,
वैसाख बदी की पांचे परगट,

तत्संदर्भ में जगन्नाथ रचित 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' ग्रंथ की चर्चा। किन्तु ग्रंथकार ने इस ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है। फिर भी इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस ग्रंथ की रचना 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' के बाद ही हुई है।

इस ग्रंथ में ग्रंथकार ने फूलडोल महोत्सव के अवसर पर स्वामी रामचरण के दर्शनार्थ नगरराज के उपस्थित होने की बात भी कही है।

"नगर लोग अरु नगरराज।
धनभाग कहैं यहां ये समाज॥"[1]

इस 'अणभै वाणी' संग्रह के अन्त में 'प्रह्लाद चरित' नामक लघु पुस्तक भी जुड़ी हुई है। फूलडोल के ही अवसर पर जब महाराज रामचरण जी सूर्य के समान सुशोभित सबको दर्शन देकर निहाल करते थे, उस समय इस 'प्रह्लाद चरित' का उच्चारण भी होता था। इस सभा को [illegible] 'राम सभा' कहते हैं और इसमें नगर के नर-नारियों तथा राजा के उपस्थित होने की बात की पुष्टि भी करते हैं :—

"महराज आप आसण बिराज।
जहां फूलडोल समयो समाज॥
दिवि रूप आप दीदार शोभ।
दर्श कियां मिट जात क्षोभ॥
. . .   .
जहां राम सभा भरपूर संत।
सब करैं भजन निज नाम तंत॥
. .   . .
अरु रामसनेही बहुत वृन्द।
तहां आय बैठे नरंद॥
नगर लोग नर नारि जेत।
सब चल आये दर्श हेत॥
प्रह्लाद चरित करि हैं उचार।
जहां राम टेक जन को उधार॥"[2]

'गुरलीला विलास' और 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में जगन्नाथ ने मृत्युतिथि का दिन और संवत् के साथ उल्लेख किया है पर स्वामी रामजन ने अपने इस 'रामपद्धति' ग्रंथ में दिन, तिथि, संवत् के साथ पहर का भी उल्लेख कर दिया है।

गुरुवार किये जब गवना।
—अ० वा० : रामपद्धति, पृ० १०७४।

१. वही, पृ० १०७३।
२. वही, पृ० १०७३।

"ये रामचरण महाराज राज।
हम वपु त्यागन करिहि आज॥
संवत अठ्ठारा सै पचान।
वैसाख बदी पांचे प्रमान॥
गुरुवार पहर तीजे तयार।
आप भये निज निराकार।"[1]

उपर्युक्त विवेचन हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि स्वामी रामजन रचित यह लघुग्रंथ विवेच्य विषय के अध्ययन में सहायक है।[2]

२८. स्वामी रामचरणजी म्हाराज की परची : लालदास

श्रीरामद्वारा गोराकुण्ड, इन्दौर के संत श्री सन्मुखराम जी से मुझे एक हस्तलिखित गुटका पोथी सन् १९५३ में प्राप्त हुई थी। इस गुटका पोथी में स्वामी संतदास जी की साखी, स्वामी रामचरण जी की संक्षिप्त वाणी, गुरु महिमा, नाम प्रताप, शब्द प्रकाश, मनखण्डन और चिंतावणी आदि ग्रंथों के साथ अंत में 'स्वामी रामचरण जी म्हाराज की परची' भी संलग्न है। यह गुटका पोथी दो हस्तलेखों में है। प्रारम्भिक भाग मोटे अक्षरों में तथा अंतिम भाग सुंदर महीन अक्षरों में लिखा गया है। इस गुटका पोथी के हस्तलिपिकार साधु रामदयाल है जिन्होंने पोथी के अंत में लाल स्याही से निम्नलिखित उल्लेख किया है—

"इति परची संपुरण॥ गोटको संपुरण ॥ लीष्यतम॥
ग्राम कपासन मध्ये॥ हस्ताअक्षरम्॥ साधु रामदयालस्य॥
ग्राम॥ इन्दोर नीवासी॥ मीती॥ जेठ वदि॥ ग्यारस॥
सुकरवार॥ सं० १९७७॥ राम॥ राम॥"

इस 'परची' ग्रंथ के रचयिता साधु लालदास है। परचीकार लालदास ने स्वामी रामचरण के जीवनीकार जगन्नाथ की भाँति न तो अपना परिचय दिया है और न ग्रंथ-परिचय ही। जगन्नाथ रचित दोनों ग्रंथों 'गुरलीला विलास' तथा 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की अपेक्षा यह ग्रंथ अधिक व्यवस्थित ढंग से लिखा गया है किन्तु तथ्यों में कोई अन्तर नहीं है, सिवाय इसके कि जीवनवृत्त के अलावा स्वामी जी के जीवन में चमत्कारी घटनाओं का भी समावेश परचीकार ने कर दिया है। स्वामी रामचरण की जीवनी संबंधी घटनाएँ, तिथियाँ, स्थानादि एवं उनके संपर्क के लोगों तथा शिष्यों की नामावली में भी जीवनीकार जगन्नाथ से एकरूपता है। अतः इस ग्रंथ में उल्लिखित तथ्यों की प्रामाणिकता भी निर्विवाद है। परचीकार का अपना परिचय न देना ही खटकने वाली बात है। इस परिचय के अभाव में लालदास के विषय में भिन्न-भिन्न

---

१. अ० वा० : रामपद्धति, पृ० १०७३।

२. रामपद्धति ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति भी मुझे गोराकुण्ड रामद्वारा, इन्दौर के संत श्री सन्मुखराम जी से प्राप्त हो गई थी।—लेखक

अनुमान लगाये जाते है। लालदास के विषय में यह अनुमान बहुश्रुत है कि वे स्वामी रामचरण जी के काका गुरु थे। किन्तु मैं इस अनुमान से कदापि सहमत नहीं हूँ। इस अनुमान का पहले न तो कोई आधार है और यदि हो भी तो वह अविश्वसनीय है, क्योंकि परचीकार लालदास द्वारा 'परची' में स्वामी रामचरण के प्रति अभिव्यक्ति की भाषा जिस आदर एवं पूज्य भाव से पूरित है, उसे देखते हुए लालदास परचीकार को काका गुरु तो नहीं ही कहा जा सकता। कितना अच्छा होता यदि परचीकार ने परची का रचनाकाल तथा अपने विषय में संक्षेप में उल्लेख कर दिया होता। जो भी हो, संत रामचरण के जीवन, कार्य एवं महत्त्व का विवेचन परचीकार ने व्यवस्थित शैली में किया है। यह ग्रंथ इस अध्ययन में पर्याप्त सहायक सिद्ध होता है।

उद्धृत उद्धरण से इतना और स्पष्ट हो जाता है कि 'परची' की प्राप्त हस्तलिखित प्रति इन्दौर निवासी साधु रामदयाल द्वारा लिखी गई है और इसे उन्होंने कथागन ग्राम में ज्येष्ठ बदी ११, शुक्रवार, संवत् १९७७ वि० को पूर्ण किया था।

२९. फूलडोल समाद : जगन्नाथ

'फूलडोल समाद' की हस्तलिखित प्रति भी मुझे गुटका पोथी के रूप में गोगाकुण्ड राम-द्वारा के संत श्री सन्मुखराम जी से प्राप्त हुई थी। जगन्नाथ रचित इस ग्रंथ की प्राप्त प्रति के हस्तलिपिकार जोशी रूपराम हैं। अपने अन्य ग्रंथों की भाँति इस ग्रंथ के अन्त में भी जगन्नाथ जी ने ग्रंथ की विषयवस्तु का संक्षेप में उल्लेख करते हुए ग्रंथ-परिचय के साथ अपना परिचय भी दिया है—

"बोहोत उछाह हिरदे प्रगटायो।
जगन्नाथ तब ग्रंथ सुनायो।।
सब संतन मिलि किरपा कीन्हीं।
तब ये जुगति भली मैं चीन्हीं।।
जगन्नाथ कह सरणि तुम्हारी।
सतगुरुजी कूं लाज हमारी।।"[1]

फूलडोल की महिमा के वर्णन में कवि कहता है—

"फूलडोल महमा अधिक, बरनू कहा विचार।
रोज सहरि हरिजनन को, कहत सुनत भवपार।।"[2]

जगन्नाथ ने इस ग्रंथ को सावन बदी ५, मंगलवार संवत् १८८५ वि० को चत्रकोट में पूर्ण किया। लेखक कहता है कि बिना गुरु-कृपा के यह कार्य संभव नहीं था—

"संबत अठारा सै बरस चालीसा पर पांच।
सावण बुधि पांचि मंगल इहु विधि जानूं सांच।।

---

१. फूलडोल समाद : हस्तलिखित प्रति।
२. वही।

चत्रकोट में एहि बन्यो, ग्रंथ संपूरन सोइ।
जगन्नाथ गुरु महरि बिन, एह कारिज नहि होइ॥"[1]

ग्रंथकार ने अन्त की पंक्तियों में अपना पूर्ण परिचय दे दिया है। परिचय की पंक्तियाँ निम्न-लिखित हैं—

"भीलाड़े अर साहिपुर, बास जानिती ठाम।
कृपाराम सुत जानिये, जगन्नाथ तिस नाम॥
जात ज डीड मुमेसरी, सोनी गोतज आप।
जगन्नाथ सो नाम है, राम सनेही छाप॥
जिन एहु ग्रंथ बणाईयो, सतगुरु धरि कें सीस।
अपना नैंना देखि कै, भाषी बसवा बीस॥
एह ग्रंथ बांचै सुनै, करै भगति अधिकार।
जगन्नाथ वै मानवी, पावै सुष अपार॥"[2]

३०. उपदेशामृत विन्दु (तृतीय पुष्प)

उपदेशामृत बिन्दु सम्प्रदाय के भूतपूर्व [illegible] स्वामी [illegible] जी के भाषणों का संग्रह है। इस ग्रंथ के प्रकाशक सेठ रमणलाल हीरालाल जरीवाला, सलावतपुरा, खांगडसेरी (सूरत) हैं। इस ग्रंथ के पृष्ठ १५ से पृष्ठ ३९ तक स्वामी रामचरण के संक्षिप्त जीवनवृत्त एवं उनके तैंतीस चमत्कारों का वर्णन किया गया है।

सम्प्रदाय के चार धाम

इस ग्रंथ में रामसनेही सम्प्रदाय के चार धामों की चर्चा की गई है। ये धाम हैं, बनवाड़ा, सोडा, भीलवाड़ा और शाहपुरा।

१. बनवाड़ा

स्वामी रामचरण का पैतृक निवास स्थान जिला टोंक (राजस्थान) में है।

२. सोडा

स्वामी रामचरण का जन्मस्थान सोडा दूसरा धाम है। यह स्वामी रामचरण के ननिहाल ग्राम का नाम है।

३. भीलवाड़ा

स्वामी जी की तपोभूमि भीलवाड़ा तीसरा धाम है। रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना एवं वाणी की रचना यहीं हुई थी।

---

१. फूलडोल समाद : हस्तलिखित प्रति।
२. वही।

४. शाहपुरा

रामसनेही सम्प्रदाय का पीठस्थान शाहपुरा चौथा धाम है। यह सम्प्रदाय का केन्द्र-स्थान है। पीठाचार्य यहाँ रहते हैं।

तैंतीस चमत्कारों के विषय में इतना ही कहना है कि यद्यपि चमत्कारी घटनाएँ सिद्ध संतों के जीवन में घटती हैं, किन्तु [illegible] उनके भक्तजन भी जोड़ दिया करते हैं। स्वामी रामचरण सिद्ध संत थे। उनके जीवन में चमत्कारपूर्ण घटनाएँ संभव हैं। जो भी हो, इन घटनाओं से कतिपय निष्कर्ष अवश्य निकाले जा सकते हैं।

३१. रामचरण चरितावली : श्री मानकराम रामसनेही

रामचरण चरितावली वस्तुतः संग्रह ग्रंथ है, जिसका प्रकाशन व सम्पादन श्री मानकराम रामस्नेही ने किया। यह पुस्तक फरवरी सन् १९६६ ई० में प्रकाशित हुई थी। इस संग्रह ग्रंथ के अन्तर्गत (१) स्वामी रामचरण म्हाराज की परची, (२) गुरुवाणी पाठ ग्रंथ, (३) फूलडोल समाद, (४) श्रीरामनिवास धाम महिमा और (५) प्रह्लाद चरित्र संगृहीत हैं।

१. **'परची'** ग्रंथ की चर्चा पीछे हो चुकी है।

२. **गुरुवाणी पाठ :** इस ग्रथ में स्वामी रामचरण की 'अणभै वाणी' से कुछ अंश लेकर संगृहीत कर दिया गया है। यह अंश रामसनेही जनों के नित्यपाठ के लिए मुद्रित करके प्रकाशित किया गया है।

३. **फूलडोल समाद :** जगन्नाथ रचित इस ग्रंथ की चर्चा भी पिछले पृष्ठों में हो चुकी है।

४. **श्रीरामनिवास धाम महिमा :** जगन्नाथ रचित ग्रंथ 'गुरुसमाधि महिमा' ही का नाम श्रीरामनिवास धाम महिमा प्रचलित है। इस ग्रंथ की रचना जगन्नाथ जी ने सम्प्रदाय के चौथे आचार्य महंत चतुरदास के आदेश से की थी। इस ग्रंथ को अगहन सुदी १२, शुक्रवार, संवत् १८८१ वि० को रचनाकार ने विख्यात किया। ग्रंथ के अंत में लिखित ग्रंथ-परिचय से यह बात ज्ञात होती है—

> **"जगन्नाथ लघुदास, सब संतन की चरण रज।**
> **कीनो ग्रंथ प्रकाश, सतगुरु का परताप सूं॥**
> **शाहिपुरे सतसंग में, रामनिवास आवास।**
> **चतुर्दास जन महंत हैं, हाजिर मुकतादास॥**
> **जिनकी आग्या पायके, करी ग्रंथ की जोड़।**
> **गुरु समाध महिमा उभे, कही ठोड़ की ठोड़॥**
> **समत अठारा से परे, ओर अक्यासी जात।**
> **अगहन सुदि बारस शुक्र, कीनो ग्रंथ विख्यात॥"**[1]

इस ग्रंथ के आरंभ में स्वामी रामचरण की महिमा, सम्प्रदाय, शिष्यादि के वर्णनोपरान्त स्वामी जी के स्वर्गवास का उल्लेख है। लेखक लिखता है कि निधनोपरान्त स्वामी जी

१. रामचरण चरितावली, पृ० १४७।

का कामकाज सम्पन्न करने के लिए बड़ी संख्या में रामसनेही जन एकत्र हुए। सभी ने गुरुदेव स्वामी रामचरण की समाधि निर्मित कराने का निश्चय किया। राव-रंक सभी की कौड़ी उस समाधि-निर्माण में लगी। गुरु समाधि की जैसी कल्पना उस समय की गई रामनिवास धाम उसी कल्पना का साकार रूप है। उन लोगों का निश्चय जगन्नाथ जी की भाषा में इस प्रकार है—

> **"ज्यों जहाज दरियाव में, दर से अधिक सरूप।**
> **यों समाध गुरुदेव की, करणी अधिक अनूप॥"**[1]

गुरु समाधि के निर्माण हेतु रामसनेही जन कितने उत्साहित थे, इसका वर्णन जगन्नाथ ने निम्न-लिखित पंक्तियों में किया है—

> **"गुरु समाध तो करणी एसी।**
> **ओर नजर नहीं आवे जैसी॥"**[2]

आगे समाधि निर्माण की प्रक्रिया की चर्चा है। जगन्नाथ ने लम्बी उमर पायी थी। वे महंत चतुरदास के समय तक वर्तमान थे। इस ग्रंथ का निर्माण उन्होंने उनके ही समय में किया था। जगन्नाथ ने लिखा है—

> **"निजर्‌या देखी कहत हूं साठ बरष की बात।**
> **भीलाड़े सतगुर शरण, जा दिन सूं जगन्नाथ॥"**[3]

५. **प्रह्लाद चरित्र : संत रामखुशाल जी**—महंत हिम्मतराम जी के आदेश से संत रामखुशाल जी ने इस ग्रंथ का निर्माण किया। 'अणभैवाणी' के अंत में सम्बद्ध 'प्रह्लाद चरित' ग्रंथ दादूपंथी संत जनगोपाल जी रचित है जिसका पाठ फूलडोल के अवसर पर किया जाता था। स्वामी रामचरण के जीवनकाल से ही इस ग्रंथ के पाठ का विधान चला आता था। हिम्मतराम जी ने रामखुशाल जी को प्रेरित कर पाठ-हेतु इस नूतन 'प्रह्लाद चरित्र' का निर्माण कराया। 'रामचरण चरितावली' संग्रह का यह अंतिम ग्रंथ है।

३२. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय : वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य

श्री स्वामी केवलराम आयुर्वेद सेवा निकेतन ट्रस्ट, बीकानेर के संस्थापक वैद्य केवलराम स्वामी ने सन् १९५९ में इस ग्रंथ को प्रकाशित किया। यह ग्रंथ रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य और इतिहास की संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत करता है। इस ग्रंथ का सम्पादन वैद्य केवलराम स्वामी, स्वामी रामनिवास, श्री अक्षयचन्द्र शर्मा एवं वैद्य ठाकुरप्रसाद द्वारा हुआ है। इसकी प्रस्तावना संत-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् श्री वियोगी हरि जी ने लिखी है। सम्पादकों ने 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' ग्रंथ को चार खण्डों में विभक्त किया है। यथा—

---

१. रामचरण चरितावली, पृ० १२८।
२. वही, पृ० १२८।
३. वही, पृ० १४३।

प्रथम खण्ड : जीवनी
द्वितीय खण्ड : समीक्षा
तृतीय खण्ड : स्वरूप
चतुर्थ खण्ड : अणभै वाणी

स्वामी रामचरण के अतिरिक्त रामसनेही सम्प्रदाय के अन्य वाणीकार संत कवियों के जीवन एवं साहित्य का भी सम्यक् निरूपण इस ग्रंथ में हुआ है। साथ ही सम्प्रदाय के स्वरूप पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ खण्ड में रामसनेही सम्प्रदाय के वाणी साहित्य की चर्चा के साथ सम्प्रदाय के केवल १७ वाणीकारों की वाणी में थोड़े अंश उद्धृत किये गए हैं। आरंभ में इन वाणीकारों का संक्षिप्त परिचय भी लिख दिया गया है। ये वाणीकार हैं—स्वामी संतदास, स्वामी रामचरण, स्वामी रामजन, स्वामी दुल्हेराम, स्वामी हरिदास, श्री भगवानदास जी, श्री देवादास जी, श्री मुक्ताराम जी, श्री संग्रामदास जी। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित संतों की वाणी के अंश भी इसमें सम्मिलित किये गये हैं। श्री वल्लभराम, श्री रामसेवक, श्री रामप्रताप, श्री चेतनदास, श्री कान्हड़दास, श्री द्वारकादास, श्री मुरलीराम, श्री तुलछीदास, श्री नवलराम एवं स्वरूपा बाई।

'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' खोज विद्यार्थियों के लिए बड़ा ही उपयोगी ग्रंथ सिद्ध हुआ है। स्वामी रामचरण के जीवन, साहित्य तथा सम्प्रदाय एवं उसके इतिहास, विचार-दर्शन आदि पर यह प्रथम प्रकाशित कृति है। सबसे उत्तम बात तो यह है कि इस ग्रंथ के लेखकों में सम्प्रदाय के संतजन भी हैं।

प्रस्तावनाकार श्री वियोगी हरि जी ने प्रस्तावना में स्वामी रामचरण एवं उनकी 'अणभै वाणी' की बड़ी प्रशंसा की है। उन्हें इस बात का पछतावा भी है कि ग्रंथ 'संतसुधासार' में स्वामी रामचरण जी की वाणी को स्थान नहीं दे सके। वे लिखते हैं—'अणभै वाणी के बिना 'संतसुधासार' को मैं अपूर्ण-सा मानता हूँ।"[१] 'अणभै वाणी' के विषय में वियोगी हरि जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य है।

"अणभै वाणी के निर्मल सरोवर में गोरख, नामदेव, कबीर, दादू आदि कितने ही संतों के स्वरूप की शुभ्र झलक हम पाते हैं। वैराग्य और अनुराग की सुन्दर धूप-छाँह जहाँ-तहाँ देखने में आती है। सगुण-निर्गुण के बीच का वाचनिक भेद सहज ही तिरोहित हो जाता है। सुरत-निरत का गगन हिंडोला मन को बरबस खींच लेता है। वाणी के प्रखर तेज के सामने धर्म-मजहब की आँखें चकाचौंध में पड़ जाती हैं। शील और अभेद को एक निश्चल स्थान मिल जाता है। मूढ़ ग्राह के पैर उखड़ जाते हैं, मानवता का स्वरूप निखर उठता है।"[२]

अध्ययन के सूत्रों की चर्चा समाप्त करते हुए मैं अनुभव करता हूँ कि स्वामी रामचरण तथा उनके द्वारा निर्मित पंथ 'रामसनेही सम्प्रदाय' से संबंधित उपलब्ध अधिकांश सामग्रियों

---

१. वियोगी हरि : दो शब्द : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ३।
२. वही, पृ० २।

का मैने अवलोकन एवं अध्ययन कर लिया है। मुझे दु.ख है कि मैं श्री अक्षयकुमार दत्त लिखित 'उपासक सम्प्रदाय' एवं प्रोफेसर बी० बी० राय लिखित 'सम्प्रदाय' नामक ग्रंथों को अवलोकनार्थ नही प्राप्त कर सका। फिर भी इन ग्रंथों की विषय से सम्बद्ध सामग्री मुझे क्रमशः श्री प्रमथनाथ बोस की पुस्तक "ए हिस्ट्री ऑव हिन्दू सिविलाइजेशन ड्यूरिंग ब्रिटिश रूल" (वॉल्यूम–१) तथा पंडित परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' मे प्राप्त हो गई थी।

द्वितीय अध्याय

स्वामी रामचरण : जीवन-वृत्त

स्वामी रामचरण का जीवन-वृत्त हिन्दी के अन्य भक्त कवियों की भाँति अस्पष्ट नहीं है। सामान्यतया हिन्दी के प्रमुख भक्त कवि या मध्यकालीन कवियों में से अधिकांश की जीवन-रेखाएँ स्पष्ट नहीं दृष्टिगोचर होतीं—वे चाहे कबीर हों या जायसी, सूर हों या तुलसी, बिहारी हों या भूषण, इन कवियों में से अधिकांश के जीवन के बहुत से अंग आज भी या तो स्पष्ट नहीं हैं या विवाद के विषय बने हुए हैं। इन कवियों को खोज का विषय बनाकर अनेक शोधकर्ताओं ने शोध-प्रबन्ध भी प्रस्तुत किये हैं, परन्तु हिन्दी का पाठक उनके जीवन के कतिपय पहलुओं पर लगे प्रश्नचिह्नों एवं विवादों को आज भी यथावत् पा रहा है। स्वामी रामचरण की जीवन-रेखाएँ बहुत स्पष्ट हैं। उनकी जीवनी के सन्दर्भ में अन्तस्साक्ष्य, बहिस्साक्ष्य एवं जनश्रुतियाँ सभी कुछ उपलब्ध हैं ; किन्तु इनमें ऐसा कुछ बहुत कम है, जो विश्वास के योग्य न हो।

जन्मतिथि

स्वामी रामचरण के जीवनीकार जगन्नाथ ने जो उनके जीवनकाल में वर्तमान ही नहीं थे, उनके शिष्य भी थे, अपने जीवनी ग्रंथों—'गुरलीला बिलास' एवं 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' मे उनकी जन्मतिथि माघ सुदी चतुर्दशी, शनिवार, संवत् १७७६ लिखी है।[1] इसकी पुष्टि परचीकार ने भी की है।[2] जन्मतिथि के सन्दर्भ में ये साम्प्रदायिक साक्ष्य निर्विवाद हैं और इन्हें मान लेना समीचीन है, पर कतिपय विद्वानों ने जन्म-संवत् को सन् में परिवर्तित करते समय थोडी असावधानी कर दी है और एकाध ने तो अनुमान से जन्म संवत् या सन् की घोषणा कर

---

१. सतरा से र छहंतर बरेषा । माघ माहा सुद जान वसेपा।।
चवदस वार सनीसरवारा । वैस बरण लीन्हौ अवतारा।।

—गुरलीला बिलास, ह० प्र०

सतरा से रु छहंतर बरसा । मास महासुद कहूँ विसेसा।।
चवदस वार सनीसर नीको । जा दिन काढयो बहुशिर टीको।।

—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, प्रकाशित वाणी के अन्तर्गत, पृ० १०७६

२. संमत सतरा से हो तो और छैहत्तर जान।
चत्रदसी तथी म्हासुदि बार सनेश्चर मान।

—रामचरण म्हाराज की परची, ह० प्र०

दी है। कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट ने अपने महत्त्वपूर्ण लेख—'सम एकाउंट्स ऑव ए सेक्ट ऑव हिन्दू शिज्माटिक्स इन वेस्टर्न इंडिया, कालिंग देमसेल्व्ज़ रामसनेही ऑर फ्रेण्ड्स ऑव गॉड' की प्रारंभिक पंक्तियों में ही स्वामी रामचरण का जन्म सन् १७१९ ही लिखते हैं।[१] श्री प्रमथनाथ बोस ने भी इसी ईस्वी सन् की पुष्टि की है।[२] गार्सां द तासी ने भी अपने इतिहास ग्रंथ मे वेस्मकट का ही ऋण माना है।[३] वेस्मकट ने फुटनोट मे सवत् १७७६ वि० भी लिख दिया है। 'स्वामी रामचरण—एक अनुशीलन' नामक शोध-प्रबन्ध के लेखक डॉ० अमरचन्द्र वर्मा, डॉक्टर राम-कुमार वर्मा के मत की समीक्षा के सन्दर्भ में लिखते हैं—"स्वामी जी का जन्म विक्रम संवत् १७७६ में हुआ था। यदि ईस्वी सन् में इसकी गणना की जायतो यह सन् १७१९ ठहरता है।"[४]

डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी ने अपने शोध-प्रबन्ध 'रामसनेही सम्प्रदाय'[५] में इस सन्-संवत् का सन्दर्भ उपस्थित किया है—"रामचरण का जन्म संवत् १७७६ में हुआ था। वेस्मकट महोदय भी इसको मानते है। विक्रम संवत् को ईस्वी सन् में परिवर्तित करते समय प्रायः विक्रम संवत् में से ५७ वर्ष कम कर दिया जाता है। इसी नियम के अनुसार लेखक ने १७७६ में से ५७ वर्ष घटाकर रामचरण का जन्मकाल १७१९ ईस्वी माना है। लगता है, ऐसा करते समय विद्वान् लेखक का ध्यान इस बात की ओर नहीं गया कि रामचरण विक्रम संवत् १७७६ के माघ महीने की उन्तीसवी तिथि को पैदा हुए थे और ईस्वी सन् मार्गशीर्ष अथवा पौष के मध्य में ही बदल जाता हैं। कहने का तात्पर्य यह कि उक्त काल निश्चित रूप से नये वर्ष का जनवरी या फरवरी महीना रहा होगा। अतः उनका आविर्भाव माघशुक्ल १४, संवत् १७७६ तदनुसार सन् १७२० माना जाना चाहिए।" डॉ० त्रिपाठी का यह मत युक्तियुक्त है। इस मत से सहमत होते हुए मेरा निवेदन यह है कि कैप्टेन वेस्मकट या तासी विदेशी थे। उनसे संवत् को सन् में बदलते समय यह भूल संभव है, पर भारतीय विद्वानों एवं प्रमुखतया शोधकर्त्ता का ध्यान इस ओर जाना अपेक्षित था।

अनुमानकर्ताओं में जॉन कैम्पबेल ओमेन ने अठारहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध[६] एवं आचार्य क्षितिमोहन सेन ने सन् १७१८ से सन् १७२० के बीच[७] स्वामी रामचरण का जन्म होना लिखा हैं। ओमेन और सेन महोदय के इन अनुमानों से स्वामी रामचरण के जन्मकाल के निर्धारणमें यद्यपि विशेष सहायता नही मिलती किन्तु फिर भी यह उसके निकट हैं। पर डॉक्टर रामकुमार

---

१. जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी, नं० ३८, फरवरी १८३५, पृ० ६५।

२. ए हिस्ट्री ऑव हिन्दू सिविलाइज़ेशन ड्यूरिंग ब्रिटिश रूल, वॉल्यूम १, पृ० १२८।

३. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, पृ० २३७।

४. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ३५।

५. रामसनेही [illegible] (शोध-प्रबन्ध), गोरखपुर विश्वविद्यालय पुस्तकालय।

६. मिस्टिक्स, एसेटिक्स एण्ड सेण्ट्स ऑव इंडिया, पृ० १३३।

७. 'द कल्चरल हेरिटेज ऑव इंडिया' में क्षितिमोहन सेन का लेख : 'द मिस्टिक्स ऑव नॉर्दर्न इंडिया ड्यूरिंग द मिडिल एज' श्री रामकृष्ण सेंटिनरी मेमोरियल, वॉल्यूम २, पृ० २६४।

वर्मा और एफ० ई० के ने क्रमशः संवत् १७१८[1] और सन् १७१८[2] जन्म वर्ष लिख दिया है। इन लोगों ने इतने गलत अनुमान कैसे लगाये, कहा नहीं जा सकता। डॉक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने स्वामी रामचरण का जन्म फागुन बदी ७, संवत् १८०६ लिखा है। डॉक्टर बड़थ्वाल ने प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज के चौदहवें वार्षिक विवरण में स्वामी रामचरण रचित 'अणभै विलास' की प्राप्त हस्तलिखित प्रति की पंक्तियाँ उद्धृत करते हुए लिखा है—"और इससे पूर्व रामचरण का जन्मकाल—"अठारै से षट वर्ष माम फागुन बदि सातैं। संत पधारै धाम सनीचर वार विष्यातैं।।" इस प्रकार दिया है।"[3] इस अंश की समीक्षा पिछले अध्याय में हो चुकी है। यह स्वामी रामचरण के दादा गुरु स्वामी संतदास जी की मृत्यु-तिथि है। धाम पधारने का अर्थ मृत्यु है जन्म नहीं[4] डॉक्टर बड़थ्वाल ने भ्रमवश ही यह तिथि रामचरण जी की जन्मतिथि मान ली है। मैंने प्रथम अध्याय में यह भी स्पष्ट कर दिया है कि प्रकाशित 'वाणी' के 'अणभै विलास" में डॉक्टर बड़थ्वाल द्वारा उद्धृत पंक्तियाँ हैं भी नहीं। किन्तु एक अन्य सूत्र के माध्यम से यह तिथि स्वामी संतदास की मृत्यु-तिथि सिद्ध होती है।

अध्ययन के सूत्र, जिनमें प्रमुख आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'उत्तरी भारत की संत-परम्परा"[5] एवं 'संतकाव्य"[6]; पं० मोतीलाल मेनारिया लिखित 'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा"[7], कल्याण का 'संत अंक'[8] में साधु श्री नैनूराम जी का लेख तथा श्री वियोगी हरि लिखित 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय"[9] की भूमिका है, स्वामी रामचरण की जन्मतिथि माघ शुक्ल १४, शनिवार, संवत् १७७६ वि० ही मानते हैं, जो साम्प्रदायिक साक्ष्यों के अनुकूल हैं।

जन्मस्थान

स्वामी रामचरण का जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत ढूँढाड़ प्रदेश के सोडा नामक ग्राम में हुआ था। सोडा ग्राम स्वामी रामचरण जी का ननिहाल था।[10] जयपुर राज्य में सोडा ग्राम

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४११।

२. ए हिस्ट्री ऑव हिन्दी लिट्रेचर, पृ० ६८।
कबीर एण्ड हिज़ फॉलोअर्स, पृ० १६५।

३. प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज का चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९२९-३१ ई०), नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग २०, अंक २, पृ० १३८।

४. विशेष विवरण के लिए देखिए : प्रथम अध्याय के अन्तर्गत प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज का चौदहवाँ वार्षिक विवरण' की समीक्षा।

५. उत्तरी भारत की संत-परम्परा, पृ० ६१४।

६. संतकाव्य, पृ० ५०५।

७. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पृ० ८२।

८. कल्याण : 'संत अंक', पृ० ७४४।

९. 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' दो शब्द, पृ० १।

१०. ढुढाड देस जैसिंह निरंदा
सेहर बसायो आप उनिंदा

की स्थिति का वर्णन करते हुए जीवनीकार जगन्नाथ ने कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों की ओर भी संकेत किया है। जयपुर की राजधानी का निर्माण सवाई जयसिंह ने अपने नाम पर कराया था जो पुरानी राजधानी आमेर से ६ मील दूर है। कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार सवाई जयसिंह सन् १६९९ ई० में सिंहासन पर आसीन हुआ था और १७४३ ई० में उसका निधन हो गया। स्मरणीय है कि १७२० ई० में स्वामी रामचरण का जन्म हो गया था। इसी काल में जयपुर राजधानी की स्थापना हुई। नयी राजधानी में शिल्प और विज्ञान का बड़ा विकास हुआ जिससे प्राचीन राजधानी आमेर का गौरव जाता रहा।[1] 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में भी सोडा नगर को स्वामी जी का जन्मस्थान बताया गया है।[2] परचीकार लालदास ने 'स्वामी रामचरण म्हाराज की परची' में भी जगन्नाथ जी के उपर्युक्त कथन पर मुहर लगा दी है—

ढूंढाड देस सोडे नगर नानाजी के द्वार।
भगतिराज कलि अवतरे, जगजीवन हितकार॥[3]

अतः स्पष्ट हुआ कि स्वामी रामचरण जयपुर राज्यान्तर्गत मालपुरा के निकट सोडा नामक ग्राम में, जो उनका ननिहाल था, उत्पन्न हुए थे। संत साहित्य के अन्य विद्वानों पं० परशु-

---

देस देस का सेठ बुलाया
जाफा करके ताहां बसाया।
. . . .
च्यारों तर्फ कराया किल्ला।
जैपुर नाम धर्‌यो कर सल्ला।
राजा देव अंस औतारी।
प्रजा सहत पूजा सुषकारी।
ताका देस मांहि दोइ गामा।
मालपुरा ढिग बरणे नामा।
ताहां संत प्रगटे सुषसागर।
रामभगति को करण उजागर।
उतन गाम बनवाड़ो चोड़े।
जन्म लीयो नाने रे सोड़े।

—गुरलीला विलास, ह० प्र०

१. राजस्थान का इतिहास : कर्नल जेम्स टॉड, पृ० ६३७-३८, ६४९।
२. देश ढूंढाड सोमे अजमेरो।
सोड़ो नगर मालपुरे नेरो।
—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, प्रकाशित 'वाणी' के अन्तर्गत, पृ० १०७५
३. लालदास कृत स्वामी रामचरण म्हाराज की परची, ह० प्र०।

राम चतुर्वेदी[१] एवं पं० मोतीलाल मेनारिया[२] आदि ने भी इसी साम्प्रदायिक साक्ष्य को स्वीकारते हुए सोडा को स्वामी जी का जन्मस्थान कहा है।

सूरसेन या सोरहचसन

आचार्य क्षितिमोहन सेन[३] एवं डॉक्टर रामकुमार वर्मा[४] तथा प्रमथनाथ बोस[५] आदि ने रामचरण जी का जन्मस्थान जयपुर राज्य का सूरसेन नामक ग्राम माना है जबकि कैप्टेन वेस्मकट[६] उसे सोरहचसन कहते हैं। डॉ० अमरचन्द वर्मा की जानकारी में सूरसेन सोडा का शुद्ध रूप है।[७] मुझे लगता है कैप्टेन वेस्मकट को सम्प्रदाय के अधिकारियों ने स्वामी रामचरण का जन्मस्थान सोडा न बताकर सूरसेन ही बताया होगा, जिसे वेस्मकट सोरहचसन लिखते हैं। निष्कर्ष यह है कि सूरसेन या सोरहचसन सोडा का ही रूपान्तर है अतः इसमे कोई भ्रम नहीं उत्पन्न होना चाहिए।

माता-पिता

स्वामी रामचरण के पिता का नाम बखतराम और माता का नाम देऊजी था। जीवनीकार जगन्नाथ ने 'गुरलीला विलास' के अन्त में उनके माता-पिता का उल्लेख किया है। संवत् १८६० वि० में स्वामी रामजन जी महाराज ने चाटसूं में चौमासा किया था। जगन्नाथ तथा अन्य अनेक रामसनेही उनके दर्शनार्थ चाटसूं गये थे। मार्ग में तीसरे विश्राम पर सोडा ग्राम पड़ा था। जगन्नाथ तथा उनके दल ने वहाँ दो पहर विश्राम किया। गुरुदेव की जन्मभूमि में पहुँचकर जगन्नाथ ने उस भवन का दर्शन किया जिसमें स्वामी रामचरण जी का जन्म हुआ था और एक शतवर्षीय पुरुष से उन्होंने स्वामी जी के प्रारम्भिक जीवन की जानकारी की। उसी वृद्ध द्वारा उन्हें विदित हुआ था कि इनके पिता का नाम बखतराम और माता का नाम देऊजी था।[८] परचीकार भी इस कथन से सहमत

---

१. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६१४। संतकाव्य, पृ० ५०५।
२. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पृ० ८२।
३. द कल्चरल हेरिटेज ऑव इंडिया, पृ० २६४।
४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४११।
५. ए हिस्ट्री ऑव हिन्दू सिविलाइजेशन ड्यूरिंग ब्रिटिश रूल, वॉल्यूम १, पृ० १२८।
६. जर्नल ऑव द एशियाटिक सोसायटी, फरवरी १८३५, पृ० ६५।
७. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ३८।
८. रामजन माहाराज चौमासो कीयो चाटसूं।
हम दरसण के काज रामसनेही सब गए।
दस गाड़ी सो आतमा दरसण गए चलाइ।
मारग में तीजी मजल सोड़े पुहुतां जाइ।
जनम भोम गुरुदेव की पलसे करी प्रनाम।

है।[1] 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में जगन्नाथ ने इनके माता-पिता के नामों की चर्चा नहीं की है। यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि इस जीवनी-ग्रंथ में माता-पिता का नामोल्लेख जगन्नाथ ने क्यों नहीं किया ?

डॉक्टर अमरचन्द्र वर्मा ने अपने शोध-प्रबन्ध में एक प्रश्न उठाया है कि 'एक ही उपजीव्य को आधार मानकर एक ही कवि के द्वारा दो रचनाओं का प्रणयन क्यों हुआ ?'[2] वे आगे लिखते हैं—'इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने की है कि 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' स्वामी रामचरण के निधन के समय से सम्बन्धित है। इसमें उनके जन्म, माता-पिता एवं जन्मस्थान के उल्लेख के पश्चात् अंतिम समय एवं संस्कार से संबंधित प्रसंगों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है जबकि 'गुरलीला विलास' में उनके जीवन पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है।'[3]

अपने उपर्युक्त कथन में डॉक्टर अमरचन्द्र वर्मा ने एक भिन्न प्रश्न के माध्यम से यह कह दिया है कि 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में जीवनीकार जगन्नाथ ने स्वामी रामचरण के माता-पिता का उल्लेख किया है। विनम्र निवेदन है कि 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' प्रकाशित 'वाणी' के अंत में मुद्रित रचना है, जिसे मैंने आदि से अंत तक देखा है; किन्तु जगन्नाथ ने इसमें उनके माता-पिता के नाम की चर्चा कहीं नहीं की है। यह सही है कि 'ब्रह्मसमाधि-लीन जोग' स्वामी रामचरण के निधन-काल से संबंधित रचना है और स्वामी जी के निधन

पहर दोइ ता नगर में सबही कीयो मुकाम।
बरस साठ क साल गे अैसो वण्यौ संजोग।
आद कथा गुरुदेव की कहण लगे सब लोग।
मो बरसां को पुरस इक मिलीयो हेत लगाइ।
बीजा बरगी जात को सब बिध कही सुणाइ।
मात-पिता का नाम बताया। जनम लियो सो भवन दिखाया।
सारी बात भिनोभिन कही। सो सब हम हिरदे धर लही।
बषतराम सो कहिऐ तात। जाघर घरनी देउ मात।

—गुरलीला विलास, ह० प्र०

१. वेस बरण हरिमगना ग्यांता।
भगतरामजी पीता वीख्याता।
देउ जी माता का नामा।
परम सुसील सुछन वामा।
ताकिको कंक लियो अवतारा।
प्रिया एकोत्तर कीयो पारा।

—परची, ह० प्र०

२. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ३०।

३. वही, पृ० ३०।

के चौबीसवें दिन अर्थात् वैसाख शुक्ल १४, रविवार, संवत् १८५५ वि० को यह रचना पूर्ण हो चुकी थी।[१] मेरी दृष्टि में इस रचना में माता-पिता का नमोल्लेख न होने का कारण दूसरा ही है। वस्तुतः जगन्नाथ ने अपनी इन दोनों रचनाओं के द्वारा अपने को सफल जीवनीकार सिद्ध किया है। सफल जीवनीकार बिना प्रमाण के कुछ भी कहना उचित नहीं समझता। 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' लिखने के पूर्व जगन्नाथ सोडा नहीं गये थे। वे सोडा संवत् १८६० मे गये और वहाँ उन्होंने स्वामी रामचरण के जीवन से संबंधित तथ्यों को विभिन्न लोगों से प्राप्त किया। उन्होंने वह मकान भी देखा जिसमें स्वामी रामचरण का जन्म हुआ था और शतवर्षीय वृद्ध द्वारा उनके माता-पिता के नामों की जानकारी प्राप्त की। 'गुरलीला विलास' की रचना जगन्नाथ ने सोडा प्रवास के बाद ही की जब उन्हें बीजावर्गी जाति एवं स्वामी रामचरण के माता-पिता के संबंध में पूर्ण जानकारी हो गई।

अध्ययन के आधुनिक सूत्रों में से एक-दो को छोड़कर उपर्युक्त संदर्भ में सभी मौन हैं। वेस्मकट, तासी, प्रमथनाथ बोस, पं० परशुराम चतुर्वेदी और पं० मोतीलाल मेनारिया आदि किसी ने स्वामी जी के माता-पिता की चर्चा नहीं की है। 'कल्याण' के 'संत अंक' में साधु नैनूराम जी ने अपने संक्षिप्त लेख 'श्री श्रीरामचरण जी रामसनेही' मे उनके पिता का नामोल्लेख किया है।[२] माता का नाम इस लेख में नहीं है। इधर सम्प्रदाय के उत्साही जनों द्वारा सम्पादित पुस्तक 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय'[३] और उसकी भूमिका में श्री वियोगी हरि जी ने उनके पिता बखतराम और माता देऊ जी का नामोल्लेख किया है।[४] यह आश्चर्य का विषय है कि साम्प्रदायिक सूत्रों के अतिरिक्त अन्य सभी सूत्र माता-पिता के नाम पर मौन हैं। फिर भी दोनो नामों पर कोई विवाद नहीं है।

'गुरलीला विलास' के अनुसार स्वामी रामचरण के पिता बखतराम धन-धाम से सम्पन्न व्यक्ति थे। राजदरबार मे उनका महत्त्व था। वे राजकर्मचारी थे, अन्य कोई धन्धा नहीं करते थे।[५] जनश्रुति भी उन्हें जयपुर राज्य का पटवारी बतलाती है। 'गुरलीला विलास' के अतिरिक्त अन्य सूत्र इस संदर्भ में मौन हैं पर गुरलीला विलासकार जगन्नाथ प्रामाणिक जीवनीकार हैं। अतः यह मान लेना उचित है कि वे जयपुर राज्य की नौकरी में थे।

---

१. अठारा से पचपन बरस, रवि चवदश वैशाख।
ग्रंथ सम्पूरण जगन्नाथ, पुनिजानो सुदिपाख। —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०८६
स्मरणीय है कि स्वामी रामचरण का निधन वैसाख कृष्ण ५, वृहस्पतिवार, संवत् १८५५ को हुआ था।

२. कल्याण : संत अंक, पृ० ७४४-४५।

३. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ४।

४. वही, दो शब्द, पृ० १।

५. हैदररथ सुष पाल सिपाई। राज्यस्थानो भलमणसाई।
सुष संपति धन-धाम उमंदा। बिना चाकरी और न धंधा।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०

वर्ण और गोत्र—स्वामी रामचरण बीजावर्गी [विजयवर्गीय] वैश्यकुल में उत्पन्न हुए थे। जगन्नाथ ने 'गुरलीला विलास' के आरंभ मे ही उनकी जाति का उल्लेख इस प्रकार किया है—

"वैस बरण लीन्हों अवतारा।"[1]

रामचरण जी के गोत्र की चर्चा आगे इस प्रकार करते हैं—

"बीजा गोती नांवड़ नामी।
राजदुवारे पूग विष्यामी॥"[2]

'ब्रह्ममभाविलीन जोग' की प्रारंभिक पंक्तियों में ही स्वामी रामचरण के वर्ण एव गोत्र की चर्चा जगन्नाथ ने कर दी है। यथा—

वैश्य वर्ण कुल उत्तम मानो।
बीजागोति बहुत बुधिवांनो॥[3]

परचीकार लालदास ने भी उपर्युक्त की पुष्टि की है।[4]

स्वामी रामचरण जी ने अपने ग्रंथ 'अमृत उपदेश' में स्वयं जाति का संकेत इस प्रकार किया है।

"जन्म वैश्य घर पाईयो। पुनि सेवत राजदुवार॥"[5]

स्वामी रामचरण के वर्ण एवं गोत्र के संबंध में अन्य सूत्र भी सहमत हैं। कही विवाद या संदेह की गुंजाइश नहीं है।

नाम : रामकृष्ण से रामचरण—इनका नाम नाना ने रामकृष्ण रखा था। नामकरण संस्कार की चर्चा जगन्नाथ ने 'गुरलीला विलास' में की है।[6] परचीकार लालदास ने भी

---

१. गुरलीला विलास, ह० प्र०।
२. वही, ह० प्र०।
३ अ० वा० : ब्रह्ममभाविलीन जोग, पृ० १०७५।
४. वेस बरण हरि भगता ग्यांता। —परची, ह० प्र०
५. अमृत उपदेश, प्रकाश ५, प्रकाशित 'वाणी', पृ० ४५६।
६. नाम कढ़ायो नाना सोड़े
जन्मपत्रिका बांची चौडे
... ...
गाजा बाजामा लगाया
रामकृश्न सो नाम कढ़ाया।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०

इस कथन की पुष्टि कर दी है[1]। संवत् १८०८ में वैराग्य लेने पर इनका नाम रामकृष्ण से रामचरण हो गया। यह नाम उन्हें अपने गुरु से प्राप्त हुआ था।[2]

स्वामी रामचरण को संतराम भी कहा गया है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने अपने निबंधों क्रमशः 'मध्ययुग में राजस्थान और बंगाल के बीच साधना संबंध,'[3] एवं 'द मिस्टिक्स ऑव नार्दन इंडिया'[4] में रामसनेही सम्प्रदाय के प्रवर्तक का नाम संतराम या रामचरण कहा है। आचार्य पं० परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि—'संत रामचरन का एक नाम संतराम भी प्रसिद्ध है।'[5]

रामसनेही सम्प्रदाय में रामनाम की बड़ी महिमा है। स्वयं स्वामी रामचरण जी ने रामनाम की महिमा गाई है। सम्प्रदाय के साधुओं में भी राम शब्द बड़ा ही प्रिय एवं प्रचलित है। अतः यदि स्वामी जी को भी इसी नाम का पर्याय मानकर सम्प्रदाय में उन्हें 'राम' नाम से अभिहित किया गया हो तो यह अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता। किन्तु यह नाम उनके गुरु या परिवार का दिया नहीं प्रत्युत् संत-समाज में संतों द्वारा प्रचलित किया हुआ नाम समझना चाहिए।

पैतृक निवास स्थान : बनवाड़ा—स्वामी रामचरण के पिता जयपुर राज्यान्तर्गत मालपुरा के निकटस्थ ग्राम बनवाड़ा के निवासी थे। बनवाड़ा वर्तमान समय में टोंक जिले में पड़ता है। बनवाड़ा ग्राम की चर्चा स्वामी रामचरण के जीवनीकारों जगन्नाथ एवं लालदास ने अपने-अपने जीवनी ग्रंथों में की है।[6]

---

१. रामकिशन जी नाम बताया।
सकल कुटुम्बी के मन भाया।

—परची, ह० प्र०

२. संवत अठारा से अरु आठा।
ले वैराग गहे मन काठा।
भाद्रप मास दासपद पायो।
रामचरण जी नाम कहायो।

—अ० वा० के अंतर्गत ब्रह्मनमाधिलीन जोग, पृ० १०७६

रामचरण जी भए प्रसिद्ध—गुरुलीला विलास, ह० प्र०।
रामचरणजी नाम दे, सीस धर्‌यागुरु हाथ।
सतगुर का प्रताप तें, जग में भए विख्यात। —परची ह० प्र०।

३. भारतीय अनुशीलन ग्रंथ : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० २३, विभाग-३।

४. 'द कल्चरल हेरिटेज ऑव इंडिया, पृ० ३७७।

५. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ६१४।

६. उतन ग्राम बनवाड़ो चोड़े।
जनम लियो नाने रे सोड़े।

—गुरलीला विलास, ह० प्र०

प्रारम्भिक जीवन

शैशव—स्वामी रामचरण के शिशु-काल की चर्चा जीवनीकारों ने अत्यंत संक्षेप में की है। इनके लिए साम्प्रदायिक जीवनीकारों जगन्नाथ एवं लालदास के जीवनी ग्रन्थों के अतिरिक्त कहीं कुछ नही मिलता। जगन्नाथ रचित 'गुरलीला विलास' एवं 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' तथा लालदास रचित 'परची' के अनुसार शिशु रामकिशन के जन्म लेते ही द्वार पर गाजा बाजा की धूम मच गई और मंगल उत्सव की तैयारी आरंभ हो गई। शिशु की जन्मपत्रिका ब्राह्मण ने बनाई।[1] जन्मपत्रिका में बड़े भारी ग्रह पड़े हुए हैं ऐसा ज्योतिषी ने बाँचकर बतलाया और यह भी कि छत्रपति के घर भी ऐसा पुत्र न हुआ है और न होगा।[2] नाना ने नेगियों को नेग दिया और जन्मपत्रिका लेकर नाई उनके पिता के पास पहुँचा और उन्हें बधाई दी। पिता ने पुत्रोत्पत्ति के उल्लास में नगर में नारियल बँटवाया और दूसरे दिन सम्पूर्ण परिवार को भोजन कराया।[3]

उतन ग्राम बनवाड़ा जाके।
लोग कुटुम्बी ऐसे भाखे।

—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, प्रकाशित 'वाणी' के अन्तर्गत, पृ० १०७५

तात ग्राम बनवाड़ो कहीये।
मालपुरा के नेरे लहीये।

—परची, ह० प्र०

१. गाजा बाजा द्वारै बाजै।
घर घर मंगल उच्छवसाजै।
जन्मपत्रिका द्विज लिखिसोई।
हरिगनि उनके हाथ न कोई।

—प्रकाशित 'वाणी' के अन्तर्गत 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' पृ० १०७६

२. तामे पड़ा ग्रहै अतिभारी।
सपन गोत त्यारण नरनारी।
ऐसी बांच सुणाई जोसी।
छत्रपती घर हुवो न होसी।

—गुरलीला विलास, ह० प्र०

३. नेगी आया दई जनाई।
नाने वाको दई बधाई।
जनमपत्रका लेकर नाई।
जाइ पिता से लई बधाई।
नगर मांहि नारियल बटाया।
दूजे दिन परिवार जमाया।
घरमाफिक सोदई बधाई।
सब परिवार भई हरषाई।

—गुरलीला विलास, ह० प्र०

सम्पूर्ण परिवार में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई और याचकों को उनके मनोनुकूल दान दिया गया।[1]

बाल-व्यक्तित्व—स्वामी रामचरण के बाल्य व्यक्तित्व का सुंदर चित्र परचीकार लालदास ने खींचा है। उनके अनुसार स्वामी रामचरण का रूप सूर्य की आभा के समान देदीप्यमान था। वे गौर वर्ण के थे तथा उनके नयन कमल के सदृश थे। उनके हाथ लम्बे थे, व्यक्तित्व मोहक था। छोटी अवस्था में ही उन्हें बड़ी वृद्धि एवं सद्‌बुद्धि प्राप्त थी।[2]

शिक्षा—स्वामी रामचरण की शिक्षा के विषय में उनकी जीवनी के सभी सूत्र मौन हैं। अतः अनुमानों के आधार पर ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचना संभव है। स्वामी रामचरण के पिता एक सम्पन्न व्यक्ति थे और जयपुर राज्य की सेवा में थे। उनके जन्मोत्सव की धूमधाम की चर्चा जीवनीकारों ने की है। अतः यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी शिक्षा-दीक्षा की उत्तम व्यवस्था अवश्य हुई होगी। फिर यह भी सिद्ध हो चुका है कि वैराग्य धारण करने के पूर्व स्वामी रामचरण स्वयं जयपुर राज्य की सेवा में उच्चपदस्थ कर्मचारी थे। अतः यह निर्विवाद मान लेना चाहिए कि उन्हें बचपन में अच्छी शिक्षा मिली होगी। यह भी सहज ही समझा जा सकता है कि उनका विशाल साहित्य उनकी गहन अध्ययनशीलता, सत्संग एवं जीवन के विभिन्न पक्षों के अनुभव का परिणाम है। अतः मैं निस्संकोच इस निष्कर्ष पर पहुँच गया हूँ कि स्वामी रामचरण उत्तम शिक्षाप्राप्त व्यक्ति थे।

गृहस्थ-जीवन

विवाह—स्वामी रामचरण के विवाह की चर्चा उनके किसी भी जीवनीकार ने नहीं की है। अन्तःसाक्ष्य भी मौन हैं। पर जनश्रुति कैसे मौन रह सकती है। जनश्रुति उनका विवाह होना बतलाती है। डॉक्टर अमरचन्द्र वर्मा ने साधु लक्ष्यराम लिखित 'राम-रहस्य दर्शन' का हवाला देकर लिखा है, उनका विवाह चानसेन ग्राम के एक सम्पन्न परिवार

---

१. दे नारियल बधाई ताजी।
जाचक लोग किये सब राजी।　　—परची, ह० प्र०

२. अब स्वामी का रूप बखानू।
कांति दिये सूरज सम जानूं।
गौरवरण अम्बुज से नैना।
. . . .
हस्तकमल गोड़े लग सोहै।
देखत दरश सकल मनमोहै।
बालकुमार किशोर सुबुद्धी।
लघु अवस्था दीरघ बुद्धी।　　—रामचरण चरितावली, पृ० ४

में हुआ था।[1] 'रामरहस्य दर्शन' कार को भी इसे प्रमाणित करने के लिए जनश्रुति का ही सहारा लेना पड़ा है। जो भी हो सम्प्रदाय में प्रचलित जनश्रुति के अनुसार चानसेन ग्राम में उनकी ससुराल थी।

यद्यपि प्रमाणों के अभाव में किसी बात को स्वीकारना कठिन होता है, किन्तु जनश्रुतियों को अनुमान के सहारे प्रमाण मान लेना सहज बात है। स्वामी रामचरण एक सम्पन्न परिवार में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता और वे स्वयं उच्चपदस्थ राजकर्मचारी थे। अतः उनका विवाह नहीं हुआ होगा यह कैसे कहा जाय। मेरा निश्चित मत है कि वे विवाहित थे और ऐसी स्थिति में उपर्युक्त जनश्रुति तथ्यों से परे नहीं।

संतति—स्वामी रामचरण ने ३१ वर्ष ७ महीने तक गार्हस्थ्य जीवन का उपयोग किया था। अतः इस बीच उन्हें संतति लाभ हुआ था, ऐसी जनश्रुति है। इसी जनश्रुति के सहारे डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने उनके एक पुत्र एवं पुत्री होने की बात कही है।[2] संत सन्मुख-राम जी ने मुझे बतलाया कि उन्हें केवल एक पुत्री थी, किन्तु उनके कथन का आधार भी जनश्रुति ही है। उन्हें पुत्र था या पुत्री थी, या दोनों थे, यह निश्चित करने के पूर्व यह निश्चित करना अपेक्षित है कि उन्हें सन्तान-सुख मिला था या नहीं? इसके लिए साक्ष्यों की परीक्षा करना अपेक्षित है।

परचीकार लालदास ने इतना संकेत दिया है कि हृदय में निर्वेद उपजने पर उन्होंने मोह-पाश तोड़ दिया।[3] किन्तु इससे मूल प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता। 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' भी 'जगविलास को करियो त्याग' मात्र कहकर मौन हो जाता है।[4] किन्तु 'गुरुलीला विलास' में जगन्नाथ ने इस संदर्भ को अधिक स्पष्ट किया है। वैराग्य प्रेरक स्वप्न से जगने के बाद स्वामी रामचरण को उत्तम ज्ञान का प्रकाश मिला। उन्हें संसार अन्यथा प्रतीत होने लगा। उसी दिन से वे घर में ही वनवासी सदृश रहने लगे। यही उनका चिन्तन जगन्नाथ के शब्दों में माता, भ्राता, कन्या, सुत आदि की ओर से विमुख होता है और वे इन सभी को त्यागने का निश्चय करते हैं।[5] इससे तो यह निष्कर्ष निकलता है कि उनके पुत्र-पुत्री और भाई सभी थे।

---

१. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ४२।

२. वही।

३. उपजा उर निरवेद दिढ़ तोड़ मोह की पास।

—रामचरण चरितावली, पृ० ३

४. 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग', पृ० १०७६, प्रकाशित 'वाणी' के अन्तर्गत।

५. जाग आप यों कियो विचारा।
यो तो जगत अन्नथा सारा।
... ...
जा दिन सू मन भयो उदासी।
रहे भवन में ज्यों वनवासी।

इसी संदर्भ में हम एक अन्तःसाक्ष्य पर भी विचार करेंगे। ग्रंथ 'ठिगपारख्या' में संत रामचरण लिखते हैं—

"हमकूं ठिग्ग कहे सब कोई।
सत्य कथ ये झूठ न होई।
मात-पिता हम ठिगिया भाई।
बहन भाणजी सजन सगाई।
और ठिग्या सबही परिवारा।
हमकूं कहता वंश उजारा।
ठिगी एक हम घरकी नारी।
जासूं कहता प्राण पियारी।"[१]

उपर्युक्त पंक्तियों में स्वामी रामचरण ने कहा है कि लोग उन्हें सत्य ही ठग कहते हैं क्योंकि उन्होंने अनेक सगे-संबंधियों को ठगा है पर यहाँ पर 'वंश उजारा' ध्यान देने योग्य है। स्वामी रामचरण यह अनुभव करते हैं कि लोग उन्हें वंश उजाड़ने वाला भी कहते हैं। स्पष्ट हुआ कि स्वामी रामचरण के विरागी हो जाने के कारण उनकी वंशावली वहीं से समाप्त हो जाती है। यदि उन्हें पुत्र होता तो 'वंश उजारा' की उपाधि से उन्हें नहीं विभूषित होना पड़ता और समस्त परिवार एवं प्राणप्यारी नारी को ठगने की बात भी नहीं सुननी पड़ती। अतः मैं समझता हूँ कि जगन्नाथ की 'गुरलीला विलास' वाली बात प्रतीकात्मक है। वह एक सामान्य कल्पना है। किन्तु पुत्री वाली बात का 'वंश उजारा' से कोई रिश्ता नहीं। अतः यहाँ जनश्रुति से समझौता किया जा सकता है कि उन्हें एक कन्या थी।

'पुनि सेवत राज दवार'

स्वामी रामचरण ने अपने ग्रंथ 'अमृत उपदेश' की एक कुण्डलिया का प्रारम्भ 'जन्म वैशघर पाईयो पुनि सेवत राज दवार'[२] से किया है। इस अन्तःसाक्ष्य के आधार पर प्रकाशित 'अणभैवाणी' के प्रस्तावनाकार साधु कार्याराम ने स्वामी रामचरण को जयपुर नरेश का प्रधानमंत्री कहा है।[३] इसी आधार पर सम्प्रदाय में यह बात प्रचलित हो गई कि स्वामी जी जयपुर राज्य के प्रधान मंत्री थे। डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी ने भी अपने अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध 'रामसनेही सम्प्रदाय' में स्वामी रामचरण

मात भ्रात कन्या सुत जवती।
धराधाम धन संपति होती।
ऐह तज सब निज कारज करना।
सुरति लगी संतन का चरना। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

१. ठिग पारख्या, प्रकाशित 'वाणी' के अन्तर्गत, पृ० ९८३।
२. अमृत उपदेश—प्रकाशित 'वाणी' पृ० ४५६।
३. 'अणभैवाणी' की 'प्रस्तावना', पृ० १।

जी को जयपुर राज्य का प्रधानमंत्री लिखा है।[१] इस संदर्भ में 'श्री रामसनेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने भी स्वामी रामचरण की जीवनी वाले खण्ड में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ लिखी हैं—"जयपुर नरेश ने इनकी प्रशंसा सुनी और इनको अपना मंत्री बना लिया। मंत्री बनने के बाद इनकी न्याय-निष्ठा व कर्तव्य-भावना की चारों ओर प्रशंसा होने लगी। मंत्री के रूप में इनका यश चारों ओर फैल गया।"[२]

हिन्दी के मूर्द्धन्य विद्वान् श्री वियोगी हरि 'श्री रामसनेही सम्प्रदाय' के 'दो शब्द' के अन्तर्गत लिखते हैं—"सुयोग्य, कर्तव्य-परायण तथा कार्यकुशल होने के कारण जयपुर के तत्कालीन महाराजा ने रामकिशन जी को अपना मंत्री नियुक्त किया था। इस पद पर रहकर बड़ी न्यायनिष्ठा से इन्होंने अपने कर्तव्य का पालन किया।"[३]

उपदेशामृत (तृतीय पुष्प) में 'गृहस्थाश्रम में स्वामी जी का परचा' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी रामचरण का संक्षिप्त जीवन-वृत्त एवं उनके जीवन से संबंधित कतिपय चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख है। गृहस्थ जीवन में स्वामी रामचरण की भगवद्भक्ति, संत सेवा, भजन, सत्संग आदि की चर्चा करते हुए संग्रहकार लिखता है—"जिस समय यह पटवारी के पद पर नियुक्त थे किसी पर बेजा दोषारोपण करके और दबाव डालकर अनुचित पैसा लेना पाप समझते थे। आप में न्याय-निष्ठा, कर्तव्य-भावना, निष्पक्षता के विचार अति ही उत्तम थे।"[४]

इसी संदर्भ में संग्रहकार ने उनके पटवारी-जीवन को एक चमत्कारी गाथा से सम्बद्ध कर दिया है। वह लिखता है—"एक समय किसानों से भूमिकर (लगान) की रकम एकत्रित करके तहसील में जमा कराने के लिए बैलगाड़ी में बैठकर जा रहे थे। रास्ते में चोर मिल गये और इनकी रकम छीन कर चल दिये। आपने अपने इष्टदेव की प्रार्थना की तो ऐसी विचित्र लीला हुई कि थोड़ी ही दूर जाने पर चोर अंधे हो गये। तब चोरों ने इनकी करामात समझकर आपसे क्षमा चाही और धन वापस देकर भविष्य में चोरी न करने की प्रतिज्ञा ली।"[५]

संग्रहकार ने यह नहीं बताया कि उसने स्वामी रामचरण के पटवारी पद पर कार्य करने की बात कहाँ से खोज निकाली है। मैं समझता हूँ यह तथ्य भी जनश्रुति पर ही आधारित है। पर इस जनश्रुति पर सहज विश्वास किया जा सकता है। 'गुरलीला विलास' से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण के परिवार में चाकरी के अतिरिक्त अन्य धन्धा नहीं होता था।[६] रामचरण जी के पिता जयपुर राज्य के चाकर थे और रामचरण जी ने भी राज-सेवा की थी। किन्तु स्वामी रामचरण के जयपुर नरेश का मंत्री या प्रधान मंत्री होने की बात किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती।

---

१. रामसनेही [illegible] शोधप्रबंध, गोरखपुर विश्वविद्यालय।
२. श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ५।
३. श्री रामसनेही सम्प्रदाय की भूमिका, दो शब्द, पृ० १।
४. उपदेशामृत बिन्दु (तृतीय पुष्प), पृ० १६।
५. वही।
६. सुख संपति धन-धाम उमंदा।
बिना चाकरी और न धन्धा। —गुरलीला विलास, हृ० प्र०

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा लिखते हैं कि, "जयपुर राज्य के किसी भी इतिहास में रामकृष्ण नाम के मंत्री होने का उल्लेख नहीं है।"[१] मैंने इन्दौर के छत्रीबाग रामद्वारा के विद्वान् संत श्री कन्हैयाराम जी से स्वामी रामचरण के मंत्री होने की बात को स्पष्ट करने के लिए कहा तो उन्होंने इसे स्पष्ट रूप से कल्पित बात कही। हाँ, उन्होंने यह कहा कि वे कानूनगो के पद पर अवश्य थे। इस संदर्भ मे जीवनीकार जगन्नाथ एवं लालदास के मतों पर भी विचार कर लेना उचित होगा।

जीवनीकार जगन्नाथ लिखते हैं कि "जब रामकृष्ण कार्य करने लगे तो माता-पिता को परम आनन्द हुआ। उन्हें काम करते बहुत दिन व्यतीत हो गए और अब रामकृष्ण की ओर से सभी निश्चिन्त थे। वे सभा में बड़े भले लगते थे अतः सबको अच्छे लगने लगे।"[२]

इसी सन्दर्भ में जीवनीकार के निम्नलिखित कथन से उनके जयपुर दरबार में रहने की बात भी पुष्ट हो जाती है—

"जुग दोइ बीता पिता समाया।
रामकृस्न जैंपुर सूं आया।
मोसर कीयो सरस अति नीको।
राज सहत आयो वोहो टीको।"[३]

उपरिलिखित पंक्तियाँ यह तो स्पष्ट करती ही हैं कि पिता के निधन का समाचार जानकर रामकृष्ण जयपुर से आये थे अर्थात् उनके निधन के समय वे जयपुर में ही थे। साथ ही यह भी कि उस समय उनकी आयु दो युग (२४ वर्ष) की थी।[४] उन्होंने पिता का मोसर बड़े अच्छे ढंग से किया। राजा के दरबार से भी उस समय टीका आया था।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वामी रामचरण अपने राज-सेवा-काल में जयपुर राज्य के उच्चपदस्थ राजकर्मचारी थे। उनका राजदरबार में प्रभाव था। पिता

---

१. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ४३।

२. रामकृसन तब काम समाया।
मात-पिता कै आनंद आया।
काम करत बो होता दिन बीता।
रामकृस्न सूं सबही नचीता।
... ...
सभा मांहि अति लगे सुभाया।
ताते ऐ सबके मन भाया।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०

३. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

४. "इनकी २४ वर्ष की अवस्था में ही पिताजी का स्वर्गवास हो गया। इस दुःसंवाद को सुनकर वे बड़े व्यथित हुए। मोसर करने के लिए जयपुर से अपने गांव को रवाना हुए।"
—श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ५

के मोसर पर राजदरबार से टीका आना ही इस बात का प्रमाण है कि वे उच्चपद प्राप्त राजपुरुष थे। किन्तु वे किस पद पर थे, इसका उल्लेख 'गुरलीला विलास' मे जगन्नाथ ने नहीं किया है।

'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' में भी इनकी सम्पन्नता की चर्चा करते हुए जगन्नाथ आगे लिखते हैं—

"कोई रीति कभी नहीं बरते।
राजनीति में नीकां निरते।
न्याव निसाफ़ निवेरे सारो।
ज्यूं ज्यूं बधे तेज तप मारो।"[१]

इस संदर्भ में परचीकार लालदास का निम्न कथन भी महत्त्वपूर्ण एवं विचारणीय है—

"तरण अवस्था भये मुसद्दी।
आप विराजे हाकिम गद्दी।
न्याव निसाफ़ करै अति नीको।
सुख पहुंचावै सबही जी को।
वैश्य उजागर सबही भाखै।
राजमांहि बड़ कारण राखै।
संसकार परब पुन्य भारी।
जस गावै सबही नरनारी।"[२]

'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' और 'परची' के उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि रामचरण जी राजसेवा-काल में सभी रीतियों का व्यावहारिक ज्ञान रखते थे पर राजनीति में भलीभाँति निष्णात थे। वे न्याय-इन्साफ करने में कुशल थे। तरुणाई में वे हाकिम की गद्दी पर विराजमान हुए थे। उनके न्याय से सभी सुख पाते थे। सभी कहते हैं कि वैश्य बड़ा उजागर है और राज्य में उनका बड़ा प्रभाव था। परचीकार कहता है कि यह उनके पूर्वजन्म के संस्कारों और सत्कर्मों का प्रभाव था कि सभी नर-नारी उनका यशगान करते थे। उपर्युक्त विवेचन से भी मैं इस निष्कर्ष पर हूँ कि स्वामी रामचरण जी अपने राजसेवा-काल में जयपुर राज्य के प्रभावशाली, न्यायनिष्ठ, राजनीतिकुशल एवं यशस्वी उच्चपदस्थ राजपुरुष थे। आश्चर्य नहीं कि उनके उपर्युक्त गुणों से प्रभावित होकर जयपुर नरेश ने उन्हें भिन्न-भिन्न ऊँचे पदों पर कार्य करने का अवसर दिया हो। संत सन्मुखराम जी ने मुझे एक चर्चा में यह बतलाया था कि जयपुर नरेश के समक्ष एक बार ये अपने पिता के साथ उपस्थित हुए थे। इनकी बुद्धिमत्ता से राजा तभी प्रभावित हुए थे और इन्हें अपना निजी सचिव नियुक्त किया था।

---

१. ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७६ —प्रकाशित 'वाणी' के अन्तर्गत
२. रामचरण चरितावली, पृ० २।

यद्यपि इस कथन का आधार भी जनश्रुति ही है किन्तु स्वामी रामचरण जैसे व्यवहार-कुशल राजनीति-विशारद, न्यायी हाकिम एवं प्रभावी राजपुरुष के लिए उक्त पद पर नियुक्त होना आश्चर्य का विषय बिल्कुल नहीं। हाँ, इतना तो निश्चित है कि वे न तो पटवारी या कानूनगो जैसे सामान्य पद पर थे और न जयपुर राज्य के प्रधानमंत्री ही थे प्रत्युत् यही कि 'जनम वैश्य घर पाईयो पुनि सेवत राज दवार।'

धर्मप्राण परिवार

स्वामी रामचरण का परिवार धर्मप्राण आस्तिक परिवार था। धन-सम्पन्नता के साथ धर्मप्राणता भी थी। उनका परिवार धर्मशील सगुणोपासक यशस्वी भगवद्भक्त परिवार था। सगुण भक्ति के साथ दान-स्नान, नियम-आचार के प्रति उसमें आस्था की भावना थी।[१] बालक रामकृष्ण पर परिवार की इस धर्मशीलता का प्रभाव अवश्य पड़ा था। तभी "आप बाल्यकाल से ही भगवद्भक्ति, संतसेवा, भजन, सत्संग आदि मे तल्लीन रहते थे।"[२] स्वामी रामचरण अपने गार्हस्थ्य जीवन में परिवार के अन्य लोगों की भाँति सगुण भक्ति, दान-स्नान, नेम-आचार आदि में विश्वास करते थे। विरक्त होने पर भी पर्याप्त समय तक सगुणोपासक वैष्णव ही रहे थे।

परिवर्तन के दो सोपान

एक घटना : एक सपना

स्वामी रामचरण एक बार एक हाट में लेटे हुए थे[३], तभी ऐसा हुआ कि एक यती उस मार्ग से निकला। उसने उनके पगतल की रेखा देखी। देखते ही यती बोला, "तुम्हारे चरण में उर्ध्व रेखा है, मुझे आश्चर्य हो रहा है। या तो तुम्हें राजा होना चाहिए या योगी।"[४]

---

१. स्याम धर्म सूं काम करावे।
जहां तहां जसवास बधावे।
सरगुण भगति करै कुलसारो।
दान सनान नेम आचारो। —गुरलीला विलास, हृ० प्र०

२. उपदेशामृत बिन्दु (तृतीय पुष्प), पृ० १६।

३. एक सहा की हाट व जानी।
तहां सहज में सयन करानी। —ब्रह्म समाधिलीन जोग, पृ० १०७६

४. एक समै एक जुग जुरानो।
जती एक मारग निकसानो।
चरण पगतली देखी रेखा।
ताके पाछे कियो बवेका।
कोण लोग तुमरे काहा विभा।

किन्तु परचीकार लालदास का कथन है कि इन्हें विरागी होना चाहिए, ये गृहस्थ कैसे हैं?[१] 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' में जगन्नाथ ने भी इस आशय की पुष्टि की है—

"उर्ध्व रेख जो चक्र दबाई।
ये कुंण हैं गृह में क्यू भाई।
इनके उग्र निर्वेद करारो।
रामभजन करि होइहैं पारो।"[२]

स्मरणीय है कि 'गुरलीला विलास' और 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' दोनों ही के रचनाकार जगन्नाथ हैं, किन्तु इस संदर्भ के दोनों के कथनों में अन्तर क्यों? पुनः निवेदन है कि 'ब्रह्मनभाधि लीन जोग' स्वामी रामचरण के निधन के तत्काल बाद की रचना है और 'गुरलीला विलास' निधन के पाँच वर्ष बाद सोडा-यात्रा के बाद की। 'गुरलीला विलास' स्वामी रामचरण के जीवन का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् जीवनीकार द्वारा लिखी गई कृति है। इसलिए इस जीवनी-ग्रन्थ के तथ्य ही विशेष विश्वसनीय है। वैसे 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' के तथ्य भी अविश्वास के योग्य नहीं हैं, फिर भी तथ्यों में यदि कहीं अंतर दृष्टिगोचर हो तो 'गुरलीला विलास' के तथ्यों को ही वरीयता दी जानी चाहिए। यद्यपि यहाँ परचीकार लालदास 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' के तथ्य की ही पुष्टि करते हैं पर मेरा निश्चित मत है कि 'गुरलीला विलास' का तथ्य ही प्रामाणिक है।

इस घटना के समय स्वामी रामचरण ३१ वर्ष के थे।[३] किन्तु लालदास के अनुसार इस घटना के समय उनकी अवस्था ३१ वर्ष ७ मास थी।[४] 'श्री रामसनेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने इससे भिन्न मत व्यक्त किया है। उन लोगों के अनुसार पिता के निधन के बाद

याकी मोको आत अचंभा।
उरध रेख तुमरे चरनन में।
याते इचरज आवतु मन में।
के राजा होइ चंवर ढुलावै।
के जोगेस्वर जोग कु भावै। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

१. चरणचिन्ह को देख के, बोला ग्यान विचार।
इनके दृढ़ निरवेद है, ये कैसे गृहवार।
—रामचरण चरितावली, पृ० २

२. ब्रह्मसमाविलीन जोग, पृ० १०७६।

३. इकतीस बरस को यो बरतारो।
श्रवणा सुणी सो बरनों सारो। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

४. इकतिस बरस की अवस्ता, सात महीना ओर।
प्रौढ़े थे इक हाट में, जती आया तही ठोड़। —परची, ह० प्र०

मोसर के लिए जयपुर से बनवाड़ा जाते समय मार्ग में इस यति से मिलन हुआ था।[1] इससे यह सिद्ध होता है कि २४ वर्ष की अवस्था में उस यति ने संदर्भित भविष्यवाणी की थी।

मेरी दृष्टि में जगन्नाथ एवं लालदास के मतों पर अधिक चर्चा की गुंजाइश नहीं है। वैसे वरीयता जगन्नाथ के मत को ही दी जा सकती है। किन्तु 'श्री रामसनेही सम्प्रदाय के लेखकों ने अपने इस कथन का कोई आधार नहीं दिया है। मैं यह भी समझता हूँ कि 'गुरलीला विलास' एवं 'परची' के अतिरिक्त अन्य कोई भी साम्प्रदायिक या बाह्य साक्ष्य नहीं है जिसके आधार पर यति-मिलन के समय स्वामी रामचरण की आयु क्या थी, इसका उल्लेख हो। फिर 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के विद्वान् लेखकों को यह भ्रम कैसे हो गया कि पिता के मोसर के लिए जाते समय अर्थात् २४ वर्ष की आयु में भविष्यवक्ता यति से स्वामी रामचरण की भेंट हुई थी। इस विवेचन से एक बात और स्पष्ट हो जाती है, वह यह कि स्वामी रामचरण अपने पिता के निधन के पश्चात् सात वर्षों तक जयपुर राज्य की सेवा में थे।

परचीकार लालदास लिखते हैं कि वह यति तो अपनी बात कह कर चला गया पर उसी दिन रात को स्वामी रामचरण ने एक स्वप्न देखा।[2] 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' में जगन्नाथ ने यह तो नहीं लिखा है कि उसी दिन की रात को स्वप्न हुआ किन्तु ३१ वर्ष ७ महीने का समय स्वप्न के लिए अवश्य निर्धारित करते हैं।[3] आगे चल कर 'गुरलीला विलास' में वे 'एक समय' कह कर निकल गए हैं।[4] पंडित परशुराम चतुर्वेदी भी जीवन के ३१वें वर्ष में स्वप्न देखने की बात लिखते हैं।[5]

'गुरलीला विलास' कार जगन्नाथ के शब्दों में स्वप्न इस प्रकार चलता है—

"सिलता में ज्यो करत सनाना।
धारा में पड़ बहै निदाना।

---

१. 'मोसर करने के लिए जयपुर से अपने गाँव को रवाना हुए। मार्ग में एक यति से इनका मिलन हुआ। यति ने आचार्य चरण को देख कर आश्चर्य प्रकट किया और कहा—'ज्योतिष के अनुसार तुम्हें या तो राजा होना चाहिए या कोई योगी।'

—श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ५-६

२. जती बचन कह रम गया, आप सुनी ऐ बात।
निद्रा में सुपना भया, वाइ दिन की रात। —परची, ह० प्र०

३. तबे एक दृष्टान्त दिखायो।
सोवत समय स्वप्न में आयो।
... ...
इकतीस वर्ष महीने साती।
भयो दृष्टान्त निद्रा में राती। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६

४. ऐक समय निसि आयो सुपनो।
जाहां निजर नहीं आवे अपनो। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

५. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ६१५।

तहां ऐक संत पुरातन ठाढ़े।
बहत देख दोरवाहर काढ़े।[1]

अर्थात् वे सरिता में स्नान करते समय धार की चपेट में पड़ कर बहने लगे। किन्तु परचीकार लिखता है कि पैर फिसल गया और वे धारा में बह चले।[2] वहाँ खड़े वृद्ध संत ने इन्हें बहता देख दौड़ कर बाहर निकाला।[3] डॉक्टर अमरचन्द वर्मा लिखते हैं कि "कुछ समय पश्चात् एक शुभ्रवेषधारी साधु दौड़ता हुआ आया।"[4] वे पुरातन संत महासुख देने वाले, श्वेतकेशी एवं अमृतवाणी बोलने वाले थे।[5] स्वप्न में संत मूर्ति का दर्शन परचीकार लालदास भी स्वीकारते हैं। 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में जगन्नाथ ने उस महानुभावी संत मूर्ति की अमृतवाणी सुनी है और तभी स्वप्न भंग की चर्चा निम्नलिखित पंक्तियों में की है—

"जाकी मूर्ति महासुख दांनी।
राम राम करुणा जु करांनी।
लिये उबार भीति सब भागे।
इतना ही में सोवत जागे।"[6]

महासुखदानी संत की करुणा ने उनसे 'राम राम' उच्चरित कराया। स्वामी रामचरण नदी में डूबने से संत द्वारा उबार लिये गये और उनका सारा भय जाता रहा। तब तक निद्रा टूटी और स्वप्न भंग हो गया।

जागरण

नींद भंग होने के साथ स्वामी जी की मोह-निद्रा भी भंग हो गई। जागने पर आपको समस्त संसार मिथ्या प्रतीत होने लगा।[7] स्वप्न में संत-मिलन के साथ ही उत्तम ज्ञान का उदय हुआ। उसी दिन से मन संसार से विरक्त हो चला और घर में भी स्वामी रामचरण वनवासी सदृश रहने लगे। उनके मन में संत-शरण में रहकर भगवद्भजन करने तथा मनसा,

---

१. गुरलीला विलास, ह० प्र०।
२. नदी पधारे सुपन में करने को स्नान।
 चरण फिसल धारा बहे हरि जन काढ़े आन।—रामचरण चरितावली, पृ० २।
३. तहां इक संत वृद्ध से ठाढ़े।
 बहते देखि दौरि वा काढ़े। —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७६।
४. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ४५।
५. जे निज संत महा सुषदानी।
 सेत बाल मुष इमृत बानी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।
६. ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७६।
७. जाग आप यूं कियो विचारा।
 यो तो जगत झूठ है सारा। —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७६।

वाचा संसार से विलग हो जाने का भाव जगा। उन्हें प्रतीत होने लगा कि घर-बार, धन-सम्पत्ति का सुख, स्त्री, पुत्र, परिवार ये कभी भी अपने नहीं।[१] परचीकार लालदास की दृष्टि यहाँ तनिक दार्शनिक हो गयी है। उनके अनुसार स्वामी जी ने विचार किया कि मोह नदी की धार में डूबने वाला मेरा जीव है और सत्गुरु उबारने वाले हैं और तभी हृदय में वैराग्य जगा और सांसारिक मोह-बंधन को तोड़कर सत्गुरु की खोज में निकल पड़े।[२] इसी संदर्भ में 'गुरुलीला विलास' में जगन्नाथ लिखते हैं—

"जगत सुष तज निसर्‌या ऐकाऐकी आप।
नरतन काज सुधारणैं करणो संत मिलाप।[३]

बाह्य साक्ष्यों में आचार्य पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने भी स्वप्न से प्रभावित होकर घर-बार छोड़ने तथा उक्त महात्मा की खोज में सर्वत्र भरमने की बात लिखी है।[४]

महात्मा की खोज

इस प्रकार वैराग्य उपजने पर स्वामी रामचरण लोक-सुख का परित्याग कर स्वयं मुक्ति पाने तथा अन्य अनेक जनों को मुक्ति दिलाने के लिए घर से निकल कर वन की ओर चल पड़े।[५]

---

१. उत्तम ग्यान उदय होइ आया।
तब सुपना में संत मिलाया।
जा दिन सूं मन भयो उदासी।
रहे भवन में ज्यों वनवासी।
... ...
मनसा वाचा जग को तजना।
संतों सरनें हरि को भजना।
सुष संपति घरबार धन सुत बिनता परिवार।
ऐता कदेन आपणा मन में कीयौ विचार। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. बूड़न हारा जीव मम, मोह नदी की धार।
सतगुर काढ़नहार है, जिनसे कीजै प्यार।
उपजा उर निरवेद दढ़, तोड़ी मोह की पास।
सतगुर को ढूढ़न चले, लगी दरस की प्यास। —परची, ह० प्र०।

३. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

४. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६१५।

५. ऐसी विधि उपज्यो वैराग।
जग विलास को करियो त्याग।
सब सुख छांड़ि चले अब आरण।
आप तिरन बहुतन को त्यारन। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।

वे स्वप्न में उबारने वाले संत की खोज में निकले थे। जगन्नाथ ने '[illegible] जोग' में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है—

"जे मोंहि स्वप्ने लिये उबारी।
ऐसे हेरों परम उदारी।[1]"

उदासी रामचरण दक्षिण दिशा की ओर चले और शाहपुरा पहुँचे। शाहपुरा में उन्होंने स्वप्न मे उबारने वाले महात्मा के विषय मे पूछताछ की। विदित हुआ कि ऐसे संत दातड़ा मे रहते हैं। यह सुनकर स्वामी जी अत्यन्त हर्षित हुए और प्रभात होते ही दांतड़े के लिए प्रस्थान कर गए।[2] 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' कार लिखता है—

"पूछि ठौर गुरु शरणे आये।
नगर दांतड़े सतगुरु पाये।[3]"

स्वामी कृपाराम से भेंट

दांतड़ा पहुंच कर रामचरण जी महंत स्वामी कृपाराम जी से मिल कर अत्यन्त उल्लसित हुए। स्वप्न में जो संत मूर्ति उन्होंने देखी थी, उसी का साक्षात् दर्शन कर रहे थे।[4] भावविभोर रामचरण जी ने शीश नवा कर प्रणाम किया, प्रसाद चढ़ाया और प्रदक्षिणा की।[5] स्वामी कृपाराम जी ने स्वामी रामचरण को देख कर पूछा—"किण दिस [illegible]

---

१. ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।

२. तब उदास होइ छांड्यो भवना।
दिक्षण दिसा को कीयो गवना।
साहिपुरा में आया जबहीं।
ऐसा संत दांतड़े सुनीया।
मन मे हरष्या तन में गुणीया।
तब प्रभात दांतड़े चलीया।
जन किरपाल परसपर मिलीया। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

३. ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।

४. जै छवि देषी सुपन में सो निरषी निजनैन।
डंडवत कर चरणा पड़े, उपज्यो उर सुषचैन। —परची, ह० प्र०।
जो स्वरूप स्वप्ना में पेखे।
सो महाराज आपनें देखे। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग।

५. कर प्रनाम प्रसाद चढ़ायो।
परदषणा दे सीस नवायो।
सो दरसण सुपना में दरस्या।
सो उत काल आइ पद परस्या। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।
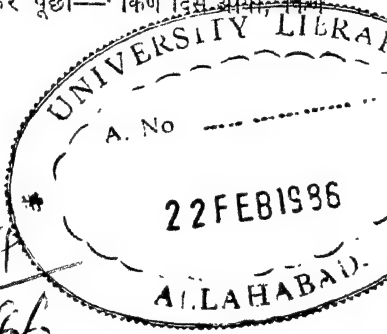
दिस जाएयो ?"[1] स्वामी रामचरण ने करबद्ध होकर अपनी सम्पूर्ण गाथा सुना दी और निवेदन किया—"महाराज ! मैं आपकी शरण में आया हूँ।"[2] चरणस्पर्श करते हुए कहा प्रभु जी ! आज मेरा भाग्योदय हुआ है। हे दयानिधि ! मुझे स्वरूप दीजिए, मैं वैराग्य लूँगा, आप इसका रहस्य बतायें।[3]

स्वामी रामचरण का निवेदन सुनकर स्वामी कृपाराम जी ने उत्तर दिया कि—"भाई ! वैराग्य महा कठिन है। इसकी शोभा का बखान संतों ने किया है। वैराग्य उसे मिलता है जो परम सौभाग्यशाली होता है।[4] 'गुरलीला विलास' की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस संवाद में महत्त्वपूर्ण हैं—

"जोग कु भावण करड़ो कामा।
सो तुम जावो अपणी धामा।[5]"

स्वामी कृपाराम जी ने योग-साधना की कठिनाइयाँ बताकर स्वामी रामचरण जी को घर लौट जाने की सलाह दी। किन्तु स्वामी रामचरण दृढ़निश्चयी थे। उन्होंने पुनः निवेदन किया कि मेरी इच्छा घर वापस होने की तनिक भी नहीं है।[6]

वैराग्य जीवन

दीक्षा

गुरलीला विलासकार जगन्नाथ लिखते हैं कि इस प्रकार विचार-विमर्श में एक पक्ष लग गया। पक्ष बीतने पर स्वामी कृपाराम जी ने उन्हें वैराग्य दिया। यह घटना संवत्

---

१. गुरलीला विलास, ह० प्र०।
२. तब कर जोड़ सुनाई गाथा।
मैं सरनागत आयो नाथा। —वही, ह० प्र०।
३. कर परणाम आय पग लागे।
प्रभु जी आज भाग मम जागे।
देहु स्वरूप दयानिधि देवा।
ल्यूं बैराग बताओ भेवा। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।
अरज करि कर जोड़ के लीजे मोहि शरण। —परची, ह० प्र०।
४. ये वैराग कठिण है भाई।
जाकी शोभा संतों गाई।
सो वैराग भाग वड़ जाके। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।
५. गुरलीला विलास, ह० प्र०।
६. तब विचार कर कीन्ही अरजी।
घर नहीं जाऊँ याही मुरजी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

१८०८ के भादों महीने की है।[1] इसी सुअवसर पर स्वामी कृपाराम जी ने इनका नाम रामकृष्ण से रामचरण कर दिया। परचीकार लालदास ने इस नाम-परिवर्तन की घटना का बड़े स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है—

> **"रामचरण जी नाम दे सीस धर्‌या गुर हाथ।**
> **सतगुर का प्रताप तें जग में भए विख्यात।"[2]**

डॉ० अमरचन्द वर्मा एवं श्री रामस्नेही सम्प्रदाय के लेखकों ने दीक्षा-वर्ष एवं मास के अलावा दीक्षा-तिथि एवं दिन भी खोज निकाला है। डॉ० वर्मा लिखते हैं—"श्री कृपाराम ने स्वामी रामचरण को विक्रम संवत् १८०८ भाद्रपद शुक्ल ७ गुरुवार के दिन रामनाम का मंत्र देकर दीक्षित कर दिया और उनका नाम रामकृष्ण से रामचरण रख दिया।"[3] इस संदर्भ मे 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों की पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

"विक्रम संवत् १८०८ भाद्रपद शुक्ल ७ गुरुवार के दिन स्वामी कृपाराम जी ने रामकिशन को रामनाम का तारक मंत्र देकर दीक्षित किया और इनका दीक्षा-नाम रामचरण रखा।"[4]

विनम्र निवेदन है कि शोध-कर्त्ता डॉ० वर्मा एवं 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के विद्वान् लेखकों ने तिथि और दिन कहाँ से खोज निकाला है, विचारणीय है। मैंने स्वामी रामचरण जी के जीवनीकार जगन्नाथ एवं परचीकार लालदास रचित जीवनी ग्रंथों का अवलोकन किया।

---

१. एक पाप चरचा में लागा।
तब महाराज दीयो बैरागा।
अठारा सेर आठ की साला।
माथे हाथ दियो किरपाला।
भाद्रप मास भये निर्बन्ध।
रामचरण जी नाम प्रसिद्ध। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।
संवत अठारा सै अरु आठा।
ले बैराग गहे मन काठा।
भाद्रप मास दास पद पायो।
रामचरण जी नाम कहायो। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।
तब सतगुर कृपाल होय दीया साध सरूप।
रामनाम मंत्र दीया सब धरमा सिरभूप।
अष्टादस अरु आठ के संमत भइ गुर भेंट।
आप सरीखा कर लिया मूल भरमना भेंट॥ —परची, ह० प्र०।

२. वही।

३. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ४८-४९।

४. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १०।

सभी ने संवत् १८०८ भाद्रपद मास का तो उल्लेख किया है किन्तु तिथि एवं दिन का किसी ने भी नहीं। डॉक्टर अमरचन्द जी तथा वैद्य केवलराम स्वामी आदि ने फुटनोट में उपर्युक्त जीवनीकारों के अतिरिक्त अन्य किसी का भी हवाला नहीं दिया है जिसने दीक्षा-तिथि एवं दिन का उल्लेख किया हो। मैं यह समझने में असमर्थ हूँ कि विद्वान् शोधकर्त्ता ने बिना प्रमाण तिथि एवं दिन का उल्लेख कैसे कर दिया। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखक सम्प्रदाय के अनुयायी एवं संत ही हैं। यदि उन्हें किसी ऐसे सूत्र की जानकारी थी तो उसका उल्लेख अवश्य करना चाहिए था। मेरा निश्चित मत है कि यदि जीवनीकार जगन्नाथ को तिथि और दिन का ज्ञान होता तो 'गुरलीला विलास' या 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' में इसका निश्चित उल्लेख करते। अन्त में मैं, इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि दिन और तिथि का उल्लेख इन लोगों ने कहीं से सुन-सुना कर लिख दिया है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भी संवत् और मास का उल्लेख अपने ग्रंथ 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' में किया है।[१]

गूदड़ धारण

अपने गुरु स्वामी कृपाराम से दीक्षा ग्रहण कर स्वामी रामचरण ने गूदड़ वेश धारण किया।[२] तब स्वामी कृपाराम जी ने इन्हें इस प्रकार उपदेश दिया—

> **"तब कृपाल ऐसी फुरमाई।**
> **अपनो कारज कीजो भाई।**
> **हमरे निमत कहुं दीन न ह्वेज्यो।**
> **रामनाम निसिबासुर कहि ज्यो।**
> **कनक कामणी को मति धीजो।**
> **जगत बात सुण कै मति रीजो।**
> **वृत अजाची भिख्या ली जो।**
> **मन बस भया आपहां आज्यो।"[३]**

उपदेश ग्रहण कर स्वामी रामचरण जी विचरण के लिए निकल पड़े।[४] वे अकेले सिंह के समान स्वेच्छया विचरते थे।[५] वे सात वर्ष तक इस वेश में रहे, तत्पश्चात् पुनर्विचार

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ६१५।

२. गूदड़ दिशा बणाई नीकी।
कनक कामणी जदि सूं फीकी। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।

३. गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

४. बचन मान के रामत कीनी।
मनसा वाचा सिर धर लीनी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

५. एकल मल्ल सिंह ज्यूं विचरन।
अपणें हवाल करै तहां सचरन। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६-७७।

किया।[1] इन सात वर्षों में स्वामी रामचरण जी का पर्याप्त प्रभाव बढ़ा। उनके गुणों की चर्चा होने लगी। स्वामी जी की महिमा बढ़ी और अनेक नर-नारी उनसे प्रभावित होने लगे। पूजा पर्याप्त चढ़ती थी पर ये उसे ग्रहण न कर गुरु के पास भेज देते थे।[2] यहाँ कृपाराम जी ने इन्हें पुनः एक उपदेश और दिया—

तब गुरु कहे सुणो हो सिक्खा।
ये तुम सुणोज मेरी दिक्खा।
हमरे निमित कहुं दीन न भाखो।
मति कीजो माया अविलाखो।
ये माया झूटी है भाई।
झूठ कपट बिन निकसे नाहीं।
तुम तो काज आपणों कीज्यो।
राम राम रटि अमृत पीज्यो।
जो तुम सब्रझ तज्यो गृह बास।
तो रहज्यो तन लग सदा उदास।
हम तो माया टहल नचावै।
राम कहाय राम मिलवावै।[3]"

इस उपदेश से प्रेरित होकर स्वामी रामचरण रामनाम में लीन हो गए। तभी एक घटना घटी। गूदड़ वेशधारी संत रामचरण एक दिन रसोई बना रहे थे। उन्होंने जलती हुई लकड़ियों से चींटियों को निकलते देखा। उनका मन उद्विग्न हो उठा और वे रसोई से दूर जा बैठे।[4]

---

१. सात वर्ष लग गूदड़ धारा।
पीछे मन में कियो विचारा। —वही, पृ० १०७७।

२. देश मालवे तीन ठिकाणा।
गूदड़ जी गुण होत बखाणा।
महिमा पधति बधी अतिभारी।
पावौ लगै बहुत नर-नारी।
पूजा चढ़ै सएरे नांही।
परभाती गुरुद्वार पठाहीं। —वही, पृ० १०७७।

३. ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७७।

४. ऐसें करत इसी होइ आई।
भण्डार जगत कीड़ी निकस्याई।
तब करि तर्क फर्क होइ बैठा।
वा स्थान में फेर न बैठा। —वही, पृ० १०७७।

गलता मेला : ऐतिहासिक मोड़

संवत् १८१५ विक्रमी में प्रसिद्ध वैष्णव गद्दी गलता[1] में एक बहुत बड़ा मेला हुआ था। इस मेले में सम्मिलित होने के लिए लाखों साधु एकत्र हुए। स्वामी रामचरण इस समय दांतड़े में आए। स्वामी कृपाराम जी भी उस मेले के लिए आमंत्रित होने पर गलता चल पड़े।[2] स्मरणीय है कि इस मेले में चारों दिशाओं के सभी वेशधारी संत आमंत्रित हुए थे। महंत कृपाराम जी अपनी साधु-मंडली के साथ गलता जाते समय मार्ग में चूरे नगर में रुके। यहाँ रसोई की दूसरी घटना घटी। चूरे नगर में आपने पंथ की रसोई की किन्तु पंगत के समय साधु-मंडली में आपसी द्वेष के कारण अव्यवस्था हो गई। स्वामी रामचरण ने यह 'बड़बड़' देख कर गुरुदेव स्वामी कृपाराम जी से आग्रहपूर्वक पूछा, 'हे दयालु गुरुदेव, क्या मुक्ति प्राप्त करने का यही ढंग है या अन्य कोई भी ? हे देव मुझे इसका रहस्य कृपा कर बतलाइए।'[4]

स्वामी कृपाराम जी अपने शिष्य के चित्त का उद्वेलन समझ रहे थे। स्वामी रामचरण गार्हस्थ्य जीवन एवं सम्मानित राज-पद छोड़ कर साधुवेश में आए थे। किन्तु यहाँ भोजन के अवसर पर साधुओं का आपसी झंझट देख कर यदि उनका मन उद्वेलित हो उठा तो यह स्वाभाविक ही था। स्वामी कृपाराम ने शिष्य रामचरण को प्रवृत्ति मार्ग को दुखदायी बता कर उसे

स्मरणीय है कि इस चींटी निकलने की घटना का उल्लेख गुरलीला विलास में जगन्नाथ ने नहीं किया है। हाँ, 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' में गलता मेले के प्रकरण के पूर्व इस घटना का वर्णन वे करते है। अतः डॉ० वर्मा के इस मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता कि गलता जाते समय रास्ते में रसोई बनाते समय जलती लकड़ी से चीटियों को निकल कर भागते देखा गया।

१. गलता जयपुर के पास प्रसिद्ध वैष्णव स्थान है।

२. अठारा से पनरोतरे गलते मेलो थाइ।
च्यारं दिसा का भेष कों दल दे लिया बुलाइ। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

३. नगर दांतड़े जब दल आया।
तब स्वामी किरपाल सिधाया। —वही, ह० प्र०।

४. चूरे नगर पहुँचा होई।
आप पंथ की करी रसोई।
तब पंगत में बड़बड़ जानी।
जब रामचरणजी अरजकरानी।
हे गुरदेव दयाल कृपालं।
मुकति जाण की ऐही चालं।
कै कोई चाल और है देवा।
याकी मोंहि बतावो भेवा।
—वही, ह० प्र०।

छोड़ने का सुझाव दिया और स्पष्ट किया कि निवृत्ति मार्ग ग्रहण कर राम का नाम स्मरण करो तभी मुक्ति का मार्ग पाओगे।[1]

परचीकार लालदास ने यद्यपि इस संत-मण्डली की खींचातानी वाली घटना का वर्णन नही किया है किन्तु भेष में खड़बड़ का संकेत देकर मुक्ति मार्ग की प्राप्ति की युक्ति पूछने का उल्लेख अवश्य किया है।[2] 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों एवं डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने 'कीड़ी निकस्याई' वाली घटना का उल्लेख भी इसी संदर्भ में किया है। डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने तो यह भी लिख दिया है कि साधु-मण्डली की गड़बड़ी के कारण स्वामी रामचरण का मन खिन्न था ही, चींटियों वाली घटना से उनके खिन्न मन का चिंतन और तीव्र हो उठा।[3]

मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि 'कीड़ी निकस्याई' वाली घटना गलता-भेला-प्रकरण से पहले ही जगन्नाथ ने 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में उल्लिखित कर दी है। किन्तु यह घटना उनकी दृष्टि में बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं थी। यदि इस घटना का स्वामी रामचरण के जीवन-परिवर्तन में महत्त्व होता तो 'गुरलीला विलास' में इसका उल्लेख जीवनीकार अवश्य करता। दूसरी बात यह कि साधु-मण्डली की जिस खड़बड़ से स्वामी रामचरण खिन्न हुए थे, वह खड़बड़ की घटना चूरे नगर में गलता जाते समय घटी थी। फिर डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने दोनों को एक दूसरे से सम्बद्ध कैसे किया और चींटी वाली घटना को क्यों प्रमुखता दे दी? यहाँ उस साक्ष्य पर तनिक विचार करना आवश्यक है जिसके कारण डॉक्टर वर्मा भ्रमित हुए हैं। डॉक्टर वर्मा ने 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' को इस तथ्य के लिए संदर्भित किया है और 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने 'रामचरण चरितावली' के अन्तर्गत मुद्रित 'परची' का सहारा लिया है। वस्तुतः 'परची' का यह मुद्रित संस्करण ही सारे भ्रमों की जड़ है। इसके सम्पादक श्री मानकराम जी हैं। इस मुद्रित 'परची' के पृष्ठ ८ पर 'चौपाई' शीर्षक के अन्तर्गत तीसरी एवं चौथी पंक्ति ध्यान देने योग्य है—

---

१. तब किरपाल कहै सुण भाई।
परवरति थाट तजो दुषदाई।
निरव्रत होइ राम कों गावो।
तबहीं मुकति माघ कों पावो।

—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. सपत बरस तन गुदड़ भेषा।
इक दिन उपजी तरक वसेषा।
भेष मांहि अति षड़बड़ देखी।
[तब गुर पूछी सीष विवेकी।
मुकती होन की ऐह जुगती।
के कोई ओर भात है मूकती।

—परची, ह० प्र०।

३. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ५२।

"ऐसे करत इसी बन आई। भण्डार करत कीड़ी निकस्याई।
तब करि तरक फर्क होई बैठा। वा स्थान में फेर न पैठा।"[१]

ये पंक्तियाँ लालदास रचित 'श्री रामचरण जी म्हाराज की परची' ग्रंथ मे नहीं हैं।[२] स्पष्ट यों समझना चाहिए कि लालदास ने 'परची' में 'कीड़ी निकस्याई' वाली घटना का उल्लेख किया ही नहीं है। ऊपर संदर्भित पंक्तियाँ 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की है जिन्हें 'परची' के इस मुद्रित संस्करण में घुसेड़ दिया गया है।[३] यदि 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के विद्वान् लेखकों एवं डॉक्टर वर्मा ने 'परची' की किसी प्रामाणिक प्राचीन प्रति का अवलोकन कर लिया होता तो कदाचित् ऐसा भ्रम न होता।

प्रवृत्ति-निवृत्ति का अन्तर्द्वन्द्व

गुरु द्वारा निवृत्ति-पथ पर चलने का उपदेश पाने के बाद स्वामी रामचरण ने मन मे विचार कर गूदड़ वेश के परित्याग की आज्ञा माँगी।[४] गुरु कृपाराम जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने गूदड़ वेश उतार विरक्त होने का आदेश शिष्य रामचरण को दे दिया। गुरलीला विलासकार वेश-परिवर्तन का वर्णन इस प्रकार करता है—

गूदड़ दसा धरी गुर चरणां।
विरकत कियो देख सिष करणां।"[५]

इस प्रकार चूरे नगर में गूदड़ त्याग कर पूर्ण विरक्त बने और निवृत्ति-मार्ग का पथिक प्रवृत्तिपरक गलता मेले की ओर महंत कृपाराम जी के साथ गया।[६] गलते का यह मेला वस्तुतः साधु-सम्मेलन था। इसमें चार सम्प्रदाय और बावन द्वारों के सभी पंथों के महंतजन आए थे। इस मेले मे आमेरपति और अनेक राव-राजे दरस-परस के लिए अत्यंत चाव से आते

---

१. रामचरण चरितावली, पृ० ४।

२. इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति मुझे इन्दौर के संत श्री सन्मुखराम जी से प्राप्त हुई थी। इसके हस्तलिपिकर्त्ता साधु रामदयाल हैं जिन्होंने सं० १९७७ में कपासन (मेवाड़) में इसे लिपिबद्ध किया था। [देखिए, प्रथम अध्याय में 'परची' की समीक्षा]

३. मेरा निवेदन इस संदर्भ में यह है कि मुद्रित 'परची' किसी ऐसे 'परची' ग्रंथ की प्रतिलिपि है जिसमें 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की उक्त पंक्तियाँ किसी ने बाद में लिख दी हैं। इसे 'परची' के सम्पादक को ध्यान से देख कर इसका सम्पादन करना चाहिए था और वैसी ही किसी अप्रामाणिक 'परची' की प्रति 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों के हाथ लग गई।

४. तब उर कीयो विचार अरज करी गुरदेव सूं।
गूदड़पणों उतार, विरकत करद्यौ रामजी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

५. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

६. मेले गये महंत जी संगा।
परवरत सूं मन रहे असंगा। —वही. ह० प्र०।

थे।[१] डॉक्टर अमरचन्द वर्मा लिखते हैं कि इस मेले में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के साधक सम्मिलित हुए थे। स्वामी रामचरण को इन सभी की साधना-पद्धति एवं विचारों को निकट से देखने का अवसर मिला था।[२]

गलता का मेला एक महीने रहा। उसके बाद स्वामी कृपाराम जी अपने साधु-शिष्यों के साथ जयपुर चले आये। अभी भी स्वामी रामचरण गुरु कृपाराम के साथ ही थे। किन्तु उनके मन मे प्रवृत्ति-निवृत्ति का संघर्ष चल रहा था, वे उदास थे। गुरु ने उनसे पूछा—'अब किधर जाओगे?' स्वामी रामचरण ने वृन्दावन जाने की इच्छा व्यक्त की।[३] उनकी वृन्दावन प्रस्थान करने की अभिलाषा वस्तुतः [illegible] में प्रवृत्ति की विजय का द्योतक है। वस्तुतः स्वामी रामचरण के गुरु स्वामी कृपाराम स्वयं प्रवृत्तिमार्गी थे और जिस परिवार में रामचरण जी का जन्म हुआ था, वह भी प्रवृत्तिपरक सगुण भक्त परिवार था। यद्यपि गुरु ने उन्हें निवृत्ति मार्ग पर चलने का उपदेश दे दिया था, फिर भी वृन्दावन की ओर उनका मन आकर्षित हो रहा था। 'गुरलीला विलास' मे इस स्थल पर पुनः स्वामी कृपाराम का एक उपदेश इन्हें मिलता है जिसकी कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

> **"वृत्ति निभै जी गाम बिचरणां।**
> **संग कुसंग देख के .करणां।।**[४]

स्वामी रामचरण ने गुरु का उपदेश ग्रहण कर उन्हें प्रणाम किया, प्रदक्षिणा की, चरणोदक लिया, फिर सभी संतों को शीश झुकाकर उत्तर दिशा की ओर चल पड़े।[५]

---

१. च्यार सम्प्रदा में मुखी, बावन द्वारा लार।
सब पंथन का महंतजन, आइ मिलै जी बार।।
ऐक जग्यासी आवेरपति, ओर सबे अमराव।
दरसण परसण करण कौ, आवै करकर चाव।। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ५४।

३. एक मास मेलो रयौ, सोभा भई सरस।
. . . .
महंत कृपाल उठि सब ध्याया।
निज साधां सूं जैपुर आया।
रामचरण जब भया उदासी।
तव गुरु कया कौण दिसि जासी।
तब कर जोड़र कीन्ही अरजी।
बिन्दराबन जावण की मुरजी। —गुरलीला विलास ह० प्र०।

४. वही, ह० प्र०।

५. कर प्रनाम प्रदक्षिणा दीनी।
चरणोदक परसादी लीनी।

रामसनेही तुम काहा चलीया

स्वामी रामचरण वृन्दावन की ओर चले जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक गुप्त संत मिले। उस संत ने इनसे पूछा—'रामसनेही तुम कहाँ चले?' वृन्दावन का संकेत प्राप्त होने पर संत ने इन्हें वहाँ जाने से मना किया।[१] संत ने स्वामी रामचरण को समझाते हुए कहा—

"वांहा रजोगुण है सब थाट।
विषर जाइ मन बारा बाट।
तुमरो ह्वालनि में नहीं उठे।
पाछ्या जावो आया जठे।
रामभजन सूं कारज सधसी।
ताको सुजस चहू दिस बधसी।
हमरो बचन मान के लीजै।
सतगुर सूं मिल सुमरण कीजै।"[२]

स्वामी रामचरण को संत वाणी ने प्रभावित किया और वे अपनी उसी मनःस्थिति मे वापस मुड़ गये। लेकिन यह क्या? अभी एक-दो पग ही चले थे कि मुड़कर देखते है तो संत अदृश्य हो गए थे।[३] 'स्वामी रामचरण जी विस्मित हो गये, इन्हें लगा, साक्षात् ईश्वर ने प्रत्यक्ष दर्शन दिए हों।'[४] गुरलीला विलासकार भी लिखता है—

"साध रूप होइ दरस दिखाया।
रामचरण के आनंद आया।
इत उत हेरे दरसै नाहीं।
तब जन समझ रहै मन माहीं।

सब संतां कौं सीस नवाया।
रामन करी उतर दिसि ध्याया। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

१. गुपत संत रसता माही मिलीया।
रामसनेही तुम काहा चलीया।
बनराबन की सैन बताई।
तब वा क्यौ जाइ मत भाई। —वही, ह० प्र०।

२. वही, ह० प्र०।

३. पाछ्या फिर्या ऐक दोइ ध्याया।
तब वे साधू वाहां बिलाया। —वही, ह० प्र०।

४. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १४।

तब मन के उपज्यौ बिसवासा।
पाछ्या आया सतगुर पासा।"[1]

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा इस घटना की सत्यता अथवा औचित्य पर कुछ कहने से इन्कार करते हैं। फिर 'घटना की सत्यता में शंका उठाई जा सकती है'[2] कह कर यह कहते हैं कि उन्हें प्रेरणा देने वाला उनका अन्तःमन ही था। डॉ० वर्मा की इस भावना का आदर करते हुए निवेदन है कि मैं उनके इस मत से पूर्णतया सहमत हूँ कि स्वामी रामचरण के मन मे प्रवृत्ति-निवृत्ति का अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था और इस बार निवृत्ति की विजय हुई थी पर अज्ञात संत के मिलन को प्रतीकात्मक मानने से मैं इन्कार करता हूँ। जीवनीकार की भाषा प्रतीकात्मक नहीं होती है। जगन्नाथ सफल जीवनीकार थे। वे तथ्य को प्रतीक में नही वदल सकते थे। पुनश्च, जहाँ उन्हें तनिक भी संदेह हुआ है ऐसे स्थलों को छोड़ गए हैं।

अज्ञात संत के वचन से स्वामी रामचरण के हृदय मे व्याप्त प्रवृत्ति-निवृत्ति का संघर्ष समाप्त हो गया। अब वे पूर्ण विश्वास के साथ विरक्त रूप में अपने गुरु स्वामी कृपाराम जी के निकट पहुँचे और उनसे मार्ग की आप बीती गाथा कह गए। गुरु कृपाराम जी ने अज्ञात संत के प्रभाव में डूबे रामचरण से उपदेश की भाषा में कहा—

"राम भजन करज्यौ भरपूर।
तब हरि निकट न जाणै दूर।"[3]

गुरु का उपदेश सुनकर स्वामी रामचरण कुछ दिनों के लिए चाटसूं चले गए। वहाँ अनेक लोगों में भक्ति भावना भरी। फिर चाटसूं से जयपुर चले आए और यहीं कुछ काल तक रहे।[4]

भीलवाड़ा की ओर

स्वामी रामचरण और भीलवाड़ा

गुरलीला विलासकार की निम्नलिखित पंक्तियाँ उपर्युक्त शीर्षक के संदर्भ में ध्यान देने योग्य हैं—

---

१. गुरलीला विलास, ह० प्र०।
२. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ५६।
३. गुरलीला विलास, ह० प्र०।
४. कितक दिवस चाटसूं ध्याया।
बौहो जीवन के भाव बधाया।
बोहोर पधार्‌या जैपुर आया।
तब रामत की करी उपाया। —वही, ह० प्र०.

"नामदेव पुंडरपुर भणीजै।
ज्यूं कबीर कासी में गिणीजै।
रामचरण भीलाड़ै अैसै।
तामैं भूल न लावौ संसै।"[1]

स्वामी रामचरण भीलवाड़े में वैसे ही प्रसिद्ध हुए थे जैसे पंढरपुर में नामदेव और काशी में कबीर। स्वामी जी जयपुर से मेवाड़ की ओर रवाना हुए और भीलवाड़ा में आ गए। यह यात्रा उन्होंने संवत् १८१७ विक्रमी में की।[2] भीलवाड़ा में पश्चिम की ओर स्थित बावड़ी पर स्वामी जी ने अपना आवास बनाया। स्वामी जी वहाँ अकेले विराजते थे, तब कोई जिज्ञासु या शिष्य उनके समीप नहीं था।[3]

स्वामी रामचरण जी भीलवाड़ा में निर्गुण भक्ति का प्रचार करने के लिए पधारे थे। इससे पूर्व मेवाड़ प्रदेश मे निर्गुण भक्ति तनिक भी नहीं थी। 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस कथन की पुष्टि करने में सहायक हैं—

"भक्ति नहीं ती देस में, निर्गुण को लवलेस।
सो अब परगट होत है, जाहर देस विदेस।"[4]

रामसनेही छाप

अल्प समय में ही स्वामी रामचरण जी निर्गुण भक्ति के प्रचारक के रूप में विख्यात हो गए। पश्चिम दिशा की बावड़ी पर आसन जमा कर साधना-रत रहने लगे। भीलवाड़े का नगरसेठ भी स्वामी रामचरण जी के दर्शनार्थ आया और उन्हें देख कर सुखी हुआ।[5] पहले साधनारत स्वामी जी ने मौनव्रत धारण किया था। शनैः-शनैः भीलवाड़ा नगर में

---

१. गुरलीला विलास, ह० प्र०।
२. तब उदास होइ चले विच्यारी।
गवन कियो मेवाड़ मजारी।
अठारा से सतरा व्रष बीता।
भीलाड़ै आऐ अणचीता। —वही, ह० प्र०।
३. पिछम दिसा बावड़ी देषी।
ताहा विराज्ये परम बवैकी।
जा दिन नहीं जग्यासी चेला।
ऐका ऐकी आप अकेला। —वही, ह० प्र०।
[स्मरणीय है कि उक्त बावड़ी मायाराम की बावड़ी के नाम से प्रसिद्ध है]
४. ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७८।
५. नग्र सेठ सुण दरसण आयौ।
देषी दसा बोत सुष पायौ। —वही, ह० प्र०।

इनकी ख्याति बढ़ने लगी। सबसे पहले स्वामी रामचरण जी से देवकरण जी मिले।[1] देवकरण और स्वामी रामचरण जी में प्रश्न-उत्तर भी चले थे।[2] देवकरण जी नवलराम से फिर नवलराम कुशलराम से मिले और स्वामी रामचरण की साधुता की प्रशंसा की। फिर तीनों एकत्र होकर स्वामी जी के दर्शनार्थ आए। धीरे-धीरे नगर के लगभग सभी लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ आने लगे। दर्शनार्थियों में स्वामी रामचरण जी उत्तम ज्ञान की चर्चा करते। जब उनके जिज्ञासु भक्तों की संख्या बढ़ने लगी तो उन्होंने अपने जिज्ञासु जनों को 'रामसनेही' छाप दी। तभी से उनके सभी भक्त रामसनेही छाप से जाने जाते है।[3]

देवकरण, कुशलराम, नवलराम

"स्वामी रामचरण के स्नेही सीष अनेक।
देवकरण कुसला नवल मुखिया तीन वसेस।"[4]

स्वामी रामचरण के इन तीनों शिष्यों की संक्षिप्त चर्चा यहाँ इसलिए अपेक्षित है क्योंकि पहले तो स्वामी जी के भीलवाड़ा के और फिर पूरे साम्प्रदायिक संदर्भो में इन लोगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यह पीछे कहा जा चुका है कि भीलवाड़ा में सबसे पहले देवकरण स्वामी जी से मिले थे, बाद में कुशलराम और नवलराम उनके सम्पर्क में आये। उस समय जो भी पांच-पचीस जिज्ञासु स्वामी रामचरण के प्रभाव में थे, देवकरण उनके मुखिया थे।[5] इन तीनों ने स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित धर्म के अनुकूल आचरण करने का निश्चय

---

१. संवत अष्टादस अरु सतरा कहिये।
देवकरण तहां दरसण लहिये। —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७८।

२. प्रश्न उत्तर भयो तींवारा।
ताको मूल यहां बिस्तारा। —वही, पृ० १०७८।

३. देवकरण नवला सूं मिलीया।
तीजा कुशलराम सूं षुलीया।
ऐसा संत ऐक देष्या भाई।
आगे निजर न आया काई।
तीनों मिल दरसण कूं आया।
कीनौ दरसण सीस नवाया।
. . . .
नगर लोग सब दरसण आवै।
जाकूं उत्तम ग्यान सुणावै।
पांच पचीस भया जग्यासी।
रामसनेही छाप प्रकासी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

४. श्री रामचरण जी म्हाराज की परची, ह० प्र०।

५. नरनारी का नाव न लिषीया।
देवकरण सबही मैं मुषीया। —वही ह० प्र०।

करके 'शीलव्रत'[१] लेने का विचार किया। ये तीनों ही अपनी धुन के पक्के स्वामी जी के यशस्वी शिष्य थे। गुरलीला विलासकार तीनों का चरित्र वर्णन करते हुए लिखता है—

"देवकरण बड़ टेक दिवाना।
कुसलराम भी ज्ञान सयाना।
नवलराम सब के मन भाया।
तीना का जस बध्या सवाया।"[२]

'शीलव्रत' लेने के समय कुशलराम की आयु ३० वर्ष, देवकरण की २५ वर्ष और नवलराम की इक्कीस वर्ष थी। कुशल राम के पुत्र-पुत्री, देवकरण को केवल एक पुत्र और नवलराम की पत्नी गर्भवती थी, फिर भी शील व्रत लेने का निश्चय कर लिया।[३]

जिस समय देवकरण आदि ने 'शीलव्रत' धारण कर निर्गुणभक्ति का उपदेश स्वामी रामचरण जी से लिया, सम्पूर्ण भीलवाड़ा सगुण भक्ति की लपेट में था। देवकरण का परिवार शहर का प्रख्यात परिवार था। देवकरण के पिता भी सगुणोपासक थे। उनकी शहर में प्रतिष्ठा थी, उन्होंने सुन्दर बाग लगवाये थे, बावड़ी बनवाई थी और देश-विदेश में मन्दिरों का निर्माण कराया था। उन्होंने 'तीरथ बरत' बहुत किया था। उनका पुत्र देवकरण पिता से भी सवाया निकला। उसे स्वामी रामचरण से निर्गुण भक्ति का ज्ञान प्राप्त हो चुका था। देवकरण के माता-पिता को यह नहीं अच्छा लगा। उन्होंने संत रामचरण का विरोध आरंभ किया। विरोध के कारण स्वामी रामचरण ने वह स्थान छोड़ दिया और वे एक देवल के पीछे चले गये, जहाँ सभी सेवक-जिज्ञासु आते थे और सब जग से अलग होकर भगवान् का नाम स्मरण करते थे।[४] देवकरण अपने पिता द्वारा स्वामी रामचरण के विरोध की

---

१. शीलव्रत—साम्प्रदायिक परिभाषा में गार्हस्थ्य जीवन में ब्रह्मचर्य-व्रत को कहते हैं।
२. गुरलीला विलास, ह० प्र०।
३. कुसलराम बरसां मैं तीसा।
देवकरण सों मगर पचीसा।
नवलराम के बरस इकीसा।
. . . .
कुशलराम के धीसुत उभै।
देवकरण कै एक सुत जबै।
नवलराम के घर पग भारी।
पै सील लेण की नेहचै धारी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।
४. सेहर मांहि भलमणसी भारी।
सरगुण भगति करै नरनारी।
बाग बावड़ी कीना सुंदर।
देसबदेस बनाया मिन्दर।
तीरथ बरत कीया बोहो नुगता।
च्यार दिसा के मांही जुगता।

बात सुनकर अत्यन्त अप्रसन्न हुआ और घर का काम-काज छोड़ बैठा। तब पिता स्वामी जी के पास गए और पुनः प्रतिष्ठित किया। गुरलीला विलासकार देवकरण की प्रशंसा करते हुए लिखता है—

"तात मात भाई सुत सारा।
सबकौं तज कर हो गया न्यारा।
सतजुग में प्रह्लाद वषाणौं।
देवकरण कलजुग मैं जाणौं।"[1]

देवकरण के पिता द्वारा स्वामी रामचरण की पुनः प्रतिष्ठा स्वामी जी द्वारा प्रचारित निर्गुणभक्ति की विजय का संकेत है। गुरलीला विलासकार लिखता है कि स्वामी जी की महिमा से चारों दिशा में भक्ति का विस्तार हो चला।[2]

वाणी रचना

गुरु से प्राप्त राममंत्र की साधना करके स्वामी रामचरण साधना में पारंगत हो गए। उन्होंने रामनाम स्मरण करते हुए योगसाधन किया और सुरति शब्द का योग मिलाया। इस प्रकार अनेक वर्ष भजन में लीन रहे, फिर मदोन्मत्त की भाँति बकने लगे। गुरलीला विलासकार जगन्नाथ ने 'अणभैवाणी' का खजाना खुलते अपनी आँखों देखा था।[3] वह कहते हैं—

देवकरण सुत भया सवाया।
निरगुण ग्यान जिनूं सूं पाया।
तात मात के मन नहीं भायो।
तब संतां सूं क्रोध उठायो।
तब म्हाराज उदासी भया।
देवल पाछे आसण कीया।
जाहां जग्यासी आवै सारा।
भजन करै सब मूं होइ न्यारा।—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

१. वही, ह० प्र०।

२. भक्ति बधी च्यारूं दिसा जाणी सब संसार।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

३. रामनाम रसना सूं गाया।
सुरत सबद का मेल मिलाया।
द्वादस बरस भजन कर छकीया।
ज्यूं मतवाला मद पी बकीया।
सो हम देषी प्रगट आनौ।
अणभैवाणी षुल्यं खजानौ।—वही, ह० प्र०।

"ज्यूं दरीया की लहरां आवै।
यूं महाराज सबद फुरमावै।
लहर्‌यां आवै पवन चलंता।
सबद फुरे यूं भजन करंता।"[१]

जैसे नदी मे लहरें उठती हैं वैसे स्वामी जी वाणी फरमाते। जैसे लहरें पवन वेग मे आती हैं वैसे ही महाराज भजन-वेग से शब्द फरमाते थे। स्वामी जी के शब्द सुन-सुनकर अनेक लोग विरागी हो गए, जिज्ञासु और त्यागी तो घर-घर में होने लगे।[२] 'ब्रह्मसमाधि-लीन जोग' के अनुसार 'वाणी' का रचना काल संवत् १८२० विक्रमी है।[३] 'अणभै वाणी' मे संगुंफित विभिन्न विषयों की चर्चा करते हुए जीवनीकार 'वाणी' के संकलनकर्त्ता की भी चर्चा करता है—

"सो वाणी महाराज उचारी।
नवल राम जी झेलि विचारी।

. . .

अंग विभाग बना ये सारा।
ये जिहाज उतरै भव पारा।"[४]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'अणभै वाणी' की रचना संवत् १८२० मे भील-वाड़े में प्रारंभ हो गयी थी और स्वामी जी के जीवनकाल में ही नवलराम जी ने उसका अंगबद्ध संकलन कर दिया था। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए विवश हूँ कि "स्वामी रामचरण जी की अणभैवाणी" नामक विशाल ग्रंथ का सम्पूर्ण अंगबद्ध वाणी अंश का निर्माण एवं सम्पादन भीलवाड़े में ही हो गया था क्योंकि संवत् १८२५ के पूर्व स्वामी रामचरण भील-वाड़ा नहीं छोड़ सके थे। अतः संवत् १८२० से सं० १८२५ के बीच का काल वाणी की रचना एवं सम्पादन का काल माना जाना चाहिए।

---

१. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. सुण सुण सबद भए बैरागी।
जग्यासी घर घर में त्यागी।
—वही, ह० प्र०।

३. संवत अठारा सै अरु बीसा।
बचन अमोलक निपट बरीसा।
. . . .
तबही अणभो शब्द उचारे।
छन्द बंध बहु न्यारे न्यारे।
—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७९।

४. वही, पृ० १०७९।

विरोध की अनुगूंज

सगुण भक्ति का क्षेत्र भीलवाड़ा स्वामी रामचरण की निर्गुण वाणी एवं उनके उपदेशों से गूँजने लगा। उनके अनुयायी रामसनेही छाप से पहचाने जाने लगे थे। उनके द्वारा निदेशित आचरण एवं प्रचारित भक्ति के आदर्शों का आकर्षण दिनानुदिन विकसित हो रहा था। उनके उपदेशों में सामाजिक रूढियों, धार्मिक अंधविश्वासों एवं पाखण्डों के विरोध का स्वर ऊँचा था। अतः निर्गुण भक्ति के बढते चरण को रोकने के लिए स्वामी रामचरण का विरोध आरंभ हुआ। जीवनीकार जगन्नाथ लिखते हैं कि संवत् १८२४ वि० में उत्पात की उपज हुई। इस उत्पात का कारण शहर का दुर्भाग्य था।[1] यह विरोध प्रमुख रूप से ब्राह्मणों की ओर से आया क्योंकि जीवनीकार लिखता है कि सम्पूर्ण द्विज-मण्डली अपने कुल-परिवार एवं सगे संबंधियों के साथ स्वामी रामचरण की निन्दा करती थी। 'गुरलीला विलास' की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस कथन की पूर्णतया पुष्टि करती है—

"जगत भेषनंदक दुज सारा।
सगासनेही कुल परिवारा।"[2]

उन विरोधियों ने संयुक्त रूप में स्वामी जी के विरुद्ध शिकायती प्रार्थनापत्र उदयपुर के महाराणा के पास लिख भेजा।[3] प्रार्थना-पत्र लेकर जाने वाले लोग झूठा-सच कहते नहीं थके।[4] जगन्नाथ ने अपने दोनों जीवनी ग्रंथों 'गुरलीला विलास' एवं 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में शिकायतों का व्यौरा लिखा है जिसमें महाराणा से निवेदन किया गया है कि रामसनेही पंथ सबसे न्यारा है। संसार में यह कौन-सा पंथ चला है? हमने ऐसा पंथ न देखा था और न सुना था और भी बहुत-सी बातें घटा-बढ़ाकर लिख दीं।[5]

---

१. अठारा से चोबीस वृष बीता पिछली बात।
होतब आयो सेहर की तव उपज्यौ उतपात।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. वही, ह० प्र०।

३. पांच पचीस अरूं मिलगरजी।
उदीयापुर को भेजी अरजी।—वही, ह० प्र०।

४. देशपती लग जाय पुकार्‌या।
साची झूठी कहत न हार्‌या।—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७८।

५. रामसनेही सब सूं न्यारा।
अपणा मत का करै बघारा।
और हूं घाट बाधि लिख दीनी।
छत्रपती सारी सुण लीनी।—गुरलीला विलास, ह० प्र०।
कुण यो पंथ चल्यो जगमांही।
हम तो सुण देख्यो भी नांही।—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७८।

उस समय मेवाड़ के सिंहासन पर महाराणा अरिसिंह जी विराजमान थे। राणा अरिसिंह संवत् १८१८ वि० से संवत् १८२८ वि० तक [illegible] थे।[1] राणा द्वारा उदयपुर से एक अधिकारी साम-दाम किसी प्रकार से रामसनेहियों को समझाने के लिए भेजा गया। उसे यह भी आदेश था कि यदि वे लोग इस पर भी न मानें तो स्वामी रामचरण को भीलवाड़ा नगर से निष्कासित कर दिया जाय। इस आदेश के साथ वह अधिकारी भीलवाड़े आया और रामसनेहियों को समझाया। रामसनेहियों के नेता देवकरण को उस अधिकारी का समझाना पसंद नहीं आया। अतः राजाज्ञा के अनुसार उस अधिकारी ने स्वामी रामचरण से कहा कि महाराज! आप बड़े चेला को समझायें और नहीं तो आप यहाँ से चले जायें।[2] परचीकार लालदास ने निम्नलिखित कुण्डलिया द्वारा उपर्युक्त कथन की पुष्टि में यह कहा है कि दुष्टों द्वारा शिकायत सुनकर राणा ने बिना विचारे क्रुद्ध होकर आदेश दिया कि प्रजा नहीं चाहती है, इसलिए स्वामी रामचरण को भीलवाड़ा से उठा दिया जाय—

> "स्वामी रामचरण सें दुष्टां किया विवाद।
> जाय पुकारे राज पे भीलाड़ै अफराध।
> भीलाड़ै अफराध साध इक ऐसा आया।
> धरम करम सब मेट आपका पंथ चलाया।
> राणा सोधन ना किया बोला वचन रिसाय।
> परजा बैराजी भई दीजै ताहि उठाय।"[3]

बाह्य साक्ष्यों से भी स्वामी रामचरण के इस विरोध की पुष्टि होती है। कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट लिखते हैं कि राज्य के तत्कालीन राजकुमार और वर्तमान राणा के पिता भीमसिंह से पुरोहितों ने निवेदन किया कि स्वामी रामचरण को इस सीमा तक तंग किया जाय

---

१. कर्नल जेम्स टॉड—राजस्थान का इतिहास, १५वाँ परिच्छेद, पृ० २५३। (हिन्दी संस्करण)

२. कही कामेती ऐक पठावौ।
रामसनेह्यां कुं समझावौ।
स्यामदाम कर पाछा आज्यौ।
नही माने तो संत रमाज्यौ।
कामेती भीलेड़े आया।
रामसनेयां को समझाया।
देवकरण के मन नहीं भाई।
तब साधा आगै गुदराई।
आप बड़े चेला समझावौ।
कै माहाराज आप [illegible] विलास, ह० प्र०।

३. श्री रामचरण म्हाराज की परची, ह० प्र०।

जिससे वह नगर छोड़ने को विवश हो जाये।[१] स्वामी रामचरण मूर्तिपूजा के विरोधी थे। इस कारण उन्हें ब्राह्मणों द्वारा बड़ा कष्ट दिया गया।[२] स्मरणीय है कि भीमसिंह राणा अरिसिंह के छोटे पुत्र थे जो संवत् १८३४ में मेवाड़ के सिंहासन पर आसीन हुए थे। इस समय भीमसिंह की अवस्था आठ वर्ष की थी।[३] इससे सिद्ध होता है कि संवत् १८२६ वि० के साल भीमसिंह का जन्म हुआ था, तब तक स्वामी रामचरण भीलवाड़ा छोड़कर शाहपुरा आ गए थे। अतः राजकुमार भीमसिंह से ब्राह्मणों द्वारा निवेदन की बात ठीक नही ठहरती। फिर गुरलीला विलासकार जगन्नाथ इस उत्पात का वर्ष संवत् १८२४ बताते हैं। जीवनीकार जगन्नाथ स्वामी रामचरण के समकालीन एवं उनके शिष्य थे। अतः ऐसी स्थिति में वेस्मकट महोदय के कथन में संशोधन की आवश्यकता है कि स्वामी रामचरण के विरुद्ध सीधे महाराणा अरिसिंह से शिकायत की गई थी। गार्सां द तासी ने भी वेस्मकट की ही बात दुहराई है। वस्तुतः तासी के कथन का आधार भी वेस्मकट महोदय का संदर्भित लेख है।[४]

जॉन कैम्पबेल ओमन ने भी इनको मूर्तिपूजा के विरोध के कारण ब्राह्मणों द्वारा उत्पीडित बतलाया है।[५] श्री प्रमथनाथ बोस ने श्री अक्षयकुमारदत्त लिखित 'उपासक सम्प्रदाय' के आधार पर लिखा है कि ब्राह्मणों द्वारा उकसाये जाने पर राज्य के राजा ने स्वामी रामचरण को कष्ट पहुँचाया।[६]

ब्राह्मणों एवं अन्य सगुनियों द्वारा स्वामी रामचरण का इतना उग्र विरोध इस बात का परिचायक है कि स्वामी रामचरण का प्रभाव भीलवाड़ा नगर पर पूर्णतया छा गया था।

---

१. Bhim Singh, prince of that state, and father of the present Rana, was urged by the priests to harass him to a degree which compelled him abondon the town.

—Journal of the Asiatic Society, No. 38, Feb. 1835, page 65.

२. But he steadily denounced idol-worship, and suffered on this account great persecution from the Brahmans.—Ibid, p. 65.

३. कर्नल जेम्स टॉड—राजस्थान का इतिहास, २६वाँ परिच्छेद, पृ० २६६ (हिन्दी सं०)

४. हिन्दुई साहित्य का इतिहास—गार्सां द तासी (अनु० डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय)

५. Ramcharan, belonging to the first half of the eighteenth century, was another reformer who, resolutely opposing idol worship embristed himself with the Brahmans and was in consequence subjected to much persecution at their hands.

—John Campbell Oman : Mystics, Asaetics and saints of India. p. 133.

६. The King of this State being incited by Brahmans began to persecute Ramcharan.

—Pramath Nath Bose : A History of Hindu Civilisation during British Rule. Vol. I, P.128.

उनके धार्मिक आदर्शों एवं सामाजिक मूल्यों की ओर जन-मानस तीव्रगति से उन्मुख हो रहा था।

कुहाड़ा प्रस्थान

उदयपुर से आये कामेती की बात सुनते ही भीलवाड़ा नगर से निकलकर स्वामी जी कुहाडे की ओर प्रस्थान कर गए। यह कुहाड़ा भीलवाड़ा से ढाई मील की दूरी पर कोठारी नदी के तट पर स्थित है।[1] इस स्थान पर आकर स्वामी रामचरण अपनी साधना में पुन. लीन हो गए। साधना-भूमि होने के कारण स्वामी रामचरण के हृदय मे कुहाड़ा का स्थान था। इस स्थान की चर्चा उन्होंने अपने एक पद मे की है। पद की पंक्ति इस प्रकार है—

गेबी चलो तो कुहाड़े जाइये।[2]

कोदूकोट सम्मेलन

स्वामी रामचरण के कुहाड़ा चले जाने की सूचना ज्यों ही उनके जिज्ञासुओं को मिली सभी जिज्ञासु कुहाड़ा पहुँचे। स्वामी जी ने उन लोगों के आगमन का कारण समझते हुए उन्हें समझाया कि आना-जाना तो दानी-पानी पर निर्भर है। आप लोग अपने-अपने घर वापस चले जायें। भक्तों ने पुनः निवेदन किया कि हम लोग आपके बिना भीलवाड़ा नही जा सकते। यदि आप भीलवाड़ा न जावें तो कोई दूसरा स्थान चुनें, वहीं चलकर हम लोग भी बसें।[3]

तब महाराज उत्तर दिशा की ओर चलकर वहाँ पहुँचे जहाँ सभी रामसनेही एकत्र थे। वहाँ से सब कोदूकोट आये जहाँ चारों दिशाओं के सभी रामसनेही एकत्र हुए। सभी ने संगठित होकर विरोधियों की इस विजय को पराजय में परिवर्तित करने का उपाय ढूँढ़ने का

---

१. सन् १९५३ मे फूलडोल के अवसर पर शाहपुरा स्थान से लौटते समय मैं मुनिद्वारा भीलवाड़ा में रुका था। मुनिद्वारा के संत श्री नैनूराम जी के साथ दूसरे दिन प्रातःकाल मुझे कुहाड़ा जाने का सुअवसर मिला था। कुहाड़े की तपस्या-स्थली के दर्शन मैंने तभी किये थे —लेखक।

२. अणभैवाणी, पृ० ९९७।

३. सुण जग्यासी सबही दोड़ा।
सतगुर पास जाइ कर जोड़ा।
बोहोर बचन ऐसा प्रकास्या।
दाणा पाणी आस्यां-जास्यां।
बाद बढ़ावन सूं नहीं कामा।
अब तुम जावो अपणी धामा।
हम तो आप बिना नही जास्यां।
नातर दुजौ वास वसास्यां—गुरलीला बिलास, ह० प्र०।

निश्चय किया। कोदूकोट का यह सम्मेलन निर्णायक सम्मेलन था जिसमें सभी पंथ 'सन्मुख' जिज्ञासु संघर्ष तक के लिए तैयार हो गए। उन लोगों ने धन-धाम की आशा छोड दी और निश्चय की दृढ़ता से उनका हृदय भर उठा।[1]

कोदूकोट सम्मेलन में यह निर्णय हुआ कि एकलिंग अवतार सब राजाओं के सिरमौर, हिन्दुओं के सरदार उदयपुर-नाथ से रूबरू हुआ जाय। वे रामभक्त के साथ अवश्य ही न्याय करेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य उपाय शेष नहीं। सत्य का रक्षक राम है।[2] और तन-मन-धन की आशा छोड़कर देवकरण ने न्याय के लिए उदयपुर जाने का बीड़ा उठाया।[3]

उदयपुर में देवकरण

कोदूकोट सम्मेलन के निश्चयानुसार देवकरण उदयपुर गए और राज्य के दीवान से सारी बातें बतायीं। तीन महीने तक उदयपुर में रुकने के बाद राजेन्द्र महाराणा अरिसिह का साक्षात्कार हुआ। राणा ने अमरदास प्रधान[4] को रामसनेहियों की समस्या सौंप दी।

---

१. तब म्हाराज उत्तर दिसि ध्याया।
रामसनेही जाहा रहाया।
सबही कोदूकोटे आया।
च्यार दिसा का सीद चलाया।
रामसनेही सब चल आया।
भेला होइ मचकूर उपाया।
सुनमुप ममसत भया तयारी।
बेमुख नंदक रहै किनारी।
माल्-मुलक की आसा छांड़ी।
पकडी टेक समायी गाढ़ी।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. ऐकलिंग ओतार सब राजां सिर सेवरो।
हिन्दवां में सिरदार उदीयापुर गादीर हु।
० ० ०
राम भगत को न्याव वाहां करेंगे रूबरू।
दुजौ नहीं उपाव साचा बोली राम है।—वही, ह० प्र०।

३. देवकरण अपणे सिर ओड़ी।
तन-मन-धन की आसा छोडी।—वही, ह० प्र०।

४. कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार महाराणा अरिसिंह का प्रधानमंत्री अमरचन्द बरवा था। अमरचन्द बड़ा ही कार्यकुशल, नीति-निपुण, देशभक्त और मेवाड़-राज्य का हितैषी प्रधानमंत्री था। उसने मेवाड़ को अनेक बार संकटों से बचाया था और जीवन-पर्यन्त मेवाड का शुभचिन्तक बना रहा। जगन्नाथ ने इस अमरचन्द को अमरदास कहा है—लेखक।

प्रधान ने शिकायत देवकरण को बता दीं, तब देवकरण ने धर्म-संबंधी भ्रमो का निवारण करते हुए निवेदन किया[१]—

"राम धरम हम धार्‌यो अैसै।
वेद पुराण बतावै जैसै।
और चूक होइ तो डंड कीजै।
नातर न्याव अदल कर दीजै।"[२]

हमने वही 'रामधर्म' धारण किया है जो वेद-पुराण सम्मत है। अतिरिक्त इसके यदि हमारी कोई और गलती हो तो हमें दण्डित करें अन्यथा न्याय करें। प्रधान को देवकरण की बातें यथार्थ लगीं। उसने महाराणा के समक्ष देवकरण का पक्ष प्रस्तुत किया। महाराणा को देवकरण का पक्ष जँच गया। तदनुसार दूसरे दिन देवकरण को दरबार में उपस्थित होने का आदेश मिला। देवकरण दूसरे दिन दरबार में उपस्थित हुए और उन्होंने महाराणा को नजराना भेंट किया।[३] गुरलीला विलासकार ने महाराणा के आदेश का निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णन किया है—

"धरम माहि तुम गाटा रहियौ।
और दूसरी कुछु न गहियौ।"[४]

उपर्युक्त आदेश के साथ महाराणा की ओर से रामसनेहियों के लिए ३०० पगड़ियाँ

---

१. तब उदीयापुर पुंचा जाई।
श्री दीवाण सू सब गुदराई।
तीन मास लग बैठ्या रह्या।
तब राजिन्दर परसण भया।

० ० ०

अमरदास परधान बुलाया।
रामसनेह्यां पास पठाया।
तब परधान कही सब गाथा।
देवकरण जब जोड्या हाथा।—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. वही, ह० प्र०।

३. परधान जथारथ बात सुणाई।
तब छत्रपति का मन में भाई।
दुजै दिन दरबार बुलाया।
निजराणौ ले हुकुम कहाया। —वही, ह० प्र०।

४. वही, ह० प्र०।

और उनके अगुवा देवकरण को एक दुशाला भेट स्वरूप दिया गया।[1] इससे यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि भीलवाडा मे 'रामसनेहियो की सख्या ३०० या उसके लगभग थी।

वापसी [देवकरण की उदयपुर मे एव रामचरण की कांहाडा मे]

तीन सौ पगडियों के साथ महाराणा का फरमान[2] लेकर देवकरण ने विजयी की भाँति भीलवाड़ा में प्रवेश किया। देवकरण का उस समय बडा सम्मान बढ़ गया और शहर के सभी लोग सुखी हुए। अब सभी लोग कुहाडे गए और स्वामी जी से प्रणाम निवेदन कर भीलवाड़ा लौटने की प्रार्थना की। स्वामी जी अपने जनों की इच्छा कैसे टालते। उन्होंने कहा—तुम सब चलो, मै रमते हुए आऊँगा और दस दिन बाद वे भीलवाड़ा आ गए।[3]

भीलवाड़ा में इस बार स्वामी रामचरण जी अधिक दिनों तक नहीं टिके। यद्यपि संघर्ष में सफलता ने स्वामी जी के चरण चूमे। फिर भी उनका मन भीलवाड़ा से उचट चुका था। भीलवाड़ा मे संवत् १८१७ वि० में स्वामी जी का आगमन हुआ था। संवत् १८२५ वि० तक वे भीलवाडा मे विराजे। सात-आठ वर्षो का उनका यह समय साधना, सृजन, संघर्ष एवं सफलता का रहा। उन्होंने भीलवाडा एवं कुहाड़े मे साधना की, वाणी का सृजन किया, विरोधियों का विरोध झेलते हुए अन्त मे विजयी हुए। उन्होंने विरोधियों की हर चुनौती का सामना किया और इस अल्प समय में ही उन्हें भीलवाड़े में वही प्रसिद्धि एवं सम्मान प्राप्त हुआ जो नामदेव को पंढरपुर में और कबीर को काशी में प्राप्त हुआ था।[4] स्वामी रामचरण भीलवाड़ा के कबीर थे ऐसा जगन्नाथ ने 'गुरलीला विलास' में लिखा है। शाहपुरा का रामद्वारा

---

१. पाग तीन से बगसी सबकौ।
एक दुसालो देवकरण कौ।—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. कागद पत्र पुपत कर दीया।—वही, ह० प्र०।

३. कर परनाम सब अरजी कीनी।
सो म्हाराज सबै सुण लीनी।
.. ..
तब चरचा माहाराज परकास्या।
तुम जावो हम रमता आस्या।
.. . .
सब दरसण कर पाछा य्याया।
दिन दस मैं माहाराज पधार्या।—वही, ह० प्र०।

४. नामदेव पुंडरपुर भणीजै।
ज्यूं कबीर कासी में गिणीजै।
रामचरण भीलाड़ै ऐसे।
तामें भूल न लावौ संसै।—वही, ह० प्र०।

स्वामी जी के जीवन-काल में नहीं निर्मित हो सका था यद्यपि स्वामी जी ने वहाँ एक लम्बे काल-खण्ड तक निवास किया था पर भीलवाड़ा का रामद्वारा स्वामी जी के उस अल्प-निवास समय मे ही निर्मित हो चुका था। बारह बीघे भूमि रामसनेहियों ने ली, चूना, ईंट-पत्थर एकत्र हो गया और रामद्वारा बनने लगा।[1] संवत् १८२५ के सावन महीने में भीलवाड़ा पर दक्षिणी सेना (मराठों की सेना) ने आक्रमण कर लूट लिया। भीलवाडा उजाड़ हो गया और बहुत दिनो तक उजाड़ रहा। वहाँ के नर-नारी तितर-बितर हो गए।[2] स्वामी जी ने शाहपुरा के महाराजा रणसिंह के आमंत्रण पर शाहपुरा जाने का निश्चय कर लिया था।

शाहपुरा का जीवन

भीलवाड़ा-निवास के समय ही स्वामी रामचरण की प्रसिद्धि मेवाड़ के विभिन्न भागों मे पहुँच गई थी। वस्तुतः स्वामी जी के बढ़ते प्रभाव से ही भीलवाड़े के [illegible] मे चिन्ता व्याप्त हो गयी थी और इसीलिए उन लोगो ने उनका तीव्र विरोध किया। जब उदयपुर के महाराणा की आज्ञा उन्हे भीलवाडा से रमा देने की हुई तभी शाहपुरा नरेश महाराजा रणसिंह ने उन्हें शाहपुरा पधारने का आमंत्रण भेजा। कैप्टेन वेस्मकट के अनुसार उदयपुर के राजकुमार पर ब्राह्मणों ने स्वामी रामचरण को जब भीलवाड़ा से निकाल देने का दबाव डाला तभी शाहपुरा के प्रधान भीमसिंह ने स्वामी रामचरण को शाहपुरा में शरण दी और उन्हें सादर बुला लाने के लिए एक दल भेजा। स्वामी रामचरण ने दल और हाथी वापस कर दिये और पैदल ही शाहपुरा सन् १७६७ ई० में पहुँचे।[3] श्री प्रमथनाथ बोस भी इस आमंत्रण एवं

---

१. तब रामसनेह्यां ऐहै विचारी।
अपणी बैठक करौ नियारी।
द्वादस बीघा जमीं मुलाई।
दाम दिया अपणी अपणाई।
चुना ईट पषाण मंगाया।
राम द्वारे काम चलाया।

२. अठारा से पचीसै सावण।
दिषण्या दल की भई दबावण।
भीलाड़ौ समसत लुट गयौ।
बोहोत बरस लग उजड़ रयौ।—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

३. The then chief of Shahpura, who also bore the name of Bhim Singh compassionating his misfortune, offered the wanderer an asylum at his court, and prepared a suitable escort to attend him : the sage, while availed himself of the courtesy, humbly excused himself from accepting elephants and equipage sent for his conveyance, and arrived at Shahpura on foot, in the year 1767.

—Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

शरण की बात स्वीकार करते है।[१] पर साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रथो मे शरण और आमंत्रण की कोई चर्चा नहीं है। गुरलीला विलासकार जगन्नाथ लिखते है कि स्वामी रामचरण जी महाराज ने संवत् १८२६ में भक्ति-विस्तार एवं शाहपुरा को पावन करने के लिए सोलह साधुओं के साथ आकर छतरी मे आसन जमाया तथा रात-दिन भगवान् के भजन में लगे।[२] 'ब्रह्म-समाधिलीन जोग' मे भी शाहपुरा सहज भाव से पधारने की बात जगन्नाथ जी लिखते है।[३] शाहपुरा पहुँचने पर महाराजा ने रामचरण जी का बड़ा स्वागत किया। परचीकार लालदास लिखते है कि स्वामी रामचरण के आगमन से शाहपुरा तीर्थ देश-विदेश मे प्रसिद्ध हो गया।[४] स्वामी रामचरण ने शाहपुरा मे राजाओं की छतरी मे अपना निवास बनाया। 'यही स्थान उनकी उत्तर तपस्या की गरिमामयी स्थली है।'[५]

राजावत रानी

महाराजा रणसिह की रानी राजावत स्वामी रामचरण के प्रति अगाध श्रद्धा एवं भक्ति रखने लगी।[६] 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने किसी जनश्रुति के आधार पर रानी साहिबा द्वारा स्वामी जी के लिए छतरी बनवाने की बात लिखी है—"कहते है, इन्होंने स्वामी जी के निवास के लिए छतरी बनवाने की इच्छा प्रकट की। उस समय समस्या सामने आयी कि छतरी तो किसी मृतक पर ही बनवायी जाती है। यह जानकर रानी जी ने एक रास्ता निकाला और अपनी अँगुली से नाखून काटकर दे दिया, उस पर छतरी का निर्माण किया गया। छतरी का यह निर्माण रानी जी के हृदय की असीम भक्ति का प्रमाण है।"[७]

---

१. He, in consequence, took shelter with the Raja of Shahpur, who had sent him an invitation.

—A History of Hindu Civilization during British Rule, Vol. I, p. 128.

२. रामचरण महाराज अठारा से छाइस मैं।
भगत बधारण काज साहिपुरो पावन करन।
षोड़स साधू लार छत्र्या में आसण कीया।
भजन करै दिन रात भंवरब्रित भोजन कदा। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

३. शाहिपुरै सहज ही आये।
निस्प्रेही छतर्यां ज रहाये।—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०८०।

४. साहिपुरा तीरथ भया परसिध देस विदेस।—स्वामी रामचरण महाराज री परची, ह०प्र०

५. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० २८।

६. जाके घर राजावत राणी।
जिन संता की जुगत पिछाणी।
प्रथम भगति उनेके आई।
पाछी दुनीगम बताई। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

७. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० २९।

महाराज भीमसिंह

अपने पिता महाराजा रणसिंह की मृत्यु के बाद भीमसिंह शाहपुरा के सिंहासन पर ज्येष्ठ बदी ५, सोमवार, संवत् १८३१ वि० को आरूढ़ हुए थे। अपने पिता की भाँति भीमसिंह भी स्वामी रामचरण का सम्मान करते थे। ब्रह्मसमाधिलीन जोगकार लिखता है कि राजा भीम अपने बन्धुओं के साथ स्वामी जी के दर्शनार्थ नित्य छतरी पर आते थे। राजा प्रसन्न मन स्वामी जी के दर्शन कर अपना भाग्य सराहता था।[1]

साधराम

शाहपुरा नरेश द्वारा राज्याश्रय दिए जाने के बाद भी स्वामी रामचरण का एक बैरी उन्हे जान से मरवाने का प्रयास कर ही बैठा। यह भीलवाड़ा का तत्कालीन सूबेदार साधराम था। इस साधराम की चर्चा साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रंथों में से किसी में भी नहीं है। कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट ने इस व्यक्ति एवं स्वामी रामचरण को मरवाने के उसके षड़यंत्र का उल्लेख अपने प्रसिद्ध लेख—"Some account of a sect of Hindu Schismatics in Western India, calling themselves Ramsanehi or Friends of God" में इस प्रकार किया है—

"Sadha Ram, Governor of Bhilwara, a Bania of Deopura Tribe, was one of Ramcharan's bitterest enemies, he on one occassion dispatched a Singi to Shahpura to put the Schismatic to death, but the latter, who probabely got information of his purpose, bent his head low as the man entered and told him to perform the service on which he was deputed, but to remember that as the almighty alone bestowed life, man could not destroy it, without the Divine permission, the hired assassin trembled at what he took for preter natural foresight in his intended victim, fell at his feet, and asked forgiveness."[2]

गार्सा द तासी ने साधराम का नामोल्लेख तो नही किया है पर यह अवश्य लिखा है कि भीलवाड़े का सूबेदार, देवपुर जाति का बनिया, स्वामी रामचरण के सबसे बड़े दुश्मनों में से था। उसने स्वामी जी को मार डालने के लिए एक सिंगी शाहपुरे भेजा था।[3] कैप्टेन वेस्मकट लिखित स्वामी रामचरण द्वारा सिंगी से वार्ता एवं हत्यारे द्वारा उनके चरणों पर गिर कर

---

१. जहाँ नृप भीम सब भाई संगा।
नित ही दर्शन करै उतंगा॥
करि-करि दर्श हुलस मन आने।
धनि धनि अपनो भाग बखाने॥ —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०८०।

2. Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835, p. 66.

३. गार्सां द तासी कृत हिन्दुई साहित्य का इतिहास—अनु० डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।

क्षमा माँगने का उल्लेख भी तासी ने किया है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस घटना का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों मे किया है—

"कहा जाता है कि शाहपुर मे रहते समय संत रामचरन को किसी राज-कर्मचारी ने किसी व्यक्ति को नियुक्त कर जान से मरवा डालना चाहा था। परन्तु इन्होंने जब उस हत्यारे के सामने अपनी गर्दन झुकाकर प्रहार करने को कहा और साथ ही यह भी बतला दिया कि देख, ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध किसी के प्राण नही लिए जा सकते और यदि तू इस प्रकार कर सकता है तो देख भी ले, तब हत्यारे को यह बात लग गई और उसने पैरो पर गिर कर क्षमा-याचना की।"[1]

इसी से मिलती-जुलती एक घटना का उल्लेख परचीकार लालदास ने किया है। पर उस घटना का संबंध भीलवाडा के सूबेदार से न हो कर एक स्त्री से है जो अपने पति के शीलव्रत ग्रहण करने का कारण स्वामी रामचरण को समझ कर एक भील द्वारा उनकी हत्या करानी चाही। भील भी स्वामी जी की अलौकिकता से प्रभावित हुआ और उनके चरणों मे गिर कर क्षमा-याचना की।[2] किन्तु यह घटना भीलवाडे की है। डॉक्टर अमरचन्द वर्मा एवं 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने इसे भीलवाडा के कार्य-कलापों के अन्तर्गत रखा है।[3]

परचीकार लालदास द्वारा उल्लिखित घटना का शाहपुरा के जीवन से कोई संबध नहीं हैं; पुनश्च, यह घटना स्वामी रामचरण जी के चमत्कारों के अन्तर्गत आती है। किन्तु कैप्टेन वेस्मकट, तासी एवं आचार्य पं० परशुराम चतुर्वेदी ने स्पष्ट लिखा है कि हत्यारा भीलवाडे मे सूबेदार द्वारा शाहपुरा भेजा गया था। यद्यपि साम्प्रदायिक साक्ष्यग्रंथ इस घटना का उल्लेख नहीं करते फिर भी इस घटना की सत्यता मे अविश्वास करने का कोई कारण नहीं दीखता। कैप्टेन वेस्मकट का यह लेख सन् १८३५ ई० मे प्रकाशित हो गया था और स्वामी रामचरण का निधन सन् १७९८ ई० में हुआ था अर्थात् स्वामी जी के निधन के ३८वें वर्ष पश्चात् यह लेख प्रकाश में आया। स्मरणीय है कि वेस्मकट महोदय गवर्नर जनरल के एजेण्ट के सहायक थे और रामसनेही सम्प्रदाय के पाँचवें महन्त नारायणदास के समय में स्वयं शाहपुरा गए थे। महन्त नारायणदास सन् १८३१ ई० मे पीठाधीश बने थे और १८३५ ई० में यह लेख प्रकाशित हो गया था। वस्मकट ने स्वामी रामचरण एवं रामसनेही सम्प्रदाय के विषय मे जो कुछ लिखा है उसके साक्ष्य नारायणदास जी है। फिर तीन दशक पूर्व जिस व्यक्ति का निधन

---

१. उत्तरी भारत की सत-परंपरा, पृ० ६१८।

२. भील पठाया घात कूं वा बाई मतिमंद।

. . . .

हाथ जोड़ विनती करी बगसो मम अपराध।
मेरे मन निश्चे भई, रामरूप तुम साध॥

—श्री स्वामी रामचरण म्हाराज की परची, ह० प्र०।

३. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ५९।
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १९।

"हम तो महंतपदी नहिं चाहवै।
गुरु आज्ञा निवृत्ति निरभावै।"[१]

जनश्रुति बतलाती है कि कृपाराम जी के दो विवाह हुए थे—एक मांडलगढ़ में और दूसरा काछोला में। मांडलगढ़ की पत्नी से उन्हें एक पुत्र था और काछोला वाली निस्संतान थी। कृपाराम की ज्येष्ठ पत्नी अपने पुत्र के साथ मांडलगढ़ में थी। उसने अपने पुत्र को दाँतड़े की गद्दी के लिए भेजने से इन्कार कर दिया। स्वामी रामचरण विशेष रूप से उसे राजी करने के लिए भेजे गए थे किन्तु जब वह टस-से-मस न हुई तो स्वामी रामचरण ने काछोला की माता जी से प्रार्थना की। उन्होंने अपने भाई के पुत्र को गोद ले लिया और स्वामी रामचरण जी ने उसे ही दाँतड़ा के पीठ पर आसीन कराया।[२]

इस घटना का आधार जनश्रुति है। अतः इसकी प्रामाणिकता चिन्त्य हो सकती है। पर इससे दो निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम यह कि स्वामी रामचरण जी का अपने गुरु एवं उनकी गद्दी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा एव आदर का भाव था। तभी उन्होंने यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। दूसरे यह कि स्वामी रामचरण जी का तत्कालीन समाज विशेषतः साधु-समाज में अच्छा प्रभाव था, उनकी महत्ता साधु-समाज में बढ़ रही थी और वे मेवाड़ के जन-जीवन पर छा गए थे। इसलिए भी उन्हें यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर मिला। यहाँ यह भी स्मरण योग्य है कि स्वामी रामचरण जी गुरुधाम दाँतडा के दर्शनार्थ हर महीने में एक बार जाते थे।[३]

स्वर्गारोहण

इस प्रकार भक्ति का विस्तार करते स्वामी रामचरण के जीवन के अनेक दिन बीते। जिज्ञासु भक्त आते रहते थे। संवत् १८५३ आया। इसी वर्ष राजा भीम सिंह का देहावसान हो गया। अब महाराजाधिराज अमरसिंह शाहपुरा के नरेश थे।[४] समाज भक्ति-भावना से मंगलमय हो रहा था। रामचरण जी छतरी के मध्य विराजते और रामनाम की अखण्ड ध्वनि सुनाई पड़ती। ऐसे ही वह दिन भी आ गया जब अनजाने सतगुरु स्वामी रामचरण ने देहत्याग की इच्छा की।[५]

---

१. ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७८।

२. यह कथा मुझे इन्दौर के संत सन्मुखराम जी ने सुनाई थी—लेखक।

३. एक मास पाछे उठ धावै।
नगर दांतड़े दरसण जावै।　　—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

४. सं० १८५३ वैशाख सुदि १३ गुरुवार [ई० सन् १७९६ ता० १३ मई।] को ९ वर्ष की आयु में ही शाहपुरा के स्वामी हुए। राजपुताने का इतिहास, पृ० ५६१ —श्री जगदीश सिह गहलोत।
['श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' से उद्धृत]

५. सतगुर तन छाड़न की करी।
सो नही काकु मालुम परी।　　—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

"हम तो महंतपदी नहिं चाहवै।
गुरु आज्ञा निवृत्ति निरभावै।"[१]

जनश्रुति बतलाती है कि कृपाराम जी के दो विवाह हुए थे—एक मांडलगढ़ में और दूसरा काछोला में। मांडलगढ़ की पत्नी से उन्हें एक पुत्र था और काछोला वाली निस्संतान थी। कृपाराम की ज्येष्ठ पत्नी अपने पुत्र के साथ मांडलगढ़ में थी। उसने अपने पुत्र को दाँतडे की गद्दी के लिए भेजने से इन्कार कर दिया। स्वामी रामचरण विशेष रूप से उसे राजी करने के लिए भेजे गए थे किन्तु जब वह टस-से-मस न हुई तो स्वामी रामचरण ने काछोला की माता जी से प्रार्थना की। उन्होंने अपने भाई के पुत्र को गोद ले लिया और स्वामी रामचरण जी ने उसे ही दाँतड़ा के पीठ पर आसीन कराया।[२]

इस घटना का आधार जनश्रुति है। अतः इसकी प्रामाणिकता चिन्त्य हो सकती है। पर इससे दो निष्कर्ष निकलते है। प्रथम यह कि स्वामी रामचरण जी का अपने गुरु एवं उनकी गद्दी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा एवं आदर का भाव था। तभी उन्होंने यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। दूसरे यह कि स्वामी रामचरण जी का तत्कालीन समाज विशेषतः साधु-समाज में अच्छा प्रभाव था, उनकी महत्ता साधु-समाज में बढ़ रही थी और वे मेवाड़ के जन-जीवन पर छा गए थे। इसलिए भी उन्हें यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर मिला। यहाँ यह भी स्मरण योग्य है कि स्वामी रामचरण जी गुरुधाम दाँतड़ा के दर्शनार्थ हर महीने में एक बार जाते थे।[३]

स्वर्गारोहण

इस प्रकार भक्ति का विस्तार करते स्वामी रामचरण के जीवन के अनेक दिन बीते। जिज्ञासु भक्त आते रहते थे। संवत् १८५३ आया। इसी वर्ष राजा भीम सिंह का देहावसान हो गया। अब महाराजाधिराज अमरसिंह शाहपुरा के नरेश थे।[४] समाज भक्ति-भावना से मंगलमय हो रहा था। रामचरण जी छतरी के मध्य विराजते और रामनाम की अखण्ड ध्वनि सुनाई पड़ती। ऐसे ही वह दिन भी आ गया जब अनजाने सतगुरु स्वामी रामचरण ने देहत्याग की इच्छा की।[५]

---

१. ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७८।

२. यह कथा मुझे इन्दौर के संत सन्मुखराम जी ने सुनाई थी—लेखक।

३. एक मास पाछे उठ धावै।
नगर दांतड़े दरसण जावै।　　—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

४. सं० १८५३ वैशाख सुदि १३ गुरुवार [ई० सन् १७९६ ता० १३ मई।] को ९ वर्ष की आयु में ही शाहपुरा के स्वामी हुए। राजपुताने का इतिहास, पृ० ५६१ —श्री जगदीश सिंह गहलोत।

['श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' से उद्धृत]

५. सतगुर तन छाड़न की करी।
सो नही काकु मालुम परी।　　—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

स्वामी रामचरण ने वैशाख कृष्ण ५, संवत् १८५५ विक्रमी, गुरुवार के दिन अपनी इहलीला संवरण की।[1] जीवनीकार जगन्नाथ ने अंत समय का दृश्य अपनी आँखों से देखा था।* 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में जीवनीकार ने स्वामी जी के अंत समय का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

वैशाख बदी पंचमी, बृहस्पतिवार, संवत् १८५५ स्वामी रामचरण जी के लौकिक जीवन का अंतिम दिन था। जिज्ञासु-शिष्यों में प्रेम का विस्तार ज्ञान-चर्चा के द्वारा स्वामी जी कर रहे थे, तभी स्वरूपाबाई[2] गुरुप्रसाद लेकर आई और उसे स्वामी रामजन[3] के हाथ में दिया। रामजन जी द्वारा निवेदन करने पर स्वामी जी ने गुरुप्रसाद मुख मे डालने को कहा। गुरु-प्रसाद ग्रहण कर स्वामी रामचरण गुरु शब्दों में लीन हो गए। क्षण भर की विचारणा के बाद स्वामी जी ने उच्च स्वर में 'राम राम'[4] कहा जिसे सुनकर सभी उपस्थित जनों के हृदय हिल गए। रामजन जी ने राम-राम किया। शिष्य-जिज्ञासुओं ने गुरुदेव के समक्ष शीश झुकाया और सब ने मिल कर 'राम-राम' का उच्चारण किया। सभी उपस्थित जनों ने स्वामी जी का चरण-स्पर्श किया। प्रेम-विह्वल देवकरण और स्वरूपा खड़े थे। स्वामी जी ने पुनः रामध्वनि का उच्चारण वैसे ही किया जैसे 'रामत'[5] के लिए निकलते समय करते थे। यह अन्तिम 'रामत' थी। रामध्वनि करके स्वामी जी राम में समा गए जैसे जल में जल समा जाता है। यह दिवस का अंतिम प्रहर था।[6] और देहावसान के बाद—

"देख्यौ इचरज एक तन छूटा हाले अधर।
रामनाम की टेक आद अंत जानी परी।"[7]

---

१. रामचरण महाराज परमधाम प्रापत भया। सो नहीं जाणी आज सतगुरधाम पधारसी।
अठारा से पचपनै बुध पांचै वैसाष। गुरूवार के दिन साहिपुरे छत्र्या महीं।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०

रामहि राम भई ध्वनि सारै, संवत अष्टादस पचपन्ना।
वैसाख बदी की पांचै परगट, गुरुवार किये जब गवना।
—रामजन : रामपद्धति, पृ० १०७४

*निजर्या देखी अंत—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. नवलराम की पुत्री एवं स्वामी रामचरण की शिष्या।

३. स्वामी रामचरण के उत्तराधिकारी, सम्प्रदाय के द्वितीय आचार्य।

४. रामसनेही सम्प्रदाय में 'राम-राम' का अर्थ नमस्कार होता है। रामसनेही एक-दूसरे से राम-राम कहकर नमस्कार करते हैं। यहाँ 'राम-राम' का उसी अर्थ में प्रयोग हुआ है।—लेखक

५. संतों की भाषा में 'रामत' यात्रा या तीर्थयात्रा को कहते हैं।—लेखक

६. ब्रह्मसमाधिलीन जोग, छन्द १३४-१४४, पृ० १०८०-८१।

७. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

स्वामी रामचरण जी अन्त समय तक राम-नाम का उच्चारण करते रहे। जगन्नाथ को यह दृश्य देख कर विस्मय हुआ और तभी भावुक भक्त [illegible] ने लिखा—

"ज्यूं पंखी तरु तै उड़ै, पीछे हालै पान।
जुगल अधर यूं हलत हैं, जान होत है ध्यान।"[1]

पंछी तरु से उड़ गया और क्षण भर उसके पत्ते हिलते रहे।

अन्तिम संस्कार

स्वामी रामचरण का अंतिम संस्कार उसी छतरी के निकट सम्पन्न हुआ। एक सुंदर सजे विमान में स्वामी जी का शव रखा गया। स्वामी जी की शिष्या स्वरूपाबाई जिस समय स्वामी जी के चरणों पर यह कहती हुई गिरी, कि हे प्रभु ! अपनी गति तुम्हीं जानो, सभी जिज्ञासी विह्वल हो गए और गुरुदेव का मुख देखते रहे।[2] स्वामी जी के अंतिम दर्शन के लिए भीड़ हो गई। नगर के हजारों लोग एकत्र हो गए। स्वामी जी के निधन से सभी पुरवासी उदास होकर पछताते थे।[3] दाह-संस्कार के बाद स्वामी जी की भस्मी थैले में भर कर रामसनेही जिज्ञासु दाँतड़ा गए। फिर बनास नदी में उनकी राख प्रवाहित कर दी गई।[4] जीवनीकार जगन्नाथ ने स्वामी रामचरण के ७९ वर्ष के जीवन को दो भागों में विभक्त कर के देखा है—

"बरस गुण्यासी तन रयो तामै दोइ विभाग।
इकतीस बरस आश्रम मही च्यार जुगां बैराग।"[5]

३१ वर्ष गृहस्थाश्रम में एवं ४८ वर्ष विरागी के रूप में जीवन सफल कर स्वामी रामचरण संसार में 'रामसनेही सम्प्रदाय' के रूप में अपना जीवित स्मारक छोड़ गए, यद्यपि उनकी समाधि-स्थली पर निर्मित शाहपुरा का 'राम निवास धाम' भी चिरकाल तक उनका पुनीत स्मरण करते हुए भारतीय लोक-जीवन को प्रेरणा देता रहेगा।

---

१. ब्रह्मसमाधि लीन जोग, छं० १४६, पृ० १०८१।
२. दास स्वरूपा पांय परानी।
   तुमरी गति प्रभु तुम ही जानी।
   जिज्ञासी विह्वल अति होवे।
   पलक पलक सतगुरु मुख जोवे। —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०८२।
३. ब्रह्मसमाधिलीन जोग, छं० १७१, १७३, पृ० १०८२।
४. वही, छं० २०२, २१२, पृ० १०८३-८४।
   तीजे दिवस ले चलिया छारा, बनास नदी पधरानी।
   जामें रामहि राम अवाजां, परगट भई सब जानी।
   —रामजन कृत रामपद्धति, अ०वा०, पृ० १०७४।
५. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

स्वामी रामचरण जी अन्त समय तक राम-नाम का उच्चारण करते रहे। जगन्नाथ को यह दृश्य देख कर विस्मय हुआ और तभी भावुक भक्त जीवनीकार ने लिखा—

"ज्यूं पंखी तरु तै उड़ै, पीछे हालै पान।
जुगल अधर यूं हलत हैं, जान होत है ध्यान।"[१]

पंछी तरु से उड़ गया और क्षण भर उसके पत्ते हिलते रहे।

अन्तिम संस्कार

स्वामी रामचरण का अंतिम संस्कार उसी छतरी के निकट सम्पन्न हुआ। एक सुंदर सजे विमान में स्वामी जी का शव रखा गया। स्वामी जी की शिष्या स्वरूपाबाई जिस समय स्वामी जी के चरणों पर यह कहती हुई गिरी, कि हे प्रभु ! अपनी गति तुम्हीं जानो, सभी जिज्ञासी विह्वल हो गए और गुरुदेव का मुख देखते रहे।[२] स्वामी जी के अंतिम दर्शन के लिए भीड़ हो गई। नगर के हजारों लोग एकत्र हो गए। स्वामी जी के निधन से सभी पुरवासी उदास होकर पछताते थे।[३] दाह-संस्कार के बाद स्वामी जी की भस्मी थैले में भर कर रामसनेही जिज्ञासु दाँतड़ा गए। फिर बनास नदी में उनकी राख प्रवाहित कर दी गई।[४] जीवनीकार जगन्नाथ ने स्वामी रामचरण के ७९ वर्ष के जीवन को दो भागों में विभक्त कर के देखा है—

"बरस गुण्यासी तन रयो तामै दोइ विभाग।
इकतीस बरस आश्रम मही च्यार जुगां बैराग।"[५]

३१ वर्ष गृहस्थाश्रम में एवं ४८ वर्ष विरागी के रूप में जीवन सफल कर स्वामी रामचरण संसार में 'रामसनेही सम्प्रदाय' के रूप में अपना जीवित स्मारक छोड़ गए, यद्यपि उनकी समाधि-स्थली पर निर्मित शाहपुरा का 'राम निवास धाम' भी चिरकाल तक उनका पुनीत स्मरण करते हुए भारतीय लोक-जीवन को प्रेरणा देता रहेगा।

---

१. ब्रह्मसमाधि लीन जोग, छं० १४६, पृ० १०८१।
२. दास स्वरूपा पांय परानी।
तुमरी गति प्रभु तुम ही जानी।
जिज्ञासी विह्वल अति होवे।
पलक पलक सतगुरु मुख जोवे। —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०८२।
३. ब्रह्मसमाधिलीन जोग, छं० १७१, १७३, पृ० १०८२।
४. वही, छं० २०२, २१२, पृ० १०८३-८४।
तीजे दिवस ले चलिया छारा, बनास नदी पधरानी।
जामें रामहि राम अवाजां, परगट भई सब जानी।
—रामजन कृत रामपद्धति, अ०वा०, पृ० १०७४।
५. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

तृतीय अध्याय

स्वामी रामचरण का पंथ

रामसनेही सम्प्रदाय

मध्ययुगीन राजस्थान की वसुधा निर्गुणगायक संतों की बानियों से गूँज उठी थी। अलवर, साँगानेर, द्यौसा (जयपुर) में लाल, रज्जब और सुंदरदास जैसे निर्गुनिये संतों ने जन्म लेकर निर्गुण भक्ति के प्रवाह को अजस्र गति दी। ऐसे अनेक निर्गुन गौरवों से राजस्थान गौरवान्वित हो रहा था। अब राजस्थान की धरती वीरभोग्या के साथ-साथ संतभोग्या भी हो चली थी। मध्ययुगीन पंथ-निर्माण की प्रवृत्ति की समीक्षा करते हुए संत-साहित्य के खोजी विद्वान् पंडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि—"प्राय: देखा जाता है कि किसी भी एक धार्मिक महापुरुष के नेतृत्व में विश्वास रखने वाले व्यक्ति अपने को क्रमश: एक संयुक्त परिवार का सदस्य समझने लगते हैं और अपनी सामुदायिक एकता को अक्षुण्ण बनाये रखने के प्रयत्न भी करने लग जाते हैं। तदनुसार एक समान सिद्धान्तों को स्वीकार करने वालों का एक पृथक् वर्ग बनने लगता है जिसका संबंध दूसरे वैसे वर्गों के साथ नहीं रह जाता।"[१]

राजस्थान में रामसनेही नाम से तीन पंथ जाने जाते हैं। बहुत कुछ सैद्धान्तिक निकटता होने के बाद भी तीनों पंथों के उद्गम-स्थल और उद्गाता अलग-अलग हैं। यह एक संयोग की बात है कि तीनों के पंथ-प्रवर्त्तकों ने अपने-अपने पंथ का नाम रामसनेही रख दिया। प्रदेश, सिद्धान्त और नाम की समरूपता के कारण अनेक जनों को तीनों की एकता का भ्रम हो जाता है। कतिपय विद्वानों ने समानता के कारण तीनों को एक सम्प्रदाय की तीन शाखाओं के रूप में स्वीकार किया है। डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी का अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध 'रामसनेही सम्प्रदाय' तीनों का एकीकृत अध्ययन है। डॉ० त्रिपाठी ने तीन शाखाएँ लिखा है[२]। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के 'प्रकाशकीय' के प्रथम पृष्ठ पर ही वैद्य केवलराम जी इस विन्दु को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "श्री रामस्नेही सम्प्रदाय का प्रचलन भी तीन अलग-अलग स्थानों से तीन भिन्न गुरु-परम्पराओं के आधार पर हुआ है। इस कारण ये तीनों ही एक-दूसरे से अलग हैं। पर नाम-साम्य से जन-साधारण को ही नहीं, विद्वानों तक को एक सम्प्रदाय

---

१. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ३८६।

२. डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी का अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध 'रामसनेही सम्प्रदाय (गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रंथालय)।

होने की भ्रान्ति हो जाती है।'[१] यहाँ हम तीनों पंथों को उनके पीठ स्थान से अभिहित करेंगे—

१. शाहपुरा का रामसनेही सम्प्रदाय।

२. खैड़ापा का रामसनेही सम्प्रदाय।

३. रैण का रामसनेही सम्प्रदाय।

"शाहपुरे का पंथ रामचरण जी से चला है। खैड़ापे का रामसनेही पंथ हरिरामदास जी से निकला है। इनके एक शिष्य रामदास जी हुए। इन्होंने खैड़ापे में अपनी गद्दी स्थापित की। अतएव खैड़ापे के रामसनेही रामदास जी को अपना आदि गुरु, हरिरामदासजी को आदि प्रवर्त्तक मानते हैं। रामदास जी स्वयं गृहस्थ थे और अपने चेलों को भी उन्होंने गृहस्थधर्म पालन का आदेश दिया था। . . . रैण (मेड़ता) के रामसनेही दरियाव जी को अपना आदि गुरु मानते हैं. . . इनका गुरुद्वारा रैण है जहाँ दरियाव जी का एक चित्र रखा हुआ है।"[२]

पंडित मोतीलाल मेनारिया के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि खैड़ापा और रैण का न तो आपसी रिश्ता है और न स्वामी रामचरण के रामसनेही पंथ से ही। यह भिन्न बात है कि तीनों के उद्गमस्थल राजस्थान प्रदेश में हैं और तीनों ही निर्गुण-मार्गी पंथ हैं। वैसे यदि इन तीनों में कोई अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष किसी प्रकार का संबंध होता तो साम्प्रदायिक साक्ष्य-ग्रंथों के ग्रंथकारों ने उसका उल्लेख अवश्य किया होता। हाँ, आधुनिक साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रंथ 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के 'प्रकाशकीय' में प्रारंभ में ही लेखक ने किसी प्रकार के आपसी संबंध के विषय में स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया है। मैंने स्वयं शाहपुरा और इन्दौर में पंथ के विभिन्न अधिकारी संतों से रामसनेही नामधारी तीनों पंथों के संबंध के विषय में पूछताछ की थी पर सभी ने किसी प्रकार का संबंध न होने की ही बात बतायी। पुनश्च; यदि कोई संबंध होता तो साम्प्रदायिक साक्ष्यों की मौनता के बाद वेस्मकट, तासी, बोस, ओमन आदि तो मौन नहीं रहते। अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हुआ कि स्वामी रामचरण के रामसनेही सम्प्रदाय से अन्य दो रामसनेही पंथों का कोई संबंध नहीं। एक नाम होने के कारण किसी को भी भ्रम नहीं होना चाहिए।

रामसनेही सम्प्रदाय शाहपुरा

नामकरण

गुरलीला विलासकार जगन्नाथ के अनुसार 'रामसनेही' शब्द स्वामी रामचरण को उस अज्ञात संत से प्राप्त हुआ था जो वृन्दावन जाते समय उनसे मार्ग में मिला था। वस्तुतः उस अज्ञात संत ने स्वामी रामचरण को 'रामसनेही' कह कर संबोधित किया

---

१. प्रकाशकीय : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १।

२. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा; पृ० ८०-८२; पं० मोतीलाल मेनारिया।

होने की भ्रान्ति हो जाती है।"[१] यहाँ हम तीनों पंथों को उनके पीठ स्थान से अभिहित करेंगे—

१. शाहपुरा का रामसनेही सम्प्रदाय।
२. खैड़ापा का रामसनेही सम्प्रदाय।
३. रैण का रामसनेही सम्प्रदाय।

"शाहपुरे का पंथ रामचरण जी से चला है। खैड़ापे का रामसनेही पंथ हरिरामदास जी से निकला है। इनके एक शिष्य रामदास जी हुए। इन्होंने खैड़ापे में अपनी गद्दी स्थापित की। अतएव खैड़ापे के रामसनेही रामदास जी को अपना आदि गुरु, हरिरामदासजी को आदि प्रवर्त्तक मानते हैं। रामदास जी स्वयं गृहस्थ थे और अपने चेलों को भी उन्होंने गृहस्थधर्म पालन का आदेश दिया था। . . . रैण (मेड़ता) के रामसनेही दरियाव जी को अपना आदि गुरु मानते हैं. . . इनका गुरुद्वारा रैण है जहाँ दरियाव जी का एक चित्र रखा हुआ है।"[२]

पंडित मोतीलाल मेनारिया के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि खैड़ापा और रैण का न तो आपसी रिश्ता है और न स्वामी रामचरण के रामसनेही पंथ से ही। यह भिन्न बात है कि तीनों के उद्‌गमस्थल राजस्थान प्रदेश में हैं और तीनों ही निर्गुण-मार्गी पंथ हैं। वैसे यदि इन तीनों में कोई अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष किसी प्रकार का संबंध होता तो साम्प्रदायिक साक्ष्य-ग्रंथों के ग्रंथकारों ने उसका उल्लेख अवश्य किया होता। हाँ, आधुनिक साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रंथ 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के 'प्रकाशकीय' में प्रारंभ में ही लेखक ने किसी प्रकार के आपसी संबंध के विषय में स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया है। मैंने स्वयं शाहपुरा और इन्दौर में पंथ के विभिन्न अधिकारी संतों से रामसनेही नामधारी तीनों पंथों के संबंध के विषय में पूछताछ की थी पर सभी ने किसी प्रकार का संबंध न होने की ही बात बतायी। पुनश्च; यदि कोई संबंध होता तो साम्प्रदायिक साक्ष्यों की मौनता के बाद वेस्मकट, तासी, बोस, ओमन आदि तो मौन नहीं रहते। अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हुआ कि स्वामी रामचरण के रामसनेही सम्प्रदाय से अन्य दो रामसनेही पंथों का कोई संबंध नहीं। एक नाम होने के कारण किसी को भी भ्रम नहीं होना चाहिए।

रामसनेही सम्प्रदाय शाहपुरा

नामकरण

गुरलीला [illegible]। के अनुसार 'रामसनेही' शब्द स्वामी रामचरण को उस अज्ञात संत से प्राप्त हुआ था जो वृन्दावन जाते समय उनसे मार्ग में मिला था। वस्तुतः उस अज्ञात संत ने स्वामी रामचरण को 'रामसनेही' कह कर संबोधित किया

---

१. प्रकाशकीय : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १।
२. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा; पृ० ८०-८२; पं० मोतीलाल मेनारिया।

था।[1] उस अज्ञात संत के मना करने पर ही स्वामी रामचरण वृन्दावन न जाकर मेवाड़ की ओर लौट पड़े थे। 'गुरलीला विलास' में जगन्नाथ और 'परची' में लालदास ने उस अज्ञात संत के अदृश्य हो जाने वाली घटना से रामचरण जी को और भी प्रभावित बतलाया है। दोनों के अनुसार स्वामी जी को उस अज्ञात संत के रूप में ईश्वर के दर्शन हुए थे।[2] 'स्वामी रामचरण जी विस्मित हो गए; इन्हें लगा साक्षात् ईश्वर ने प्रत्यक्ष दर्शन दिए हों।'[3]

मैं समझता हूँ स्वामी रामचरण ने इसे ईश्वर या तेजस्वी संत का दिया हुआ नाम समझ कर अपने सभी अनुयायियों के लिए यह छाप चला दी। रामसनेही छाप का प्रकाश स्वयं रामचरण जी ने किया था, इसका उल्लेख 'गुरलीला विलास' में जीवनीकार जगन्नाथ ने स्पष्ट रूपसे किया है—

"पांच पचीस भया जग्यासी।
राम सनेही छाप प्रकासी।"[4]

केप्टेन जी० ई० वेस्मकट ने भी लिखा है कि "उन्होंने अपने विचारग्राहियों को रामसनेही, ईश्वर का मित्र या दास कहा।"[5] आचार्य पंडित [illegible] पंथ में 'प्रेम-साधना' का महत्त्व होने के कारण ही पंथ का नाम 'गमननेही' होना मानते हैं। इस संदर्भ में उनका यह कथन ध्यान देने योग्य है—"संत रामचरण ने प्रेम-साधना को भी अपने यहाँ एक प्रधान साधन माना था और उनका कहना था कि प्रेम की ही सहायता से ईश्वर की प्राप्ति एवं सामाजिक सुख दोनों संभव हो सकते हैं। वास्तव में प्रेम को यह महत्त्व प्रदान करने के ही कारण इनके पंथ का नाम 'रामसनेही सम्प्रदाय' हो गया।"[6]

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा 'नामकरण' शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हैं कि "हिन्दी संत-साहित्य में जितने सम्प्रदाय हैं, प्रायः उनका नामकरण उनके प्रवर्त्तकों के नाम से ही हुआ है। कबीर-पंथ, दादू पंथ, दरिया पंथ आदि इसके उदाहरण कहे जा सकते हैं। इनमें इनके प्रवर्त्तकों के

---

१. गुपत संत रसता माही मिलीया।
रामसनेही तुम काहा चलीया। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

२. साध रूप होइ दरस दिखाया।
रामचरण के आनन्द आया। —वही, ह० प्र०
इतना ही उपदेस करके हो गए अन्तरध्यान।
रामचरण जी लप लिया निश्चै सारंगपान। —परची, ह० प्र०

३. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १४।

४. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

५. And he called those who adopted his opinions Ramsanehi, friends or servants of God.
Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

६. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ६१६।

होने की भ्रान्ति हो जाती है।"[१] यहाँ हम तीनों पंथों को उनके पीठ स्थान से अभिहित करेंगे—

१. शाहपुरा का रामसनेही सम्प्रदाय।
२. खैड़ापा का रामसनेही सम्प्रदाय।
३. रैण का रामसनेही सम्प्रदाय।

"शाहपुरे का पंथ रामचरण जी से चला है। खैड़ापे का रामसनेही पंथ हरिरामदास जी से निकला है। इनके एक शिष्य रामदास जी हुए। इन्होंने खैड़ापे में अपनी गद्दी स्थापित की। अतएव खैड़ापे के रामसनेही रामदास जी को अपना आदि गुरु, हरिरामदासजी को आदि प्रवर्त्तक मानते हैं। रामदास जी स्वयं गृहस्थ थे और अपने चेलों को भी उन्होंने गृहस्थधर्म पालन का आदेश दिया था। . . . रैण (मेड़ता) के रामसनेही दरियाव जी को अपना आदि गुरु मानते हैं. . . इनका गुरुद्वारा रैण है जहाँ दरियाव जी का एक चित्र रखा हुआ है।"[२]

पंडित मोतीलाल मेनारिया के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि खैड़ापा और रैण का न तो आपसी रिश्ता है और न स्वामी रामचरण के रामसनेही पंथ से ही। यह भिन्न बात है कि तीनों के उद्गमस्थल राजस्थान प्रदेश में हैं और तीनों ही निर्गुण-मार्गी पंथ है। वैसे यदि इन तीनों में कोई अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष किसी प्रकार का संबंध होता तो साम्प्रदायिक साक्ष्य-ग्रंथों के ग्रंथकारों ने उसका उल्लेख अवश्य किया होता। हाँ, आधुनिक साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रंथ 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के 'प्रकाशकीय' में प्रारंभ में ही लेखक ने किसी प्रकार के आपसी संबंध के विषय में स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया है। मैंने स्वयं शाहपुरा और इन्दौर में पंथ के विभिन्न अधिकारी संतों से रामसनेही नामधारी तीनों पंथों के संबंध के विषय में पूछताछ की थी पर सभी ने किसी प्रकार का संबंध न होने की ही बात बतायी। पुनश्च; यदि कोई संबंध होता तो साम्प्रदायिक साक्ष्यों की मौनता के बाद वेस्मकट, तासी, बोस, ओमन आदि तो मौन नहीं रहते। अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हुआ कि स्वामी रामचरण के रामसनेही सम्प्रदाय से अन्य दो रामसनेही पंथों का कोई संबंध नहीं। एक नाम होने के कारण किसी को भी भ्रम नहीं होना चाहिए।

रामसनेही सम्प्रदाय शाहपुरा

नामकरण

गुरलीला विलासकार जगन्नाथ के अनुसार 'रामसनेही' शब्द स्वामी रामचरण को उस अज्ञात संत से प्राप्त हुआ था जो वृन्दावन जाते समय उनसे मार्ग में मिला था। वस्तुतः उस अज्ञात संत ने स्वामी रामचरण को 'रामसनेही' कह कर संबोधित किया

---

१. प्रकाशकीय : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १।

२. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा; पृ० ८०-८२; पं० मोतीलाल मेनारिया।

था।[१] उस अज्ञात संत के मना करने पर ही स्वामी रामचरण वृन्दावन न जाकर मेवाड़ की ओर लौट पड़े थे। 'गुरलीला विलास' में जगन्नाथ और 'परची' में लालदास ने उस अज्ञात संत के अदृश्य हो जाने वाली घटना से रामचरण जी को और भी प्रभावित बतलाया है। दोनों के अनुसार स्वामी जी को उस अज्ञात संत के रूप में ईश्वर के दर्शन हुए थे।[२] 'स्वामी रामचरण जी विस्मित हो गए; इन्हें लगा साक्षात् ईश्वर ने प्रत्यक्ष दर्शन दिए हों।'[३]

मैं समझता हूँ स्वामी रामचरण ने इसे ईश्वर या तेजस्वी संत का दिया हुआ नाम समझ कर अपने सभी अनुयायियों के लिए यह छाप चला दी। रामसनेही छाप का प्रकाश स्वयं रामचरण जी ने किया था, इसका उल्लेख 'गुरलीला विलास' में जीवनीकार जगन्नाथ ने स्पष्ट रूपसे किया है—

"पांच पचीस भया जग्यासी।
राम सनेही छाप प्रकासी।"[४]

कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट ने भी लिखा है कि "उन्होंने अपने विचारग्राहियों को रामसनेही, ईश्वर का मित्र या दास कहा।"[५] आचार्य पंडित परशुराम चतुर्वेदी पंथ में 'प्रेम-साधना' का महत्त्व होने के कारण ही पंथ का नाम 'रामसनेही' होना मानते हैं। इस संदर्भ में उनका यह कथन ध्यान देने योग्य है—"संत रामचरण ने प्रेम-साधना को भी अपने यहाँ एक प्रधान साधन माना था और उनका कहना था कि प्रेम की ही सहायता से ईश्वर की प्राप्ति एवं सामाजिक सुख दोनों संभव हो सकते हैं। वास्तव में प्रेम को यह महत्त्व प्रदान करने के ही कारण इनके पंथ का नाम 'रामसनेही सम्प्रदाय' हो गया।"[६]

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा 'नामकरण' शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हैं कि "हिन्दी संत-साहित्य में जितने सम्प्रदाय हैं, प्रायः उनका नामकरण उनके प्रवर्त्तकों के नाम से ही हुआ है। कबीर-पंथ, दादू पंथ, दरिया पंथ आदि इसके उदाहरण कहे जा सकते हैं। इनमें इनके प्रवर्त्तकों के

---

१. गुपत संत रसता माही मिलीया।
रामसनेही तुम काहा चलीया। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

२. साध रूप होइ दरस दिखाया।
रामचरण के आनन्द आया। —वही, ह० प्र०
इतना ही उपदेस करके हो गए अन्तरध्यान।
रामचरण जी लष लिया निश्चै सारंगपान। —परची, ह० प्र०

३. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १४।

४. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

५. And he called those who adopted his opinions Ramsanehi, friends or servants of God.
Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

६. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ६१६।

व्यक्तित्व एवं विचारधारा की प्रमुखता को देखा जा सकता है। रामसनेही सम्प्रदाय का नामकरण इसके प्रवर्त्तक के नाम पर न होकर उसमें स्वीकृत साधना के मूल विन्दु 'राम' को आधार मान कर किया गया है।"[१]

डाक्टर वर्मा के इस कथन से कि 'राम' को आधार मानकर सम्प्रदाय का नामकरण किया गया है, सहमत होते हुए मेरा निवेदन है कि कबीर पंथ, दादू पंथ, दरिया पंथ आदि का नामकरण पंथ-प्रवर्त्तकों द्वारा नहीं किया गया था। वस्तुतः कबीर, दादू या दरिया ने अपने-अपने नाम पर पंथ नहीं चलाये प्रत्युत इन संतों के बाद उनके शिष्यों एवं अनुयायियों ने उनकी विचारधारा को जीवित रखने के लिये जो संगठन बनाये, उन्हें उन लोगों के नाम से सम्बद्ध कर दिया। किन्तु स्वामी रामचरण ने अज्ञात संत का आदेश पाकर मेवाड़ में निर्गुण भक्ति के प्रसार का निश्चय करके वृन्दावन की ओर न जाकर मेवाड़ वापस लौटे थे और इस कार्य को चलाने के लिए उन्होंने भीलवाड़ा में जो अनुयायियों का समूह एकत्र किया उन सभी को रामसनेही छाप लगाने की अनुमति दी। स्पष्ट यह समझना चाहिए कि स्वामी रामचरण ने अपने पंथ का नामकरण स्वयं किया था, किसी अन्य के द्वारा नामकरण नहीं हुआ था। यदि संदर्भित अन्य संतों की भाँति स्वामी जी ने भी अपने जीवन-काल में पंथ नहीं निर्मित किया होता तो उनके बाद उनके अनुयायी भी 'रामचरण पंथ' नाम रख सकते थे।

पुनः यह भी निवेदन है कि प्रवर्त्तकों के व्यक्तित्व एवं विचारधारा की प्रमुखता केवल कबीर पंथ, दादूपंथ या दरियापंथ में है और रामसनेही सम्प्रदाय में उसके प्रवर्त्तक के व्यक्तित्व और विचार प्रमुखता नहीं पा सके हैं, यह मानने को मैं नहीं प्रस्तुत हूँ। मैं समझता हूँ कि डॉ० वर्मा द्वारा संदर्भित पंथों में उनके प्रवर्त्तकों के व्यक्तित्व और विचार जितनी प्रमुखता पा सके हैं, स्वामी रामचरण का व्यक्तित्व एवं उनकी विचारधारा उनसे कम नहीं, प्रत्युत कुछ अधिक ही प्रमुख है। रामसनेही सम्प्रदाय का सुदृढ संगठन, व्यवस्थित अनुशासन एवं निरंतर विकासोन्मुख जीवन पर स्वामी रामचरण के व्यक्तित्व की अत्यन्त गहरी एवं सर्वाधिक छाप है। विपरीत इसके कबीर, दादू आदि के पंथों का संगठन बिखर गया है और उन पंथों का जीवन गिरावट की ओर है। एक बात और भी—ऐसा नहीं कि स्वामी रामचरण के बाद सम्प्रदाय में प्रभावशाली व्यक्तित्वों की कमी हो गई हो किन्तु स्वामी रामचरण का व्यक्तित्व सर्वाधिक प्रभावसम्पन्न एवं गौरवमय है और उनके द्वारा प्रतिपादित विचारधारा ही उनके अनुगामी परवर्त्ती संतों की वाणी में मुखर हुई है। इसी संदर्भ मे यह भी निवेदन है कि स्वामी रामचरण अपने जीवन-काल मे केवल संगठन का प्रारूप ही बना सके थे, उसका विस्तार तीसरे महंत दूल्हैराम जी तक होता रहा। इसे भी स्वामी रामचरण के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एवं सुचिन्तित विचारधारा का ही परिणाम समझना चाहिए। उपर्युक्त विवेचन के साथ मैं डॉक्टर वर्मा के इस कथन से सर्वथा सहमत

१. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ६७।

हूँ कि "इस प्रकार रामसनेही 'राम' से 'स्नेह' अथवा प्रेम रखने वाले के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।"[१]

संस्थापन : समय एवं स्थान

रामसनेही सम्प्रदाय के संस्थापन-समय एवं स्थान के विषय में साम्प्रदायिक साक्ष्यों एवं बाह्य-साक्ष्यों में स्पष्ट रूप से मतभिन्नता है। बाह्य-साक्ष्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट का लेख है जिसके अनुसार—"स्वामी रामचरण सन् १७६७ (संवत् १८२४) में शाहपुरा आए और दो वर्ष बाद ही वे वहाँ स्थायी रूप से बसे, इसी तिथि (संवत् १८२६) से पंथ की स्थापना समझना उचित होगा।"[२] गार्सां द तासी भी वेस्मकट महोदय के मत का ही समर्थन करते हैं।[३] आचार्य पंडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं—"संत रामचरण ने संवत् १८२५ में रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना की थी।"[४] जबकि पंडित शिवशंकर मिश्र लिखते हैं कि—"जयपुर के रामचरण नामक एक रामानन्दी साधु ने शाहपुर से राज्याश्रय प्राप्त कर संवत् १८२४ में इस पंथ की स्थापना की थी।"[५] श्री रामदास गौड़ एवं डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने संवत् १८०० वि० को रामसनेही सम्प्रदाय का संस्थापना-वर्ष लिखा है।[६]

साम्प्रदायिक साक्ष्यों में स्वामी रामचरण के जीवनी-ग्रंथ 'गुरलीला विलास' से इस विषय में बहुत स्पष्ट सूचना मिलती है। गुरलीला विलासकार के अनुसार स्वामी रामचरण भीलवाड़े में संवत् १८१७ वि० मे आगए थे।[७] यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि भीलवाड़ा मे उन्होंने निर्गुण भक्ति के प्रचार-प्रसार का निर्णय लेकर ही प्रवेश किया था। परिणामतः भीलवाड़ा पधारते ही उनकी देवकरण आदि से भेंट हुई। अतिशीघ्र उनके अनुयायियों की

---

१. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ६८-६९।

2. And arrived at Shahpura on foot, in the year 1767, but he does not seem to have settled there permanently until two years later, from which time, it may be proper to date the institution of the sect.

—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

३. गार्सां द तासी : हिन्दुई साहित्य का इतिहास, (अनु०—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय) —पृ० २३५।

४. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६१५।

५. भारत का धार्मिक इतिहास, पृ० ३३२-३३।

६. श्री रामदास गौड़ : हिन्दुत्व, पृ० ७३९।
डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी : संतकवि दरिया : एक अनुशीलन, पृ० २८

७. अठारा से सतरा ब्रष बीता।
भीलाड़े आया अणचीता।—गुरलीला विलास, हृ० प्र०।

संख्या बढ़ी और उन्होंने रामसनेही छाप का प्रकाशन कर दिया।[1] अतः जीवनीकार जगन्नाथ के अनुसार संवत् १८१७ वि० में भीलवाड़ा में रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना स्वामी जी ने कर दी थी।

यहाँ उपर्युक्त विभिन्न मतों की संक्षिप्त समीक्षा अपेक्षित प्रतीत होती है। बाह्य साक्ष्यों में पं० परशुराम चतुर्वेदी ने संस्थापन-समय संवत् १८२५ माना है। पिछले अध्याय में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि संवत् १८२५ भीलवाड़े के पतन का वर्ष था। मराठों की लूटपाट एवं बर्बर अत्याचार से भीलवाड़ा वीरान हो गया था। ऐसी स्थिति में वहाँ किसी पंथ की स्थापना कदापि संभव नहीं। अतः चतुर्वेदी जी का यह मत कि संवत् १८२५ में स्वामी जी ने पंथ-संस्थापन किया, समीचीन नहीं जान पड़ता।

पं० शिवशंकर मिश्र के मतानुसार यह समय संवत् १८२४ वि० है। स्मरणीय है कि यह वर्ष स्वामी जी के जीवन का सर्वाधिक संघर्षपूर्ण समय रहा है। इसी वर्ष में स्वामी रामचरण के विरुद्ध भीलवाड़े के पुरोहितों एवं अन्य सगुणोपासकों ने उदयपुर के महाराणा के पास शिकायत भेजी थी और उन्हें भीलवाड़ा नगर से निकलवाने में सफल भी हो गए थे।[2] यह भी स्मरणीय है कि स्वामी जी के विरोध का मूल कारण उनके द्वारा संस्थापित पंथ के सिद्धान्तों का प्रचार था। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि संवत् १८२४ से पहले ही 'रामसनेही सम्प्रदाय' की स्थापना हो चुकी थी। मिश्र जी ने स्थान की चर्चा भी कर दी है। उनके अनुसार शाहपुरा मे राज्याश्रय मिलने के बाद स्वामी रामचरण ने पंथ-निर्माण किया। जीवनी-अंश मे यह भली प्रकार स्पष्ट कर दिया गया है कि शाहपुरा में स्वामी रामचरण संवत् १८२६ वि० में राजा रणसिह के आमंत्रण पर पहुँचे थे, सो भी [illegible] के लिए। अतः मिश्र जी का यह मत भी युक्तियुक्त नही। श्री रामदास गौड़ एवं डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी के मत का कोई औचित्य नहीं दृष्टिगोचर होता।

अब रही बात वेस्मकट महोदय के मत-परीक्षण की। मैं यह पहले ही स्पष्ट कर चुका हूँ कि वेस्मकट के साक्ष्य सम्प्रदाय के पाँचवें महंत नारायणदास जी हैं। अतः वेस्मकट के दृष्टिकोण का विवेचन सजगता की अपेक्षा रखता है। वेस्मकट यह नहीं लिखते कि सम्प्रदाय का संस्थापन-वर्ष सन् १७६९ अर्थात् संवत् १८२६ है। वह कहते हैं कि उक्त वर्ष में स्वामी रामचरण शाहपुरा में स्थायी रूप से बसे, अतः इसी वर्ष को सम्प्रदाय का संस्थापन-वर्ष मानना उचित होगा। मैं समझता हूँ कि कैप्टेन वेस्मकट ने स्वामी नारायणदास से पंथ-संस्थापना का वर्ष पूछा ही नहीं, प्रत्युत स्वयं अनुमान कर लिया कि जब स्वामी रामचरण उक्त वर्ष में शाहपुरा आए तो सम्प्रदाय स्थापित हुआ। यदि वेस्मकट ने पूछा होता तो

---

१. दे०, द्वितीय अध्याय में 'भीलवाड़ा की ओर' शीर्षक के अन्तर्गत 'रामसनेही छाप'।—लेखक

२. दे०, द्वितीय अध्याय में 'भीलवाड़ा की ओर' शीर्षक के अन्तर्गत 'विरोध की अनुगूँज'।—लेखक

नारायणदास जी को उद्धृत कर निश्चयात्मक भाषा में इस वर्ष का उल्लेख करता जैसा कि कई स्थलों पर उसने महंत नारायणदास को उद्धृत किया है। जो भी हो वेस्मकट का यह अनुमान निराधार है। ऐसी स्थिति में गुरलीला विलासकार जगन्नाथ द्वारा घोषित भीलवाड़ा आगमन का वर्ष संवत् १८१७ वि० एवं भीलवाड़ा नगर क्रमशः रामसनेही सम्प्रदाय का संस्थापन-समय एवं स्थान निर्धारित होता है।

उद्गम स्रोत : रामावत सम्प्रदाय

कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट के अनुसार रामसनेही सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी रामचरण रामावत वैरागी थे।[१] 'अणभैवाणी' के प्रस्तावनाकार साधु कार्यराम जी ने लिखा है कि 'श्री रामानुजाचार्य से २३ पद्धति परत्व श्री रामानन्द स्वामी सम्प्रदाय का मूल है। तच्छिष्य श्री स्वामी अग्रदास जी हुए [इन्हीं महापुरुष के नाम से इस सम्प्रदाय का द्वारा 'अग्रदास' जी का द्वारा कहाता है।] उनसे पंचम पद्धति परत्व श्री स्वामी संतदास जी महाराज हैं... उन संतदास जी महाराज के शिष्य श्रीमन्त महापुरुष कृपाराम जी महाराज हुए जिनके शिष्य स्वयं रामचरण जी महाराज हैं।'[२] इस दृष्टि से साधु मनोहरदास जी लिखित 'रामसनेही धर्म दर्पण' की भूमिका की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं—"विदित हो कि भारत प्रख्यात श्रीमत् रामानुज सम्प्रदाय से आविर्भावित श्री रामानन्द साधु सम्प्रदाय हुआ। इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत आगे चलकर गलता (जयपुर राज्य) में श्री पैहारी महाराज तथा श्री अग्रदास जी महाराज बड़े प्रख्यात संत हुए। इन्हीं की शिष्य परम्परा में गूदड़ वेषधारी महात्मा श्री संतदास जी तथा उनके शिष्य श्री कृपाराम जी हुए, इन्हीं श्री कृपाराम जी महाराज के श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, शाहपुरा (मेवाड़) के मूल आचार्य श्री १००८ श्री रामचरण जी महाराज प्रकट हुए।"[३] आचार्य पं० परशुराम चतुर्वेदी ने अपने ग्रंथ 'उत्तरी भारत की संत-परंपरा' में स्वामी रामानन्द से लेकर संतदास तक के नाम गिनाये हैं।[४]

---

१. Ram Charan, the founder of the Ramsanehis, was a Ramavat Byragi. —Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835, p. 65.

२. अणभैवाणी की 'प्रस्तावना', पृ० १-२।

३. 'रामस्नेही धर्म दर्पण' की भूमिका, पृ० १।

४. 'स्वामी रामानन्द से लेकर संतदास तक के नाम इस प्रकार हैं—स्वामी रामानन्द, अनन्तानन्द, कृष्णदास पयहारी, अग्रदास, प्रेमदास, भूराराम, नारायणदास [छोटे] और संतदास।'—उत्तरी भारत की संत परंपरा, फुटनोट, पृ० ६२१।

'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' में यह सूची थोड़ी भिन्न है। उसके अनुसार निम्नलिखित नाम हैं—'रामानन्द जी, अनन्तानन्द जी, कृष्ण पयहारी, अग्रदासजी, नारायणदास जी, रामदास जी, प्रेमभूराजी, रामदास जी, छोटा नारायणदास जी, संतदास जी।'

—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ३९।

संतों एवं विद्वानों के उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण 'रामावत' सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। यह 'रामावत' सम्प्रदाय स्वामी रामानन्द जी द्वारा प्रवर्त्तित किया गया था। इनके समय में प्रायः सारे भारत में मुसलमानों के अनेक प्रकार के अत्याचार हुए थे, जिन्हें देखकर इन्होंने जाति-पाँति का बन्धन कुछ ढीला करना चाहा और सबको राम-नाम के महामंत्र का उपदेश देकर अपने 'रामावत' सम्प्रदाय में सम्मिलित करना आरम्भ किया। रामानुज के श्री वैष्णव सम्प्रदाय की संकुचित सीमा तोड़कर इन्होंने उसे अधिक विस्तृत तथा उदार बनाया ...इनके शिष्यों में पीपा, कबीर, सेना, धना, रैदास आदि हैं।[1] स्वामी रामानन्द ने श्री रामानुजाचार्य द्वारा प्रवर्त्तित वैष्णव सम्प्रदाय के स्वरूप में परिवर्त्तन करके 'रामावत' सम्प्रदाय खड़ा कर दिया था। स्मरणीय है कि जहाँ स्वामी रामानन्द ने जाति-पाँति के बन्धन ढीले किये वहीं उन्होंने सगुण-निर्गुण के समन्वय का भी प्रयास किया। यदि स्वामी जी का झुकाव इस समन्वय की ओर नहीं होता तो 'रामावत' सम्प्रदाय से दीक्षित होकर निकले कबीर, रैदास, पीपा आदि निर्गुण भक्ति की ओर शायद ही झुकते। स्वामी रामचरण के दादा गुरु स्वामी संतदास जी दाँतड़ा की वैष्णव गद्दी पर विराजमान थे और उनकी 'वाणी' पढ़ने के बाद उन्हें सगुण वैष्णव कोई नहीं मानने को तैयार होगा। स्वामी रामचरण भी इसी परंपरा में दीक्षित हुए थे। स्मरणीय है कि स्वामी रामचरण को निवृत्तिपरक होने का आदेश उनके गुरु स्वामी कृपाराम ने ही दिया था जो स्वयं प्रवृत्तिमार्गी वैष्णव संत थे और दाँतड़े की वैष्णव गद्दी पर आसीन थे। निष्कर्ष यह कि रामानन्द जी द्वारा प्रवर्त्तित 'रामावत' सम्प्रदाय के मूल में ही सगुण-निर्गुण का समन्वय था। परिणामतः इस सम्प्रदाय में दीक्षित अनेक संतों ने निर्गुण-भक्ति के प्रचारार्थ पंथों का निर्माण किया। स्वामी रामचरण द्वारा निर्मित रामसनेही सम्प्रदाय भी वैसा ही एक सम्प्रदाय है। अतः 'अणभैवाणी' के प्रस्तावनाकार साधु कार्यराम जी का यह कथन युक्तियुक्त है कि "श्री स्वामी रामानन्द सम्प्रदाय का मूल हैं।"

विकास

यद्यपि संवत् १८१७ वि० में रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना स्वामी रामचरण जी ने भीलवाड़े में ही कर दी थी किन्तु वहाँ उन्हें पर्याप्त विरोधों का सामना करना पड़ा, तो भी संघर्षों एवं विरोधों के बीच स्वामी रामचरण जी के सिद्धान्तों की लोकप्रियता बढ़ती ही जा रही थी। उनके दान-जिज्ञासु जन बड़े ही सुदृढ़ व्यक्तित्व वाले थे, उन्हीं के एक प्रमुख शिष्य देवकरण ने उदपुर राज्य के प्रधानमंत्री अमरचन्द बरवा को प्रभावित कर विरोधियों के समक्ष रामसनेही जनों का मस्तक ऊँचा किया था। यह स्वामी रामचरण के व्यक्तित्व की गुरुता एवं सिद्धान्तों की निवेदन-शक्ति थी जिसके कारण वे अल्पकाल में ही भीलवाड़ा के कबीर बन बैठे और यही कारण था कि शाहपुरा-नरेश ने उन्हें अपने दरबार में 'आश्रय'

1. श्री रामदास गौड़, हिन्दुत्व, पृ० ६८४।

का आमंत्रण भेजा और स्वामी जी के शाहपुरा पधारने पर उन्हें ससम्मान बसाया एवं पंथ के प्रसार की पूर्ण सुविधा दी। गुरलीला विलासकार जगन्नाथ ने लिखा है कि राजा रणसिंह, भीमसिंह और महाराजा अमरसिंह सभी स्वामी रामचरण के परम भक्त थे। एक प्रकार से शाहपुरा नरेश रामसनेही सम्प्रदाय के संरक्षक ही थे। स्वामी रामचरण के अनुयायी साधु एवं गृहस्थों की एक अच्छी संख्या उनके जीवनकाल में ही हो गयी थी। सम्प्रदाय के विकास एवं क्रिया कलापों में दोनों का योग समान था।

साधु

तीन दसा सतां की न्यारी।
बिरकत बदेही परमहंस न्यारी।"[१]

रामसनेही सम्प्रदाय के साधु तीन श्रेणियों में स्वामी रामचरण के जीवनकाल में ही विभक्त हो गए थे। 'गुरलीला विलास' की उपर्युक्त पंक्तियों के अनुसार विरक्त, विदेही और परमहंस ये तीन दशाएँ हैं। कैप्टेन वेस्मकट भी तीन श्रेणियों की चर्चा करते हैं किन्तु उनमे से अंतिम दो 'विदेही' और 'मोहनी' के विषय में लिखा है।[२] उच्चारण-भेद के कारण वेस्मकट 'मौनी' को 'मोहनी' कह गए हैं क्योंकि वे आगे इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "जिन साधुओं को अपनी वाणी पर पर्याप्त नियंत्रण नहीं रहता है वे जीवन भर के लिए नहीं अपितु कुछ समय के लिए 'मोहनी' बन जाते हैं।"[३] आचार्य पं० परशुराम चतुर्वेदी भी वेस्मकट से सहमत होकर लिखते हैं—"बैरागियों में कुछ लोग 'विदीही' कहलाते हैं और नंगे रहा करते हैं और कुछ 'मौनी' होते हैं जो वाक्-संयम की साधना के कारण बहुत दिनों तक कुछ नहीं बोलते।"[४]

यद्यपि वर्तमान समय में उपर्युक्त श्रेणियाँ नाम भर के लिए हैं। सभी साधु एक समान ही रहते हैं, पर मौनी कोई श्रेणी नहीं प्रत्युत साधना की एक प्रक्रिया है जिसमें वाक्-संयम के लिए साधु कुछ दिन रहता है। यह आवश्यक नहीं है कि सभी साधु 'मौनता' की इस प्रक्रिया से गुजरें। किन्तु विरक्त, विदेही और परमहंस श्रेणियाँ हैं, नाममात्र के लिए ही सही।

---

१. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. Priests are called either Byragi or Sadh, and are divided int three classes, the last two of which, denominated Bedehi and Mohani
—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

३. Priests who have not sufficient command over their tongue become "Mohani" not for life but for a period of years.
—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

४. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६१९।

रामसनेही साधु के लक्षण

स्वामी रामचरण ने अपने ग्रंथ 'अमृत उपदेश' में रामसनेही साधु के लक्षण गिनाये हैं। इस संदर्भ की निम्नलिखित कुण्डलिया द्रष्टव्य हैं—

"रामसनेही साधसो असी लछता मांहि।
मुख सूं कछु मांगै नहीं संग्रह हरसा नांहि।
संग्रह हरसा नाहि राम बिन ओर न जानै।
आसन सुमरण अचल चंचलता मन की मानै।
संजम शील संतोष सत दयाधर्म उपजांहि।
रामसनेही साधसो असी लछता मांहि।"[1]

इसी प्रकार' अणभैवाणी' में 'कवित जिज्ञासी को अंग' के अन्तर्गत स्वामी जी ने रामसनेही की पहचान करायी है—

"इष्ट राम रमतीत आनकूं पूठ दई है।
पग नंगे गुरु दर्श दया की मूंठ गही है।
विषय त्याग विषवचन हांसि खिलवत नहिं जाणै।
हाणि बृद्धि की बार भरोसो हरि को आणै।
जूआ चोरी परलुब्धि झूठ कपटां नहि राखै।
भांग तमाखू अमल अखज मद पान न चाखै।
पाणी बरतै छाणिकै निरख पांव धरणी धरै।
रामसनेही जाणिये सो कारज अपणो करै।"[2]

इस संदर्भ में गुरलीला विलासकार की पंक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं—

रामसनेही नाम सो पालै बतीस लछ।
सबै ठाम का ठाम सो आगे सुण लीजियो।
गुर दरसण प्रभात कर परकरमो गुर की।
सीत चरणामृत पाइ तिलक माथे श्री अरकी।
भजो राम दोइ अंक संक बिन हरि जस गावै।
जल गाटे पट छाण आन पूजे न पुजावै।
हरष सोग सम भाइ भरम परब्या नहिं मानै।
बिर्धनि सेद दोइ तजै बात होतब पर आनै।
भांग तमाखू अमल पान जर दो नहीं चाखै।
ऊंची संगत करै नीच को संग न राखै।

---

१. अमृत उपदेश, चतुर्थ प्रकाश, छं० ३६, पृ० ४५० अ० वा०।
२. अणभै वाणी, कवित जिज्ञासी को अंग, छं० १, पृ० १२२।

झूठ कपट पाखण्ड यार को बुरो न ताकै।
चचा ममा की गरल सुणे नहीं मुख सूं भाखै।।
रामसनेही चाल ये लक्षण जांण बतीस।
जगन्नाथ गाटा रहै जाके सतगुर सीस।"[1]

[illegible] साम्प्रदायिक बाह्य साक्ष्य से रामसनेही साधुओं के लक्षण स्पष्ट हो रहे हैं।[2] बाह्य साक्ष्यों में कैप्टेन वेस्मकट, श्री पी० एन० बोस एवं आचार्य परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वानों ने भी रामसनेहियों के नियंत्रक नियमों की चर्चा की है। कैप्टेन वेस्मकट लिखते हैं—

"Priests are commanded never to look at their face in a glass, nor to use snuff, perfumes or ornaments, as such things savour of vanity. To go bare footed and on no account to ride on any kind of conveyance : never to destroy anything animate, nor to live in solitude, nor to ask or receive money, dancing, music and other frivolous amusements are forbidden and to taste of tubacoo, opium and all intoxicating drugs & Spirit."[3]

श्री पी० एन० बोस एवं आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भी श्री वेस्मकट से सहमत हैं।[4]

कंचन-कामिनी और रामसनेही साधु

स्वामी रामचरण ने कंचन-कामिनी को सम्पूर्ण कुकृत्यों का प्रमुख स्रोत बताया है। इसलिए उन्होंने अपने साधुओं को दोनों से विरत रहने का कठोर आदेश दे रखा था। वेस्मकट इस प्रसंग की चर्चा करते हुए स्वामी जी के व्यक्तिगत जीवन तक मे झाँक आते हैं—

"It was a maxim of Ramcharan that woman and gold in the present vicious state of society were the principal sources of mischief in the world. He, therefore, enacted a strict ordinance for priests to shun both of them.

---

१. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. 'कवित जिज्ञासी को अंग' और 'गुरलीला विलास' में वर्णित नियमों का पालन यथासंभव सभी रामसनेही [साधु और गृहस्थ दोनों] करते हैं। स्पष्ट यह कि स्वामी रामचरण ने उपर्युक्त का पालन सभी रामसनेहियों के लिए आवश्यक बतलाया है। यही मत गुरलीला विलासकार जगन्नाथ का भी है।—लेखक।

३. Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

४. P. N. Bose : A History of Hindu Civilisation During British Rule, Vol. I, P. 129

उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६१९।

The founder, a married man without a family, set the example of putting away his wife, and this sacrifice, with the desertion of one's children are essential to obtain admission to the order."[1]

उपर्युक्त उद्धरण इस बात की सूचना देते हैं कि पंथ-संस्थापन के साथ-साथ स्वामी रामचरण ने पंथ के साधु-सम्प्रदाय के लिए विशेष नियम बनाये और उन्हें कठोरता से पालन करने का आदेश भी दिया। स्वामी रामचरण एवं उनके परवर्त्ती आचार्यों द्वारा उपरिलिखित नियमों का पालन साधुओं से कहाँ तक कराया जा सका, यह चिन्त्य है क्योंकि आधुनिक साम्प्रदायिक साक्ष्य 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखक लिखते हैं कि 'अब अधिकांश राम-द्वारों में पुरानी परंपराएँ लड़खड़ा गई हैं. . .रामसनेही साधुओं में पहले की मजबूत परंपराएँ ढीली हो रही हैं।'[2] यद्यपि इस आचार संहिता का पालन आज इतनी सतर्कता से नहीं हो रहा है फिर भी कतिपय नियम रामसनेही संतों के जीवन में एकदम घुलमिल कर सामान्य बन गए हैं; जैसे—राम का इष्ट, गुरु दर्शन, दयालुता, मादक पदार्थों के सेवन का निषेध, पानी छानकर पीना, मांस-मदिरा से दूर रहना, अहिंसा के प्रति तीव्र निष्ठा, संयम, शील, संतोष आदि के पालन की प्रवृत्ति।

स्वरूप

नाम परिवर्त्तन

पंथ-प्रवेश के बाद साधु का नाम-परिवर्त्तन कर नया नाम रख दिया जाता है। यह इस बात का प्रतीक है कि उसने नये जीवन में प्रवेश लिया है।[3]

वस्त्र

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा लिखते हैं कि रामसनेही साधुओं का पहनावा भी स्वामी रामचरण द्वारा निश्चित किया गया था।[4] किन्तु साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रंथों में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। जनश्रुति है कि चाटसूँ ग्राम के किसी भक्त ने स्वामी रामचरण को हिरमिज के रंग की चादर भेंट की थी, तभी से रामसनेही साधु हिरमिजी रंग के कपड़े धारण करने लगे किन्तु आजकल गुलाबी रंग का वस्त्र धारण किया जा रहा है। यह परिवर्त्तन कैसे हुआ, कहा नहीं जा सकता। वेस्मकट महोदय ने उन्हें 'गेरू' रंग के रंगे वस्त्रों में देखा

---

१. Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

२. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १४२।

३. The priest changes his name on admission to the order, to denote he enters on a new state of life.

—Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

४. स्वामी रामचरण—एक अनुशीलन, पृ० ८४।

है। वेस्मकट के अनुसार यह कपड़ा साढ़े सात फीट का होता है। यह चादर सिर से पैर तक ढँकने के लिए होती है। भीतर एक कौपीन और कमरबन्द रखते हैं। जाड़ों में एक वस्त्र और धारण करते हैं और कभी कभी तीसरा भी।[१] मौनी साधु काले रंग का वस्त्र धारण करते हैं।

तिलक, कण्ठी-माला और मुण्डित सिर

रामसनेही साधु ललाट पर गोपी चंदन का श्री तिलक लगाते हैं और गले में चंदन की कण्ठी धारण करते हैं। नाम स्मरण के लिए हाथ में भी चंदन की माला रखने का नियम है। रामसनेही साधु केश-मुण्डन करा लेते हैं पर शिखा रखते हैं।

पात्र

साधुओं के लिए धातु-पात्रों का प्रयोग वर्जित है। वे लकड़ी और मिट्टी के पात्रों का प्रयोग करते हैं।

गुटका

ये लोग एक गुटका पोथी [प्रायः हस्तलिखित] रखते हैं जिसमें 'अणभै वाणी' के अंश संकलित होते हैं। इसे 'गुरुवाणी' कहा जाता है।

दैनिक जीवन

रामसनेही साधु का प्रातःकालीन समय उपासना में व्यतीत होता है। वे वाणी का पाठ करते हैं और गृहस्थ भक्तो को भी सुनाते हैं। नामोपासना में दिन व्यतीत करते हैं और सूर्यास्त के पूर्व भोजन ग्रहण कर लेते हैं। सान्ध्य आरती के वाद वे पुनः नामोपासना में रत हो जाते हैं।

दण्ड-विधान

अपराधी साधुओं के लिए दण्ड-विधान की भी व्यवस्था है। फूलडोल के अवसर पर ऐसे साधुओं को संतों के बीच निवास की आज्ञा नहीं मिलती। वे रामनिवास धाम के

---

१. The only covering worn by the sadh is a cotton cloth of course texture, seven feet and a half long, with a small piece for a waistband, and another for a percolator......The sheet is coloured with 'Giru', a kind of red-orchre emblimatical of humanity, they add a second in the winter season and sometimes a third, when if warmth be not obtained.

—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

निकट इमली-वृक्ष के नीचे रहते हैं, वहीं उन्हें भोजन दिया जाता है। अपराध सिद्ध होने पर पंथ से निकाल दिये जाते हैं।

पंथ में स्त्री-प्रवेश

स्वामी रामचरण ने पंथ में स्त्री-प्रवेश की कोई चर्चा नहीं की है। उन्होंने तो कंचन के साथ कामिनी का भी निषेध किया है। पंथ में स्त्री-प्रवेश के प्रश्न पर लगभग सभी साक्ष्य मौन हैं, केवल कैप्टेन वेस्मकट ने यह प्रश्न उठाया है। यह प्रश्न भी स्वरूपाबाई के कारण उपस्थित हुआ दीखता है। वेस्मकट महोदय लिखते हैं—

"A woman may become a priestess, as in the instance of Sarup, a devoted adherent of Ramcharan."[१]

इस संदर्भ में निवेदन है कि स्वरूपाबाई की एक विशेष स्थिति थी। वह स्वामी रामचरण की समर्पित शिष्या थीं। उन्होंने अपने पति का परित्याग कर दिया था। स्वामी रामचरण के अंतिम समय में स्वरूपा स्वामी जी के निकट थीं। 'गुरलीला विलास' में जगन्नाथ ने स्वरूपा की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि —

"नवलराम के कन्या जाई।
सो बेटा सूं भई सवाई।
जाकी महिमा किस विधि कीजै।
सो मेरा के जोड़े दीजै।

× × ×

मीरा निज खावंद सूं मुरड़ी।
ऐसी करी सरूपा करड़ी।"[२]

किन्तु विशेष स्थिति के बावजूद भी स्वामी जी ने स्वरूपा को साधु-जीवन में आने की अनुमति दे दी हो, इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। गुरलीला विलासकार स्वरूपा की तुलना मीरां से करता है, अतः यदि स्वामी रामचरण ने उसे विरागिनी बनने की आज्ञा दी होती तो जगन्नाथ उसे अवश्य महत्त्व देकर अपने जीवनी-ग्रंथों में चर्चा करते। फिर स्वामी राम चरण के २२५ शिष्यों में स्वरूपा का कहीं नामोल्लेख नहीं है। यदि स्वामी रामचरण ने उसे वैराग्य धारण कराया होता तो उसका नाम भी वैरागी शिष्यों में प्रमुखता से आया होता। फिर यदि पंथ में स्त्री-प्रवेश की अनुमति स्वामी रामचरण ने दे दी होती तो पर-वर्त्ती आचार्यो ने भी इस परम्परा का पालन अवश्य किया होता। वर्तमान में मुझे नहीं विदित है कि कोई स्त्री पंथ में विरागिनी के रूप में प्रतिष्ठित है। वेस्मकट महोदय को यह धारणा स्वरूपाबाई की स्वामी रामचरण से अति निकटता के कारण हुई प्रतीत होती है। यह भी

१. Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

२. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

संभव है कि संतों की समाधियों के पास स्वरूपा की समाधि देखकर वेस्मकट ने यह धारणा बना ली हो।

पंथ का सम्पूर्ण स्वरूप-विधान स्वामी रामचरण ने ही कर दिया था यह कहना समीचीन नहीं है। स्वामी रामचरण ने अपने संतों के लिए जो आचार-संहिता बनायी थी उसका उन्होंने स्वयं उल्लेख किया है। जगन्नाथ ने भी 'गुरलीला विलास' में रामसनेही के जो लक्षण लिखे है, उन्हें भी स्वामी रामचरण निर्मित माना जा सकता है क्योंकि जगन्नाथ 'गुरलीला विलास' की रचना संवत् १८६० में पूर्ण कर चुके थे जो स्वामी रामचरण का जीवनी-ग्रंथ होने के कारण उनसे संबंधित तथ्यों का उल्लेख करता है। इसके अतिरिक्त पंथ के साधुओं के लिए अन्य विधान स्वामी जी के परवर्ती आचार्यो स्वामी रामजन एवं स्वामी दुल्हैराम द्वारा किया गया।

रामसनेही गृहस्थ

रामसनेही सम्प्रदाय में गृहस्थों का महत्त्व अन्य पंथों एवं सम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक है। स्वामी रामचरण के सम्पूर्ण साम्प्रदायिक जीवन में गृहस्थ शिष्य प्रमुख रहे हैं। 'गुरलीला विलास' एवं 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में जीवनीकार जगन्नाथ ने स्वामी जी के उत्तराधिकारी स्वामी रामजन को छोड़कर किसी भी साधु शिष्य का नामोल्लेख नहीं किया है। जगन्नाथ स्वयं भी गृहस्थ शिष्य थे। आज भी सम्प्रदाय में गृहस्थ शिष्यों की महत्ता एवं मर्यादा वैसी ही है। कैप्टेन वेस्मकट ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि—

"The laity, known by the general name of Girhist, are at liberty at any time to enter the heirarchy and the office of the Mahant is open to them."[1]

किन्तु किसी गृहस्थ ने गार्हस्थ छोड़कर सीधे महंत पद सम्हाला हो, ऐसा नहीं हुआ है। हाँ, यह अवश्य है कि कोई भी महंत केवल साधुओं द्वारा प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। महंत के मनोनयन में गृहस्थों की भूमिका महत्त्वपूर्ण और अपरिहार्य होती है। स्वामी रामचरण द्वारा निर्मित जिस आचार-संहिता का उल्लेख साधु-लक्षण शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है, वस्तुतः उन सभी का आचरण गृहस्थों से भी अपेक्षित है। भीलवाड़े में जब स्वामी रामचरंण ने रामसनेही छाप का प्रकाशन किया, उस समय उनके साधु-शिष्य कितने थे, इसका उल्लेख जीवनीकार ने नहीं किया है। हाँ, गृहस्थ शिष्यों देवकरण, कुशलराम और नवलराम की महत्ता बार-बार प्रतिपादित हुई है। अतः आचार-संहिता का उद्घोष करते समय स्वामी रामचरण के मस्तिष्क में गृहस्थ अवश्य थे और प्रमुख रूप से थे।

कैप्टेन वेस्मकट ने रामसनेही गृहस्थों के आचरण की नियमावली इस प्रकार प्रस्तुत की है—

---

1. Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

"They are partilcularly enjoined to speak the truth to be constant in their affections and just and honest in their dealings."[1]

रामसनेही सम्प्रदाय में वेस्मकट के अनुसार पंथ में व्यय के लिए गृहस्थ अनुयायी ही धन प्राप्त करते थे। शाहपुरा के सम्प्रदाय के दो बनिये रुपया ग्रहण करने, ऋण देने और पवित्र भाईचारे के कारण व्यापार चलाने के लिए नियुक्त थे।[2]

स्वामी रामचरण ने धन-संबंधी सम्पूर्ण व्यवस्था गृहस्थ रामसनेहियों के हाथ में दे रखी थी। उन्होंने साधुओं को इससे दूर रखा। यहाँ तक कि रामसनेही साधु भोजन स्वयं नहीं बनाते थे। भोजन का प्रबंध शाहपुरा शहर में रामसनेही गृहस्थों की देख-रेख में होता था और बना-बनाया भोजन समय से 'रामनिवास धाम' में पहुँच जाता था। रामसनेही गृहस्थ संतों का बड़ा सम्मान करते थे और सन्त भी गृहस्थों को सम्मान देते थे।[3]

मैं समझता हूँ कि साधु एवं गृहस्थ रामसनेहियों का यह संतुलित समन्वय स्वयं स्वामी रामचरण ने स्थापित किया था। अन्य सम्प्रदायों और पंथों में इस प्रकार के समन्वय का सर्वथा अभाव दीखता है। इस समन्वय का ही परिणाम है कि रामसनेही सम्प्रदाय स्थापना-काल की विषम परिस्थितियों को झेलकर आगे निकल गया और निरन्तर विकास के सुदृढ़ सोपान पर चढ़ता चला जा रहा है। वस्तुतः यह सम्प्रदाय के विधाता स्वामी रामचरण की निपुणता का परिचायक है।

शिष्य परम्परा

साधु शिष्य

परचीकार लालदास के अनुसार स्वामी रामचरण के शिष्यों की संख्या २२५ थी।[4]

---

1. Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

2. 'Lay followers receive money for the use of the order and two Banias of the sect residing in Shahpura are appointed expressly to receive remittances, lent out money and carry on trade on account of the holy fraternity.

—Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

३. सन् १९५३ में फूलडोल के अवसर पर शाहपुरा में उपस्थित होकर मैंने स्वयं साधु-गृहस्थ-समन्वय का दृश्य अपनी आँखों देखा था। शहर के भीतर 'राम हवेली' में भोजन बनता था और बैलगाड़ी पर लाद कर 'रामनिवास धाम' पहुँचाया जाता था। पूज्य श्री नानूराम जी भण्डारी [अब स्वर्गीय] ने मुझे रामहवेली में निवास करने की आज्ञा दी थी। वहाँ श्री रामविलास विजयवर्गीय मुनीम थे और अन्य राम सनेही गृहस्थों की देखरेख में पंथ का कारबार चलता था।—लेखक।

४. स्वामी रामचरण के शिष दो सै पचीस—'परची', ह० प्र०।

पंडित मोतीलाल मेनारिया भी इस संख्या से सहमत हैं।[1] इस संबंध में 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने बहुत स्पष्ट लिखा है—"किंवदंती के अनुसार २२५ शिष्य माने जाते हैं, पर अद्यावधि सम्पूर्ण नामावली उपलब्ध नहीं हो सकी है।"[2] साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रंथों में 'परची' को छोड़कर २२५ की संख्या का किसी में उल्लेख नहीं है। 'गुरलीला विलास' और 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' दोनों ही ग्रंथों में जगन्नाथ ने इसकी कोई चर्चा नहीं की है। पता नहीं डॉक्टर अमरचन्द वर्मा को 'गुरलीला विलास' की किस प्रति में यह २२५ की संख्या उपलब्ध हुई है, डॉ० वर्मा लिखते हैं कि—"स्वामी रामचरण के २२५ शिष्य होने की बात जहाँ सम्प्रदाय के ग्रंथों से प्राप्त होती है, वहाँ हिन्दी संत साहित्य के विद्वान् भी इसका समर्थन करते हैं।"[3] फुटनोट में डॉक्टर वर्मा ने 'गुरलीला विलास' को संदर्भित करके 'परची' की फुटनोट में उद्धृत पंक्ति उद्धृत कर दी है। फिर वे आचार्य पंडित परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' के पृष्ठ ६१९ की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। निवेदन है कि पृ० ६१९ देखने पर भी निराशा ही हाथ लगती है। इस संदर्भ में 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों का मत ही समीचीन जान पड़ता है। वस्तुतः २२५ की संख्या का आधार किंवदन्ती ही है। इसी ग्रंथ में थोड़े-से शिष्यों की नामावली दी गई है जिसे लेखकों ने शाहपुरा 'रामनिवास धाम' की 'बारादरी' और भीलवाड़ा रामद्वारे की भित्ति पर लिखा हुआ पाया है। यह संख्या १६७ ठहरती है।

बारह थम्बे के साध

कैप्टेन वेस्मकट के अनुसार स्वामी रामचरण के बारह प्रमुख शिष्य थे जिन्हें उन्होंने अपने शिष्यों में से चुना था। इनमें से किसी स्थान के रिक्त होने पर उस रिक्ति की पूर्ति सर्वाधिक योग्य वरिष्ठों में से की जाती थी। इस प्रथा का अनुसरण उनके उत्तराधिकारी भी कर रहे हैं। इन्हें 'बारह थम्बे के साध' कहा जाता है।[4] इन बारह शिष्यों की चर्चा जीवनीकार जगन्नाथ या परचीकार लालदास ने नहीं की है। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने 'द्वादश प्रमुख शिष्य' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है कि 'रामस्नेही सम्प्र-

---

१. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पृ० ८२।
२. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ४२।
३. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ७५।
4. Ramcharan had twelve pupils or disciples, called Chela whom he selected from the priesthood, filling up vacancies as they occurred, from the most virtuous of the elders and this custum is continued by his successors. They are called the "Baruh Thumbe ke sadh" or "disciples of twelve pillars."

—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

"They are partilcularly enjoined to speak the truth to be constant in their affections and just and honest in their dealings."[1]

रामसनेही सम्प्रदाय में वेस्मकट के अनुसार पंथ में व्यय के लिए गृहस्थ अनुयायी ही धन प्राप्त करते थे। शाहपुरा के सम्प्रदाय के दो बनिये रुपया ग्रहण करने, ऋण देने और पवित्र भाईचारे के कारण व्यापार चलाने के लिए नियुक्त थे।[२]

स्वामी रामचरण ने धन-संबंधी सम्पूर्ण व्यवस्था गृहस्थ रामसनेहियों के हाथ में दे रखी थी। उन्होंने साधुओं को इससे दूर रखा। यहाँ तक कि रामसनेही साधु भोजन स्वयं नहीं बनाते थे। भोजन का प्रबंध शाहपुरा शहर में रामसनेही गृहस्थों की देख-रेख में होता था और बना-बनाया भोजन समय से 'रामनिवास धाम' में पहुँच जाता था। रामसनेही गृहस्थ संतों का बड़ा सम्मान करते थे और सन्त भी गृहस्थों को सम्मान देते थे।[३]

मैं समझता हूँ कि साधु एवं गृहस्थ रामसनेहियों का यह संतुलित समन्वय स्वयं स्वामी रामचरण ने स्थापित किया था। अन्य सम्प्रदायों और पंथों में इस प्रकार के समन्वय का सर्वथा अभाव दीखता है। इस समन्वय का ही परिणाम है कि रामसनेही सम्प्रदाय स्थापना-काल की विषम परिस्थितियों को झेलकर आगे निकल गया और निरन्तर विकास के सुदृढ़ सोपान पर चढ़ता चला जा रहा है। वस्तुतः यह सम्प्रदाय के विधाता स्वामी रामचरण की निपुणता का परिचायक है।

शिष्य परम्परा

साधु शिष्य

परचीकार लालदास के अनुसार स्वामी रामचरण के शिष्यों की संख्या २२५ थी।[४]

---

1. Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

2. 'Lay followers receive money for the use of the order and two Banias of the sect residing in Shahpura are appointed expressly to receive remittances, lent out money and carry on trade on account of the holy fraternity.

—Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

३. सन् १९५३ में फूलडोल के अवसर पर शाहपुरा में उपस्थित होकर मैंने स्वयं साधु-गृहस्थ-समन्वय का दृश्य अपनी आँखों देखा था। शहर के भीतर 'राम हवेली' में भोजन बनता था और बैलगाड़ी पर लाद कर 'रामनिवास धाम' पहुँचाया जाता था। पूज्य श्री नानूराम जी भण्डारी [अब स्वर्गीय] ने मुझे रामहवेली में निवास करने की आज्ञा दी थी। वहाँ श्री रामविलास विजयवर्गीय मुनीम थे और अन्य राम सनेही गृहस्थों की देखरेख में पंथ का कारबार चलता था।—लेखक।

४. स्वामी रामचरण के शिष दो सै पचीस—'परची', ह० प्र०।

पंडित मोतीलाल मेनारिया भी इस संख्या से सहमत हैं।[1] इस संबंध में 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने बहुत स्पष्ट लिखा है—"किवदंती के अनुसार २२५ शिष्य माने जाते हैं, पर अद्यावधि सम्पूर्ण नामावली उपलब्ध नहीं हो सकी है।"[2] साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रंथों में 'परची' को छोड़कर २२५ की संख्या का किसी में उल्लेख नहीं है। 'गुरलीला विलास' और 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' दोनों ही ग्रंथों में जगन्नाथ ने इसकी कोई चर्चा नहीं की है। पता नहीं डॉक्टर अमरचन्द वर्मा को 'गुरलीला विलास' की किस प्रति में यह २२५ की संख्या उपलब्ध हुई है, डॉ० वर्मा लिखते हैं कि—"स्वामी रामचरण के २२५ शिष्य होने की बात जहाँ सम्प्रदाय के ग्रंथों से प्राप्त होती है, वहाँ हिन्दी संत साहित्य के विद्वान् भी इसका समर्थन करते हैं।"[3] फुटनोट में डॉक्टर वर्मा ने 'गुरलीला विलास' को संदर्भित करके 'परची' की फुटनोट में उद्धृत पंक्ति उद्धृत कर दी है। फिर वे आचार्य पंडित परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' के पृष्ठ ६१९ की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। निवेदन है कि पृ० ६१९ देखने पर भी निराशा ही हाथ लगती है। इस संदर्भ मे 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों का मत ही समीचीन जान पड़ता है। वस्तुतः २२५ की संख्या का आधार किंवदन्ती ही है। इसी ग्रंथ में थोड़े-से शिष्यों की नामावली दी गई है जिसे लेखकों ने शाहपुरा 'रामनिवास धाम' की 'बारादरी' और भीलवाड़ा रामद्वारे की भित्ति पर लिखा हुआ पाया है। यह संख्या १६७ ठहरती है।

बारह् थम्बे के साध

कैप्टेन वेस्मकट के अनुसार स्वामी रामचरण के बारह प्रमुख शिष्य थे जिन्हें उन्होंने अपने शिष्यों में से चुना था। इनमें से किसी स्थान के रिक्त होने पर उस रिक्ति की पूर्ति सर्वाधिक योग्य वरिष्ठों में से की जाती थी। इस प्रथा का अनुसरण उनके उत्तराधिकारी भी कर रहे हैं। इन्हें 'बारह थम्बे के साध' कहा जाता है।[4] इन बारह शिष्यों की चर्चा जीवनीकार जगन्नाथ या परचीकार लालदास ने नहीं की है। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने 'द्वादश प्रमुख शिष्य' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है कि 'रामस्नेही सम्प्र-

---

१. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पृ० ८२।

२. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ४२।

३. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ७५।

4. Ramcharan had twelve pupils or disciples, called Chela whom he selected from the priesthood, filling up vacancies as they occurred, from the most virtuous of the elders and this custum is continued by his successors. They are called the "Baruh Thumbe ke sadh" or "disciples of twelve pillars."

—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

दाय में द्वादश शिष्य सर्वोपरि वन्दनीय हैं।'[१] इसी ग्रंथ में 'रामरसांबुधि' की एक कविता द्वारा उन १२ शिष्यों की नामावली प्रस्तुत की गई है। ये शिष्य हैं[२]—१. सर्वश्री बल्लभराम, २. रामसेवक, ३. रामप्रताप, ४. चेतनदास, ५. कान्हड़दास, ६. द्वारिकादास, ७. भगवान दास, ८. रामजन, ९. देवादास, १०. मुरलीराम, ११. तुलसीदास, १२. नवलराम।

आचार्य पंडित परशुराम चतुर्वेदी एवं श्री प्रमथनाथ बोस ने भी इन बारह शिष्यों की बात कही है।[३] वेस्मकट के अनुसार ये बारहों शिष्य स्थायी रूप से शाहपुरा में नहीं रहते किन्तु चार या पाँच सदैव एक साथ वहाँ बने रहते हैं।[४]

उत्तरदायित्व

कैप्टेन वेस्मकट ने विस्तारपूर्वक एवं श्री परशुराम चतुर्वेदी तथा श्री प्रमथनाथ बोस ने संक्षेप में इन प्रमुखों के उत्तरदायित्वों का वर्णन किया है। वेस्मकट के अनुसार उनके कार्यो का विभाजन निम्नांकित प्रकार से हुआ था।

१. **कोतवाल**—मंदिर में जमा अन्न एवं औषधि के भण्डारी का काम करता है।

---

१. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ४२।

२. लैसामगरी सब साथ भगति हलमों करी भारी।
बलभराम बलवंत रामसेवक तप धारी।
रामप्रताप पुनीत दास चेतन सुख देही।
कान्हड़ करणीवान द्वारकादास विदेही।
भगवानदास भजनीक राम ही जन अधिकारी।
देवादास दिल सुद्ध जान मुरली तनधारी।
तुलसी तत परबीन नवल पुसती धरण्यारा।
ये द्वादश शिश साथ कल्यो रथ काटणहारा।

—रामरसाम्बुधि, भाग-२, पृ० १२३।

३. पंथ के संगठन के लिए बारह शिष्यों का एक समुदाय आरंभ से ही चला आता है जिनमें से किसी के मरते ही किसी दूसरे योग्य व्यक्ति द्वारा उस स्थान की पूर्ति कर दी जाती है।—उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६१९।

'Ramcharan had twelve chief disciples, a number which is kept up to the present day.'

—A History of Hindu Civilization During British Rule. Vol. I, p. 129.

४. 'The twelve does not reside permanently at shahpura, but four or five are always found there at one time.'

—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

ह महंत के आदेश से अन्न वितरित करता है। साधुओं का मध्यरात्रि की उपासना के लिए ाह्वान करना कोतवाल का ही कर्त्तव्य है।

२. **कपड़ेदार**—यह सम्प्रदाय के साधुओं के लिए गृहस्थों एवं अतिथियों द्वारा प्रदत्त ती-ऊनी वस्त्रों का अधिकारी होता है।

३. **निरीक्षक**—यह साम्प्रदायिक भ्रातृत्व के आचरण एवं नैतिक चरित्र पर कड़ी ागरानी रखता है।

४. चौथा साधुओं को पढ़ाता है।

५. पाँचवाँ लेखन की शिक्षा देता है।

६. छठाँ सभी मतानुयायियों को पढ़ाने-लिखाने के लिए नियुक्त होता है जो उससे ावेदन करते हैं।

७. सातवाँ अपनी आयु एवं उदासीन प्रकृति के कारण स्त्रियों को शिक्षित करने ं लिए चुना जाता है।

ोष पाँच

शेष पाँच तथा द्वादश में से ही इनके अतिरिक्त तीन और को मिला कर आठ ाधुओं की एक परिषद् महंत द्वारा नियुक्त की जाती है। यह परिषद पंथ के साधुओं द्वारा थ के नियमों का उल्लंघन एवं अन्य अपराधों की जाँच करती है।[1]

---

1. "One of them lenominated Kotwal acts as steward of the grain ıd medicines deposited in the temple and distributes a daily allowence ˜ food to the inmates. ....It is also the duty of the Kotwal to ımmon the priests to midnight prayer.

Another of the body called kap.redar · Keeper of the ardrobe-has charge of various kinds of clothes presented by the laity ıd strangers for the use of the brotherhood, these includex coarse otton, blankets and other woollens.

A third fills the office of censor, and maintains strict watch over ıe manners and moral conduct of the fraternity. A fourth tcaches ıe priesthood to read, and a fifth instruct them in writing.

Another is appointed to teach reading and writing to men of l persuasions who apply to him, while a seventh, usually selected for s age and saturnine temper, instructs females in the same acquirements.

The remaining five, with three disciples chosen indifferently om among those mentioned above, from a council of eight, appointed

कैप्टन वेस्मकट ने इन बारह शिष्यों की चर्चा वर्तमान काल में की है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि यह व्यवस्था स्वामी रामचरण ने की थी और उनके उत्तराधिकारियों द्वारा इसका पालन हो रहा है। स्मरणीय है कि वेस्मकट महंत नारायणदास के समकालीन थे और उनसे तीन बार भेंट करने गये थे। अतः यह तो निश्चित हो गया कि नारायणदास जी के समय में 'बारह थम्बे के साध' अस्तित्व में थे और अपनी-अपनी भूमिका सफलतापूर्वक निभा रहे थे किन्तु बाद में यह व्यवस्था समाप्त हो गई। मैंने शाहपुरा में सम्प्रदाय के अधिकारियों से पूछताछ की थी किन्तु उन लोगों ने इस सन्दर्भ में अपनी अनभिज्ञता ही प्रदर्शित की। पर स्वामी जी के बारह शिष्यों की नामावली और उन लोगों के द्वारा सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार की गाथा सम्प्रदाय में आज भी प्रचलित है। यह बात भिन्न है कि आज वैसे बारह शिष्य व्यवस्था के लिए नहीं चुने जा रहे हैं। समय के अनुसार परिवर्त्तन होता ही है। अब महंत के नीचे व्यवस्था का सम्पूर्ण बोझ भण्डारी सम्हालता है और कोतवाल के पद पर अब भी कोई साधु नियुक्त होता है।

स्वामी रामचरण के उक्त द्वादश शिष्यों में से रामजन जी उनके स्वर्गवास के बाद आचार्य-पीठ पर आसीन हुए। इन बारह थम्बे के साधुओं में स्वामी जी ने एक गृहस्थ शिष्य भी सम्मिलित किया था। ये थे शीलव्रत धारी नवलराम जी जिन्होंने स्वामी जी की वाणी को अंगबद्ध करके उसका सम्पादन किया था। शेष दस शिष्यों ने राजस्थान-मालवा के विभिन्न स्थानों में रामद्वारे स्थापित कर 'राम धर्म' का प्रचार किया। डॉक्टर अमरचंद वर्मा ने इन दसों संतों एवं उनके द्वारा स्थापित रामद्वारों के स्थानों की तालिका इस प्रकार दी है।[१] साम्प्रदायिक सूत्रों ने भी इसकी पुष्टि की है—

१. श्री वल्लभराम—बीकानेर
२. श्री रामसेवक—उदयपुर
३. श्री रामप्रताप—माधोपुर
४. श्री चेतनदास—कोटा
५. श्री [illegible]—[illegible]
६. श्री द्वारकादास—धलपट (मालवा)
७. श्री भगवानदास—जोधपुर

---

by the Mahant to invastigate into offences and infrigements of the rules of the order"

—Capt. G. E. Westmacott : Some account of a Sect of Hindu Schismatics in western India, calling themselves Ramsanehi or friends of God.

—Journal of The Asiatic Society Feb. 1835.
A history of Hindu Civilization During British Rule Vol. I,p. 1

१. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ७७।

८. श्री देवादास—प्रतापगढ़
९. श्री मुरलीराम—रायपुर
१०. श्री तुलसीदास—खानपुर (कोटा)

खालसा

स्वामी रामचरण के पश्चात् आचार्य पद पर बैठने वाले आचार्यों की शिष्य-परंपरा के साधुओं को 'खालसा' कहते हैं।

थांभायत

उपर्युक्त शिष्यों द्वारा स्थापित रामद्वारों की शिष्य-परम्परा को 'थांभायत' कहते हैं।

गृहस्थ शिष्य

यह भलीभाँति स्पष्ट हो चुका है कि रामसनेही सम्प्रदाय में गृहस्थ शिष्यों का विशिष्ट स्थान है। वस्तुतः पंथ-संचालन के लिए स्वामी रामचरण ने साधु और गृहस्थों को समान महत्ता दी और पंथ-शकट के दो पहिए के रूप में आज भी दोनों सम्प्रदाय की व्यवस्था सम्हाले हुए हैं। संभवतः इसीलिए स्वामी जी ने नवलराम को गृहस्थ होने के बाद भी बारह शिष्यों में स्थान दिया था। साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रंथों मे गृहस्थ-शिष्यों की ही चर्चा है। इसका कारण यह है कि स्वामी रामचरण ने पंथ-स्थापन के बाद सीधे लोगों को साधु बनने की प्रेरणा नहीं दी प्रत्युत् गृहस्थों में से कुछ को पहले विश्वास में लिया जिन्होंने आगे चलकर भीलवाड़ा-संघर्ष में पंथ की ओर से प्रमुख भाग लिया।

शीलव्रत

पंथ-विकास की परम्परा में 'शीलव्रत' का अपना एक विशिष्ट स्थान है। मैंने अभी निवेदन किया है कि स्वामी जी ने पंथ-संस्थापन के संदर्भ में लोगों को पहले साधु नहीं बनाया। वस्तुतः उन्होंने अपने गृही शिष्यों को शीलव्रत लेने की प्रेरणा दी। शीलव्रत ब्रह्मचर्य पालन को कहा जाता है। अस्तु, स्वामी रामचरण ने अपने शिष्यों को गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए शीलव्रत धारण करने की प्रेरणा दी। शीलव्रतधारी व्यक्ति गृहस्थ वेश में ही साधु सदृश रहता है। अतः शीलव्रतधारियों की एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थिति सम्प्रदाय में है।

शीलव्रती कतिपय प्रमुख शिष्य

देवकरण, कुशलराम और नवलराम[1] जिन्होंने भीलवाड़ा-संघर्ष में प्रमुख भूमिका

---

१. स्वामी रामचरण के ग्रही शिष्य अनेक।
देवकरण कुसला नवल मुखिया तीन विसेष।
मुखिया तीन विसेष सील तीनूं ने लिया।—'परची', लालदास।

कैप्टन वेस्मकट ने इन बारह शिष्यों की चर्चा वर्तमान काल में की है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि यह व्यवस्था स्वामी रामचरण ने की थी और उनके उत्तराधिकारियों द्वारा इसका पालन हो रहा है। स्मरणीय है कि वेस्मकट महंत नारायणदास के समकालीन थे और उनसे तीन बार भेंट करने गये थे। अतः यह तो निश्चित हो गया कि नारायणदास जी के समय में 'बारह थम्बे के साध' अस्तित्व में थे और अपनी-अपनी भूमिका सफलतापूर्वक निभा रहे थे किन्तु बाद में यह व्यवस्था समाप्त हो गई। मैंने शाहपुरा में सम्प्रदाय के अधिकारियों से पूछताछ की थी किन्तु उन लोगों ने इस सन्दर्भ में अपनी अनभिज्ञता ही प्रदर्शित की। पर स्वामी जी के बारह शिष्यों की नामावली और उन लोगों के द्वारा सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार की गाथा सम्प्रदाय में आज भी प्रचलित है। यह बात भिन्न है कि आज वैसे बारह शिष्य व्यवस्था के लिए नहीं चुने जा रहे हैं। समय के अनुसार परिवर्त्तन होता ही है। अब महंत के नीचे व्यवस्था का सम्पूर्ण बोझ भण्डारी सम्हालता है और कोतवाल के पद पर अब भी कोई साधु नियुक्त होता है।

स्वामी रामचरण के उक्त द्वादश शिष्यों में से रामजन जी उनके स्वर्गवास के बाद आचार्य-पीठ पर आसीन हुए। इन बारह थम्बे के साधुओं में स्वामी जी ने एक गृहस्थ शिष्य भी सम्मिलित किया था। ये थे शीलव्रत धारी नवलराम जी जिन्होंने स्वामी जी की वाणी को अंगबद्ध करके उसका सम्पादन किया था। शेष दस शिष्यों ने राजस्थान-मालवा के विभिन्न स्थानों में रामद्वारे स्थापित कर 'राम धर्म' का प्रचार किया। डॉक्टर अमरचंद वर्मा ने इन दसों संतों एवं उनके द्वारा स्थापित रामद्वारों के स्थानों की तालिका इस प्रकार दी है।[१] साम्प्रदायिक सूत्रों ने भी इसकी पुष्टि की है—

१. श्री वल्लभराम—बीकानेर
२. श्री रामसेवक—उदयपुर
३. श्री रामप्रताप—माधोपुर
४. श्री चेतनदास—कोटा
५. श्री कान्हड़दास—सागवाड़ा
६. श्री द्वारकादास—धलपट (मालवा)
७. श्री भगवानदास—जोधपुर

---

by the Mahant to investigate into offences and infrigements of the rules of the order"

—Capt. G. E. Westmacott : Some account of a Sect of Hindu Schismatics in western India, calling themselves Ramsanchi or friends of God.

—Journal of The Asiatic Society Feb. 1835.

A history of Hindu Civilization During British Rule Vol. I,p. 1

१. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ७७।

८. श्री देवादास—प्रतापगढ़
९. श्री मुरलीराम—रायपुर
१०. श्री तुलसीदास—खानपुर (कोटा)

खालसा

स्वामी रामचरण के पश्चात् आचार्य पद पर बैठने वाले आचार्यों की शिष्य-परंपरा के साधुओं को 'खालसा' कहते हैं।

थांभायत

उपर्युक्त शिष्यों द्वारा स्थापित रामद्वारों की शिष्य-परम्परा को 'थांभायत' कहते हैं।

गृहस्थ शिष्य

यह भलीभाँति स्पष्ट हो चुका है कि रामसनेही सम्प्रदाय में गृहस्थ शिष्यों का विशिष्ट स्थान है। वस्तुतः पंथ-संचालन के लिए स्वामी रामचरण ने साधु और गृहस्थों को समान महत्ता दी और पंथ-शकट के दो पहिए के रूप में आज भी दोनों सम्प्रदाय की व्यवस्था सम्हाले हुए हैं। संभवतः इसीलिए स्वामी जी ने नवलराम को गृहस्थ होने के बाद भी बारह शिष्यों में स्थान दिया था। [illegible] साक्ष्य ग्रंथों में गृहस्थ-शिष्यों की ही चर्चा है। इसका कारण यह है कि स्वामी रामचरण ने पंथ-स्थापन के बाद सीधे लोगों को साधु बनने की प्रेरणा नहीं दी प्रत्युत् गृहस्थों में से कुछ को पहले विश्वास में लिया जिन्होंने आगे चलकर भीलवाड़ा-संघर्ष में पंथ की ओर से प्रमुख भाग लिया।

शीलव्रत

पंथ-विकास की परम्परा में 'शीलव्रत' का अपना एक विशिष्ट स्थान है। मैंने अभी निवेदन किया है कि स्वामी जी ने पंथ-संस्थापन के संदर्भ में लोगों को पहले साधु नहीं बनाया। वस्तुतः उन्होंने अपने गृही शिष्यों को शीलव्रत लेने की प्रेरणा दी। शीलव्रत ब्रह्मचर्य पालन को कहा जाता है। अस्तु, स्वामी रामचरण ने अपने शिष्यों को गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए शीलव्रत धारण करने की प्रेरणा दी। शीलव्रतधारी व्यक्ति गृहस्थ वेश में ही साधु सदृश रहता है। अतः शीलव्रतधारियों की एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थिति सम्प्रदाय में है।

शीलव्रती कतिपय प्रमुख शिष्य

देवकरण, कुशलराम और नवलराम[1] जिन्होंने भीलवाड़ा-संघर्ष में प्रमुख भूमिका

---

१. स्वामी रामचरण के ग्रही शिष्य अनेक।
देवकरण कुसला नवल मुखिया तीन विसेष।
मुखिया तीन विसेष सील तीनूं ने लिया।—'परची', लालदास।

निभायी थी, पहले शीलव्रत धारण करने वाले शिष्य थे। ये तीनों भीलवाड़ा के प्रमुख वैश्य परिवारों के व्यक्ति थे। अभी इन लोगों की अवस्था भी कम ही थी। ऐसी स्थिति में शीलव्रत लेनें पर इन लोगों के परिवारों में स्वामी रामचरण के प्रति जो आक्रोश उत्पन्न हुआ वह सहज ही था। गुरलीला विलासकार ने देवकरण के परिवार में उत्पन्न विवाद-ग्रस्त परिस्थिति का वर्णन किया है जिसकी चर्चा पिछले अध्याय मे हो चुकी है।

स्वरूपाबाई

ये स्वामी रामचरण के प्रमुख शिष्य नवलराम की पुत्री थीं। पीछे स्वामी जी के जीवन-वृत्त एवं स्त्री-पंथ-प्रवेश के संदर्भ में स्वरूपाबाई की चर्चा हो चुकी है। 'गुरलीला विलास' में जगन्नाथ ने स्वरूपा की प्रशंसा करते हुए उसकी तुलना मीराँ से की है। मीराँ के समान स्वरूपा भी अपने पति का परित्याग कर दिया था[1] और स्वामी रामचरण का शिष्यत्व ग्रहण कर उनके सान्निध्य में जीवन-पर्यन्त रहीं। कैप्टेन वेस्मकट ने भी स्वरूपा को स्वामी रामचरण की समर्पित शिष्या कहा है और उसके पति-त्याग की चर्चा करते हुए उसे पंथ में स्त्री-प्रवेश का उदाहरण माना है।[2] स्वरूपा शीलव्रत धारण कर गुरु एवं सम्प्रदाय की सेवा में लीन हुई थीं।

कतिपय अन्य शिष्य[3]

'गुरलीला विलास' में जगन्नाथ ने कतिपय और शिष्यों की चर्चा की है जिन्होंने शीलव्रत ग्रहण कर जीवन को सफल बनाया है।[4] सीताराम, सेवाराम, भूपसिंह शक्तावत (ग्राम पानसल), मुरधर निवासी आणददास, शिम्भुराम सांगरे, मुरधर की बेजाबाई आदि के अतिरिक्त अर्जुन, जिसकी ३४ वर्ष की आयु में पत्नी का स्वर्गवास हो गया था, ने भी

---

१. जाकी महिमा किस बिध कीजै।
सो मीरा के जोड़े दीजे।

मीरा निज खावंद सूं मुरड़ी।
ऐसीं करो सरूपा करड़ी।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

2. 'A woman may become a priestess, as in the instance of Sarup, a devoted adheent of Ramcharan, by abandoning her hausband and offspring, and by confirming strictly to chastity and other status.'
—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

३. गुरलीला विलास, ह० प्र० छं० २६८-२८२।

४. वही, ह० प्र०, छं० २८३-२८८।

अपने भाई राजा भीमसिंह के पुर्नविवाह का प्रस्ताव इन्कार कर दिया और स्वामी रामचरण से निवेदन कर 'शील' ग्रहण कर लिया। इसी प्रकार देवकरण के पुत्र फतेहराम तथा गोविन्दराम समनाणी ने भी शीलव्रत ले लिया। शाहपुरा को काशी बनाने वाले बल्लू और समोर चारण भी उदासी बन गए। ऐसे ही अनेक लोगों ने शीलव्रत धारण कर अपना जीवन सफल किया।

आचार्य

आचार्य का निर्वाचन

रामसनेही सम्प्रदाय में आचार्य के मनोनयन की प्रणाली अन्य [illegible] से भिन्न है। यहाँ आचार्य के चुनाव के लिए लोकतांत्रिक पद्धति स्वीकृत है। आचार्य-पद के चुनाव में साधु और गृहस्थों को समान अधिकार प्राप्त हैं। ऐसा नहीं कि यह लोकतांत्रिक चुनाव-पद्धति आधुनिकता का परिणाम हो वरन् यह सम्प्रदाय के प्रारंभ से ही चली आ रही है। कैप्टेन वेस्मकट लिखते हैं कि महंत के देहावसान के बाद उसके उत्तराधिकारी के चुनाव के लिए शाहपुरा में साधुओं एवं गृहस्थों की एक सभा बुलायी जाती है। उत्तराधिकारी बुद्धिमत्ता एवं सद्गुणों के आधार पर निर्वाचित होता है। मरणोपरान्त तेरहवें दिन या अन्य किसी नियत दिन पर एकत्र समाज द्वारा नये आचार्य को पीठासीन कराया जाता है। उस दिन एक उत्सव में साधु लोग नगर की समस्त हिन्दू जनता में मिष्ठान्न वितरित करते हैं। यह वितरण नगर के भीतर राममेड़ी में होता है।[1]

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी इस संदर्भ की पुष्टि करती हैं—"मुख्यतः महन्त के मरने पर तेरहवें दिन उसका उत्तराधिकारी शाहपुर में एकत्र की गई वैरागियों व गृहस्थों की सभा द्वारा योग्यता के विचार से चुना जाता है और उसके उपलक्ष्य में वहाँ के 'राममरी' नामक मंदिर में एक सहभोज भी होता है।"[2]

अचार्य के चुनाव की इस प्रणाली पर पुराने साम्प्रदायिक साक्ष्य मौन हैं पर आधुनिक साम्प्रदायिक साक्ष्यग्रंथ 'श्री रामसनेही सम्प्रदाय' की निम्नलिखित पंक्तियाँ अवश्य ही ध्यान देने योग्य हैं। "जिस समय सम्प्रदाय की स्थापना के साथ-साथ ही इस पद्धति को

---

1. On the demise of a Mahant, an assembly of the priest and and laity is convened at Shahpura to elect a successor, who is chosen with reference alone to his wisdom and vertues. He is installed on the thirteenth day after the office falls vacant, on which occassion the Byragis entertain the entire Hindu population of the town with a banquet of sweetmeats at the temple within the city walls, known by the name of Rammeri. —Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

२. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६२०।

अपनाया गया, उस समय भारतवर्ष में राजा का पुत्र राजा और सम्प्रदाय के आचार्य का प्रधान शिष्य ही पीठाचार्य या प्रधानाचार्य का पद प्राप्त करता था। यह आश्चर्य की बात है कि चारों ओर सामन्ती वातावरण के होते हुए, राजा व जमींदारों के प्रभावशाली युग में यह प्रणाली किस प्रकार रखी गई और कैसे विकसित हुई।"[१] लेखक चुनाव-प्रणाली के इसी संदर्भ को आगे बढ़ाता हुआ कहता है—"आचार्य के चुनाव में गृहस्थों व साधुओं दोनों को समान अधिकार प्राप्त है। सारे भारतवर्ष के रामस्नेही संत व गृहस्थ इसमें भाग लेते हैं। गृहस्थों व साधुओं के प्रतिनिधियों की पहले अलग-अलग सभाएँ होती हैं और उसमें विचार-विमर्श के बाद सर्वसम्मति से किसी एक संत को आचार्य बनाने का निर्णय किया जाता है। कोई भी रामस्नेही संत, चाहे वह पीठ स्थान का शिष्य हो, खालसा का हो या थांभायत का हो, आचार्य पद के लिए मनोनीत किया जा सकता है···गृहस्थों व संतों के प्रतिनिधियों की निर्णायक समिति बारहद्वारी के ऊपर छत्रमहल में बैठ कर निर्णय करती है और नीचे हजारों की भीड़ निर्णय जानने के लिए सोत्सुक खड़ी रहती है। निर्णायक लोग निर्णय करके नीचे आते हैं और उस संत को जिसे उन्होंने चुना है—हाथ पकड़कर चुपचाप ऊपर ले जाते हैं तथा वहाँ गुदड़ी और अलफी पर बैठा देते हैं, यह आचार्य बनाने की मूक घोषणा है। इसके बाद दूसरे दिन वे संत विधिवत् आचार्य पद पर आसीन होते हैं। उस सुअवसर पर शाहपुरा के राजा, उदयपुर महाराणा के प्रतिनिधि व बैंदलाराव जी तीनों अपने-अपने राज्यों की ओर से पूरा सम्मान प्रदर्शित करते हैं।"[२]

सम्प्रदाय के पीठाचार्य का लोकतांत्रिक प्रणाली से मनोनयन पूर्व आधुनिक युग की विस्मयकारी किन्तु अभिनव घटना है। यद्यपि स्वामी रामचरण का चुनाव इस प्रणाली से नहीं हुआ था, क्योंकि वे तो स्वयं सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे पर प्रणाली के मूल में स्वामी जी के प्रगतिशील व्यक्तित्व का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। गृहस्थ एवं साधु शिष्यों को समान स्तर पर रखकर परस्पर एक-दूसरे के लिए सम्मान एवं विश्वास का भाव जगाने की प्रेरणा स्वामी रामचरण ने ही दी थी। बारह प्रमुख शिष्यों में एक गृहस्थ शिष्य रख कर उन्होंने सम्प्रदाय की सर्वोच्च परिषद् में गृहस्थों को प्रतिनिधित्व दिया था। इसी प्रकार सम्प्रदाय-संचालन तथा अन्य साम्प्रदायिक कार्यों में लगने वाले धन एवं साम्प्रदायिक आय का सारा विवरण पंथ के गृहस्थों के हाथ में ही उन्होंने दे रखा था, इसलिए आचार्य के चुनाव में भी उनका सहयोग प्राप्त करना स्वाभाविक ही था। किन्तु स्वामी रामचरण के पंथ में यह कार्य उनके युग से आगे का था। तात्पर्य यह कि स्वामी रामचरण का व्यक्तित्व नितांत प्रतिभासम्पन्न, दूरदर्शितापूर्ण एवं प्रगतिशील था। इन्हीं कारणों से अनास्था के इस युग में जहाँ अनेक साधु-पंथ पतनोन्मुख है, रामस्नेही-सम्प्रदाय निरंतर विकासोन्मुख है।

---

१. श्री रामस्नेही-सम्प्रदाय, पृ० १४७—वैद्य केवलस्वामी तथा अन्य।
२. वही, पृ० १४७-४८—वैद्य केवलस्वामी तथा अन्य।

आचार्य-परम्परा

स्वामी रामचरण द्वारा संस्थापित रामसनेही सम्प्रदाय का पीठस्थान शाहपुरा है। इस पीठ पर विराजने वाले आचार्यों की परम्परा अत्यन्त गौरवशालिनी रही है। मूलाचार्य स्वामी रामचरण के देहावसान के बाद उनके बारह शिष्यों में से एक वीतराग स्वामी रामजन जी आचार्य पद पर विराजमान हुए। जनश्रुति है कि स्वामी रामजन के चुनाव से असंतुष्ट होकर स्वामी रामचरण के बड़े शिष्य श्री रामप्रताप जी शाहपुरा छोड़कर माधोपुर चले गए और फिर वापस नहीं आए, किन्तु सम्प्रदाय में बने रहे। आज भी माधोपुर का राम द्वारा शाहपुरा रामसनेही सम्द्रदाय का ही रामद्वारा है। इस प्रसंग की चर्चा जब मैंने छतरीबाग में संत कन्हैयाराम जी से की तो उन्होंने हँसते हुए बतलाया कि "भाई, रामप्रताप जी को संतमत का समर्थन नहीं मिल सका था, इसलिए वे चले गए और स्वामी रामजन जी गद्दी पर असीन हुए, और कोई बात नहीं थी।"[1] मूलाचार्य स्वामी रामचरण के बाद शाहपुरा पीठ के आचार्यो की सूची निम्नलिखित है—

१. श्री महाराज रामजन
२. श्री महाराज दुल्हैराम
३. श्री महाराज चत्रदास
४. श्री महाराज नारायणदास
५. श्री महाराज हरिदास
६. श्री महाराज हिम्मतराम
७. श्री महाराज दिलशुद्धराम
८. श्री महाराज धर्मदास
९. श्री महाराज दयाराम
१०. श्री महाराज जगरामदास
११. श्री महाराज निर्भयराम
१२. श्री महाराज दर्शनराम
१३. श्री महाराज रामकिशोर

सम्प्रदाय के प्रवेशार्थी

पंथ में हिन्दू जाति के सभी लोगों को प्रवेश की सुविधा है।[2] कैप्टेन वेस्मकट लिखते

---

१. संत श्री कन्हैया राम जी से मेरी एक वार्ता—दिनांक १५ जून, ७३, इन्दौर। टिप्पणी—सन् १९५३ में फूलडोल के अवसर पर शाहपुरा में मुझे तत्कालीन आचार्य निर्भयराम जी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तभी पं० रामकिशोर जी (वर्तमान आचार्य) के संपर्क में आने का भी सुयोग मिला था—लेखक।

2. "All castes are admitted into the sect"—A History of Hindu civilization during British Rule. Vol. I p. 129-131, P. N. Bose

हैं कि, "रामसनेही सम्प्रदाय हिन्दू की सभी जातियों से बना है. . .उनके पूजा-स्थानों में ईसाई और मुसलमान भी जूता उतार कर आजादी से जा सकते हैं। किन्तु वेस्मकट को संदेह है कि वे लोग अपने साथ अन्य धर्मावलंवियों को भोजन करने देंगे।"[१]

अन्य धर्मावलंबियों के संबंध मे तो वेस्मकट अपनी बात कहते हैं किन्तु यदि उन्हें यह विश्वास था कि रामसनेहियों के पूजा स्थानों तक वे जा सकते थे तो फिर भोजन की कोई समस्या नहीं।

उपासना

निर्गुण 'राम' के उपासक रामसनेही साधु एवं गृहस्थ सामान्यतया प्रातः एवं सायं उपासना हेतु उपासना-भवनों जिन्हें रामद्वारा कहते हैं, में उपस्थित होते हैं। वेस्मकट ने तीन बार सामूहिक उपासना का आयोजन देखा है। उनके अनुसार सभी गृहस्थ अपने कार्य-व्यापारों में व्यस्त होने के कारण एक ही समय उपासना में नहीं उपस्थित हो पाते किन्तु जब आते है तो पूरे समय तक रहते हैं।[२] ये सामूहिक उपासनाएँ प्रातः, मध्याह्न और संध्या समय होती है। प्रातःकालीन उपासना अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इसमें सभी लोग सम्मिलित होते हैं। संध्याकालीन उपासना मे, जो एक घण्टे की होती है, केवल पुरुष ही भाग लेते हैं।[३] संध्योपासना आरती पदों के गान के साथ समाप्त होती है।

फूलडोल

रामसनेही सम्प्रदाय का फूलडोल महोत्सव बसंत काल में शाहपुरा और भीलवाड़ा दोनों स्थानों पर आयोजित होता है।[४] यह उत्सव पहले ४० दिन तक मनाया जाता था पर अब २५ दिन ही इसकी अवधि निर्धारित कर दी गयी है—फाल्गुन सुदी ११ से चैत सुदी ५ तक।

---

1. Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

2. Worship is performed three times a day, but the laity, busied in their wordly avocations, do not all go at one hour, though once seated, they remain in the temple till service is over.

—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

3. The Morning service is most important being joined in by the entire congregation... The evening service lasts for an hour and is attended only by men.—P. N. Bose.

—A History of Hindu Civilization During British Rule Vol. I, p. 129-131.

४. फूलडोल होइ दोइ सथाना। भीलाड़े साहिपुरे जाना।।
बरसाबरसी फागुणमास। दरसण आवे दास जग्यास।।

—गुरलीला विलास, ह० प्र०

चैत बदी १ से चैत बदी ५ तक अर्थात् ५ दिनों तक इसका रूप बृहत् होता है। फूलडोल के अवसर पर दूर-दूर के रामसनेही साधु एवं गृहस्थ शाहपुरा में एकत्र होते हैं। अन्य दर्शक गण भी आते हैं और एक विशाल मेला का रूप यह उत्सव ले लेता है।

नामकरण—इस महोत्सव का नाम फूलडोल क्यों पड़ा, यह प्रश्न अनेक विद्वानों द्वारा बिचारा गया है। कैप्टेन वेस्मकट ने इसका अर्थ 'फूलों का लहराना' लिखा है और इसे श्रीमद्-भागवत पुराण से संबंधित बतलाया है। वेस्मकट ने ऐसा ही एक उत्सव बंगाल तथा भारत के विभिन्न भागों में होना बतलाया है जिसमें चैत या वैशाख की पूर्णिमा की रात में भगवान को फूलों से सजा कर झुलाते हैं। आगे वेस्मकट कहते हैं कि उन्हें इस बात का संदेह ही बना रहा कि रामसनेहियों ने अपने महोत्सव का यह नाम क्यों रख लिया ?[1] डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी बसंत ऋतु मे पुष्प सौन्दर्य के विकास को ही इस पर्व के नामकरण का कारण समझते हैं।[2]

इस नामकरण का कारण जानने के लिए हमें साम्प्रदायिक साक्ष्य-ग्रंथों का सहारा लेना पड़ेगा। स्वामी रामचरण जी के जीवनीकार जगन्नाथ जी ने 'फूलडोल संवाद' नामक ग्रंथ का निर्माण किया था। इस ग्रंथ की रचना सं० १८४० वि० में अर्थात् स्वामी जी के जीवनकाल में ही हो गई थी।[3] इस ग्रंथ में फूलडोल मनाने का कारण और नामकरण का कारण दोनों ही जगन्नाथ ने स्पष्ट रूप से लिखा है—

"ऋतु वसंत फागुण में होई।
पूरनवांसी जानूं सोई।
सो दिन तो असुरन को होई।
ग्रह प्रह्लादजू जारे सोई।

---

1. 'The name of the festival, signifying "Flowers Swinging" is barrowed I understand from one of the eighteen Puranas called Srimath Bhagavat,....A festival is annually observed in Bengal, and probably in other parts of Hindustan, by the worshippers of the God on the full moon of Chyt or Bysakh, when he is encircled with wreaths of flowers,.....I obtained no satisfactory reason why the Ramsanehis, who do not observe the rite attended to, should give the name of Phuldol to their great annual meeting.'

—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

२. अप्रकाशित शोधप्रबंध—'रामसनेही सम्प्रदाय'—डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी, (गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रंथालय)।

३. संवत अठारा से बरस, चालीसा पर पांच।
सावण बदि पांचे मंगल, इस विधि जाणो सांच। [फूलडोल संवाद]
—रामचरण चरितावली, पृ० १२४

रामकृपा प्रह्लाद न जरिया।
फूलडोलता पीछे करिया।
देवन आई पोहोप बरषाये।
फूलडोल ता नाम कुहाये।"[1]

वसंत ऋतु के फागुन महीने में पूर्णमासी का दिन असुरों का दिन है। असुरों ने प्रह्लाद को जला देना चाहा था पर भक्त प्रह्लाद जलने से बच गया। इससे देवों को अपार हर्ष हुआ और उन लोगों ने आकाश से पुष्पवृष्टि की। इसी पुष्प-वर्षा को फूलडोल कहा गया है। इसी पुष्प-वर्षा से फूलडोल शब्द निकला।

फूलडोल का आरम्भ

भीलवाड़ा में फूलडोल—भीलवाड़ा में स्वामी रामचरण के तीन प्रमुख शिष्यों देवकरण, कुशलराम और नवलराम के मन में एक बार प्रह्लादोत्सव (होली पर्व) के दिन प्रह्लाद-कथा करने की अभिलाषा मन में जगी।[2] कथा के बाद सहज भाव से जो प्रसाद चढ़ा था उसे सभी में वितरित कर दिया गया। रात की वेला आई। नगर में ऊँचा आसन बनाया गया और स्वामी रामचरण जी से नगर में पधारने की प्रार्थना की गई।[3] रात में स्वामी जी नगर में पधारे और वहाँ सत्संग हुआ। नगर के अन्य लोग होली जलाने गए थे पर सभी सत्संगी सत्संग-स्थल पर उपस्थित थे। जगन्नाथ के अनुसार रात्रि-जागरण में कथा और नामस्मरण होता रहा।[4] इस प्रकार रतजगा के बाद प्रातःकाल स्वामी जी साधुओं समेत रामद्वारे चले आए और जिज्ञासु जन अपने-अपने घर गए। आगे जगन्नाथ ने भीलवाड़ा रामद्वारे का वर्णन किया है। इस प्रकार भीलवाड़ा में फूलडोल आरंभ हुआ जिसमें दूर-दूर से संत व गृहस्थ आकर सम्मिलित होते थे।

शाहपुरा में फूलडोल—स्वामी रामचरण ने शाहपुरा में छतरी में अपना स्थान बनाया और वहीं भजन करने लगे। अब स्वामी जी को शाहपुरा राज्य द्वारा राज्याश्रय प्राप्त था। राजा भीमसिंह एवं उनकी माता राजावत रानी दोनों ने स्वामी जी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था। राजा भीमसिंह से एक बार फूलडोल की चर्चा हुई, राजा अति प्रसन्न हुआ और इस भक्तिपर्व के आयोजन के लिए तत्पर हुआ। उसने अपनी माता से यह संदेश सुनाया, माता

---

१. फूलडोल समाद, ह० प्र०।
२. सबही के मनि ऊपजी, आजि उच्छव प्रह्लाद।
करो कथा प्रह्लाद की, ज्यूं छूटे जग बाद। —फूलडोल समाद, ह० प्र०
३. अरज करी गुरदेव सूं, रामसनेही दास।
महाराज पधारो सहर मैं, पूरो हमरी आस। —वही।
४. कर आसण बैठे सभी, भजे राम निज एक।
जगन्नाथ जाग्रण तणों, आगे कहूं विवेक। —वही।

अतीव प्रसन्न हुई और उन्होंने इस पुनीत कार्य के संकल्प के लिए अपने पुत्र को धन्यवाद दिया।[1]

अब फूलडोल के समय की प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक होने लगी। राजा ने अपने एक मंत्री शालिग्राम व्यास को बुलाकर फूलडोल महोत्सव की व्यवस्था का भार सौंपा। राजा का आदेश पाकर व्यास स्वामी रामचरण जी से मिले और तैयारी में लग गए। तभी पूर्णमासी का शुभ दिन आ गया और हर्षित पुरवासियों को फूलडोल का उत्सव भाया। पूनम की रजनी आई और राजा भीम तथा उनकी माता ने विचार किया कि जागरण के लिए स्वामी रामचरण जी को नगर में लाना चाहिए। शालिग्राम व्यास राजा की आज्ञानुसार छतरी में गए, उनके साथ अन्य रामसनेही थे। स्वामी जी से निवेदन कर उन्हें नगर में लाए। बाजार में ऊँचे आसन पर उन्हें विराजमान किया। इस प्रकार जागरण का उत्सव सम्पन्न हुआ।[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हुआ कि फूलडोल महोत्सव होली पर्व का परिमार्जित

---

१. फूलडोल की कथा चलानी।
जुगति जुगति जो सबै बखानी।
तबहीं हरष राजा मनि भयौ।
भगति उछाव करन मन दयौ।
यूं मन मोद माता पैं गये।
फूलडोल आगम सब कहे।
तब माता कह्यो धनि सुत मेरा।
भक्ति साजो भवसागर मेरा।

—फूलडोल समाद ह० प्र०

२. पुनि राजा कै मंत्री एका।
सालगराम सो व्यास बवेका।
ताकूं राजा लिए बुलाई।
फूलडोल की टहल भलाई।
× × ×
तबै व्यास मिलि रामसनेही।
सारी जुगति बनावै तेही।
तबहीं आई पूरणवांसी।
हरषमान हुआ पुरवासी।
फूलडोल सब के मन भावै।
कोई अधम की कही न जावै।
दिन बीते ऐसे बिध मांही।
पून्यू की अब रजनी आंही।
× × ×
मात-पुत्र दोउ करे बिचारा।
जाग्रण ह्वै हैं नगर मंझारा।

रूप है। इसे प्रह्लाद भक्त के उद्धार पर देवों द्वारा अभिव्यक्त उल्लास की स्मृति कहना चाहिए। रामभक्त प्रह्लाद रामधर्म के पालक रामसनेही जनों द्वारा आदर्श रूप में ग्रहण किये गये। इस अवसर पर प्रह्लाद-कथा के साथ-साथ 'नाम प्रताप' एवं 'अणभैवाणी' के अंशों का पाठ भी किया जाता है।

स्वामी रामचरण 'रामधर्म' के प्रचारक थे, वे समाज की विरूपताओं से परिचित थे। अतः यदि उन्होंने होली पर्व को परिमार्जित करने का प्रयास किया तो यह विस्मय की बात नहीं। कैप्टेन वेस्मकट को यदि 'फूलडोल समाद' ग्रंथ की सामग्री प्राप्त हो गई होती तो उन्हें भागवतपुराण आदि की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

स्वामी रामचरण के समय से ही भीलवाड़ा और शाहपुरा दोनों स्थानों पर फूलडोल होता है। स्वामी रामचरण के शाहपुरा आ जाने के बाद शाहपुरा की प्रमुखता हो गई। स्वामी रामचरण जहाँ रहते वही का फूलडोल महत्वपूर्ण हो जाता। धीरे-धीरे शाहपुरा का फूलडोल प्रधान हो गया। आज भी शाहपुरा में ही यह उत्सव प्रधान रूप से मनाया जाता है। स्वामी रामचरण जी के बाद के आचार्यो में महंत दुल्हैराम और महंत हिम्मतराम जी ने उदयपुर के महाराणा के अनुरोध पर उदयपुर में फूलडोल का उत्सव मनाया था।[1]

आज भी फूलडोल पूर्व परंपरा के अनुसार शाहपुरा में मनाया जाता है। इस अवसर पर रामसनेही साधुओं एवं गृहस्थों की बड़ी भीड़ होती है। अनेक अन्य मतानुयायी एवं धर्मावलम्बी भी प्रेक्षक के रूप में उपस्थित होते हैं। पाँच दिनों तक अच्छा खासा मेला रहता है। जागरण, वाणी-पाठ, नाम-प्रताप का पाठ आदि सभी कुछ पहले जैसा ही होता है। इसी अवसर पर अपराधी साधुओं के मामलों पर विचार होता है और अपराध सिद्ध होने पर

जाग्रण मांहि पधारैं स्वामी।
रामचरण जी सदा विष्यामी।
जाइ आग्यां दीन्हीं तबहीं।
जावो व्यास जी छतर्यां अबहीं।
× × ×
आग्यां पाइ व्यास जब चलिया।
ता संग रामसनेही मिलिया।
आये तब बाजार ज मांही।
बोहो विधि की बछवाति छांई।
जा बिचि ऊँचे आसण साजै।
याहां आइ माहाराज बिराजै। —फूलडोल समाद, ह० प्र०

१. "विक्रमी फाल्गुन शुक्ल ७ (हि० १२९१ ता० ५ मुहर्रम, ई० १८७४ ता० २३ फेब्रुअरी) को शाहपुरा के रामसनेही महंत हिम्मतराम अपने सम्प्रदाय की रीति का फूलडोल करने के लिए उदयपुर आए।" —वीर बिनोद, पृ० २११७।

उन्हें महंत द्वारा निष्कासित कर दिया जाता है। साधुवेश धारण करने वालों की दीक्षा भी फूलडोल के अवसर पर ही होती है।

चौमासा

रामसनेही साधु आसाढ़ सुदी ११ से कुवार सुदी १० तक एक ही स्थान पर निवास करते हैं। इसे चौमासा या चातुर्मास कहा जाता है। सम्प्रदाय के आचार्य का चातुर्मास कहाँ व्यतीत होगा, इसका निर्णय भी फूलडोल के अवसर पर होता है। भिन्न-भिन्न स्थानों के गृहस्थ रामसनेही अपने स्थान की ओर से आचार्य को आमंत्रित करते हैं। साधु एवं गृहस्थ परस्पर विचार-विमर्श करके आचार्य के चातुर्मास का निर्णय करते हैं। इसके लिए एक होड़-सी लग जाती है। यह निर्णय चैत बदी ५ को सुना दिया जाता है। जिस स्थान पर चौमासा बिताने का निर्णय होता है, उस स्थान के गृहस्थों को वाणी गुटका-पोथी दे दी जाती है। यह इस बात का द्योतक है कि चौमासा गुटका प्राप्त लोगों के स्थान पर होगा।

रामनिवास धाम

स्वामी रामचरण ने शाहपुरा मे आकर छतरी में निवास किया था। यह स्थान शाहपुरा के राज परिवार की श्मशान-भूमि रही है। रामचरण जी के देहावसान के बाद उनका दाह-संस्कार भी यहीं हुआ। इसी स्थान पर 'रामनिवास धाम' आज खड़ा है। यह 'रामनिवास धाम' श्वेत पत्थर की विशाल इमारत है। इसके प्रमुख द्वार को 'सूरज पोल' कहा जाता है। सीढ़ियों के ऊपर जाने पर बारहदरी की शोभा है। इसके बाद आचार्य-निवास कक्ष, भण्डार, हरि-निवास, हिम्मत-निवास, जग-निवास, हवामहल आदि स्थान हैं।

'रामनिवास धाम' का प्रबन्ध भण्डारी की ओर रहता है। वस्तुतः भण्डारी को सम्प्रदाय का सचिव समझा जाना चाहिए। आचार्य की ओर से पत्र-व्यवहारादि जितने भी कार्य होते हैं, वे सभी भण्डारी ही करता है। मैं समझता हूँ सम्प्रदाय में आचार्य के बाद दूसरा महत्वपूर्ण स्थान भण्डारी का ही होता है।[1]

स्वामी रामचरण का कम्बल

शाहपुरा के रामनिवास धाम में तोशनीवाल द्वारा स्वामी रामचरण जी को भेंट

---

१. जब मैं सन् ५३ में शाहपुरा गया था, श्री नानूराम जी महाराज भण्डारी पद पर कार्य कर रहे थे और आचार्य पद पर स्वर्गीय निर्भयराम जी थे। पूज्य भण्डारी जी अब इस संसार में नहीं हैं। मैंने उनके दर्शन किये थे। शाहपुरा आवास के समय मुझे उनसे जो स्नेह एवं सहयोग मिला, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। वह एक कुशल भण्डारी थे। उनकी ही कृपा से मैंने रामनिवास स्थित 'वाणी' की प्राचीनतम उपलब्ध हस्तलिखित प्रति का अवलोकन किया था जिसे स्वरूपाबाई की पुस्तक कहते हैं। कनवाई की पुस्तक भी यही देखने को मिली थी। —लेखक।

किया हुआ कम्बल आज भी रखा हुआ है। मुझे वह कम्बल पं० रामकिशोर जी (अब आचार्य) ने दिखलाया था। इन्दौर में सन्मुखराम जी ने मुझे बतलाया कि तोशनीवाल ने १२ कम्बल स्वामी जी समेत अन्य संतों को भी दिये थे, जिनमें से अब तक नौ कम्बलों की खोज हो चुकी है।

रामसनेही साहित्य

रामसनेही सम्प्रदाय के पास विशाल साहित्य भण्डार है। स्वामी रामचरण जी की अणभैवाणी के अतिरिक्त श्री रामजन जी की अणभैवाणी, श्री दुल्हैराम जी की अणभैवाणी, श्री हरिदास महाराज की अणभैवाणी, श्री वल्लभराम जी की अणभैवाणी, श्री चेतनदास जी की अणभैवाणी, श्री रामसेवक जी की स्तुति-साखी, श्री रामप्रताप जी की अणभैवाणी, श्री कान्हड़दास जी की अणभैवाणी, श्री द्वारकादास जी की अणभैवाणी, श्री भगवानदास की अणभैवाणी, श्री देवादास जी की अणभैवाणी, श्री मुरलीराम जी की अणभैवाणी श्री तुलसीदास की अणभैवाणी, श्री नवलराम जी की अणभैवाणी, स्वरूपा बाई के पद, श्री मुक्तराम जी की अणभैवाणी और श्री संग्रामदास जी के कुण्डलिये उपलब्ध हैं। इन सभी के अध्ययन और सम्पादन की आवश्यकता अपरिहार्य है।

चतुर्थ अध्याय

स्वामी रामचरण : रचनाएँ

अणभैवाणी : मुद्रित प्रति

स्वामी रामचरण की सम्पूर्ण रचनाओं का विशाल संग्रह 'स्वामी जी श्री रामचरण जी महाराज की अणभैवाणी' नाम से संवत् १९८१ तदनुसार सन् १९२५ ई० में सम्प्रदाय के तत्कालीन आचार्य श्री निर्भयराम जी महाराज की आज्ञा से साधु नैंनूराम जी ने बड़ौदा प्रिंटिंग प्रेस में मुद्रित कराकर प्रकाशित कराया। प्रस्तावनाकार साधु श्री कार्यराम जी के अनुसार भक्तजनों एवं जिज्ञासुओं के अनेक आग्रहों के फलस्वरूप ही महंत निर्भयराम जी ने ग्रंथ-प्रकाशन की अनुमति दी थी।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि पुरातनवादी संत 'अणभैवाणी' के प्रकाशन को उचित नहीं समझते थे क्योंकि पूजा की वस्तु 'वाणी' को वे किसी ऐसे व्यक्ति तक नहीं जाने देना चाहते थे जो उसका सम्मान न कर सके। इसी कारण जब 'वाणी' के प्रकाशन की योजना बनी तो 'रूढ़िवादी संतों ने इसका घोर विरोध किया था। ऐसी स्थिति में वाणी प्रकाशन की एक क्षीण परंपरा तो चली किन्तु प्रकाशित ग्रंथ सामान्य रूप से बाजारों में नहीं उपलब्ध हो सके. . .इसी का परिणाम है कि प्रायः सम्पूर्ण साहित्य साम्प्रदायिक केन्द्रों पर कपड़े की सात-सात, आठ-आठ तहों में बंधा हुआ आज तक पड़ा रह गया।'[2]

इसमें संदेह नहीं कि सम्प्रदाय में 'अणभैवाणी' का बड़ा सम्मान है और वह साधु एवं गृहस्थ सभी के लिए पूज्य ग्रंथ है। इसलिए जैसा कि डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी ने कहा है प्रकाशन का विरोध असंभव नहीं किन्तु सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार को ध्यान में रखकर पंथ-प्रवर्त्तक की रचनाओं का प्रकाशन आवश्यक समझा गया। इसलिए 'अणभैवाणी' के प्रकाशन की अनुमति आचार्य निर्भयराम जी ने दी और बड़े परिश्रमपूर्वक साधु श्री नैंनूराम जी आदि ने इस महाग्रंथ का मुद्रण कराकर वर्तमान रूप में उपलब्ध किया। एक बात और भी—स्वामी रामचरण तथा अन्य आचार्यों की वाणी लोगों तक पहुँचे, इसके लिए राम सनेही साधु प्रयत्नशील रहते थे। वे चौमासे के अवसर पर अथवा अन्य अवकाश के समय में 'वाणी' के अंशों को गुटका-पोथी के रूप में हाथ से लिखकर तैयार करते थे। अन्य साम्प्रदायिक ग्रंथों—'गुरलीला विलास', 'फूलडोल समाद', 'श्री रामचरण महाराज की

---

१. 'अणभैवाणी' की प्रस्तावना, पृ० ३।

२. डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी—रामसनेही सम्प्रदाय, प्रथम अध्याय, (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर)।

परची'—के संग्रह भी गुटका-पोथी के रूप में मैंने स्वयं देखे हैं। ऐसे गुटका-ग्रंथ साधुओं से गृहस्थ-जन भी प्राप्त कर उनका पूजा-पाठ करते थे। अतः 'वाणी' को लोगों तक पहुँचाने का भाव तो सम्प्रदाय के संतों में भी था पर वे अधिकारी जन तक ही इसे पहुँचाना चाहते थे।

प्रकाशित 'अणभैवाणी' के प्रारंभ एवं अंत में स्वामी रामचरण की रचनाओं के अतिरिक्त अन्य संतों की रचनाएँ भी संगृहीत हैं। इस महाग्रंथ के आरम्भिक ६३ पृष्ठों में स्वामी रामचरण के दादागुरु स्वामी सन्तदास जी की 'अणभैवाणी' अंगबद्ध रूप मे सम्बद्ध है। इसमें विभिन्न अंगों का वर्णन साखी एवं रेखता छन्दों में हुआ है। अन्त में दो ग्रंथ—'ब्रह्मध्यान' और 'भ्रमतोड़' के साथ राग-आसा और आरती भी है। इसी प्रकार पुस्तक के अन्त में स्वामी रामजन रचित 'रामपद्धति', जगन्नाथ रचित 'ब्रह्मसमाधि-लीन जोग' और जनगोपाल रचित 'प्रह्लाद चरित' नामक छोटे-छोटे ग्रंथ जोड़ दिये गये हैं। ग्यारह-सौ पृष्ठों के इस विशाल संग्रह में ९२ पृष्ठों में अन्य जनों की रचनाएँ हैं और एक हजार पृष्ठों में स्वामी रामचरण की 'अणभैवाणी' एवं उनके छोटे-बड़े ग्रंथ मुद्रित हैं।

एक ओर साधु नैनूराम जी आदि 'वाणी' के प्रकाशन में व्यस्त थे, दूसरी ओर प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज के सिलसिले में स्वामी जी की कतिपय रचनाएँ हस्त-लिखित रूप में प्राप्त हो चुकी थीं। डॉक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल लिखित नागरी प्रचा-रिणी पत्रिका के चौदहवें खोज विवरण (सन् १९२९-३१) में स्वामी जी रचित निम्नलिखित पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियों के संक्षिप्त विवरण मिलते हैं:—

१. जिज्ञासबोध	(निर्माण काल	१८४७ वि०)
२. विश्राम बोध	(,,	१८५१ वि०)
३. समता निवास	(,,	१८५२ वि०)
४. विश्वासबोध	(,,	१८४९ वि०)
५. अमृत उपदेश	(,,	१८४४ वि०)
६. रामचरण के शब्द	(,,	—)
७. अणभै विलास	(,,	१८४५ वि०)
८. रामरसायनि	(,,	—)
९. सुखविलास	(,,	१८४६ वि०)

उपर्युक्त हस्तलिखित ग्रंथों के संबंध में डॉक्टर बड़थ्वाल लिखते हैं कि 'इनमें से अब तक कोई भी ग्रंथ खोज में नहीं मिला था।'[1] किन्तु कैप्टेन वेस्मकट सन् १८३५ ई० में ही स्वामी रामचरण लिखित ३६२५० शब्दों का पता तो लगा ही चुके

---

१. डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज का चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९२९-३१ ई०), पृ० १३६।

थे।[1] उनमें से कुछ का अंग्रेजी अनुवाद भी उन्होंने किया था। इस संदर्भ में उनका यह कथन ध्यान देने योग्य है—

"The Mahant readily engaged to furnish me with a complete collection of their sacred writings, but as there was but one copy in the temple, I succeeded in bringing away with me only a few selections of which I subjoin a translation."[2]

लेख के अन्त में वेस्मकट ने शाहपुरा के तत्कालीन महंत नारायणदास जी से प्राप्त स्वामी रामचरण की कतिपय कविताओं का अनुवाद जिसे उन्होंने कलकत्ता के बाबू काशी-प्रसाद घोष की सहायता से किया था और जो जर्नल के पृष्ठ ७८-८२ पर छपा है, दिया है।[3] यहाँ यह स्मरणीय है कि वेस्मकट द्वारा प्राप्त संदर्मित काव्य-संग्रह की हस्तलिपि स्वामी रामचरण के जीवन-काल की है—

"These verses are dated Tuesday, the 6th. day of Cait, in the Samvat year 1855 (A. D. 1978) the year of Ramcharan's decease."[4]

पर वेस्मकट महोदय ने यह नहीं बतलाया कि हस्तलेख किसका है? वेस्मकट की उक्त पंक्तियों से यह भी स्पष्ट होता है कि स्वामी रामचरण के देहावसान के एक महीने पहले उन्हें दिया गया संग्रह लिपिबद्ध किया गया था। निष्कर्ष यह कि डॉक्टर बड़थ्वाल दूसरे व्यक्ति हैं जिन्होंने स्वामी रामचरण की ९ रचनाओं की जानकारी दी, पूर्व इसके वेस्मकट शाहपुरा जाकर स्वामी रामचरण जी का विशाल साहित्य देख ही नहीं आए थे प्रत्युत् उनमें कुछ का अनूदित अंश डॉ० बड़थ्वाल की खोज-रिपोर्ट के प्रकाशन से लगभग १०० वर्ष पूर्व प्रकाशित करा चुके थे। उन्होंने काव्य-संग्रह के हर पृष्ठ के ऊपर 'राम' लिखा हुआ देखा है। इस संदर्भ में वे लिखते हैं—

"The head of the each page is inscribed with the holy name of Ram, used by the Society as an initial title of respect, corresponding with the Alif (Allah) of Musalmans, and Sri of Hindus and signifying that an ano ther solicits the blessing of God on commencing a work and invokes success on the undertaking."[5]

---

1. Ramcharan composed 36,250 Sabd or hymns each containing from five to eleven verses : Thirty-two letters go to each Slok, which give the above total.

—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

२. वही।

३. देखिए, जर्नल ऑव् दी एशियाटिक सोसायटी, फरवरी १८३५, पृ० ७८-८२।

४. वही, पृ० ८२।

५. वही।

आधुनिक साक्ष्यों में राजस्थानी विद्वान् पंडित मोतीलाल मेनारिया स्वामी रामचरण की वाणी के प्रकाशन की सूचना देते हुए लिखते हैं कि "इसमें ८००० के लगभग छन्द हैं"[१] पंडित परशुराम चतुर्वेदी भी प्रकाशित वाणी में ३६२५० बानियाँ बतलाते हैं और संग्रह के सभी ग्रंथों के नाम भी गिनाते हैं।[२] इस विन्दु पर वे वेस्मकट से सहमत दीखते हैं। आधुनिक साम्प्रदायिक साक्ष्य-ग्रंथ 'रामस्नेही धर्मदर्पण' के लेखक साधु मनोहरदास जी लिखते हैं कि "आपकी समाधि स्थिति में जो जो ब्रह्मानुभूतियें हुई वही अनुष्टुप श्लोकाक्षर संख्या प्रमाण में सवा छत्तीस हजार सरस 'अनुभव वाणी' के नाम से प्रसिद्ध है।"[३]

प्रकाशित 'वाणी' की प्रस्तावना में साधु कार्यराम जी लिखते हैं कि इस प्रकार "इस ग्रंथ की संख्या ३६३९६ है।"[४] 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों—स्वामी केवलराम आदि ने भी प्रकाशित वाणी के प्रस्तावनाकार साधु कार्यराम जी से सहमति व्यक्त की है।[५]

अणभैवाणी हस्तलिखित प्रति

'अणभैवाणी' की हस्तलिखित प्रतियाँ रामसनेही साधुओं द्वारा लिपिबद्ध की हुई विभिन्न रामद्वारों में पायी जा सकती हैं। स्वामी रामचरण ने अपनी रचनाएँ स्वयं लिपिबद्ध की हों, इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता। उनके शिष्य शीलव्रती नवलराम जी एवं स्वामी जी के उत्तराधिकारी स्वामी रामजन जी ने लिखा था पर उन लोगों के हस्तलेख भी अभी तक उपलब्ध नहीं। वाणी की सर्वाधिक प्राचीन प्रति शाहपुरा के रामनिवास धाम में सुरक्षित है। यह 'स्वरूपाबाई की पुस्तक' के नाम से विख्यात है। कहते हैं कि स्वरूपाबाई ने इसे अपनी देखरेख में लिपिबद्ध कराया था। इस ग्रंथ का पाठ वर्ष में एक दिन चैत बदी पंचमी को होता है, फिर उसी प्रकार वस्त्र की तह में लपेटकर सुरक्षित रख दिया जाता है। इन पंक्तियों के लेखक को 'स्वरूपाबाई की पुस्तक' के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। सन् १९५३ के फूलडोल के अवसर पर मैं शाहपुरा गया था। मुझे स्वामी जी रचित ग्रंथों की प्राचीनतम प्रतियाँ देखने का चाव था। वर्त्तमान आचार्य पंडित रामकिशोर जी के प्रयास से पूज्य भण्डारी जी स्वर्गीय श्री नैनूराम जी ने मुझे पहले 'वाणी' की एक हस्तलिखित प्रति दिखलायी। यह कनवाड़े की पुस्तक थी। किन्तु तब तक मैं 'स्वरूपाबाई की पुस्तक' की चर्चा प्राचीनतम प्रति के रूप में सुन चुका था। स्नेहमय परमदयालु भण्डारी जी से मैंने निवेदन किया था। मुझे यह भी बतलाया गया था कि यह पुस्तक केवल पंचमी को आचार्य के समक्ष खुलती है, फिर कभी खोली नहीं जाती। यह

१. पंडित मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पृ० ८२।
२. पं० परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६१८-१९।
३. साधु मनोहरदास—रामस्नेही धर्मदर्पण, भूमिका, पृ० १।
४. स्वामी जी श्री रामचरणजी महाराज की अणभैवाणी, प्रस्तावना, पृ० २।
५. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ६१।

जानते हुए भी मैंने बड़े विश्वास के साथ पूज्य भण्डारी जी से निवेदन कर ही दिया। मुझे स्मरण है कि मैंने उनसे कई बार आग्रह किया था किन्तु दयालु संत ने भी नकारा नहीं और अन्त में एक दिन मेरे आग्रह ने दयालु संत नैनूराम जी के स्नेहमय हृदय को स्पर्श किया। उन्होंने आचार्य स्वर्गीय निर्भयराम जी से आदेश प्राप्त कर उस ग्रंथ को निकाला और मुझे एक घण्टे तक अवलोकन का अवसर दिया। सुन्दर अक्षरों में लिपिबद्ध 'वाणी' की प्राचीनतम प्रति इस प्रकार मुझे देखने को मिली। इसके लिए मैं स्वर्गीय निर्भयराम जी, स्वर्गीय भण्डारी श्री नैनूराम जी एवं वर्त्तमान आचार्य पं० रामकिशोर जी का आभारी हूँ।

वैसे रामसनेही सम्प्रदाय के साधुओं में वाणी-हस्तलेखन का चाव प्रारंभ से ही है। यद्यपि मैंने स्वामी रामचरण, नवलराम जी या रामजन जी की हस्तलिपि में अभी तक कोई गुटका-पोथी या अन्य कोई ग्रंथ नहीं देखा है पर अभी इसी ग्रीष्म के इन्दौर प्रवास में मुझे स्वामी रामचरणजी के उत्तराधिकारी स्वामी रामजन जी की 'वाणी' की वह प्रति देखने को मिली जिसे रामजन जी के उत्तराधिकारी एवं सम्प्रदाय के तीसरे आचार्य स्वामी दुल्हैराम जी ने स्वयं लिपिबद्ध किया था। इस ग्रंथ-रत्न के अंत में लिखित पंक्तियाँ इस तथ्य का उद्घाटन करती हैं कि आचार्य दुल्हैराम जी ने रामजन जी की वाणी का सम्पादन एवं लिपिकरण दोनों ही किया था—

"राम जन्न अवधूत की वाणी संष्या येह।
लघु भ्राता दुल्है कहै तुम पद रज सिर लेह॥
साहिपुरे सानन्द सुष। छत्र्यां मधि निवास॥
सतगुरु कूं सिर धारि कें। कीऐ अंग्र प्रकास॥
मों बड़ भ्राता रामजन। जाकी वाणी सार॥
दुल्हैराम अंग बांधीया। हिरदै हेत विचार॥
मुलक जहां मेवाड़ मधि। साहिपुरो जसुथान॥
दुल्हैराम दिलसुध सूं। वाणी अंग बषान॥
मो तागति तौ ही नहीं। हिरदै भयो हुलास॥
कारण कारिज आप होइ। कीयो दास प्रकास॥
भूल चूक कोई ना गिनौ। लघु दीरघ जो आंक॥
तात मात सुत हेत को। कव न देषै बांक॥
संवत अठारा से सही। चालीसै परमान॥
सावण सुदि पून्यौ सही। बारभौमि इम जान॥
अंग सपूरण हम थऐ। कहे ज दुल्है राम॥
बांच बिचारे तासकूं। राम राम ही राम॥

पुसतग संपूरण॥ संवत् १८४०॥ का सावण सुदि॥ १५॥ बार मंगलवार॥ पुसतग लिष्या दुल्हैराम वांच विचारै ज्यासूं राम राम॥"

उपर्युक्त उद्धरण मैंने संदर्भित ग्रंथ से यथावत् उतारा है। इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि रामजन अवधूत की वाणी छोटे भाई दुल्हैराम ने शाहपुरा की छतरी में सानंद विराजते हुए सतगुरु की कृपा से अंगबद्ध कर प्रकाशित की। सम्पादक ने स्पष्ट लिखा है कि मेरे बड़े भाई रामजन जिनकी वाणी का सार यह है मैंने (दुल्हैराम ने) अंगबद्ध किया है। आगे सम्पादक एवं लिपिकार लिखता है कि संवत् १८४०, पूर्णिमा मंगलवार को वाणी का लिपिकरण पूर्ण हुआ था और सबसे अंत में 'पुसतग लिष्या दुल्हैराम' लिखा हुआ है।

स्मरणीय है कि दुल्हैराम जी स्वामी रामचरण जी के प्रमुख शिष्यों में से एक एवं सम्प्रदाय के तीसरे आचार्य थे। वेसमकट के अनुसार उन्होंने दस हजार शब्द और चार हजार साखियाँ लिखी थीं।[1] इन्हीं दुल्हैराम जी ने स्वामी रामचरण के जीवनकाल में (सं० १८४० में) स्वामी रामचरण के ज्येष्ठ शिष्य रामजन अवधूत की वाणी को अंगबद्ध किया। इस विवेचन से मैं इस निष्कर्ष पर हूँ कि रामसनेही सम्प्रदाय में स्वामी रामचरण के जीवनकाल में स्वामी जी के अतिरिक्त उनके शिष्यों की वाणियों का भी सम्पादन एवं लिपिकरण होने लगा था। अतः यह निर्विवाद है कि स्वामी रामचरण की रचनाओं का सम्पादन एवं लिपिकरण उनके शिष्यों द्वारा हुआ होगा। यह भिन्न बात है कि अभी स्वामी रामचरण जी की वाणी एवं अन्य ग्रंथों के लिपिकारों की हस्तलिपि में कोई रचना नहीं प्राप्त हो सकी है। संभव है भविष्य में लिपिकारों द्वारा लिपिबद्ध वाणी संग्रह एवं अन्य ग्रंथ उपलब्ध हो सकें। फिर भी जो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं, वे प्रामाणिक हैं। प्रकाशित वाणी को देखते हुए पाठ-सम्पादन की समस्या अवश्य है, आशा है भविष्य में सम्प्रदाय के विद्वान् संतों, गृहस्थों एवं आचार्य के प्रोत्साहन से यह कार्य सम्पन्न हो सकेगा। सुना है वर्तमान आचार्य पंडित रामकिशोर जी इस दिशा में पर्याप्त सक्रिय हैं। यह शुभ लक्षण है, इससे स्वामी रामचरण के संत-कवि व्यक्तित्व पर और प्रकाश पड़ने की संभावना है।

स्वामी रामचरण की कृतियाँ

'अणभैवाणी' नामक प्रकाशित महाग्रंथ में स्वामी रामचरण की निम्नलिखित कृतियाँ संगृहीत हैं—

---

1. "The third hierarch, Dulha Ram, become a Ramsanehi in A. D. 1776 and died in 1824, he wrote ten thousand Sabd and about four
A. D. 1776 and died in 1824, he wrote ten thousand Sabd and about four
thousand Saki or epic poems in praise of men eminent for virtue not only of his own faith but among Hindus, Muhammedans and others."

—Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

१. अणभैवाणी
२. गुरु-महिमा
३. नाम-प्रताप
४. शब्दप्रकाश
५. अणभोविलास
६. सुखविलास
७. अमृत उपदेश
८. जिज्ञासबोध
९. विश्वासबोध
१०. विश्रामबोध
११. समतानिवास
१२. रामरसायनबोध
१३. चिन्तावणी
१४. मनखण्डन
१५. गुरुशिष्य गोष्ठि
१६. ढिग पारख्या
१७. जिंद पारख्या
१८. पण्डित संवाद
१९. लच्छ-अलच्छ जोग
२०. बेजुक्तितिरस्कार
२१. काफरबोध
२२. शब्द
२३. गावा का पद
२४. दृष्टान्तसागर

लिपिकार एवं सम्पादक : नवलराम, रामजन

उपर्युक्त रचनाएँ प्रकाशित 'वाणी' के १००० पृष्ठों में मुद्रित हैं। इस विशाल काव्य-साहित्य के रचनाकार स्वामी रामचरण जी थे किन्तु उनकी हस्तलिपि में इनमें से कोई भी कृति उपलब्ध नहीं है। कहते हैं कि समाधि अवस्था में जो अनुभूतियाँ स्वामी जी को हुईं उनका उच्चारण करते गए और उनके शिष्य शीलव्रती नवलराम एवं अवधूत रामजन जी ने लिपिबद्ध किया। इस संदर्भ में 'वाणी' के प्रस्तावनाकार की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—"राम भजन पारायण निर्विकल्प समाधिस्थ निखिल शास्त्र निष्णात श्री वीतराग महाप्रभु शाहपुरा में विराजकर तथा पर्यटनकाल में अपने स्वयं अनुभव से और सच्छास्त्रों से जो महावाक्य उच्चारण किये उनको आपके शिष्य भीलवाड़ा ग्राम निवासी

माहेश्वरी वंशोद्भव नवलराम जी ने लिखकर संग्रह किया जिनकी संख्या अंगबद्ध ८००० श्लोक है। तदनन्तर २८३९७ ग्रंथसंख्या श्रीमान् वीतराग के शिष्य परमपवित्र अद्वैत नैष्ठिक श्री रामजन जी महाराज ने संग्रह किया। इस प्रकार इस ग्रंथ की संख्या ३६३९७ है।"[१]

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण की रचनाओं को लिपिबद्ध करने का कार्य उनके शिष्यों नवलराम एवं रामजन द्वारा सम्पन्न किया गया था। ग्रंथस्थ लिपिकारों की उक्तियों से यह भी स्पष्ट होता है कि लिपिकरण के साथ सम्पादन का गुरुकार्य भी इन्हीं दोनों शिष्यों द्वारा हुआ था।

पिछले अध्याय में 'बारह थम्बे के साध' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी रामचरण के जिन १२ प्रमुख शिष्यों की चर्चा की गई है उनमें स्वामी जी के ग्रंथों के लिपिकार एवं सम्पादक नवलराम और रामजन प्रमुख स्थान रखते हैं। नवलराम जी की चर्चा दूसरे अध्याय में भी भीलवाड़ा स्थित तीन प्रमुख शिष्यों में हो चुकी है। ये स्वरूपाबाई के पिता थे। 'नवल-सागर' ग्रंथ इनकी प्रसिद्ध रचना है जो १९०१ ई० की खोज रिपोर्ट में वर्णित है।[२] नवलराम जी के विषय मे जगन्नाथ ने अपने ग्रंथों 'गुरलीला विलास' और 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में पर्याप्त चर्चा की है किन्तु उनकी जन्मतिथि, [illegible] और मृत्यु-तिथि आदि की कोई जानकारी नहीं दी है। स्मरणीय है कि 'बारह थम्बे के साधुओं' में ग्यारह तो साधु शिष्य थे एवं एक गृहस्थ शिष्य नवलराम जी ही थे। नवलराम एवं उनकी पुत्री स्वरूपा बाई की रामसनेही-सम्प्रदाय में बड़ी महिमा है।

नवलराम जी ने स्वामी रामचरण की अणभैवाणी को अंगबद्ध किया। वे उनकी अणभैवाणी एवं फुटकर काव्यों के लिपिकार एवं सम्पादक दोनों थे। संवत् १८२० वि० में स्वामी रामचरण ने भीलवाड़ा में 'वाणी' का उच्चारण किया था और नवलराम जी ने उसे लिपिबद्ध किया था, फिर संवत् १८२७ में फाल्गुन वदी द्वादशी, सोमवार को इसका अंगबद्ध सम्पादन शाहपुरा में पूर्ण हुआ। निम्नलिखित पंक्तियाँ उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती हैं—

"मध्य मुलक मेवाड़ नगर भीलेड़ो होई।
रामचरण जी संत तहाँ परगट भये सोई।
जगत हेतु सूं मांनि राम हिरदै मुख गायो।
कनककामिणी त्याग राग मन स्वाद न भायो।
अठारा सै अरु बीश वर्ष वाणी जु उचारी।
नवलराम सब झेलि मेलिह पुस्तक बिस्तारी।

---

१. साधु कार्यराम लिखित 'अणभैवाणी' की प्रस्तावना, पृ० २।

२. प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज का चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९२९-३१ ई०)—डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका।

शब्द सुणै ताहि भासवै भुशि कण सार असार।
नकल करै कर जोड़ि कै बंदन बारंबार।
संवत अठारा सै सही सताईसे जोय।
फागुन बदी दुवादशी, बार सोम ही होय।
शाहिपुरा मधि शोधिकै, सब वाणी विस्तार।
नवलराम अंग बांधिया, जन पदरज सिरधार।
शाहिपुरा मधि शुभ समय, वाणी अंग बनाय।
आनन्द घन उच्छव अधिक, नवल कहत जनाय।"[1]

इसी संदर्भ में जगन्नाथ कृत 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की निम्नलिखित पंक्तियाँ नवलराम रचित उपर्युक्त की पुष्टि करती हैं—

"संबत् अठारा सै अरु बीसा।
वचन अमोलक निपट वरीसा।"[2]

रामजन जी को एक ओर हम अवधूत संत और स्वामी रामचरण के उत्तराधिकारी आचार्य के रूप में जानते हैं तो दूसरी ओर वे स्वामी जी रचित विभिन्न ग्रंथों के शोधनकर्ता एवं लिपिकार भी थे। इनका जन्म संवत् १७९५ वि० में सिरस्यों ग्राम में माहेश्वरी वैश्य-कुल में हुआ था। इन्होंने संवत् १८२४ में स्वामी रामचरण जी का शिष्यत्व ग्रहण किया। शीघ्र ही स्वामी जी के द्वादश प्रमुख शिष्यों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया और संवत् १८५५ में स्वामी रामचरण के देहावसान के बाद आचार्य-पद पर आसीन हो गये। इनका देहान्त संवत् १८६७, आसाढ़ बदी ११ बुधवार को हुआ था।[3] वेस्मकट के अनुसार उन्होंने १८००० शब्दों की रचना की थी।[4]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वामी रामजन जी, नवलराम जी के बाद स्वामी रामचरण के शिष्य हुए। संवत् १८२४ में इन्होंने दीक्षा ली और संवत् १८२० में नवलराम भीलवाड़े में स्वामी रामचरण द्वारा उच्चरित 'वाणी' को सुनकर लिख रहे थे।

---

१. अणभैवाणी, पृ० १०१३।

२. अणभैवाणी (ब्रह्मसमाधिलीन जोग), पृ० १०७९।

३. श्री केवलराम जी वैद्य—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ४४।

"He (Ramcharan) was succeeded in the spiritual dictatorship by Ramjan, one of his twelve chelas or disciples. This person was born at the villege of Sirsin, embraced the new doctrine in 1768 and died at Shahpura in 1809, after a reign of 12 years, 2 months and 6 days."
—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

४. वही।

राम जन जी की दीक्षा के तीन वर्ष बाद सं० १८२७ में 'वाणी' को उन्होंने अंगबद्ध कर डाला था। रामजन जी अवधूत साधु थे। उन्होंने स्वामी जी रचित विभिन्न ग्रंथों का सम्पादन करके लिपिबद्ध किया था। प्रकाशित 'वाणी' में संगुम्फित निम्नलिखित ग्रंथों का लिपिकरण एवं सम्पादन रामजन जी द्वारा हुआ था :—

१. अणभोविलास
२. सुख विलास
३. अमृत उपदेश
४. जिज्ञासबोध
५. विश्वासबोध
६. विश्रामबोध
७. समतानिवास
८. रामरसायन बोध
९. दृष्टान्तसागर

रचनाओं का वर्गीकरण

यों तो स्वामी रामचरण की रचनाएँ १ से २४ तक जिस क्रम में हैं, प्रकाशित हैं और उनका उल्लेख किया जा चुका है। पर अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से उन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर लेना अनुपयुक्त नहीं है—

१. अंगबद्ध वाणी
२. छोटे ग्रंथ
३. बड़े ग्रंथ
४. फुटकर

१. अंगबद्ध वाणी

पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि वाणी को अंगबद्ध करने का कार्य स्वामी जी के प्रमुख शिष्य नवलराम जी ने शाहपुरा में संवत् १८२७ वि० में पूर्ण कर लिया था और वाणी की रचना संवत् १८२० वि० में भीलवाड़े में हुई थी। मेरा अनुमान है कि संवत् १८२० वि० में वाणी की रचना आरंभ हुई थी और संवत् १८२७ में जब स्वामी रामचरण जी शाहपुरा में विधिवत् बस गए, नवलराम जी ने वाणी को छन्दानुसार अंगबद्ध कर दिया। स्वामी रामचरण की वाणी 'अणभैवाणी' कहलायी और इसी नाम से स्वामी जी का सम्पूर्ण साहित्य अभिहित किया गया।

सम्पादन

विषयवस्तु

स्वामी रामचरण की 'वाणी' को नवलराम जी ने जिस प्रकार छन्दानुक्रम शैली

में अंगबद्ध किया है, उससे 'वाणी' की विषयवस्तु का स्पष्टीकरण भी होता गया है। प्रारम्भ के पाँच कवित्त स्तुति के हैं, तत्पश्चात् विभिन्न छन्दों में विषयानुक्रम से अंग प्रस्तुत किए गए हैं।

१. साखी—साखी के अन्तर्गत विषयानुक्रम से ७४ अंग हैं—१. गुरुदेव को अंग, २. गुरु समर्थाई को अंग, ३. सुमरण को अंग, ४. शिवधर्मी को अंग, ५. वीनती को अंग, ६. विरह को अंग, ७. ज्ञानविरह को अंग, ८. लै को अंग, ९. प्रेमप्रकाश को अंग, १०. पीवपिछाण को अंग, ११. प्रचा को अंग, १२. पतिव्रता को अंग, १३. व्यभिचारिणी को अंग, १४. समर्थाई को अंग, १५. बीनती लियां समर्थाई को अंग, १६. विश्वास को अंग, १७. विरक्त को अंग, १८. निवृत्ति को अंग, १९. साध को अंग, २०. असाध को अंग, २१. साध-संगति को अंग, २२. कुसंगति को अंग, २३. अकल को अंग, २४. बेअकल को अंग, २५. विचार को अंग, २६. बेविचार को अंग, २७. नहचै को अंग, २८. जीवत-मृतक को अंग, २९. सजीवण को अंग, ३०. सारग्राही को अंग, ३१. अवगुणग्राही को अंग, ३२. अज्ञानी को अंग, ३३. रामविमुख को अंग, ३४. काल को अंग, ३५. चिंतावणी को अंग, ३६. उपदेश को अंग, ३७. जिज्ञासी को अंग, ३८. गुरुपारख को अंग ३९. शिष्यपारख को अंग, ४०. गुरुशिष्यपारख को अंग, ४१. सन्मुख-बेमुख को अंग, ४२. गुरुबेमुख को अंग, ४३. चितकपटी को अंग, ४४. देखादेखी के अंग, ४५. कायर को अंग, ४६. शूरातण को अंग, ४७. टेक को अंग, ४८. हेतप्रीति को अंग, ४९. किस्तूरियामृग को अंग, ५०. मन को अंग, ५१. सती को अंग, ५२. बेहद को अंग, ५३. मध्य को अंग, ५४. निरपख को अंग, ५५. पंथ को अंग, ५६. रस को अंग, ५७. सुक्षम मार्ग को अंग, ५८. शुभकर्मी को अंग, ५९. दया को अंग, ६०. माया को अंग, ६१. कामीनर को अंग, ६२. जरणा को अंग, ६३. रहत को अंग, ६४. सहज को अंग, ६५. बहुआरंभी को अंग, ६६. लोभी नर को अंग, ६७. आशाबेली को अंग, ६८. निद्रा को अंग, ६९. भुरकी को अंग, ७०. निन्दा को अंग, ७१. साच को अंग, ७२. भ्रमविध्वंस को अंग, ७३. भेषको अंग, ७४. चाणक को अंग।

२. चन्द्रायणा—चन्द्रायणा के अन्तर्गत निम्नलिखित २४ अंग हैं—१. गुरुदेव को अंग, २. सुमरण को अंग, ३. नाम समर्थाई को अंग, ४. बीनती को अंग, ५. विरह को अंग, ६. प्रचा को अंग, ७. साध महिमा को अंग, ८. साध को अंग, ९. साध संगति को अंग, १०. विरक्त को अंग, ११. गुरुपारख को अंग, १२. शिष्यपारख को अंग, १३. गुरु हेरू को अंग, १४. गुरुबेमुख को अंग, १५. सन्मुख-बेमुख को अंग, १६. मनमुखी को अंग, १७. अज्ञानी को अंग, १८. काल को अंग, १९. चिन्तावणी को अंग, २०. शूरातण को अंग, २१. विचार को अंग, २२. तृष्णा को अंग, २३. साच को अंग, २४. भेख को अंग।

३. सवैया—सवैया के अन्तर्गत निम्नलिखित २६ अंग हैं—१. गुरुदेव को अंग, २. सुमरण को अंग, ३. नाम महिमा को अंग, ४. परचा को अंग, ५. विचार को अंग, ६. साध को अंग, ७. साध-संगति को अंग, ८. विरक्त को अंग, ९. विश्वास को अंग, १०. तृष्णा को अंग, ११. लोभी नर को

अंग, १२. अज्ञानी को अंग, १३. काल को अंग, १४. चिन्तावणी को अंग, १५. सन्मुख-बेमुख को अंग, १६. गुरुबेमुख को अंग, १६. अवगुणग्राही को अंग, १८. चितकपटी को अंग, १९. व्यभिचारिणी को अंग, २०. कायर को अंग, २१. शूरातण को अंग, २२. कामी नर को अंग, २३. साच को अंग, २४. मर्मविध्वंस को अंग, २५. भेख को अंग, २६. चाणक को अंग।

४. झूलणा—झूलणा के सात अंग निम्नलिखित हैं—१. गुरुदेव को अंग, २. सुमरण को अंग, ३. विचार को अंग, ४. साधुसंगति को अंग, ५. उपदेश को अंग, ६. विरक्त को अंग, ७. भेख को अंग।

५. कवित—कवित्त के अन्तर्गत ४४ अंग इस प्रकार हैं—१. गुरुदेव को अंग, २. सुमरण को अंग, ३. नाम समर्थाई को अंग, ४. परचा को अंग, ५. पतिव्रता को अंग, ६. व्यभिचारिणी को अंग, ७. बीनती को अंग, ७. बेविश्वास को अंग, ९. तृष्णा को अंग, १०. निरपख को अंग, ११. निर्गुण उपासना को अंग, १२. साध को अंग, १३. असाध को अंग, १४. साधसंगति को अंग, १५. कुसंगति को अंग, १६. साधपारख को अंग, १७. साध महिमा को अंग, १८. वाचिक ज्ञानी को अंग, १९. लछज्ञानी को अंग, २०. अज्ञानी को अंग, २१. ब्रह्मविवेक को अंग, २२. काल को अंग, २३. चितावणी को अंग, २४. मन को अंग, २५. मनमूसामनसूब को अंग, २६. कायर को अंग, २७. शूरातण को अंग, २८. उपदेश को अंग, २९. जिज्ञासी को अंग, ३०. शिखपारख को अंग, ३१. शिष्यनिरणां को अंग, ३२. टेक को अंग, ३३. विचार को अंग, ३४. निरणा को अंग, ३५ हठयोग को अंग, ३६. भक्ति महिमा को अंग, ३७. माया को अंग, ३८. कामी नर को अंग, ३९. रहत को अंग, ४०. जरणा को अंग, ४१. साच को अंग, ४२. मर्म विध्वंस को अंग, ४३. भेख को अंग, ४४. चाणक को अंग।

६. कुण्डल्या—इसके ४४ अंग निम्नलिखित हैं—१. गुरुदेव को अंग, २. गुरु-परमार्थी को अंग, ३. लोभी गुरु को अंग, ४. सुमरण को अंग, ५. बीनती को अंग, ६. प्रचा को अंग, ७. पतिव्रता को अंग, ८. व्यभिचारिणी को अंग, ९. कायर को अंग, १०. शूरातण को अंग, ११. सती को अंग, १२. विश्वास को अंग, १३. बेविश्वास को अंग, १४. निरपख को अंग, १५. विरक्त को अंग, १६. निर्गुण उपासना को अंग, १७. साध को अंग, १८. साधपारख को अंग, १९. साध-संगति को अंग, २०. कुसंगति को अंग, २१. दया को अंग, २२. लच्छ को अंग, २३. उपदेश को अंग, २४. जिज्ञासी को अंग, २५. गुरुशिष्यपारख को अंग, २६. शिष्यपारख को अंग, २७. गुरु-बेमुख को अंग, २८. रामविमुख को अंग, २९. सन्मुख-बेमुख को अंग, ३०. अज्ञानी को अंग, ३१. विचार को अंग, ३२. निरणा को अंग, ३३. लोभी नर को अंग, ३४. काल को अंग, ३५. चिन्तावणी को अंग, ३६. मन को अंग, ३७. हठजोग को अंग, ३८. माया को अंग, ३९. कामी नर को अंग, ४०. निन्दा को अंग, ४१. साच को अंग, ४२. मर्मविध्वंस को अंग, ४३. भेष को अंग, ४४. चाणक को अंग।

७. रेखता—इस छन्द के अन्तर्गत स्वामी रामचरण ने १५ अंगों का समावेश किया है—१. गुरुदेव को अंग, २. भेषधारणा को अंग, ३. सुमरण को अंग, ४. नामनिरणा को अंग, ५. प्रमप्रकाश को अंग, ६. प्रचा को अंग, ७. विचार को अंग, ८. शूरातण को अंग, ९. सारग्रही को

अंग, १०. चिंतावणी को अंग, ११. असाधु को अंग, १२. कामी नर को अंग, १३. साच को अंग, १४. भेष को अंग, १५. चाणक को अंग।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सात छन्द शीर्षकों में 'अणभैवाणी' के विभिन्न अंगों का वर्णन हुआ है। कतिपय अंग सभी छंदों में वर्णित हैं और कतिपय कुछ ही में। यहाँ संक्षेप में अंगों की विषय वस्तु का विवरण प्रस्तुत है।

१. गुरुदेव को अंग—सभी सात छन्द शीर्षकों में इस अंग का वर्णन हुआ है। साखी शीर्षक के प्रारंभ में स्वामी जी अपने गुरु कृपाराम की महिमा-प्रताप का वर्णन करते हुए दांतड़े की प्रशंसा करते हैं। यथा—

> **"संत विराजै दांतड़ै, सरणाई प्रतिपाल।**
> **रामचरण कै उर बसै, किरपाराम दयाल"।**[1]

सत्गुरु की महिमा अपार है, उसके गुण कहाँ तक कहे जायँ? सतगुरु की कृपा से 'शब्द-संतोष' मिला और जन्म-जन्म के दोष दूर हो गए।[2] इसलिए स्वामी रामचरण सत्गुरु की शरण का सुझाव देते हैं क्योंकि वही 'सिरजनहार' है, अतः उसी की शरण जाने से काम होगा।[3] इसी प्रकार सवैया, झूलणा, कवित आदि शीर्षकों में गुरु की महिमा का गान स्वामी रामचरण ने किया है। इन सभी शीर्षकों में उन्होंने अपने गुरु स्वामी कृपाराम जी की महिमा बड़ी तन्मयता से कही है। उन्हें अपने गुरु के उपकार बार-बार स्मरण हो आते हैं।[4] इन छन्द-शीर्षकों में ऐसे अनेक स्थल है जहाँ स्वामी रामचरण की भावधारा गुरु के चरणों को पखारती हुई 'गुरुदेव को अंग' को सार्थकता प्रदान करती हैं।

२. गुरु समर्थाई को अंग—केवल साखी शीर्षक के अन्तर्गत ११ छन्दों में इस अंग का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। सम्पादक ने इसे 'गुरुदेव को अंग' शीर्षक के अन्तर्गत उपशीर्षक देकर रख दिया है। गुरु-महिमा का बखान निम्न पंक्तियों में ध्यान देने योग्य है—

---

१. अणभैवाणी, साखी, छन्द ७, पृ० ३।
२. वही, साखी, छन्द ५९, पृ० ५।
३. वही, चन्द्रायणा, छन्द १, २, पृ० ७५।
४. "सतगुरु किरपाराम जी सदा बसै उर मांहि।
मों सिर ऊँचा कर धर्‌या सो सूधा वाड़्या नांहि।
सो सूधा वाड़्या नांहि दीन पर दया विचारी।
अरप्या धन संतोष आपदा हरी हमारी।
रामचरण दाता मिल्यां दालिदर है सुकांहि।
सतगुरु किरपाराम जी सदा बसै उर मांहि।"
—अणभैवाणी, कुण्डल्या, छं० ४, पृ० १३७

अंग, १२. अज्ञानी को अंग, १३. काल को अंग, १४. चिन्तावणी को अंग, १५. सन्मुख-बेमुख को अंग, १६. गुरुबेमुख को अंग, १६. अवगुणग्राही को अंग, १८. चितकपटी को अंग, १९. व्यभिचारिणी को अंग, २०. कायर को अंग, २१. शूरातण को अंग, २२. कामी नर को अंग, २३. साच को अंग, २४. मर्मविध्वंस को अंग, २५. भेख को अंग, २६. चाणक को अंग।

४. झूलणा—झूलणा के सात अंग निम्नलिखित हैं—१. गुरुदेव को अंग, २. सुमरण को अंग, ३. विचार को अंग, ४. साधुसंगति को अंग, ५. उपदेश को अंग, ६. विरक्त को अंग, ७. भेख को अंग।

५. कवित—कवित के अन्तर्गत ४४ अंग इस प्रकार हैं—१. गुरुदेव को अंग, २. सुमरण को अंग, ३. नाम समर्थाई को अंग, ४. परचा को अंग, ५. पतिव्रता को अंग, ६. व्यभिचारिणी को अंग, ७. बीनती को अंग, ७. बेविश्वास को अंग, ९. तृष्णा को अंग, १०. निरपख को अंग, ११. निर्गुण उपासना को अंग, १२. साध को अंग, १३. असाध को अंग, १४. साधसंगति को अंग, १५. कुसंगति को अंग, १६. साधपारख को अंग, १७. साध महिमा को अंग, १८. वाचिक ज्ञानी को अंग, १९. लछज्ञानी को अंग, २०. अज्ञानी को अंग, २१. ब्रह्माविवेक को अंग, २२. काल को अंग, २३. चितावणी को अंग, २४. मन को अंग, २५. मनमूसामनसूब को अंग, २६. कायर को अंग, २७. शूरातण को अंग, २८. उपदेश को अंग, २९. जिज्ञासी को अंग, ३०. सिखपारख को अंग, ३१. शिष्यनिरणां को अंग, ३२. टेक को अंग, ३३. विचार को अंग, ३४. निरणा को अंग, ३५ हठयोग को अंग, ३६. भक्ति महिमा को अंग, ३७. माया को अंग, ३८. कामी नर को अंग, ३९. रहत को अंग, ४०. जरणा को अंग, ४१. साच को अंग, ४२. मर्म विध्वंस को अंग, ४३. भेख को अंग, ४४. चाणक को अंग।

६. कुण्डल्या—इसके ४४ अंग निम्नलिखित हैं—१. गुरुदेव को अंग, २. गुरु-परमार्थी को अंग, ३. लोभी गुरु को अंग, ४. सुमरण को अंग, ५. बीनती को अंग, ६. प्रचा को अंग, ७. पतिव्रता को अंग, ८. व्यभिचारिणी को अंग, ९. कायर को अंग, १०. शूरातण को अंग, ११. सती को अंग, १२. विश्वास को अंग, १३. बेविश्वास को अंग, १४. निरपख को अंग, १५. विरक्त को अंग, १६. निर्गुण उपासना को अंग, १७. साध को अंग, १८. साधपारख को अंग, १९. साध-संगति को अंग, २०. कुसंगति को अंग, २१. दया को अंग, २२. लच्छ को अंग, २३. उपदेश को अंग, २४. जिज्ञासी को अंग, २५. गुरुशिष्यपारख को अंग, २६. शिष्यपारख को अंग, २७. गुरु-बेमुख को अंग, २८. रामविमुख को अंग, २९. सन्मुख-बेमुख को अंग, ३०. अज्ञानी को अंग, ३१. विचार को अंग, ३२. निरणा को अंग, ३३. लोभी नर को अंग, ३४. काल को अंग, ३५. चिन्तावणी को अंग, ३६. मन को अंग, ३७. हठजोग को अंग, ३८. माया को अंग, ३९. कामी नर को अंग, ४०. निन्दा को अंग, ४१. साच को अंग, ४२. मर्मविध्वंस को अंग, ४३. भेष को अंग, ४४. चाणक को अंग।

७. रेखता—इस छन्द के अन्तर्गत स्वामी रामचरण ने १५ अंगों का समावेश किया है—१. गुरुदेव को अंग, २. भेषधारणा को अंग, ३. सुमरण को अंग, ४. नामनिरणा को अंग, ५. प्रमप्रकाश को अंग, ६. प्रचा को अंग, ७. विचार को अंग, ८. शूरातण को अंग, ९. सारग्रही को

अंग, १०. चिंतावणी को अंग, ११. असाधु को अंग, १२. कामी नर को अंग, १३. साच को अंग, १४. भेष को अंग, १५. चाणक को अंग।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सात छन्द शीर्षकों में 'अणभैवाणी' के विभिन्न अंगों का वर्णन हुआ है। कतिपय अंग सभी छंदों में वर्णित है और कतिपय कुछ ही में। यहाँ संक्षेप में अंगों की विषय वस्तु का विवरण प्रस्तुत है।

१. गुरुदेव को अंग—सभी सात छन्द शीर्षकों में इस अंग का वर्णन हुआ है। साखी शीर्षक के प्रारंभ में स्वामी जी अपने गुरु कृपाराम की महिमा-प्रताप का वर्णन करते हुए दांतड़े की प्रशंसा करते हैं। यथा—

> **"संत विराजै दांतड़े, सरणाई प्रतिपाल।**
> **रामचरण कै उर बसै, किरपाराम दयाल"।**[1]

सत्गुरु की महिमा अपार है, उसके गुण कहाँ तक कहे जायँ? सतगुरु की कृपा से 'शब्द-संतोष' मिला और जन्म-जन्म के दोष दूर हो गए।[2] इसलिए स्वामी रामचरण सत्गुरु की शरण का सुझाव देते हैं क्योंकि वही 'सिरजनहार' है, अतः उसी की शरण जाने से काम होगा।[3] इसी प्रकार सवैया, झूलणा, कवित आदि शीर्षकों में गुरु की महिमा का गान स्वामी रामचरण ने किया है। इन सभी शीर्षकों में उन्होंने अपने गुरु स्वामी कृपाराम जी की महिमा बड़ी तन्मयता से कही है। उन्हें अपने गुरु के उपकार बार-बार स्मरण हो आते हैं।[4] इन छन्द-शीर्षकों में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ स्वामी रामचरण की भावधारा गुरु के चरणों को पखारती हुई 'गुरुदेव को अंग' को सार्थकता प्रदान करती हैं।

२. गुरु समर्थाई को अंग—केवल साखी शीर्षक के अन्तर्गत ११ छन्दों में इस अंग का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। सम्पादक ने इसे 'गुरुदेव को अंग' शीर्षक के अन्तर्गत उपशीर्षक देकर रख दिया है। गुरु-महिमा का बखान निम्न पंक्तियों में ध्यान देने योग्य है—

---

१. अणभैवाणी, साखी, छन्द ७, पृ० ३।
२. वही, साखी, छन्द ५९, पृ० ५।
३. वही, चन्द्रायणा, छन्द १, २, पृ० ७५।
४. "सतगुरु किरपाराम जी सदा बसै उर मांहि।
मों सिर ऊँधा कर धर्‌या सो सूधा वाड्या नांहि।
सो सूधा वाड्या नांहि दीन पर दया विचारी।
अरप्या धन संतोष आपदा हरी हमारी।
रामचरण दाता मिल्यां दालिदर है सुकांहि।
सतगुरु किरपाराम जी सदा बसै उर मांहि।"

—अणभैवाणी, कुण्डल्या, छं० ४, पृ० १३७

"सतगुरु समर्थ बहोबली, ले काढ़ै गह बांह।
सांसा सबै निवारि कै, राखै चरणकमल की छांह।"[१]

३. **सुमरण को अंग**—संत साहित्य में नाम-स्मरण का बड़ा महत्त्व है। 'सुमरण अंग' के अन्तर्गत स्वामी जी का संदेश है—

"रामचरण का शीश पर एक निरंजण राम।
रात दिवस रटबो करै, नहीं आन सूं काम।"[२]

नामस्मरण से चंचल मन थिर होता है और वह सहस्रार से क्षरित अमृतरस का पान करता है।[३] नामस्मरण से ही मुक्ति मिलती है।[४] इसी प्रकार चन्द्रायणा, सवैया, झूलणा, कवित, कुंडल्या और रेखता शीर्षकों में 'सुमरण को अंग' के अन्तर्गत नाम-स्मरण की महत्ता प्रतिपादित करते हुए स्वामी रामचरण ने तेज स्वर में जनमानस को इन शब्दों से स्पर्श किया—

"राम का नाम कूं जप्प रे बावरे।
राम का नाम बिना मुक्ति नाहीं।"[५]

४. **बीनती को अंग**—चार छन्द शीर्षकों—साखी, चन्द्रायणा, कवित्त और कुण्डल्या के अन्तर्गत 'बीनती को अंग' संगुंफित है। इस अंश में कवि के आत्म-निवेदन की सीमा ही 'बीनती को अंग' है। कवि अपनी दीन-हीन पतितावस्था को लेकर अपने उपास्य राम के समक्ष उपस्थित होता है। वह अवगुण की खान है तथा उसका उपास्य अनेक गुणों की खान है, अतः सभी अवगुणों से मुक्त करने का निवेदन है।[६] कवित्त शीर्षक में वह कलियुग के उत्पात, परिणामतः शिष्य द्वारा गुरुधर्म का त्याग और पुत्र द्वारा पिता की अवहेलना, भक्तों की बिगड़ी राह पर परिताप करता है। ऐसी दशा से राम ही निर्धन के धन, निर्बल के बल और राम ही धर्म है।[७] अतः अन्त में वह अपनी 'अरदास' निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत करता है—

---

१. अणभैवाणी, साखी छं० ६९, पृ० ५।
२. वही, साखी, सुमरण को अंग, छं० १, पृ० ६।
३. वही, छं० २६, पृ० ६।
४. वही, छं० ११३, पृ० ९।
५. वही, रेखता, छं० १, पृ० १९०।
६. "पतित निवाजण राम जी मैं जाण्या उर मांहि।
रामचरण पतिता पतित, पाछा फेर्‌या नांहि।
रामचरण अवगुण भर्‌या, तुम बहो गुण की खान।
अवगुण सबही बगसियो, राम तुमारो जान।"
—अणभैवाणी, साखी बीनती को अंग, पृ० १०
७. अणभैवाणी, कवित बीनती को अंग, पृ० १०८।

> "सुणो एक अरदास हमारी राम निरंजन देव।
> रामचरण कूं दीजिये चरण कमल की सेव।
> चरणकमल की सेव रिधि सिधि नहिं मांगै।
> मुक्ति मांहि मन काढ़ि सुरति तुमही सूं लागै।
> भक्ति बिना कैसे लहै अलख तुम्हारा भेव।
> सुणो एक अरदास हमारी राम निरंजन देव।"[1]

५. **विरह को अंग**—साखी और चन्द्रायणा शीर्षकों में स्वामी रामचरण का विरह विकसित हुआ है। [illegible] में संतों का हृदय रामरूपी प्रियतम के लिए आतुर रहता है। यथा—'रामचरण रामै जपै, तुम बिन तलफै जीव।' कवि का उसके प्रिय से बिछोह का कारण माया का पर्दा है, अतः वह चाहता है कि माया का पर्दा हटे और प्रियतम का दीदार हो—

> "रामनिरंजण निकट रहै, माया पड़दै दूर।
> बिरहिनि का पड़दा मिटै, तो दरसै पीव हजूर।"[2]

६. **ज्ञान विरह को अंग**—साखी शीर्षक से १० छंदों का यह अंग विरह से अलग करके कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया है। विरह की अग्नि से ही विषय-विकार जल जाता है और तब प्रियतम राम से मिलन होता है। विरह की महिमा का विवेचन कवि निम्नलिखित पंक्तियों में करता है—

> "रामचरण ई विरह की, महिमा कही न जाय।
> भरम करम सब दग्ध करि, दिया पीव पिछणाय।"[3]

७. **लै को अंग**—साखी शीर्षक के अन्तर्गत ८ छंदों में 'लै' का स्पष्टीकरण कवि ने किया है। 'लय' पहले जिह्वा से आरंभ होती है, फिर हृदय में समा जाती है। कवि ने इसे 'अजपा जाप' की स्थिति बतलाया है।[4]

८. **प्रेम प्रकास को अंग**—साखी और रेखता शीर्षकों में स्वामी रामचरण ने 'प्रेम प्रकास को अंग' लिखा है। इस अंग में कवि आध्यात्मिक प्रेम के प्रकाश से प्रकाशित हृदय का विभिन्न रूपों में वर्णन करता है। प्रेम की लहरें सागर की तरंगों सदृश जब उठने लगें

---

१. अणभैवाणी, कुण्डल्या, बीनती को अंग, छं० ७, पृ० १४१।
२. अणभैवाणी, साखी बिरह को अंग, छं० १८, पृ० ११
३. अणभैवाणी, साखी, ज्ञान विरह को अंग, छं० ९, पृ० ११
४. हिरदै लै लागी रहे, सोही अजप्पा जाप।
   रामचरण तब ना रहै, पुण्य पाप की ताप।
   —वही, साखी लै को अंग, छं० २, पृ० १२

तब इसे प्रेम का उपकार समझना चाहिए। कवि के अनुसार प्रेम का प्रकाश तब समझना चाहिए जब मन का रंग ऐसा पलट जाय कि काम, क्रोधादि से वह मुक्त हो जाय। गुण से निर्गुण हो जाना ही प्रेम-प्रकाश का लक्षण है। तब लोक-रीति, वेद-रीति आदि से मनुष्य परे हो जाता है। प्रेम का प्रकाश प्रियतम को मिलाता है। वियोगी भक्त निहाल हो जाता है और उसके दुःख दूर हो जाते हैं।[1] रेखता शीर्षक में स्वामी रामचरण प्रेमप्रकाश का विवेचन निम्नलिखित पंक्तियों में करते हैं—

"राम का नाम सैं प्रेम परकाशिया भर्म का तिमिर सब दूर भागा।
सुरति नहचल भई शब्द सैं मिल गई करत किल्लोल सुख अधिक जागा।
दिल्ल दरम्यान इक प्रेम का खास है मन्नवा मगन होइ धसत आधा।
राम ही चरण अब संत किरपा भई ब्रह्म अत्तोल नग हाथ लागा।"[2]

९. **पीव पिछांण को अंग**—साखी के अन्तर्गत ४ छंदों का यह अंग प्रियतम की पहचान हो जाने पर मनःस्थिति का रूपचित्र प्रस्तुत करता है।

१०. **परचा को अंग**—साखी, चन्द्रायणा, सवैया, कवित, कुण्डल्या और रेखता शीर्षकों के अन्तर्गत 'परचा को अंग' लिखा गया है। 'भजन प्रताप की चार चौकियों' से इस अंग का प्रारंभ कवि ने किया है।[3] किस प्रकार जिह्वा से शब्द सरक कर कण्ठ से होते हुए हृदय में पहुँचता है फिर उसका तीसरा निवास 'नाभि' है, नाभि से उठकर 'गगन' पर पहुँचता है। इस प्रकार चारों चौकियों का स्पर्श करके साधक 'सहज समाधि' में समा जाता है।[4] और तब—

"बिन रसना गुण गाइये, बिन कर बाजै तूर।
बिन श्रवणा अनहद सुणैं, जहाँ ब्रह्म सभा भरपूर।

---

१. अणभैवाणी, साखी, प्रेमप्रकास को अंग, छं० ८, ९, १०; पृ० १२।
२. अणभैवाणी, रेखता, प्रेमप्रकाश को अंग, छं० ३, पृ० १९२।
३. चोकी भजन प्रताप की संत कह गये च्यार।
रामचरण या सत्य है दूजा भरम असार।
—अणभैवाणी, साखी, परचा को अंग, छं० १, पृ०
४. राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय।
रसना सूं सरक्या शब्द कण्ठ होय हृदय ध्याय।
कंठ होय हिरदे ध्याय, तृतीये नाभि निवासा।
नाभि कमल सूं उलट गगन जाय किया विलासा।
चौकी च्यारूं पर्शि के सहज समाधि समाय।
राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय।
—अणभैवाणी, कुण्डल्या परचा को अंग, छं० १, पृ० १४

जहाँ ब्रह्म सभा भरपूर और कोई निजर न आवै।
सुरति रही मठ छाय देह तहाँ जाण न पावै।
रामचरण वा देस में बहु परकाशे सूर।
बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजे तूर।"[1]

उस गगन मण्डल में घना सुख होता है। माया का प्रपंच वहाँ नहीं, मृत्यु नहीं। सुख-समुद्र में लीन होकर ब्रह्म के साथ सोने में कोई विघ्न नहीं।[2] कवि इस शीर्षक में अन्त में कहता है कि सुनी-सुनायी बात सभी कहते हैं पर उससे भ्रम नहीं मिटता, मैं 'अगम देश की बात' देखी हुई कहता हूँ। उसी 'अगम देश' में सभी सन्तों का आगमन होता है और ब्रह्म से मिलन होने के बाद फिर बिछुड़न नहीं होती। इस प्रकार 'अचल देश' में आसन जमा लेने के बाद 'काल की घात' से मुक्ति मिल जाती है।[3]

११. पतिव्रता को अंग—साखी, कवित और कुण्डल्या शीर्षकों के अन्तर्गत लिखित 'पतिव्रता को अंग' में कवि लिखता है कि पतिव्रता पतिव्रत की टेक समझ कर धारण करती है और फिर अनेक व्यभिचारिणियों के सम्पर्क में आकर भी उसे नहीं छोड़ती।[4] सभी संतों के स्वामी एक 'राम' हैं और सभी संत उनकी सहेलियाँ। इनमें जो पतिव्रत का पालन करती है उसे सुख मिलता है।[5] जैसे पत्नी अपने प्रिय को पहचान कर पतिव्रत धारण करती है, नाना धर्मों की उपासना हृदय से दूर कर देती है, वैसे ही संसार में रह कर भक्त को एक 'राम' शब्द के अलावा और कुछ भी नहीं रुचता। कमल जल में रहता है पर उसे सूरज की किरण ही सुहाती है, वैसे ही भक्त संसार में रमण करता है किन्तु अपनी सच्ची टेक नहीं छोड़ता।[6] व्यभिचारिणी से पतिव्रता का अन्तर स्पष्ट करते हुए कवि पतिव्रता की प्रशंसा में निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखता है—

"पति की आज्ञा पग धरे सो पतिबरता जांण।
रामचरण विभचारणी पिव सूं खैंचा तांण।

---

१. अणभैवाणी, कुण्डल्या, परचा को अंग, छं० २, पृ० १४१।
२. वही, छं० ४, पृ० १४२।
३. वही, छं० ८, पृ० १४२।
४. पतिबरता पतिव्रत की, समझ गही है टेक।
रामचरण छांड़े नहीं, जो विभिचारणि मिलै अनेक।
—अणभैवाणी, साखी, पतिव्रता को अंग, छं० १, पृ० १५
५. सांई एको राम है, सबै सहेली संत।
रामचरण सुख सो लहै, जो पालै पतिबरत।
—वही, छं० २१, पृ० १५
६. वही, कवित, पतिव्रता को अंग, छं० १, पृ० १०७।

पिव सूं खैंचा तांण शब्द कोई एक न मानै।
पति मुरजादा लोप शंक हिरदै नहिं आनै।
कूड़ कपट मन में रहै करै कन्त सूं बांण।
पति की आज्ञा पग धरै सो पतिबरता जांण।"[1]

'पतिव्रता को अंग' में स्वामी रामचरण सामान्य लोक से ऊपर उठकर अध्यात्म-लोक में पहुँच गए हैं। पतिव्रता का आदर्श संत जीवन में देखना कवि का अभीष्ट है। इसीलिए कवि के ही शब्दों में 'पत्तीव्रत की टेक भक्त की भक्ति सम्हावै।'[2]

१२. **व्यभिचारिणी को अंग**—साखी, सवैया, कवित और कुण्डल्या शीर्षकों के माध्यम से स्वामी रामचरण ने 'व्यभिचारिणी को अंग' प्रस्तुत किया है। व्यभिचारिणी पतिव्रता की अवहेलना करती है। वह चार दिन की जवानी में जार का सम्मान करती है और जब वृद्धा हो जाती है तो पति को हैरान करती है।[3] व्यभिचारिणी एक प्रतीक है जिसके माध्यम से स्वामी जी राम-विमुखों को कालामुँह वाला घोषित करते हैं—

"आन उपासे राम बिन, जाका काला मुख।
रामचरण पति परिहर्यां, स्वप्ने नाहीं सुख।"[4]

कुण्डल्या तक आते-आते कवि अध्यात्म लोक की बातें करने लगता है। वह 'सुरति' को व्यभिचारिणी प्रतीक के माध्यम से समझाने का प्रयास करता है। कुण्डल्या का निम्न-लिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

"सुरति टिके नहिं शाशरै दौड़ी पीहर जाय।
धींगां सूं धूंकल करै पति नहिं आवै दाय।
पति नहि आवैं दाय कुहावैं जाकी नारी।
दिना च्यार मनमोद अंत सम होसी ख्वाँरी।
रामचरण विभचारिणी जब तक खोटा खाय।
सुरति टिके नहि शाशरै दौड़ी पीहर जाय।"[5]

१३. **समर्थाई को अंग**—साखी, चन्द्रायणा और कवित इन तीन छन्द शीर्षकों में स्वामी रामचरण ने प्रियतम 'राम' की सामर्थ्य का वर्णन किया है। उनका सांई समर्थ है।

---

१. अ० वा०, कुण्डल्या, पतिव्रता को अंग, छं० २, पृ० १४२।
२. वही, छं० १०, पृ० १४३ ।
३. वही, साखी व्यभिचारिणी को अंग, छं० १, १३; पृ० १६।
४. वही, साखी व्यभिचारिणी को अंग, छं० १९, पृ० १६।
५. वही, कुण्डल्या व्यभिचारिणी को अंग, छं० ५, पृ० १४४।

उसके माध्यम से सब सरल है। रंक, राजा और राजा, रंक हो सकता है।[१] उसके नाम की बड़ी महिमा है, अपार सामर्थ्य है। वह एकमात्र सामर्थ्यवान है। अन्य देव याचक हैं, इसलिए कवि, याचकों की सेवा छोड़कर सामर्थ्यवान् के भजन की राय देता है।[२]

१४. **विश्वास को अंग**—स्वामी रामचरण की घोषणा है कि 'रामचरण विश्वास बिन दुख पावे संसार।'[३] साखी, सवैया, कवित, कुण्डल्या शीर्षकों में कवि ने 'राम' के नामस्मरण में अटूट विश्वास व्यक्त किया है।

> **"रामचरण भज राम कूं, धर हिरदै विश्वास।**
> **रामभजन परताप सूं, अनेक उधर्‌या दास।"[४]**

विश्वास भाग्यवाद की आधारशिला है। स्वामी रामचरण भी विश्वास के सहारे भाग्यवादी हो गए हैं। दुःख-सुख, सम्पत्ति-विपत्ति सभी कुछ का भोग तकदीर कराती है, इसलिए राम पर विश्वास करना चाहिए क्योंकि वह सर्वव्यापी है।[५] अविश्वासियों के विषय में स्वामी रामचरण की धारणा बहुत स्पष्ट रही है। उनके अनुसार जिन्हें 'राम' में विश्वास नही, वे नामोच्चारण करते हैं अवश्य पर खोजते कुछ और ही हैं। जब मन में विश्वास नहीं होता, फल मिलना तो दूर, कमाई भी व्यर्थ जाती है।[६]

१५. **विरक्त को अंग**—स्वामी रामचरण ने विरक्त के लिए दरवेस, फक्कर, वैरागी आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है। साखी, झूलणा, सवैया, चन्द्रायणा और कुण्डल्या प्रकरणों में विरक्त की विस्तृत समीक्षा स्वामी जी ने की है। विरक्त की व्याख्या में उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं—

> **"विरक्त जाका नाम है, एक राम की आस।**
> **रामचरण तजि द्वैत कूं, करै ब्रह्म में बास।**

---

१. समर्थ मेरा सांईयां, जासूं सब आसान।
   रंकक रथ पै राजई, राय रंक सामान।
   —अ० वा०, साखी, समर्थाई को अंग, छं० १, पृ० १६

२. समर्थ एको राम है, जाचक सबही देव।
   रामचरण समरथ भजो, तजि जाचक की सेव।
   —वही, साखी, समर्थाई को अंग, छं० ३, पृ० १६

३. वही, साखी, विश्वास को अंग, छं० १, पृ० १७।

४. वही, छं० ९, पृ० १७।

५. दुःख सुख सम्पत्ति आपदा परालब्ध भुगताहिं।
   राम भरोसा राखिए राम सकल कै मांहि।
   —वही, कुण्डल्या, विश्वास को अंग, छं० १, पृ० १४६

६. वही कुण्डल्या, विश्वास को अंग, छं० १ पृ० १४७।

विरक्त वाकूं जाणिये, जा सूं माया दूर।
आसपासि अटकै नहीं, वे छै संत हजूर।"[१]

स्वामी जी के अनुसार जिसने संसार के प्रति मोह-त्यागकर दिया वह वैरागी,[२] जो किसी से राग न रखे वह दरवेश[३] और जो वासना रहित है वह फक्कर[४] है। विरक्त के लक्षण की चर्चा के संदर्भ में 'चन्द्रायणा' की ये पंक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं—

"कर में कमंडल धार गला में मेखला।
जग सूं फिरै उदास रमै नित एकला।
रामनाम उर धार भार सब डारिया।
परिहां रामचरण की तरफ राम निहारिया।"[५]

विरक्त के लिए आवश्यक है कि वाक् संयमी हो, संसार के प्रति, उसके कार्य-व्यापारों के प्रति उदासीनता, राम नाम और संतों से प्रेमभाव उसके हृदय में हो।[६]

१६. निवृत्ति को अंग—साखी के आठ छन्दों में निवृत्ति का विवेचन एवं प्रवृत्ति से उसकी भिन्नता का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। प्रारंभ में ही राम रटन और निवृत्ति के ग्रहण की बात वे करते हैं, साथ ही यह भी कि प्रवृत्ति का प्रसार बन्धन है, अतः उसके प्रति उदासीन हो जाना चाहिए।[७] निवृत्ति साधु का नेत्र है। उसके बिना संसार अंधा है और प्रवृत्ति के सभी साधन दुःख के रूप हैं, वह मृगतृष्णा के नीर सदृश है, सुरति-शब्द का मेल निवृत्ति से ही संभव है। यथा—

"सब परवरति दुःख रूप है, ज्यूं मृगतृष्णा नीर।
मैला सुरति शब्द का, ये रामचरण मुखसीर।"[८]

१७. साध को अंग—साखी, चन्द्रायणा, सवैया और कवित शीर्षकों को मिलाकर उपर्युक्त अंग बनता है। इस अंग में स्वामी रामचरण ने साधु के लक्षण गिनाए हैं और असाधु से उनकी भिन्नता भी स्पष्ट की है। साखी की निम्नलिखित पंक्तियों में साधु के लक्षणों का स्पष्ट विवरण स्वामी जी ने प्रस्तुत किया है—

---

१. अ० वा० साखी, विरक्त को अंग, छं० ३२, ३४; पृ० १९।
२. वही, विरक्त को अंग, छं० १; पृ० १९।
३. वही, विरक्त को अंग, छं० २; पृ० १९।
४. वही, विरक्त को अंग, छं० ८; पृ० १९।
५. वही, चंद्रायणा, विरक्त को अंग, छं० २; पृ० ७९।
६. वही, कुण्डल्या, विरक्त को अंग, छं० २, ३; पृ० १४८।
७. वही, साखी, निवृत्ति को अंग, छं० १; पृ० १९।
८. वही, छं० ८, पृ० १९।

"राम धर्म सूं सदा रजू, गुरु सेवा अधिकार।
रामचरण वै साध कही जै, करै बहोत उपगार।
ज्ञानी सों गोविंद भजै, हिंसारहित उपाधि।
रामचरण इंद्रया जती, सो कहिए निज साध।
बूझ्या सूं चरचा करै, छांड्या वाद-विवाद।
पक्षपात सूं नी बंधे, सो कहिए निज साध।
मीठी वाणी उर दया, बकसै शब्द अगाध।
रामचरण सो जाणिये, पर उपगारी साध।
साधू सोही जाणिये, करै न काहू संग।
रामचरण इक राम बिन, लगै न दूजो रंग।"[1]

इसी प्रकार अन्य शीर्षकों में भी साधु-लक्षण स्वामी जी ने लिखे हैं। 'चंद्रायणा' में उन्होंने बतलाया है कि साधु और संसार का संग क्यों नहीं हो सकता? साधु राम-भजन में रत रहता है और विषय-स्वाद तथा अन्य संसार के इष्ट हैं, अतः यदि कोई भक्त जगत् का साथ पकड़ता है, वह भ्रष्ट हो जाता है।[2]

१८. साध संगति को अंग—संत-साहित्य में साधु संगति की बड़ी महिमा गायी गई है। स्वामी रामचरण कहते हैं कि सत्संगति सरलतम साधन है। इसे अवश्य करना चाहिए। सत्संग पद की प्राप्ति से दोनों दुःख मिट जाते हैं। ज्ञान में गरीब हो किन्तु नित्य नामस्मरण करे, उसके हृदय में क्रोध का संचार नहीं होता।[3] इसीलिए साधु संगति करनी चाहिए। साखी, चन्द्रायणा, झूलणा, कुण्डल्या आदि सभी शीर्षकों में साधु-संगति की महत्ता स्वामी रामचरण ने प्रतिपादित की है। साखी में स्वामी जी साधु संगति की महिमा बखानते हुए साधु संगति के लिए उपदेश देते हैं—

"संगति कीजै साध की, मन की दुबध्या खोय।
रामचरण इक पलक में, लोहा कंचन होय।"[4]

---

१. अ० वा०, साखी, साधु को अंग, छं० ७, ८, ९, १०, ११; पृ० २०।

२. जगत भक्त के संग कहो क्यू होय रे।
साध भजे इक राम दुबद्ध्या खोय रे।
विष-स्वाद अरु आन जगत का इष्ट रे।
परिहां रामचरण जो संग करे होइ भिष्ट रे।
—वही, चन्द्रायणा, साध को अंग, छं ०१०, पृ० ७८

३. वही, चन्द्रायणा, साध संगति को अंग, छं० १, पृ० ७८।

४. वही, साखी, साध संगति को अंग, छं० २, पृ० २१।

१९. असाध को अंग—साखी, कवित और रेखता शीर्षकों में इस अंग का वर्णन स्वामी जी ने किया है। असाधु मुख से वैराग्य की चर्चा करते हैं और मन मायारत रहता है। स्वामी जी ने सचेत किया है कि सत्य के बिना परमात्मा नहीं रीझता[1] असाधु जीव के लक्षण की निम्न-पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

> **"काम क्रोध मद लोभ बुधि, राग दोष अभिमान।**
> **हिंसा झूठ कठोरता, ए जीव लच्छ परमान।"[2]**

२०. कुसंगति को अंग—साखी, कवित, और कुण्डल्या के माध्यम से 'कुसंगति को अंग' का विवरण स्वामी रामचरण ने प्रस्तुत किया है। कुसंग का ही परिणाम है कि 'जीव ब्रह्म का अंश है, देही संग दुख पाय।'[3] फिर भी जानबूझ कर जीव कुसंगति में पड़ते हैं और मोह के कारण भक्ति में भंग पड़ता है।[4] कुसंगति सर्प है, उसका विष दूर नहीं होता। यथा—

> **"भवंग टिपारे सेइये तोहि मिटै नहीं निज वांण।**
> **पय पावै शत वर्ष लूं विष की होय न हांण।**
> **विष की होय न हांण दुष्टमति ऐसी जाणौ।**
> **फिरफिर तजै न धूल सहं सबर कोई छांणौ।**
> **रामचरण संग दोष है नहचै कुशल न जांण।**
> **भवंग टिपारै सेइये तोहि मिटै नहीं निज वांण।"[5]**

२१. अकल को अंग, बेअकल को अंग—उपर्युक्त दोनों अंग साखी के अन्तर्गत हैं। अकल के अंग में स्वामी रामचरण कहते है कि राम की कृपा और सत्गुरु की दया से भक्ति का रंग चढ़ता है, फिर भी यदि अपनी अकल हो तो व्यक्ति संसार का संग छोड़ दे। कर्म-भ्रमादि छोड़कर केवल राम का विश्वास करना चाहिए, इसी अकल से यम का भय दूर हो सकता है।[6]

---

१. अ० वा०, साखी, असाध को अंग, छं० १२, पृ० २१।
२. वही, छं० १८, पृ० २१।
३. वही, साखी, कुसंगति को अंग, छं० १, पृ० २३।
४. वही, छं० ६, वही, पृ० २३।
५. वही, कुण्डल्या, कुसंगति को अंग, छं० १, पृ० १५३।
६. राममया सतगुरु दया, तब लगें भक्तिरंग।
कछू आपणी अकल होय, तो तज जगत को संग।
कर्म मर्म सब छांड़ि कै, गहै राम विश्वास।
रामचरण या अकल सूं, छूटे जम की त्रास।
—वही, साखी, अकल को अंग, छं० ३, ४, पृ० २४।

तु संसार में अकल का प्रवेश ही नहीं है। बे-अकल होने के कारण ही जन राम-स्मरण छोड़कर -कष्ट भुगतते हैं।[1]

२२. **विचार को अंग, बेविचार को अंग**–विचार को अंग का सृजन स्वामी रामचरण ाभी सात छन्द शीर्षकों में किया है, बेविचार को अंग केवल साखी में ही वर्णित है। विचार है? उसका उत्तर स्वामी जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

> **"राम भजे माया तजै, जीते विषै विकार।**
> **रामचरण जग पूठ दै, यो ही बड़ो विचार।"**[2]

रेखता में लिखित 'विचार को अंग' का एकमात्र रेखता छन्द विचार का एक लोक अपने ा लाया है। विचार के लिए जीवन के हर व्यापार में बारीकी की खोज कवि को है।

> **"भक्ति बारीक अरु भेद बारीक है समझ बारीक सैं स्वाल सोह्वै।**
> **चाल बारीक अरु ह्वाल बारीक है, होय बारीक बेहद्द जावै।**
> **महल बारीक में गोख बारीक है गोख की जोख ले सुरति छावै।**
> **राम ही चरण ये इश्क बारीक है होय आशिक महबूब पावै।"**[3]

'बेविचार को अंग' में अविचारी की लाचारी का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने बेविचारी तुलना बंदर से की है जो स्वार्थ के कारण परवश होकर घर-घर नाचता फिरता है। ये मनुष्य ारहीन मर्कट के सदृश हैं जो केवल रति-सुख के लिए संसार भर का दुःख भोगते है।[4] बिना ार के मनुष्य-पशु में कोई अन्तर नहीं। विचारहीनता के ही कारण संसार भ्रमित है और ेश्वर जैसे स्वामी को छोड़कर दूसरे पुरुष का अधिकार स्वीकारता है।[5]

२३. **नहचै को अंग**—'नहचै' शब्द निश्चय का अर्थवाची है। साखी के अन्तर्गत खेत इस अंग में कवि रामभजन के निश्चय की बात करता है। माया के रूप से विमुख हो नामस्मरण से आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्राप्त होता है।[6] स्वामी रामचरण इस अंग के माध्यम

---

१. रामचरण संसार मैं, नहीं अकल परवेस।
   राम भजन कूं छांड़िकै, करि है कर्म कलेस।
   —अ० वा०, बेअकल को अंग, छं० १।

२. वही, साखी, विचार को अंग, छं० १, पृ० २५।

३. वही, रेखता, विचार को अंग, छं० १, पृ० १९३।

४. रामचरण ये मानवी मर्कट बिना विचार।
   रति इक सुख कै कारणै, दुख भुगतै संसार।
   —वही, साखी, बेविचार को अंग, छं० ३, पृ० २६।

५. वही, छं० ११, पृ० २६।

६. अ० वा०, साखी, नहचै को अंग, छं० १, पृ० २७।

से पर्व-त्यौहार, अन्य देवी-देवताओं को नकार एक राम-नाम के निश्चय का उपदेश देते हैं।[1]

२४. **जीवतमृतग को अंग**—इस अंग में स्वामी रामचरण ने बतलाया है कि मानव शरीर पाकर भी यदि मनुष्य राम को नहीं पहचान पाता तो वे सभी मानव मृतक के समान हैं।

२५. **सजीवण को अंग**—संजीवन सतगुरु की कृपा से प्राप्त होता है जिसे पाकर शिष्य साधना करता है और शरीर-गुण भूल जाता है। शरीर-गुण पर विजय पाकर राम-भजन में रत होना ही संजीवन है, जो शरीर-गुण को महत्व देकर राम को छोड़ देते हैं, वे मृतक तुल्य हैं।[2]

२६. **सारग्रही को अंग**—साखी, रेखता, इन दो शीर्षकों मे 'सारग्रही को अंग' स्वामी रामचरण द्वारा लिखा गया है। सार शब्द केवल 'राम' है, इसके अतिरिक्त अन्य सब तत्त्वहीन, भ्रमपूर्ण है। जो सारग्रही है वह 'शब्द' शोधन करता है, उससे तत्त्व निकालकर उसका अर्थ-ग्रहण कर लेता है और सभी अनर्थों का त्याग कर देता है।

२७. **अवगुणग्राही को अंग**—इस अंग के लिए स्वामी रामचरण ने सवैया और साखी दो शीर्षक चुने हैं। अवगुणग्राही आत्मा की पहचान निम्नलिखित छन्द में द्रष्टव्य है—

"अवगुणग्राही आतमा, गुण में समझै नांहि।
अपणी राजस कारणै, कह कसर गुरु मांहि।"[3]

२८. **अज्ञानी को अंग**—पांच शीर्षकों—साखी, चन्द्रायणा, सवैया, कवित और कुण्डल्या के अन्तर्गत इस अंग का उल्लेख मिलता है। स्वामी जी कहते हैं कि संसार अंधा है, वह दुःख को ही सुख समझता है।[4] अज्ञानी की परिभाषा चन्द्रायणा की निम्नलिखित पंक्तियों मे स्पष्ट है—

बहै अविद्या धार लियां शिरभार रे।
मोह भंवर में पड़ै न पावे पार रे।[5]

---

१. रामनाम की नहचै कीन्हीं, नहिं मानै वार तिह्वार।
आनदेव की संक न आणै, समझरु कियो विचार।
—अ० वा०, साखी, छं० ३३, पृ० २८।

२. गुण जीतै राम भजै सोहि सजीवण जानि।
गुण पोखै रामै तजै सो सब मृतक समान।
—वही, साखी सजीवण को अंग, छं० १,२; पृ० २८, २९।

३. वही, साखी, अवगुणग्राही को अंग, पृ० ३०।

४. रामचरण जग अंध है दुख को समझै सुक्ख।'
—वही, साखी, अज्ञानी को अंग, छं० ६, पृ० ३०।

५. वही, चन्द्रायणा, अज्ञानी को अंग, छं० ६, पृ० ८१।

२९. रामविमुख को अंग—साखी और कुण्डल्या दो छंद शीर्षकों में 'राम-बिमुख को अंग' वर्णित है। स्वामी रामचरण रामविमुख का बहिष्कार तेज स्वर में करते है। वे उसकी बात सुनने को भी तैयार नहीं, क्योंकि वह भ्रम की धूल झोंक कर बाह्य और आभ्यन्तर दोनों चक्षुओं को फोड डालता है।[१] आगे हरिविमुख के चार चाहकों की भी चर्चा निम्नलिखित पंक्तियों में करते हैं—

"रामचरण हरिविमुख के, च्यार चहन भा संत।
अहं, कुबुधि अरु कपटता, जन देख्यां दाझंत।"[२]

३०. काल को अंग—साखी, चन्द्रायणा, सवैया, कवित, कुण्डल्या इन पाँच शीर्षकों मे काल को अंग का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। इस अंग में काल की गतिविधियों का बड़ा मार्मिक वर्णन हुआ है। काल से परे कोई नहीं। केवल 'शब्द' ही अकाल है जिसे पाकर कवि निर्भय रहता है। द्रष्टव्य पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

"काल तणा भय मिट गया, छूटा भर्म जंजाल।
रामचरण निरभै भया, पाया शब्द अकाल।"[३]

इसीलिए काल संतों के पास नहीं फटकता, बोझिल शिर वालों की ही कमर पकड़ता है। रामभजन के प्रताप से संतों पर काल का घात नहीं चलता, वैसे जिसने शरीर धारण किया है उसका विनाश अवश्यम्भावी है—जैसे पेड़ का पत्ता।[४] सारांश यह कि इस प्रचण्ड काल से कोई नहीं बच पाता, केवल राम के दास ही उससे छुटकारा पा सके हैं। और जो राम की आड़ नही लेते उन्हें काल का घात सहना ही पड़ेगा।[५] स्वामी रामचरण जी ने काल को महाबली, महा-

---

१. रामविमुख का रामचरण सुणिये नांही वैंण।
भस्मी डारै भर्म की फोड़े च्यारूं नैंण।
—अ० वा०, साखी, रामबिमुख को अंग, छं० १, पृ० ३१।

२. वही, साखी, राम बिमुख को अंग, छं० २, पृ० ३२।

३. वही, साखी, काल को अंग, छं० २, पृ० ३२।

४. रामचरण संता तणै, काल न लागै लार।
डाणी पकड़ै तासकूं, जाका शिर पर भार।
रामभजन परतापसूं, काल न घालै घात।
धरी देह सो विणससी, ज्यों तरुवर पाको पात।
—वही, साखी, काल को अंग, छं० २५, २७, पृ० ३३।

५. काल महा परचण्ड न छोड़ै कोय रे।
राजा राणा देव सकल बस होय रे।
उबरै दास निराश राम की ओट रे।
परिहां रामचरण तजि ओट खाय सब चोट रे।
—वही, चन्द्रायणा, काल को अंग, छं० १, पृ० ८२।

बलवन्त आदि विशेषणों से विभूषित किया है। यथा—'काल महाबलवंत है, चलै न किस का जोर।'[1]

३१. चितावणी को अंग—साखी, चन्द्रायणा, सवैया, कवित और कुण्डल्या, इन छह शीर्षकों के अन्तर्गत 'चितावणी को अंग' का विवेचन स्वामी रामचरण ने किया है। 'चितावणी' शीर्षक ही यह स्पष्ट करता है कि इस अंग के माध्यम से स्वामी रामचरण अपने शिष्यों एवं जनसामान्य को सजगकर रामभजन की राय देते हैं। रामभक्ति की ओर उन्मुख करने की दृष्टि से उनका निम्नलिखित उद्‌बोधन ध्यान देने योग्य है—

"अवसर बीता जाय, चेत सके तो चेत रे।
मति रीता रह जाय, भक्ति करो भगवान की।
जनम अमोलक पाय, सूतां तुजकूं क्यूं बणै।
बेग राम को ध्याय, राम दयाल कृपा करै।"[2]

चेतावनी तो वह बार-बार देता है पर वह अनुभव करता है कि इतने पर भी मनुष्य सजग नहीं होता। 'चन्द्रायणा' की ये पंक्तियाँ इस संदर्भ की साक्षी हैं—

"नर चेते नहीं अचेत कि गाफिल ह्वै रह्या।
भजै नहीं भगवान जगत गाढा गह्या।
सुत दारा धन धाम किया सब आपणा।
परिहां रामचरण सब छांड चल्या ज्यूं पाहुणां।"[3]

अचेत मानव भगवान से विमुख होकर सांसारिकता में डूबा रहता है। पर एक दिन सभी कुछ छोड़ पाहुने के समान बिदा हो जाता है। संसार में कुछ भी स्थिर नहीं, यह चराचर विश्व चलायमान है। सरिता, शैल, समुद्र, धरती, सूरज, चाँद सभी अस्थिर हैं।[4] अंत में सांसारिकता में डूबे मानव को 'अंधे' शब्द से संबोधित करते हुए भजन के लिए सजग करता है—

"धन जुवती सुत देखि भूलि क्यूं सोवै अंधा।
देखत जाय बिलाय काल सब रोप्या फंदा।

---

१. अ० वा०, साखी, कुण्डल्या को अंग, पृ० १७०।
२. वही, साखी, चितावणी को अंग, छं० २, पृ० ८२।
३. वही, चन्द्रायणा, चितावणी को अंग, छं० २, पृ० ८२।
४. थिर नहिं शिलता शैल सिन्धु अवनी थिर नांही।
　थिर नहिं सूरज चंद इंद ब्रह्मा न रहांही।
　　—वही, कवित, चितावणी को अंग, छं० १२ पृ० ११९।

"तीन लोक फिर देखिए तेरा सगा न कोय।
रामचरण सांचो कहै भजन किया सुख होय।"[1]

३२. उपदेश को अंग—साखी, झूलणा, कवित और कुण्डल्या शीर्षकों में स्वामी रामचरण ने 'उपदेश को अंग' लिखा है। इस अंग में स्वामी जी ने माया की चंचलता, देह की क्षणभंगुरता, ब्रह्म की थिरता आदि की चर्चा करते हुए ब्रह्मज्ञानोपदेश की बात कही है। मनुष्य शरीर बड़ी कठिनाई से मिलता है और उसमें भी सत्संग तो भाग्य से मिलता है, अतः इस सुअवसर को छोड़कर जीवन नष्ट करना उचित नहीं। मंदिर, मढ़ी, वन और गिरि-गुफा आदि में व्यर्थ समय न गँवाकर राम का पुनीत स्मरण करना ही मनुष्य-शरीर धारण करने का लाभ है।[2] झूलणा में कवि तीर्थ-स्थलों, मंदिर-मस्जिदों, वेद-कुरान आदि सभी को भ्रममूलक कहकर गुरु द्वारा उपदेश को ही महत्त्वमय कहता है। यथा—

"भरपूर अकल्ल सकल्ल है रे गुरपीर बिनां नहिं पावता है।
हिन्दु होय हैरान तीरत्थ फिर मीयां मान मकै चलि जावता है।
कोइ देवल बास मसीत नहीं कोइ वेद कतेब में गावता है।
कह रामचरण भरम्म परै सब भावना मांहि भुलावता है।"[3]

गुरु के उपदेश से ही कल्याण संभव है। योग्य गुरु शिष्य को उपदेश रूपी हाथ से पकड़कर संसार-सागर में डूबने से बचा लेता है। एक उदाहरण जिसकी पंक्तियाँ नीचे उद्धृत हैं—

"नगर बलख का मीर कूं मिलिया गोरखनाथ।
भवसागर में बूड़तां गहकर काढ्या हाथ।
गहकर काढ्या हाथ जोग कै मारग लाया।
हिरदा का पट खोल नाम का भेद बताया।
रामचरण पूरा परश भरी अगह की बाथ।
नगर बलख का मीर कूं, मिलिया गोरखनाथ।"[4]

---

१. अ० वा०, कवित चितावणी को अंग, छं० १३, पृ० ११९।

२. मानव तन दुर्लभ मिल्यो, अरु भाग मिल्यो सत्संग।
समझ पाय सतगुरु कहै, अब जनम न कीजै भंग।
कहा मंदिर मढ़िया कहा, कहा वन गिरि गुफा।
रामचरण भज राम कूं, ये नर तन तणा नफा।
—वही, साखी, उपदेश को अंग, छं० २८, ३०, पृ० ३७।

३. वही, झूलणा, उपदेश को अंग, छं० २, पृ० १०३।

४. वही, कुण्डल्या, उपदेश को अंग, छं० २०, पृ० १५६।

३३. **जिज्ञासी को अंग**—साखी, कवित और कुण्डल्या छन्द शीर्षकों में 'जिज्ञासी को अंग' वर्णित है। जिज्ञासी कौन का उत्तर निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

"सोही जिग्यासी जाणीसे, जाग अमीरस खाय।
रामचरण जाग्या पिछे, कबहूं सोय न जाय।"[1]

जिज्ञासी ज्ञान प्राप्त कर लेने पर फिर मोह में नहीं लिपटता, वह ईश्वर के मार्ग पर चलने लगता है। रामसनेही जिज्ञासी 'रमताराम' का सदैव स्मरण करते हैं, अन्य का स्मरण नहीं करते और संसार के लिए अजेय रहते हैं।[2] इसलिए—

एक भरोसो राम को, त्यागो आन उपाय।
रामचरण जग सूं तरक, रामसनेही दास।"[3]

कवित शीर्षक में रामसनेही जिज्ञासी के लक्षणों का वर्णन बहुत स्पष्ट हुआ है। कवि के शब्दों पर ध्यान देना समीचीन होगा—

"इष्ट राम रमतीत आन कूं पूठ दई है।
पग नंगे गुरुदर्श, दया की मूंठ गही है।
विषय त्याग विषवचन हांसि खिलवत नहिं जाणै।
हांणि वृद्धि की बार भरोसो हरि को आंणै।
जूवा चोरी परलुब्धि झूंठ कपटा नहिं राखै।
भांग तमाखू अमल अखज मद पान न चाखै।
पानी बरतै छांणि कै निरख पांव धरणी धरै।
वै रामसनेही जाणिये सो कारज अपणो करै।"[4]

'कुण्डल्या' में जिज्ञासी का एक और पक्ष स्वामी जी की दृष्टि मे आया है। वह सदैव राम का स्मरण करने वाला होना चाहिए, सत्संग में अत्यन्त विनम्र लजवंती लता सदृश होना चाहिए, उसे स्थिर मति वाला होना भी चाहिए।[5]

---

१. अ० वा०, साखी, जिज्ञासी को अंग, छं० ६, पृ० २७।
२. वही, छं० १०, पृ० २७।
३. वही, साखी, जिज्ञासी को अंग, छं० ११, पृ० २७।
४. वही, कवित, जिज्ञासी को अंग, छं० १, पृ० १२२।
५. राम कहै सकुच्या रहै, सत्संगति कै मांहि।
लता लजालू ज्यूं डरै, तनमन फैलै नांहि।
तनमन फैलै नांहि धीरमति सो ही जिज्ञासी।
—वही, कुण्डल्या, जिज्ञासी को अंग, छं० १, पृ० १५७।

३४. **गुरु पारख को अंग, शिख पारख को अंग, गुरु शिख पारख को अंग**—ये तीनों अंग क्रमशः 'गुरुपारख को अंग' दो अर्थात् साखी, चन्द्रायणा शीर्षकों मे, 'शिखपारख को अंग' चार शीर्षकों साखी, चन्द्रायणा, कवित और कुण्डल्या में और 'गुरुशिख पारख को अंग' साखी और कुण्डल्या में वर्णित हैं। स्वामी जी के अनुसार गुरु दीर्घचित्त—शिष्य को रामनाम की प्रेरणा देने वाला, उदारचित्त—जिसकी शरण मे इस संसार के प्रति मोह नहीं रह जाये, आनन्दचित्त—जिसके स्पर्शमात्र से दुख द्वन्द्व से मुक्ति मिल जावे, जो पर्वत जैसा अतोल और सागर जैसा अथाह, चन्द्रमा सदृश शीतल और पृथ्वी सदृश धैर्यशील हो।[1] बिना परखे गुरु नहीं करना चाहिए। यदि गुरु संसारी है तो शिष्य को भी उसी में खो देगा। गुणातीत, इन्द्रियजित्, निरंतर राम का नाम रटनेवाला गुरु शिष्य के सब कार्य सिद्ध करने वाला होता है। यदि एक तराजू पर गुरु और राम के गुण को रखा जाय तो राम को बताने के कारण गुरु विशेष हो जायगा।[2] 'शिख पारख को अंग' में शिष्य का लक्षण इस प्रकार वर्णित है—

> "शिख शरणागति होय कै धारै मन परतीति।
> रामचरण निशिदिन रटै तो जम दे सकै न भीति।
> रामभजन का भेद समझ सतगुरु सूं पावै।
> शिख बड़ भागी होय भेद सुण मन ठहरावै।
> अंतर क्षुधा जगाय नाम का करै अहारा।
> भजन भाव भरपूरि आन रस लागै खारा।
> पांच तत्वगुण तीन कूं जीति अमीरस खाय।
> रामचरण शिख शूर वा जो शब्दमयी होय जाय।"[3]

---

१. सतगुरु ऐसा कीजिए, जाका दीरघ चित्त।
रामचरण दे शिष्य कूं, रामनाम निज तत्त।
सतगुरु ऐसा कीजिए, जाका चित्त उदार।
रामचरण वाकी शरण, छूटे यो संसार।
सतगुरु ऐसा कीजिए, जाके उर आनन्द।
रामचरण ताहि परस्तां, छूट जाय दुख द्वन्द।
गिरिवर जिसा अतोल है, सागर जिसा अथाह।
शशि समान शीतल सदा, धीरज ज्यूं वसुधाह।
—अ० वा०, साखी, गुरुपारख को अंग, छं० १-४, पृ० ३८।

२. रामचरण पारख बिना, गुरु किया क्या होय।
गुरु बंध्या संसार सूं, तो शिख कुण देवै खोय।
रामचरण गुरु राम गुण, घालि तराजू देख।
राम बतावै रामजन, तातैं गुरु विशेख।
—वही, छं० १३, १५, पृ० ३८।

३. वही, कवित, शिखपारख को अंग, छं० ३, पृ० १२२-२३।

'गुरु शिख पारख को अंग' में स्वामी रामचरण ने साखी, कुण्डल्या शीर्षकों के अन्तर्गत गुरु-शिष्य की तुलनात्मक समीक्षा की है। गुरु-शिष्य के एक भाव का वर्णन उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियों में किया है—

"रामचरण भृंगी मतो, गुरुशिख एकै भाव।
कीट भृंग करि लेत है, अपणो मंत्र पढ़ाय।"[1]

गुरु-शिष्य की अनुकूलता-प्रतिकूलता भी इस अंग का वर्ण्य-विषय है। इस दोहे में उपर्युक्त भाव भलीभाँति स्पष्ट हुआ है—

"गुरु पुरा शिख सूर वा, जाका सीझै काज।
गुरु लोभी शिख लालची, तो उलटा होय अकाज।"[2]

स्वामी रामचरण की दृष्टि में गुरु-शिष्य का आदर्श रूप निम्नलिखित पंक्तियों में है—

"रामचरण सतगुरु सोही, शिष्य उतारैं पार।
शिख अज्ञा लोपै नहीं, तो बहै न भव की धार।
सतगुरु देखैं ब्रह्म सम, आप होय रह दास।
रामचरण वा शिष्य को, सतगुरु पद में बास।"[3]

इसी संदर्भ में कवि दत्तात्रेय-जदु, कृष्ण-उद्धव, शुकदेव-परीक्षित, गोरख-भरथरी, रामानन्द-कबीर, दादू-रज्जब सदृश आदर्श गुरु-शिष्यों की चर्चा करते हुए ऐसे गुरु-शिष्यों की प्रशंसा करता है।

३५. सन्मुख-बेमुख को अंग—साखी, चन्द्रायणा, सवैया और कुण्डल्या शीर्षकों में उपर्युक्त अंग का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। सन्मुख आस्तिक भक्त, नाम-स्मरण में लीन रहने वाला और बेमुख केवल मुख में राम का नाम और मन में माया का ध्यान रखने वाला है। वह सुख में भगवान को नहीं याद करता और दुःख में उन्हें गाली देता है।[4]

---

१. अ० वा०, साखी, गुरुशिख पारख को अंग, छं० ३, पृ० ३९।
२. वही, छं० ७, पृ० ३९।
३. वही, छं० १५, १६; पृ० ३९।
४. मुख सूं तो सतगुरु कहै, ले चरणामृत सीत।
कर जोड़े दंडवत करै, साधैं धर्म अतीत।
रामनाम मुख सूं कहै, उर माया को ध्यान।
रामचरण ऐसी भक्ति, क्यूं रीझै भगवान।
सुख में साहिब ना भजै, दुख में देवै गार।
रामचरण वा अन्ध कै, दिन दिन दूणी मार।
—वही, साखी, सन्मुख-बेमुख को अंग, छं० १, १८, २४, पृ० ४१।

३६. गुरुबेमुख को अंग—साखी, चन्द्रायणा, सवैया और कुण्डल्या शीर्षकों के अन्तर्गत 'गुरुबेमुख को अंग' का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। 'कुण्डल्या' शीर्षक में गुरुबेमुख का वर्णन स्वामी जी इस प्रकार करते हैं—

> "मन माने सो हीं करै गुरु आज्ञा भय नांहि।
> रामचरण वै प्राणिया बूडि जाय भव मांहि।
> बूडि जाय भव मांहि करै शत्रू का भाया।
> गुरु मित्र महाराज तास का शब्द लुपाया।
> जन्म जन्म दुख भोगवै चौरासी में जांहि।
> मनमाने सो हीं करै गुरु आज्ञा भय नांहि।"[1]

३७. चितकपटी को अंग—इस अंग में स्वामी जी ने कपटी की पहचान बतलायी है। कपटी बाहर से अत्यन्त दीन किन्तु उसका अन्तर मोटा होता है, वह मुख का मधुर होता है किन्तु उसका हृदय खोटा होता है।[2] साखी में विभिन्न उपमानों से कपटी की तुलना कर के स्वामी जी 'सवैया' शीर्षक में निम्नलिखित संदेश देते हैं—

> **"अन्तर शुद्ध नहीं जिनको दिल जासकी संग करो॰मति जाई।**
> **बाहिर हेत दिखावत चौगुणो मांहि तकै जैसे मूस बिलाई।**
> **दाव पड्यां गिल जाय सपूंछोही तासकी संगति नांहि भलाई।**
> **रामचरण्ण हिये अति कालम्यां कपट की गांठ रही उरझाई।"**[3]

३८. कायर को अंग—साखी, सवैया, कवित और कुण्डल्या शीर्षकों में 'कायर को अंग' कवि ने लिखा है। कायर मूर्ख होता है, वह अपने हृदयगत विचारों पर विजय नहीं पा सकता, नाम-स्मरण छोड कर यत्र-तत्र भरमता फिरता है। यही उसका ढंग है।[4] इसलिए स्वामी जी ने भजन का रहस्य कायर को देने के लिए मना किया है। यथा—

---

१. अ० वा०, कुण्डल्या, गुरुबेमुख को अंग, छं० २, पृ० १६०।

२. बाहर तो बहुदीनता मन मांही मोटा।
   रामचरण मुख मीठड़ा, अंतर का खोटा।
   —वही, साखी, चितकपटी को अंग, छं० ३, पृ० ४२।

३. वही, सवैया, चितकपटी को अंग, छं० १, पृ० ९३।

४. रामचरण मन का मता कायर सकै न जीत।
   भजन छांडि भरमत फिरै, ए कायर की रीत।
   —वही, साखी, कायर को अंग, छं० १, पृ० ४४।

"राम भजन का भेद भूल कायर नहिं दीजै।
जो कायर करै विवाद समझ के चुप्प रहीजे।"[१]

फिर यदि कायर त्याग या विराग की बात करता है तो उसे रेत का चबूतरा या रेड़ का बाग समझना चाहिए।[२] इस संदर्भ में स्वामी जी की निम्नलिखित कुण्डलिया भी ध्यान देने योग्य है—

"ज्यूं त्रीया को रूसणों त्यूं कायर को त्याग।
तन विरक्त अरु रक्त मन लिष्ट-पिष्ट बैराग।
लिष्ट पिष्ट बैराग सुरति को सांशो खावै।
नहीं भजन सूं भाव याद पिछला दिन आवै।
रामचरण दोन्यू गई प्रगट्यो परम अभाग।
ज्यूं त्रीया को रूसणों त्यूं कायर को त्याग।"[३]

३९. शूरातण को अंग—साखी, चन्द्रायणा, सवैया, कवित, कुण्डल्या और रेखता, इन छह छन्द शीर्षकों में यह अंग विभाजित किया गया है। स्वामी रामचरण की दृष्टि में शूर वह है जो बलवान मन को जीत सके। ऐसे शूर का दर्शन राम-कृपा से ही संभव है। 'कुण्डल्या' शीर्षक का यह छंद इस कथन के अनुरूप ही है—

"राम कृपा सूं पाइये शूरा का दीदार।
रामचरण जाकी संगति कायर होय हुंसियार।
कायर होय हुंसियार शूर की छाया बरतै।
पकड़ उठै समशेर कछू सरते अण सरतै।
कायर कूं रणखेत में शूर लंघावै पार।
रामकृपा सूं पाइये शूरां का दीदार।"[४]

४०. टेक को अंग—साखी और कवित शीर्षकों में रचित 'टेक को अंग' में स्वामी जी ने पशु-पक्षियों की टेक की ओर संकेत कर मानव को दृढ़निश्चयी बनने की प्रेरणा दी है। सिंह भूखा रहता है पर तृण का आहार नहीं करता, हंस मोती के बिना चोंच नहीं खोलता

---

१. अ० वा०, कवित, कायर को अंग, छं० १, पृ० १२०।
२. कहा रेत को चूंतरो, कहा इरंड को बाग।
दिना च्यार मैं खासाफूसी, ज्यूं कायर को बैराग।
—वही, छं० १०, पृ० ४४।
३. वही, कुण्डल्या, कायर को अंग, छं० १४, पृ० १४५।
४. वही, शूरातण, कुण्डल्या को अंग, छं० ३, पृ० १४६।

र पावक का आहार करता है और चातक भूमि-जल नहीं पीता।[1] पशु-पक्षी तो अपने नय पर दृढ़ रह कर टेक की मर्यादा निभाते हैं पर स्वार्थी मनुष्य भिन्न मतों वाला होता मानवों में भी प्रह्लाद और कबीर ने टेक का निर्वाह किया। स्वामी रामचरण टेक मर्यादा-निर्वाह के लिए राम का अवलंब ग्रहण करने की बात कहते हैं। उन्हें विश्वास कि राम सहारे के लिए खड़े हैं। यदि सच्चे प्रेम से राम को पुकारा जाय तो राम य ही टेक की मर्यादा रखेंगे।[2]

४१. मन को अंग—साखी, कवित और कुण्डल्या शीर्षकों में 'मन को अंग' का ' मिलता है। 'साखी' में स्वामी रामचरण ने मन को मसखरा कहा है। यह मन अपने वश ीं रहता, यह राम में नहीं लगता और विकारों में विचरता है।[3] स्वामी जी की दृष्टि न के रूप अनन्त हैं। इसी आशय से पूर्ण यह साखी प्रस्तुत है—

> **"मन का रूप अनंत है, तु मति बहकै वीर।**
> **सबही हर्षा छाडिकै, होय शब्द में थीर।"[4]**

स्वामी रामचरण मन पर विश्वास न करने की बात भी करते हैं,[5] क्योंकि मन भोंदू सागर की तरंगों के सदृश भरमता है और माया के रंग में रंगकर रामनाम से विमुख ाता है।[6]

४२. सती को अंग—साखी और कुण्डल्या छन्दों के माध्यम से 'सती को अंग' जी ने लिखा है। स्वामी जी सती-प्रथा के विरोध में थे। उनकी निम्नलिखित लयाँ मेरे कथन की पुष्टि मे सहायक हैं—

> **"मिनष जनम कूं पाय के जीवत जालै देह।**
> **रामचरण विषिया लगन मुर्दा सेती नेह।**

---

१. अ० वा०, साखी, टेक को अंग, छं० १, २, ३, ४, ५, पृ० ४६।

२. अंतर सांची प्रीति सूं, जे कोइ लेवै नाम।
 तो रामचरण सांची कहै, टेक निभावै राम॥
 —वही, साखी, टेक को अंग, छं० २२, पृ० ४६।

३. रामचरण मन मस्करा, कदेन आवै हाथ।
 रामनाम लागै नहीं, रमै बिकारां साथ।
 —वही, साखी, मन को अंग, छं० १, पृ० ४८।

४. वही, छं० ५, पृ० ४८।

५. वही, छं० १५, पृ० ४८।

६. वही, कुण्डल्या, मन को अंग, छं० १, पृ० १७३।

मुर्दा सेती नेह धरै नहिं हरिपद मन कूं।
मिथ्या मांही मेल खाख करि डारै तनकूं।
आशवास गुण रामसंग जल्या अभयपद लेह।
मिनख जनम कूं पाय कै जीवत जालै देह।"[१]

४३. **निरपख को अंग**—साखी, कवित और कुण्डल्या शीर्षकों में 'निरपख को अंग' वर्णित है। स्वामी जी कहते हैं कि पक्षपात से निर्बन्ध होकर सत्य की पहचान कीजिए, पक्ष में खींचतान है अतः सुख के लिए निष्पक्ष होना आवश्यक है। संतों के मत से राम शब्द 'निर्पक्ख' है, यही मत सत्य है।[२]

४४. **दया को अंग**—साखी और कुण्डल्या में रचित इस अंग में स्वामी जी सम्पूर्ण प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखने का उपदेश देते हैं। जिसके हृदय में दया, संतोष है उस व्यक्ति का मानव-जीवन सफल है।[३] इस अंग के माध्यम से स्वामी रामचरण अहिंसा की ओर भी उन्मुख करते हैं। अहिंसावृत्ति दया के मूल में है। फल-फूल में भी जीवों का वास रहता है किन्तु मनुष्य जिह्वा-स्वाद के वश हो कर पशुवत् उसे खाता है, दया की उसे सुधि ही नहीं रहती। इसी प्रकार जल को बिना छाने-पीने से असंख्य जीवों को मनुष्य पी लेता है।[४] जीवमात्र पर दया के लिए आवश्यक है कि अहिंसाव्रत का पालन करे।

४५. **माया को अंग**—साखी, कवित और कुण्डल्या शीर्षकों में माया का वर्णन स्वामी रामचरण ने विस्तारपूर्वक किया है। स्वामी जी ने माया को पापणी, भक्ति की बैरिन, काली नागिन और कीचड़ आदि नामों से अभिहित किया है। दृष्टि की सीमा में जो कुछ आ रहा है सभी माया का रूप है, जो मिला उसी को इसने निगल लिया फिर वह चाहे नरेश हो या

---

१. अ० वा०, कुण्डल्या, सती को अंग, छं० १, पृ० १४६।

२. पक्खपात सूं मति बंधे कीजै साच पिछांण।
निरपख होय सुख लीजिए पख मैं खैंचातांण।
पख मैं खैंचातांण इष्ट नाना ठहरावै।
राम शब्द निर्वाण साध निर्पक्ख बतावै।
रामचरण तजि झूठ कूं सत्यमता कूं जांण।
पक्खपात सूं मति बंधै कीजै साच पिछांण।
—वही, कुण्डल्या, निरपख को अंग, छं० १४७, पृ० १४७।

३. हृदय दया संतोष धन, अरु राम भजन अधिकार।
रामचरण जाका सुफल, मनुष जन्म अवतार।
—वही, साखी, दया को अंग, छं० २, पृ० ५३।

४. वही, कुण्डल्या, दया को अंग, छं० १, २; पृ० १५४।

सुरेश।[1] माया से मुक्त होने का उपाय प्रभु का नाम स्मरण है किन्तु जीव माया से अलिप्त नहीं होना चाहता। खीझकर कवि जीव को ही दोष देने लगता है। यथा—

"माया विचारी क्या करै, बड़ा हरामी जीव।
जहां-तहां हेरत फिरै, यादि करै नहिं पीव।"[2]

माया और जीव का संबंध 'कवित' शीर्षक की इन पंक्तियों द्वारा कवि ने कमल और मधुकर के रूपक द्वारा स्पष्ट किया है—

"माया कमल स्वरूप जीव मधुकर सब झूले।
विषिया रस मोहीत होय निज घर कूं भूले।
पहर च्यार गये बीति प्रीति सूं नहीं अघाने।
उड़ि न सकै मतिहीण मांहि मरि खरे खिसाने।
रामचरण गुरु ज्ञान बिन नर तनु चाले हाल।
चौराशी की जलणि मैं दुख पावै जुग च्यार।"[3]

माया मिथ्या है पर राम द्वारा निर्मित होने के कारण सच्ची जैसी दीखती है। सत्य-पुरुष का सृजन होने के कारण वह वैसी नहीं दीख पड़ती। माया के विकास से हर्ष और विनाश से शोक उत्पन्न होता है। मनुष्य पछताता है, दुखी होता है। इसलिए स्वामी जी सभी साधन से विमुख हो राम-स्मरण की ओर उन्मुख होने का संकेत देते हैं।[4]

४६. **कामीनर को अंग**—साखी, सवैया, कवित, कुण्डल्या और रेखता—इन पाँच छन्द शीर्षकों में 'कामीनर को अंग' वर्णित है। कामी नर के प्रति स्वामी जी की सहज [illegible] इस अंग में व्यक्त हुई है। कामी नर उनकी दृष्टि में अत्यंत पतित, पशु से भी गया-बीता है। यथा—

---

१. जेता आवै दृष्टि में सब माया का रूप।
यासूं मिल्या स ग्रासिया कहा सुरपति कहा भूप।
—अ० वा०, साखी, माया को अंग, छं० २२; पृ० ५४।

२. वही, साखी, माया को अंग, छं० २८, पृ० ५४।

३. वही, कवित, माया को अंग, छं० १, पृ० १२६।

४. माया झूठी राम की साची सी दर्शाय।
रचना साचा पुरुष की तातैं लखी न जाय।
तातैं लखी न जाय उपजतां हर्ष बधावैं।
बिन सत उपजै शोक मींडकर शीश घुणावैं।
रामचरण भज राम कूं तज सब आन उपाय।
माया झूठी राम की साची सी दर्शाय।
—वही, कुण्डल्या, माया को अंग, छं० ५, पृ० १७५।

"कामी सूं कुत्ता भला, संत कहै सब साच।
रामचरण अज्ञान नर, रह्या नारि सूं राच।"[1]

अतः स्वामी रामचरण कामी और कामिनी दोनों से विरत होने की बात कहते हैं।

४७. **जरणा को अंग**—साखी और कवित में लिखित 'जरणा को अंग' में जरण का भाव जलने या तपस्या करने से है। रामचरण जी के अनुसार बिना जरणा (तपस्या) के कोई साधु नहीं कहा जा सकता। जिसके शरीर में जरणा नहीं वह स्वयं संसार में जलता है। स्त्री छोड़ना सरल है पर जलना कठिन है, जिसके शरीर में कंदर्प जलता है उसका मन विश्राम करता है।[2]

४८. **रहत को अंग**—साखी एवं कवित में 'रहत को अंग' पूर्णता पा गया है। 'रहत' [illegible] के अर्थ में किया है। साखी में मन की दृढ़ता या थिरता पर बल देते हुए उन्होंने कहा है कि चंचल मन पाँचों इंद्रियों को नियंत्रित करके थिर होता है तो इस 'रहत' से नरक का दर्शन नहीं होता। संसार में इस 'रहत' की बड़ी महिमा है। इससे युक्त मनुष्य पर यम का जोर नहीं लगता और वह परमात्मा के दरबार में पहुँच जाता है।[3]

४९. **लोभी नर को अंग**—साखी, सवैया और कुण्डल्या शीर्षकों में यह अंग लिखा गया है। एक रत्ती लोभ का मूल्य स्वामी जी के शब्दों में ही देखिए—

"मान गयो सन्मान गयो गुरुधर्म गयो र संतोष न्हसायो।
ज्ञान गयो अरु ध्यान गयो सत साच गयो बैराग उड़ायो।
खेम गयो नित नेम गयो रसप्रेम गयो गुण नेह गुमायो।
रामचरण्ण गये इतनां सब एक रती तब लोभ उपायो।"[4]

स्वामी जी ने लोभी की तुलना मीठे में लिपटी उस मक्खी से की है जो उससे न तो छूट पाती है और न मरती ही है, जैसा दुःख उसे मिलता है वैसा ही लोभी को भी।[5] स्वामी रामचरण

---

१. अ० वा०, साखी, कामीनर को अंग, छं० ३, पृ० ३।

२. त्रीया तजिबो सहल है, दुर्लभ जरणां काम।
जाके घट कंदरफ जरै, ताके मन विश्राम।
—वही, साखी, जरणा को अंग, छं० १२, पृ० ५८।

३. मन बहता रहता भया, पांच पकड़ि कर मांहि।
रामचरण या रहत सूं, दोजख दीसै नांहि।
रामचरण या रहत की, महिमा जगत मझारि।
जम का जोरा ना लगै, पहुंचै हरि दरबार।
—वही, साखी, रहत को अंग, छं० २, १; पृ० ५८।

४. वही, सवैया, लोभी नर को अंग, छं० १; पृ० ९०।

५. वही, साखी, लोभ को अंग, छं० १८, पृ० ६०।

ने लोभ को पाप का वृक्ष कहा है और पापों को उसके फल-फूल के रूप में देखा है।[1] इसी संदर्भ में स्वामी जी भक्ति लोभी की प्रशंसा भी करते हैं। यथा—

"कष्ट सह्यो छाड्यो नहीं, भक्ति लोभ प्रह्लाद।
रामचरण या लोभ सूं, अनेक उधर्‌या साध।"[2]

लोभ एक दुर्गुण है पर यदि इस विकार का उपयोग कोई भगवान की भक्ति के लिए करता है तो वही गुण बन जाता है। उपर्युक्त उद्धरण में प्रह्लाद को उस लोभी के रूप में चित्रित किया गया है जो भक्ति का लोभी है। भक्ति का लोभ जिस हृदय मे उत्पन्न हो जाय वह तर जायगा।

५०. **निन्दा को अंग**—साखी और कुण्डल्या शीर्षकों में 'निन्दा को अंग' का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। 'कुण्डल्या' में स्वामी जी ने बतलाया है कि निन्दा अपने पास वैसे ही आती है जैसे सूरज की ओर फेंकी गई धूल अपने पर ही पड़ती है: यथा—

धूल उछाले भानु दिश तो पड़ै तास कै शीश।
सूरज लग पहुंचै नहीं वो करै कूंण सू रीश।
वो करै कूंण सूं रीश भाव जैसा फल पावै।
जगत भक्त को नींद आप शिर कर्म चढ़ावै।
रामचरण मोटो कलंक टल न विश्वाबीश।
धूल उछालै भानु दिश तो पड़ै तास कै शीश।"[3]

निन्दा के प्रसंग में भी स्वामी जी एक विशेष बात कह जाते हैं। कवि कहता है कि निन्दा तो सभी करते हैं पर साधु और संसार द्वारा की गई निन्दा में अन्तर है। साधु घास की निन्दा करता है और संसारी जन अनाज की ही निन्दा करते हैं। अन्न की निन्दा से खेतखाली रह जाता है पर जो घास की निन्दा कर अन्न की रक्षा कर लेते हैं उन्हें ही लाभ होता है।[4] इसी संदर्भ में

---

१. अ० वा०, साखी, लोभ को अंग, छं० २३, पृ० ६०।
२. वही, साखी, लोभ को अंग, छं० २६, पृ० ६०।
३. वही, कुण्डल्या, निंदा को अंग, छं० १, पृ० १७७।
४. निन्दा सब कोई करते हैं, तामैं एक विचार।
साधु निन्दै घास कूं, कण निन्दै संसार।
रामचरण कण निंदता खाली रह जाय खेत।
घास नींद कण राख ले, सोही लाह्वा लेत।
—वही, साखी, निन्दा को अंग, छं० ५, ६, पृ० ६३।

उन्होंने अपने द्वारा प्रचारित धर्म जिसे उन्होंने रामधर्म कहा है, को अन्न और अन्य धर्मो को खर-पात कहा है।[1]

५१. साच को अंग—साखी, चन्द्रायणा, सवैया और कुण्डल्या, इन चार शीर्षकों में स्वामी रामचरण ने 'साच को अंग' का वर्णन किया है। इस अंग को स्वामी ने अच्छा विस्तार दिया है। पाँच तत्व एवं तीन गुणों पर आधारित जीव का आधार चेतन है। यह चेतन शक्ति चिदानंद है।[2] सभी चर-अचर में यह व्याप्त है, जीव [illegible] है उस जीव को हथियार से मारकर आनन्दपूर्वक जो भी हिन्दू या मुसलमान खाता है, वह अवश्य ही नरक (दोजख) में जायगा।[3]

'साच को अंग' में स्वामी रामचरण ने जीव हिंसकों को अच्छी फटकार बताई है। उनका कथन है कि जीव-हत्या घोर जुर्म है, जीव हत्यारे पर परमात्मा कोप करता है और एक जीव की हत्या का हजार बार बदला लेता है। मनुष्य का आहार अन्न जल है पर वह उसे छोड़कर 'माटी' खाता है। तृण-जल पर जीवन बसर करने वाले वन्य पशु की हत्या का बोझ भारी होता है।[4] वे शालिग्राम के पूजकों, गीतापाठियों, चरणामृत ग्रहण करने वाले हिन्दुओं, एवं कलमापाक के उपदेशक काजियों की भी हिंसा करने के लिए खबर लेते हैं।[5]

---

१. राम धर्म निज कण सही, आन धर्म खड जांण।
   राम नींदवे आन पख, ता घट मोटी हांण।
   —अ० वा०, साखी, निन्दा को अंग, छं० ७, पृ० ६३।

२. पांच तत्व गुण तीन का, सब जीवां आधार।
   रामचरण ये रहत हैं, चेतन के आधार।
   रामचरण चेतन शक्ति, चिदानन्द की जाण।
   स्वारथहित अज्ञान नर, करै हतां की हांण।
   —वही, साखी, साच को अंग, छं० १, ३; पृ० ६४।

३. वही, छं० ५, पृ० ६४।

४. बड़ा जुलम जिव मारतां, कोपै सिरजणहार।
   रामचरण ले जीव का, बदला बार हजार।
   रामचरण नर देह का अन पाणी है खज्ज।
   ताहि छांडि माटी भखै, मूरख खाय अज्ज।
   निरदावै वन मैं रहै, तृण जल करै अहार।
   रामचरण ताकूं हत्या, बहुत चढ़ै शिर भार।
   —वही, साखी, साच को अंग, छं० ११, १२, १३; पृ० ६४।

५. सेवा सालिग्राम की मुख गीता का पाठ करै।
   जीव मार भक्षण करै, साई सूं न डरै।

रामधर्म तो सांच है

स्वामी रामचरण ने अपने द्वारा प्रचारित धर्म को 'रामधर्म' कहा है। 'सांच को अंग' में उन्होंने हिन्दू-मुसलमान दोनों को उनके द्वारा गृहीत धर्म की असारता से अवगत कराते हुए 'रामधर्म' की सत्यता बतलायी है। यथा—

"माला का चाला करै मुख सूं कहै न राम।
रामचरण दे भजन शिर, ये ठिगबाजी का काम।
मीयां मुकरबा क्यूं चुणै, चूना पथर लगाय।
आंख मूंदि दम साधि कै, राम नाम जिव लाय।
रामधर्म तो साच है, आन धर्म सब झूठ।
रामचरण साचां रहै, झूठा जावै ऊठ।"[1]

स्वामी रामचरण ने रामनाम और राम धर्म को सत्य घोषित किया, साथ ही देवल-मस्जिद, [illegible], रोजा-एकादशी, ईद-बकरीद सभी को व्यर्थ बतलाया है—

"क्या देवल क्या द्वारका, क्या मक्का महजीद।
क्या रोजा एकादशी, क्या कर्म ईद बकरीद।
क्या कर्म ईद बकरीद, भर्म मैं भूल्या सोई।
अलह इल्फ भरपूर राम सुमर्यां सुख होई।
दुबध्या दोजिग जाइये क्या मुसलमान क्या हींद।
क्या देवल क्या द्वारका, क्या मक्का महजीद।"[2]

५२. भर्म विध्वंस को अंग—साखी, कवित और कुण्डल्या शीर्षकों में 'भर्म-विध्वंस को अंग' वर्णित है। स्वामी रामचरण धार्मिक पाखण्ड, कर्मकाण्ड, मंदिर-मस्जिद आदि सभी की भर्त्सना करते हैं और एक राम का नाम-स्मरण ही श्रेयस्कर मानते हैं। उनके अनुसार उपर्युक्त सभी में विश्वास भ्रमवश है।अतः उन्होंने सबकी असारता सिद्ध कर नाम-स्मरण की महिमा गाई है। राम तो प्रत्येक घट का वासी है पर मानव भ्रमवश उसे तीर्थादि में खोजता है, अपना अन्तर नहीं देखता। 'कुण्डल्या' शीर्षक की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस आशय की पुष्टि करती हैं—

काजी कलमा पाक है, तो खड़ी पछाड़ै कांहि।
हिंसा नर नापाक है, कह कुरान के मांहि।
अ० वा०, साखी, साच को अंग, छंद १५, १९. पृ० ६४।

१. वही, साखी, साच को अंग, छं० २५, २६, २९, ; पृ० ६५।
२. वही, कुण्डल्या, साच को अंग, छं० ११, पृ० १७८।

"भूल भर्म में पड़ि गया, बाहिर ढूंढै राम।
घट मांहि खोजै नहीं, हेरै तीर्थ धाम।
हेरै तीरथ धाम, राम स्वप्ने नहिं पावै।
घट घट व्यापक जांण, रट्या तत्काल मिलावै।
रामचरण इक राम बिन दूजा धर्म निकाम।
भूल भर्म में पड़ि गया, बाहिर ढूंढै राम।"[१]

मूर्तिपूजा, व्रत-त्यौहार, तीर्थ-यात्रा, लीला आदि सभी का कारण भ्रम ही है। स्वामी रामचरण ने इन सभी क्रियाओं का खण्डन जोरदार शब्दों में किया और इसके अतिरिक्त उन्होंने भ्रमात्मक प्रक्रियाओं का मार्ग छोड़कर नाम-स्मरण के पुनीत पथ पर चलने का उपदेश दिया। श्रीकृष्ण और राधा की बड़ी महिमा है, सुर-नर- मुनि सभी जिनका स्मरण करते हैं, भाँड़ लोग उनकी भी नकल उतारकर उनकी फजीहत करते हैं।[२] मूर्तिपूजा का खण्डन करते हुए लिखते हैं—

"इसी प्रीति पाषाण सूं, जिसी राम सूं होय।
तो रामचरण रामैं मिलै, बहुर न जन्मै कोय।"[३]

गौरी पूजन और तीज व्रत आदि के लिए स्त्रियों को भी उन्होंने मतिहीना कहा है।[४] अतः जो लोग मूल में विश्वास न कर डाल-पात की पूजा करते हैं,[५] भगवान से उदास रहते हैं उन्हें स्वामी रामचरण यह संदेश देते हैं—

"रामचरण भज राम कूं सबका कर्ता सोय।
कर्ता तज कर्त्रिम भजै, तो सबकी निंदा होय।"[६]

५३. भेख को अंग

स्वामी रामचरण ने भेख का अर्थ साधु-भेष से लिया है। साखी, चन्द्रायणा, सवैया,

---

१. अ० वा०, कुण्डल्या, भर्मविध्वंस को अंग, छं० २, पृ० १७९।
२. जाकूं सुर-नर-मुनि रटै, असुरां सिरै अजीत।
   ताकूं भांड बिगोवा नकलकर, भंडवा करै फजीत।
   वही, साखी, भर्म विध्वंस को अंग, छं० ३, पृ० ६५।
३. वही, छं० ५१, पृ० ६७।
४. गौरिपूज अरु तीज मनावै, खोड्यो सांझा गावै।
   रामचरण नारी मतिहीणी, नारायण नहिं भावै।
   वही, साखी, विध्वंस को अंग, छं० १७, पृ० ६६।
५. वही, छं० १८, पृ० ६६।
६. वही, छं० ३१, पृ० ६६।

कवित, कुण्डल्या और रेखता इन छः छंद शीर्षकों में 'भेष को अंग' की चर्चा उन्होंने की है। भेषधारी साधुओं की भी बड़ी तीखी आलोचना स्वामी जी ने की है। यथा—

"माथै तिलक बणाइ कै, कंठा कंठी धार।
रामचरण माया तकै, भटके घरघर बार।"[1]

वस्तुतः भेष वह स्वांग है जिसे मायारत व्यक्ति भगवान से मिलने के लिए रचता है, किन्तु वह भगवान से विमुख होता है।[2] कलियुग के भेष की लज्जा के लिए वे भगवान की दुहाई देते हैं—

"कलिजुग केरा भेख सूं साहिब राखै लाज।
रामचरण समझै नहीं फंद पड़ै बेकाज।"[3]

'कुण्डल्या' की निम्नलिखित पंक्तियों में स्वामी रामचरण ने साधु-बाना (भेष) का 'विरद' वर्णन किया है—

"बाना को यह बिड़द है त्यागै दाम रु बाम।
समता सूं सुमरण करै नहीं लोभ अरु काम।
नहीं लोभ अरु काम जाम अठ रहै सुचेता।
बिचरै सहज सुभाय ज्ञान वैराग्य सहेता।
रामचरण तब पाइये शोभा, सुख, विश्राम।
बाना को यह बिड़द है त्यागै दाम रु बाम।"[4]

५४. तृष्णा को अंग-चन्द्रायणा, सवैया और कवित के अन्तर्गत 'तृष्णा को अंग' में स्वामी रामचरण ने मानव को सांसारिक तृष्णा से तृषित देखा है। यथा—

"तृष्णा अंजन आंज भया नर अंध रे
परिहां रामचरण गृह जाल लिया गलफंद रे।"[5]

इस तृष्णा को आशा से जीवन मिलता है। मनुष्य आशा-तृष्णा के बीच पड़कर

---

१. अ० वा०; साखी, भेख को अंग, छं० १३, पृ० ६८।
२. वही, छं० १४, पृ० ६८।
३. वही, छं० १८, पृ० ६८।
४. वही, कुण्डल्या, भेख को अंग, छं० ६३, पृ० १८६।
५. वही, चन्द्रायणा, तृष्णा को अंग, छं० १, पृ० ८४।

अनेक दुःख भोगता है। इससे मुक्ति पाने के लिए गुरुज्ञान अपेक्षित है। इस सागर से होने के लिए हरिनाम का जहाज और हरिजन रूपी केवट की आवश्यकता है।[1]

५५. निर्गुण उपासना को अंग—कवित और कुण्डल्या शीर्षकों में 'निर्गुण उपासना को अंग' का उल्लेख स्वामी जी ने किया है। स्वामी रामचरण सगुण छोड़कर निर्गुण पंथ के पथिक बने थे। अतः भक्ति के इन दोनों—निर्गुण और सगुण—रूपों को भलीप्रकार उन्होंने समझ लिया था। निर्गुण और सगुण दोनों की तुलनात्मक विवेचना 'कवित' की निम्नलिखित पंक्तियों में स्वामी रामचरण ने की है—

> **"निर्गुण सर्गुण भक्ति उभै मधि अंतर जानों।**
> **सर्गुण रूप विनाश अकल निर्गुण नित मानों।**
> **सर्गुण गाय शिंगार धार विषिया मन झूलै।**
> **निर्गुण नाम अधार भोग राजसगुण भूलै।**
> **सर्गुण शोभा जगत मैं उरैं रहै उरझाय।**
> **रामचरण महिमा सहित निर्गुण निज घर जाय।"[2]**

५६. चांणक को अंग—"सांसारिक व्यवहारों के मूल में रहनेवाली मूल भावनाओं और प्रयोजनों को समझने वाला ही 'चांणक' होता है; वह नीतिकुशल है।"[3] साखी, सवैया, कवित, कुण्डल्या और रेखता शीर्षकों में 'चांणक को अंग' स्वामी जी ने लिखा है। इस अंग में स्वामी रामचरण ने योगी-यती, ब्राह्मण, भट्टारक आदि विभिन्न वेशियों की सांसारिकता में लीन रहने की चर्चा करते हुए रामभजन की महत्ता प्रतिपादित की है। यथा—

> **'जोगी जोग कुमाईया, खाखी, तपसी शेख।**
> **रामभजन बिन रामचरण, मिटै न मन की रेख।**
> **जती कहावै जगत मैं, पांचू जीती नांहि।**
> **झीणा कपड़ा पहर कै, पान-सुपारी खांहि।**
> **सांई कूं भेट्या नहीं, कह भट्टारक जैन।**
> **तन पर काथ्या कप्पड़ा, मन माया का फैन।"[4]**

---

१. आशा नदी असगल बहै मधि मोह सनेह का भंवर परै।
तृष्णा दैंव दाझ विचार बिना अगिलोभ बंधै बड़बूड़ि मरै।
कह रामचरण्ण बिना गुरुज्ञानहिं पाय नरातन कैसे तिरै।
हरिनाम जिहाज हरीजन केवट आय चढ़ै ताहि पार करै।
अ० वा०, सवैया, तृष्णा को अंग, छं० २, पृ० ९०।

२. वही, कवित, निर्गुण उपासना को अंग, छं० २, पृ० ११०।

३. डॉक्टर भागवतस्वरूप मिश्र—कबीर ग्रंथावली, परिशिष्ट, पृ० ११।

४. अ० वा०, साखी, चांणक को अंग; छं० ५, ६, १५; पृ० ७१।

स्वामी रामचरण की दृष्टि में सब पापों की जड़ लोभ, अभिमान है। लोभ के वशीभूत ब्राह्मण आपस में कार्तिक के कुत्तों सदृश लड़ते हैं।[१] पण्डित वही है जिसका चित्त लोभरहित है और सदैव ईश्वर की इच्छा करता है। किन्तु इस कलियुग में सारा संसार लोभी है, कोई कार्याकार्य नहीं देखता। इसी संदर्भ में स्वामी जी ब्राह्मण और सन्यासियों की खबर लेते हुए लिखते हैं—

"गले जनेऊ विप्र कहावै, मूंछ मूंडाया स्यांमी
ठिग बाजी कर पेट भरत है, भूल्या अन्तरजामी।"[२]

मायारत संसार लोभ-अभिमान और भोग-भ्रम में भूले पड़े साधु वेशियों और ब्राह्मणों को देखकर स्वामी जी कहते हैं कि गीता, भागवत, चारों वेद, अठारहो पुराणादि का पठन सभी एक राम के बिना व्यर्थ हैं।[३] शील और वैराग्य के नाम पर ढोंग करके जीने वालों के विषय में स्वामी जी का मत निम्नलिखित साखियों में स्पष्ट हुआ है—

"शब्द बणावै शील का, चुगतै विषय विकार
रामचरण वै पावसी, जम कै द्वारै मार।
शब्द कहै वैराग्य का, माया मिल्यां खुस्याल
रामचरण सांची कहै, ये कपट्या की चाल।"[४]

इसलिए स्वामी रामचरण का निश्चित मत है कि कोरा ज्ञान व्यर्थ है यदि ज्ञानी में त्याग-वैराग्य न हो। वाणी और व्यवहार में अन्तर रखने वाले ज्ञानी के संबंध में उनकी धारणा इस प्रकार है—

"त्याग बैराग बिनां नहि सोहत ज्ञानी को ज्ञान अलूंणो सो लागै
ज्यूं कोइ भांड करी भंडवा बिधि साग शाहू शठ गाजर मांगै।
ज्यूं चख मूंद दड़ायल होय कै स्वाद बंध्यो मुढ टेर्यो न जागै।
ऐसो अभागी पड्यो इन्द्रयां बस रामचरण्ण तासूं मन भागै"[५]

---

१. रामचरण सब पाप का मूल लोभ अभिमान।
लोभ लड़ावै विप्र कूं, ज्यूं काती में स्वान।
अ० वा०, साखी चांणक को अंग, पृ० ७२।
२. वही, छं० ५४, पृ० ७२।
३. वही, छं० ७०; पृ० ७३।
४. वही, छं० ७६, ७७; पृ० ७३।
५. वही, सवैया, चांणक को अंग, छं० ५; पृ० १००।

कतिपय अन्य अंग

इस शीर्षक के अन्तर्गत उन अंगों की चर्चा होगी जिन्हें स्वामी रामचरण ने अधिक विस्तार नहीं दिया है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि ये अंग महत्त्वहीन हैं। सन्त-साहित्य में इन अंगों की विधिवत् चर्चा हुई है और स्वामी जी ने भी अपनी 'अणभैवाणी' में इन्हें महत्त्व दिया है। ये अंग निम्नलिखित हैं—

१. शिवधर्मी को अंग, २. देखादेखी को अंग, ३. हेतप्रीति को अंग, ४. कस्तूरिया मृग को अंग, ५. बेहद को अंग, ६. मध्य को अंग, ७. पंथ को अंग, ८. रस को अंग, ९. सुक्षम मार्ग को अंग, १०. शुभकर्मी को अंग, ११. सहज को अंग, १२. बहुआरंभी को अंग, १३. आशाबेलि को अंग, १४. निद्रा को अंग, १५. मुरकी को अंग, १६. गुरु हेरू को अंग, १७. मनमुखी को अंग, १८. साधपारख को अंग, १९. साधमहिमा को अंग, २०. वाचिक ज्ञानी को अंग, लछज्ञानी को अंग, २१. ब्रह्मविवेक को अंग, २२. मनमूसा मनसूब को अंग २३. शिष्य निरणाँ को अंग, २४. निरणाँ को अंग, २५. हठजोग को अंग, २६. भक्ति महिमा को अंग, २७. गुरुपरमार्थी को अंग, २८. लोभी गुरु को अंग, २९. लच्छ को अंग, ३०. भेष-धारणा को अंग, ३१. नाम निरणाँ को अंग।

१. शिवधर्मी को अंग—'साखी सुमरण को अंग' शीर्षक के अन्तर्गत इस अंग की आठ साखियाँ हैं। स्वामी जी के अनुसार शिव जिसका सुमिरन करते हैं उनका जो स्मरण करता है, वह शिवधर्मी है।[1] शिव राम का अनवरत सुमिरन करते हैं। यथा—

"राम राम शंकर भजै एक अखण्डित धार।"[2]

२. देखादेखी को अंग—१९ साखियों के इस अंग में स्वामी रामचरण देखादेखी कार्य करने की समीक्षा करते हैं। उनके अनुसार कोई काम देखादेखी नहीं समझबूझ कर करना चाहिए। मुख्यतया भगवान का नामस्मरण या भक्ति विचारपूर्वक करनी चाहिए, देखादेखी भक्ति करने वाला ठहर ही नहीं सकता। यथा—

"देखादेखी भक्ति करै, रामचरण भल नांहि
भीड़ पड्या नहिं ठाहरै, मिलै जगत कै मांहि।"[3]

'देखादेखी' को स्वामी जी एक अन्य पहलू से भी देखते हैं। उनकी दृष्टि में सांसारिक व्यवहार, कुकर्म तो सभी लोग देखादेखी करते हैं किन्तु देखादेखी 'राम भक्ति विस्तार' कोई विरला ही करता है। यथा—

---

१. रामचरण शिव धर्म कूं, जाणंत नाही कोय।
शिवसुमरे ताकूं भजे, सो शिवधर्मी होय।
अ० वा०, साखी, शिवधर्मी को अंग, छं० ११५, पृ० ९।
२. वही, छं० ११६ पृ० ९।
३. वही, साखी, देखादेखी को अंग, छं० ५, पृ० ४३।

"देखादेखी सब करै, कुकरम जगत विह्वार।
रामचरण विरला करै, कोई राम भक्ति विस्तार।"[1]

३. हेतप्रीति को अंग—इस अंग में १४ साखियाँ हैं। 'भक्ति की रीति' यह है कि मेरा-तेरा का भेद छोड़कर सभी से समभाव की प्रीति करे। यथा—

"मेरा तेरा ना गिणै, सबसूं एक परीति।
रामचरण तब जाणिये, यह भक्ति की रीति।"[2]

इस संदर्भ में स्वामी जी की चेतावनी ध्यान देने योग्य है—

"परमेश्वर सूं प्रीति करि, करि साधां सूं हेत।
माया मोह संग काल है, चेत सकै तो चेत।"[3]

आदर्श प्रीति में अंतर की कोई भूमिका नहीं होती। दिनकर-अम्बुज एवं कुमुद-चन्द्र का दृष्टान्त देकर स्वामी जी ने इसे स्पष्ट किया है।[4] 'हेतप्रीति' की निम्नलिखित पंक्तियाँ बड़ी मार्मिक हैं—

"सतगुरु सेती हेत करि, रामभजन सूं प्रीति।
परिहरि विषय विकार कूं मनां मनोरथ जीति।"[5]

४. कस्तूरीया मृग को अंग—१२ साखियों के इस अंग में स्वामी रामचरण मनुष्य की अज्ञानता की तुलना मृग से करते हैं। यथा—

"कस्तूरी कुंडल बसै, मृग न पावै भेद।
रामचरण घट राम है, भूला हेरै बेद।"[6]

५. बेहद को अंग—२३ साखियों के इस अंग में स्वामी रामचरण ने हद और बेहद का आशय असीम और ससीम से लिया है। 'राम' शब्द बेहद है, उसे रटनेवाला व्यक्ति भी बेहद होता है, वे ससीम भक्ति को उचित नहीं समझते। यथा—

"रामचरण हद की भक्ति, कहो कियां क्या होय।
रामनाम बेहद शब्द, रटैस बेहद जोय।"[7]

---

१. अ० वा०; साखी, देखादेखी को अंग, छं० १०; पृ० ४४।
२. वही, साखी, हेतप्रीति को अंग, छं० २, पृ० ४७।
३. वही, छं० ३; पृ० ४७।
४. वही, छं० ८, पृ० ४७।
५. वही, छं० १३, पृ० ४७।
६. वही, साखी, कस्तूरीयामृग को अंग, छं० १, पृ० ४७।
७. वही, साखी, बेहद को अंग, छं० १, पृ० ४९।

इस असीम शब्द 'राम' के दो अक्षरों में सभी कुछ आ जाता है। 'र' चेतनशक्ति का प्रतीक है और 'म' माया का। यथा—

> "चेतन शक्ति रकार की, म माया विस्तार।
> रामचरण सब आईया, अक्षर दोय मझार।"[1]

इस बेहद 'राम' के सभी अवतार अंश हैं। स्वामी जी के शब्दों में—

> "रामचरण यूं राम का सब अवतारा अंश।
> देह छोड़ि गया धाम कूं, मिल्या आपणै वंश।"[2]

६. मध्य को अंग—'मध्य को अंग' में स्वामी रामचरण ने १२ साखियाँ लिखी हैं। इस अंग में स्वामी जी ने 'संतजन' को मध्यमार्गी कहा है। मध्य मार्ग पर चलने से साधु को सुख मिलता है क्योंकि वे योग और भोग दोनों को रोग मानते हैं—

> "जोग भोग दोइ रोग है, रामचरण तजि दूर।
> मधि मारग साधू चल्या, माया सुख भरपूर।"[3]

मध्य मार्ग को कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में परिभाषित किया है—

> "मधि मारग है राम नाम, सुमरण भरिये भीख।
> रामचरण हम क्या कहैं, या अनंत कोटि की सीख।"[4]

७. पंथ को अंग—७ साखियों के इस अंग में स्वामी रामचरण ने मत-पंथों के बंधन से मुक्त होकर केवल एक राम-पंथ के अनुगमन की बात कही है। संतों के लिए केवल एक ही पंथ है, वह है 'रामपंथ'। यथा—

> "रामचरण संतां तणां, रामनाम पंथ एक
> अबै भर्म की भूलि सैं, मत का बन्ध अनेक।"[5]

इसलिए संत 'प्रवृत्ति पसारा' छोड़कर रामपंथ का पंथी बन जाता है—

> "पंथी चाले रामपंथ मत सूं बंधै नांहि।
> प्रवृत्ति पसारा छांड़िकै, मिलै संत पद मांहि।"[6]

---

१. अ० वा०; साखी, बेहद को अंग छं० ११; पृ० ५०।
२. वही, छं० १४, पृ० ५०।
३. वही, साखी, मध्य को अंग, छं० ४, पृ० ५०।
४. वही, छं० ९; पृ० ५०।
५. वही, साखी; पंथ को अंग, छं० २, पृ० ५१।
६. वही, छं० ३; पृ० ५१।

८. **रस को अंग**—११ छन्दों के इस साखी अंग में स्वामी रामचरण 'रामरस' की महिमा बखानते हैं। स्वामी जी कहते हैं कि रस तो सभी चाहते हैं पर वह रस कौन-सा है जिसे पान कर मन मतवाला हो जाता है ?[१] कवि के अनुसार 'राम रटन' से रसना रसवती हो जाती है, उस रस का पानकर रसिक युग-युगों तक जीता है। रसना षट्रस का स्वाद लेती है; किन्तु 'रामरस' चख लेने के बाद मन में विकार नहीं रह जाता।[२] उस रस का अधिकारी 'सतगुरु' है और उसकी कृपा से शिष्य भी होता है—

> "रामचरण वा रस्स का सतगुरु पिवणँहार।
> गुरु किरपा सूं शिख पिवै, तो भूलै तन की सार।"[३]

९. **सुक्षम मार्ग को अंग**—इस अंग की रचना स्वामी जी ने १४ साखियों में की है। स्वामी जी का कथन है कि भगवान की भक्ति के लिए सूक्ष्म मार्ग पर चलना अपेक्षित है। स्थूल मन से भक्ति संभव नहीं। सूक्ष्मधर्मी का लक्षण स्वामी जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में बतलाया है—

> "सब सूं नान्हा होय रहै, अहूंमान कूं मार।
> रामचरण यूं चालिये, सुक्षम राह विचार।"[४]

स्वामी रामचरण के अनुसार मुक्ति का मार्ग सूक्ष्म होता है, इसलिए सूक्ष्म पथ पर चलकर सूक्ष्म होना चाहिए। जो सूक्ष्म है वही सुखी है, दुखी नहीं। यथा—

> "सुक्षम मारग सोधि कै, चालै सुक्षम होय।
> रामचरण सुक्षम सुखी, दुखी न देख्या कोय।"[५]

१०. **शुभकर्मी को अंग**—११ साखियों का यह छोटा-सा अंग है। इसमें स्वामी रामचरण ने शुभकर्मी के लक्षण बतलाये हैं। जिसमें हिंसा का भाव न जगे, वह शुभकर्मी है। हिंसा से शुभ अशुभ में परिवर्तित हो जाता है।[६] आत्मनियंत्रण शुभ है और अन्य की आत्मा का हनन अशुभ कर्म है। संयम, शील, संतोष, दया, धर्म ये सब शुभ हैं, अलावा इसके अन्य अशुभ हैं।[७] शुभकर्मी के लिए अहिंसक होना आवश्यक है। यथा—

---

१. अ० बा०, साखी, रस को अंग, छं० १, पृ० ५१।
२. वही, छं० २, ३; पृ० ५२।
३. वही, छं० ९; पृ० ५२।
४. वही, साखी, सुक्षम मार्ग को अंग, छं० ३, पृ० ५१।
५. वही, छं० १२, पृ० ५२।
६. वही, साखी, शुभकर्मी को अंग, छं०, १, पृ० ५३।
७. वही, छं० ३, ४, पृ० ५३।

"साहिब की या सृष्टि है, सूक्ष्म स्थूल सब जीव।
रामचरण ताकूं हत्यां, शुभ न माने पीव।"[१]

११. **सहज को अंग**—आठ साखियों के इस लघु अंग में स्वामी रामचरण ने 'सहज' को परिभाषित किया है। सभी सहज-सहज कहते है पर 'सहज' का भेद नहीं जानते। जिसमें खेद नहीं वही 'सहज' हैं।[२] इस 'सहज' प्राप्ति का साधन 'सुमिरन' है, अन्य सभी साधन खेदपूर्ण हैं, इस 'सहज' द्वारा 'अगम का भेद' जाना जा सकता है। यथा—

"रामचरण हम सोधिया, सब साधन मै खेद।
सुमरण पैंडा सहज का, लहै अगम का भेद।"[३]

१२. **बहुआरंभी को अंग**—इस अंग में स्वामी जी ने १० साखियाँ लिखी हैं। बहु-आरम्भी व्यक्ति अनेक भौतिक धंधों में लीन तो रहता ही है, पड़ोसी का बोझ भी वहन करता है। इस प्रकार वह नाना भौतिक व्यापारों में व्यस्त होकर धन की चिन्ता में रत होता है और रात दिन उदास फिरता है। माया के चक्कर में पड़कर वह नर-योनि नष्ट करता है। यथा—

"एती है एती करूं, हुवां न तृप्ती होय।
माया हित बहुआरंभी, जासी नरतन खोय।"[४]

१३. **आशाबेलि को अंग**—इस अंग में २९ साखियाँ हैं। डॉक्टर भागवतस्वरूप मिश्र के अनुसार "वासना और मोह रूप माया ही को 'बेली' कहा गया है।"[५] स्वामी रामचरण ने आशा को दुख की बेलि माना है जिससे विष रूपी फल उत्पन्न होते हैं, जिसके कारण राजा-प्रजा सभी दुख भोगते हैं। यथा—

"आशा दुख की बेलि है, फल प्रगट विष रूप।
रामचरण आशा दुखी, क्या परजा क्या भूप।"[६]

---

१. अ० वा०, साखी, शुभकर्मी को अंग छं० ६, ; पृ० ५३।
२. सहज सहज सब कहत है, नहीं सहज का भेद।
   रामचरण कहिये सहज, जामैं नांही खेद।
   वही, साखी, सहज को अंग, छं० १, पृ० ५९।
३. वही, साखी, सहज को अंग, छं० २, पृ० ५९।
४. वही, साखी, बहुआरंभी को अंग, छं० १०, पृ० ५९।
५. डॉ० भागवतस्वरूप मिश्र—कबीर ग्रंथावली, परिशिष्ट, पृ० १६।
६. अ० वा०, साखी, आशाबेलि को अंग, छं० २३, पृ० ६१।

मानव मन 'आशाबेलि' में बँधे उस कुत्ते के सदृश है जो स्वार्थवश घर-घर दौड़ है। वह मानव गुरु-आदर्श की अवहेलना स्वार्थवश ही करता है और इस प्रकार हरिभजन अभाव में सुअर-कुत्ते की जिंदगी जीता है।[१]

१४. निद्रा को अंग—२४ साखियों के इस अंग से स्वामी रामचरण ने निद्रा 'पापणी',[२] 'जम की दासी',[३] 'नाहरी'[४] आदि लिखा है। यथा—

> **"देखो निद्रा पापणी, माथै बैठे आय।**
> **भजन भुलावै राम को, सब सुधबीसर जाय।"[५]**

निद्रा सारे संसार को खा जाती है, उससे उन्हीं लोगों का उद्धार होता है जो भ हैं और जिनकी राम में लगन है।[६] निद्रा को मारने में केवल संत ही सक्षम हैं। यथा—

> **"निद्रा मारै संत जन, आसन संजम साधि।**
> **राम भजन लागा रहै तो लगै न निद्राव्याधि।"[७]**

१५. भुरकी को अंग—इस अंग में केवल ७ साखियाँ हैं। स्वामी जी के अनुस 'भुरकी सतगुरु शब्द है'[८] भुरकी से भ्रम दूर होते हैं, मनुष्य निर्विकार होता है और 'निजन् का दर्शन होता है।

१६. गुरु हेरू को अंग—केवल एक चन्द्रायणा में इस अंग की चर्चा हुई ई स्वामी जी कहते हैं कि ऐसा गुरु खोजना चाहिए जो भ्रमनाश करे और माया से मन दूर कर वैराग्य की ओर उन्मुख करे।

१७. मनमुखी को अंग—तीन चन्द्रायणा के इस अंग में स्वामी जी ने बतलाया कि सतगुरु की शिक्षा माया-मद के कारण मनमुखी हुआ शिष्य नहीं मानता। ऐसे मनमु जनों के लिए गुरु क्या करे? ऐसे मूर्ख से बात न करने में ही सुख है। यथा—

> **"मूरख सेती बाद कहो क्यूं कीजिए।**
> **मानै नहीं लगार ताहि तजि दीजिए।**

---

१. अ० वा०, साखी, आशाबेलि को अंग, छं० २५, २७, पृ० ६१।
२. वही, साखी, निद्रा को अंग, छं० ३, पृ० ६२।
३. वही, छं० ६, पृ० ६२।
४. वही, छं० १२, पृ० ६२।
५. वही, छं० ३, पृ० ६२।
६. वही, छं० १७, पृ० ६२।
७. वही, छं० १३, पृ० ६२।
८. वही, साखी, भुरकी को अंग, छं० ४, अ० वा०, पृ० ६२।

सो बांतां इक बात न मानै कोय रे।
परिहां रामचरण रहो चुप्प सुखी तब होय। रे।"[1]

१८. साधपारख को अंग—कवित और कुण्डल्या शीर्षकों में इस अंग की रचना हुई है। साधु की पहचान के संदर्भ में उनका कथन है कि परमहंस की वृत्ति एकरसता की होती है। वह हीरे के सदृश सदैव प्रकाशित रहता है।

१९. साध महिमा को अंग—'कवित साध पारख' के अन्तर्गत ही 'साध महिमा' की चर्चा भी स्वामी जी ने कर दी है। केवल तीन कवित ही इस संदर्भ के हैं। साधु-महिमा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि—

"धन ठिगिया संसार रामजन मन ठिगिया रे।
प्रेम पाशि गल घालि जगत सूं करै नियारे।
हरिसुख भुर्की डार स्वाद विषिया विसरावै।
कामांपुर सूं काढ़ि देश अपणै ले जावै।
रामचरण जन सबल ठिग और न ऐसा कोय।
नर निर्बला को कहा चली जम जालिम रहे रोय।"[2]

२०. वाचिक ज्ञानी को अंग, लछ ज्ञानी को अंग—दस कवित छंदों में उपर्युक्त दोनों अंग संयुक्त रूप से रचे गए हैं। जिनके ज्ञान की सीमा वाणी तक है वह 'वाचिक ज्ञानी' और जो लक्ष्य के प्रति समर्पित है वह 'लच्छ ज्ञानी' है। वाचिक ज्ञानी इन्द्रिय-स्वार्थ के लिए भजन से विमुख हो जाता है। वह उदर के लिए नाना उद्यम करता है और जब अनफल होता है तो 'प्रारब्ध' को दोष देता है।[3] स्वामी जी कहते हैं कि ऐसे लोग जो अपना कथन स्वयं नहीं समझ पाते और दूसरे की बात मानते ही नहीं, नानाविधि कर्म करते हैं, कलियुग में 'अणभी साध' कहलाते हैं।[4] 'लच्छ ज्ञानी' का लक्षण निम्नलिखित कवित में स्वामी जी बतलाते हैं—

"राम राम मुख गाय और सब तजै उपाधी।
चित की चितवन जाय लगै तब सहज समाधी।
शुभ अशुभ जाय ऊठि काय की किरिया भूलै।
रामचरण रस पीय सुखमई सर मैं झूलै।

१. अ० वा०, साखी, मनमुखी को अंग, छं० ३, पृ० ८१।
२. वही, कवित, साध महिमा को अंग, छं० ८, पृ० ११४।
३. वही, कवित, वाचिक ज्ञानी को अंग, छं० ३, पृ० ११४।
४. वही, छं० ५, पृ० ११५।

उदय अस्त को गम नहिं ब्रह्म आनंद गलतांन।
आतम मिलि परमातमा ताके यह सहनान।"[1]

२१. **ब्रह्म विवेक को अंग**—केवल एक कवित के इस अंग में कवि का कथन है कि हर्ष-शोक, रोग-भोग-संशय, सुत-वनिता-परिवार, मान-ममता के बन्धन में पड़े मानव को ब्रह्मज्ञानी सतगुरु मिल जाये तो बन्धन काटकर संसार-सागर को पार कर जाय।

२२. **मनमूसा मनसूब को अंग**—'मन को अंग' के अन्तर्गत एक कवित के इस अंग में सिंह, चूहा और बिल्ली के रूपक द्वारा वैराग्य, चंचलपन और माया की चर्चा हुई है।

२३. **शिष्य निरणाँ को अंग**—'कवित शिखपारख को अंग' के अन्तर्गत तीन छंदों का यह अंग है।[2]

२४. **निरणाँ को अंग**—'विचार को अंग' के अन्तर्गत कवित और कुण्डल्या शीर्षकों में इस अंग का विवेचन स्वामी रामचरण ने किया है। इसमें स्वामी जी ने बतलाया है कि सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार एक 'शब्द' से हुआ है।[3]

२५. **हठजोग को अंग**—कवित और कुण्डलिया छन्दों में इस अंग का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। यद्यपि स्वामी जी ने विभिन्न योगों की साधना की थी पर अन्त मे योगादि को व्यर्थ समझने लगे थे। वे कहते हैं—

"योगी पतन चढाय काल सूं दाव चुकावै।
निशि दिन पवन उपाय राम कबहूँ नहिं गावै।"[4]

साधना से स्वस्थता आती है पर मुक्ति नही, उसका आधार तो केवल 'राम' है।[5]

२६. **भक्ति महिमा को अंग**—इस अंग में ६ कवित हैं। इसमें भक्ति-महिमा का गान किया गया है। बिना हरिभक्ति के कोई ऊँचा नहीं। यथा—

"ऊंचनीच हरि कूं भजै सोही उत्तम जान।
रामचरण हरिभजन बिन, ऊंचहि श्वपच समान।"[6]

२७. **गुरुपरमार्थी को अंग, लोभी गुरु को अंग**—'कुण्डल्या गुरुदेव को अंग' के अन्तर्गत

---

१. अ० वा०, कवित, लछज्ञानी को अंग, छं० १०, पृ० ११५।
२. देखिए 'शिखपारख को अंग'—लेखक।
३. रामचरण सारी सृष्टि एक शब्द विस्तार।
जैसे पतवा वृच्छ मैं निकसै झड़ै अपार।
अ० वा०, निरणाँ को अंग, पृ० १२५।
४. वही, कवित हठजोग को अंग, छं० १, पृ० १२५।
५. वही, कुण्डल्या, हठजोग को अंग, छं० १, पृ० १७४।
६. वही, कवित, भक्ति महिमा को अंग, छं० ६, पृ० १२६।

'गुरुपरमार्थी' और 'लोभी गुरु' भी संयुक्त हैं। स्वामी जी के अनुसार 'सतगुरु सम परमार्थी और न दीसै कोय।'[1]

२८. लच्छ को अंग—कुण्डल्या शीर्षक के दो छन्दों में यह अंग साधु के लक्षणों का वर्णन करता है। यथा—

"जल गाटै पट छाँणि ये धरा निरख पग धार।
वित्त मैली चितवन तजै बोलै बचन विचार।"[2]

२९. भेषधारणा को अंग—रेखता शीर्षक के अन्तर्गत इस अंग में संत की भेष धारणा के मिस आत्मा के भेष का वर्णन स्वामी जी करते हैं। यथा—

"तत्व सो तिलक पतिव्रत की छाप है सतगुरु वस्त का टोप राजै।
रामगुण श्रवण जो श्रव्वणी श्रवणां मुक्तिमणि भजन दामा विराजै।
मेखला शील संतोष सब मात राम महर कै मुकुर दिखाय सारा।
राम ही चरण ये भेष हमकूं दिया सोही निज संत है म्हंत हमारा।"[3]

३०. नाम निरणाँ को अंग—'रेखता सुमरण को अंग' के अन्तर्गत 'नाम निरणाँ को अंग' का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। सभी नाम-स्मरण की बात कहते हैं पर नाम का रहस्य क्या है? कौन-सा नाम है जिसके रटने से 'सीर सुखमणि' खुल जाता है और उसे पीते-पीते मन स्थायी रूप से 'मगन' हो जाता है। इस संदर्भ में स्वामी जी कहते हैं—

"नाम का भेद अब शब्द मैं कहत हूँ सुरति दे सांभलो सर्व कोई।
और सब नाम सिपती कहै ब्रह्म का राम निज बीज शिव कहत सोई।
शेष अरु सनक शुकदेव नारद कहैं तीन ही लोक ध्वनि अधिक होई।
और सब नाम जुग जुग उपजै खपै एक रक्कार रहै अखण्ड जोई।"[4]

अतः निर्णय हुआ कि अन्य नाम उपजते और नष्ट हो जाते है पर 'रकार' अर्थात् 'राम' का नाम अखण्ड है। स्वामी रामचरण ने अपनी 'अणभैवाणी' में संतों द्वारा वर्णित सभी अंगों की चर्चा की है।मैं समझता हूँ जितने भी संभव अंग हो सकते हैं सभी का विस्तार या संक्षेप में वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है।

---

१. अ० वा०, गुरु परमार्थी को अंग, छं० १९, पृ० १३९।
२. वही, कुण्डल्या, लच्छ को अंग, छं० ३, पृ० १५४।
३. वही, रेखता, भेष धारणा को अंग, छं० ३, पृ० १९०।
४. वही, रेखता, नाम निरणाँ को अंग, छं० १०, पृ० १९१।

२. छोटे ग्रंथ

स्वामी रामचरण के संग्रह ग्रंथ 'स्वामी जी श्री रामचरण जी महाराज की अणभै-वाणी' में अंगबद्ध वाणी के बाद छोटे ग्रंथ आते हैं। इन ग्रंथों की संख्या १३ है जिनके नाम निम्नलिखित हैं—

१. गुरु महिमा
२. नाम प्रताप
३. शब्द प्रकाश
४. चिन्तावणी
५. मन खण्डन
६. गुरुशिष्य गोष्ठि
७. ठिग पारख्या
८. जिद पारख्या
९. पण्डित संवाद
१०. लच्छ अलच्छ जोग
११. बेजुक्ति तिरस्कार
१२. काफर बोध
१३. शब्द

इस सूची के प्रारम्भ के तीन ग्रंथ 'गुरु महिमा', 'नाम प्रताप' और 'शब्द प्रकाश' वाणी अंगों के बाद संगृहीत हैं, शेष दस ग्रंथ आठ बड़े ग्रंथों के बाद मुद्रित हैं। पीछे यह लिखा जा चुका है कि इन लघु काव्यों के लिपिकार एवं संग्रहकर्त्ता भी नवलराम जी ही थे। यद्यपि सम्पादक ने प्रत्येक ग्रंथ की समाप्ति पर रचना-काल, स्थान आदि का या स्वयं अपने विषय में उल्लेख नहीं किया है, किन्तु प्रकाशित वाणी के पृष्ठ १०१३ पर जो उल्लेख उसने किया है उससे भी यह स्पष्ट नहीं होता कि इन ग्रंथों के सम्पादक नवलराम जी ही थे। किन्तु इस आधार पर कि स्वामी रामजन ने अपने द्वारा सम्पादित ग्रंथों के अन्त में अपने द्वारा सम्पादित होने का उल्लेख कर दिया है और नवलराम जी ने केवल एक स्थान पर अंत में किया है। इसलिए यह अनुमान उचित ही है कि उपर्युक्त सभी ग्रंथों का सम्पादन भी 'वाणी' एवं फुटकर पदों के साथ नवलराम जी ने ही किया था।

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने उपर्युक्त ग्रंथों को अलग वर्गीकृत न करके 'वाणी साहित्य' के अन्तर्गत ही रखा है। उनके वर्गीकरण के अनुसार 'ग्रंथ साहित्य' में केवल वे ही नौ ग्रंथ आते हैं जिन्हें प्रकरण या प्रकाशों में बाँधा गया है। अपने वर्गीकरण की पुष्टि में वे लिखते हैं कि 'इनमें से किसी भी कृति की रचना न तो प्रकरण शैली में हुई है और न उनका विस्तार

ही इतना है कि इन्हें एक ग्रंथ कहा जा सके। अतः इन्हें वाणी साहित्य की संज्ञा देना ही उपयुक्त होगा।'[1]

डॉक्टर वर्मा के उपर्युक्त मत के सन्दर्भ मे मेरा निवेदन है कि किसी भी कृति का प्रकरण में विभाजन या उसका विस्तृत होना उसके ग्रंथ कहे जाने का मापदण्ड नहीं हो सकता। फिर स्वामी रामचरण का विशाल साहित्य सुसम्पादित है। उनकी 'अणभैवणी' को उनके शिष्य नवलराम जी ने उनके जीवन काल में ही अंगबद्ध कर दिया था। तात्पर्य यह कि नवलराम जी ने स्वामी रामचरण की रचनाओं के सम्पादन में उनसे परामर्श अवश्य किया होगा। फिर तो हम निस्सन्देह यह भी कह सकते हैं कि ग्रंथों का नामकरण भी स्वामी रामचरण ने स्वयं ही किया होगा। ऐसी स्थिति में उन ग्रंथों को, जो लघुकाय होने के कारण प्रकरण या प्रकाशों में विभाजित नहीं किये जा सके, ग्रंथ न मानकर अंगबद्ध वाणी के अन्तर्गत घसीटना समीचीन नहीं। वे सभी रचनाएँ कवि की प्रारम्भिक कृतियाँ हैं जिन्हें कवि ने ग्रंथ रूप में नामांकित किया है। फिर किसी का उन्हें ग्रंथ न मानना कोई अर्थ नहीं रखता। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से मैंने इन्हें एक अलग वर्ग में ही रख दिया है, साथ ही यह भी कि इन ग्रंथों के लिपिकार, सम्पादनकर्त्ता भी एक ही व्यक्ति हैं। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने भी इन रचनाओं को 'ग्रंथों की विवरणी' शीर्षक में रखकर ग्रंथों में गिना है।[2] यह मत समीचीन है। इन ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

१. गुरु महिमा

प्रकाशित 'वाणी' के दो पृष्ठों में मुद्रित यह रचना स्वामी रामचरण की कृतियों में तो महत्त्वपूर्ण है ही, रामसनेही सम्प्रदाय के साधु एवं गृहस्थों में भी बड़ी लोकप्रिय है। संत-संप्रदायों में गुरु की बड़ी महिमा रही है, अतः यदि रामसनेही सम्प्रदाय मे मूलाचार्य का यह लघु ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है तो विस्मय का विषय नहीं। सम्प्रदाय के विरक्तों एवं गृहस्थो द्वारा इस ग्रंथ का व्यक्तिगत एवं सामूहिक पाठ होता है।

विषयवस्तु—गुरु की महत्ता प्रतिपादित करते हुए स्वामी रामचरण लिखते हैं कि गुरु की सेवा पहले करनी चाहिए। गुरु-सेवा के साथ ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। गुरु की कृपा से ही बुद्धि स्थिर होती है एवं सांसारिक 'तृष्णा-ताप' से मुक्ति मिलती है। गुरु की कृपा से सांसारिक भ्रम, कर्म और संशय से छुटकारा मिल सकता है। इसलिए गुरु की पूजा 'तन-मन' से करने का उपदेश स्वामी जी देते हैं। उनके अनुसार गुरु तो अनन्य हैं, उसके द्वारा शरीर और मन दोनों निर्मल होते हैं।[3]

गुरु ज्ञानदाता है, उसके बिना ज्ञानोपलब्धि सम्भव नहीं, गुरु ही भक्ति-मुक्ति का दाता है, जो गुरु नहीं करते उन्हें नरक में जाना पड़ता है। इसलिए 'नुगरा' का संग नहीं

---

१. डॉक्टर अमरचन्द्र वर्मा—स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० १०५।

२. श्री केवलराम स्वामी—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ६६।

३. अ० वा०, गुरु महिमा, छं० १, २, ३; पृ० २०१।

करना चाहिए। सच्चा गुरु 'शील' से पहचान कराता है और काम-क्रोधादि विकारों से रहित करता है।[१] इसलिए स्वामी जी की मान्यता है कि—

"गुरु गोविन्द सूं अधिका होई।
या सुन रोश करो मति कोई।
प्रथम गुरु सूं भाव बधावै।
गुरु मिलिया गोविंद कूं पावै।"[२]

स्वामी जी आगे कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति को देखना भी नहीं चाहिए जो त्यागी, विरागी, सिद्धान्तवादी, इन्द्रियजित् होने के साथ गुरुद्रोही हो। ऐसे व्यक्ति के दर्शन से बुद्धि, नष्ट होती है और ज्ञानहीनता की वृद्धि होती है।[३] विपरीत इसके गुरु-भक्त गुरु को पूर्ण आदर-सम्मान देते हैं, उनका वचन कभी नहीं टालते। ऐसे गुरु-भक्त की संगति में सदैव रहना चाहिए और उसे तन-मन अर्पित कर 'राम-रस' का पान करना चाहिए। सतगुरु के मिलन से मोक्ष की प्राप्ति होती है एवं अनन्त जन उसकी महिमा के गीत गाते हैं। इसलिए सब संतों की 'साख' ध्यान में रखकर गुरु से कपट नहीं करना चाहिए। उसे 'ब्रह्मरूप' समझना चाहिए।[४] यथा—

"गुरु को ब्रह्म रूप करि जानै।
ताकी बुद्धि चढ़ै परमानै।"[५]

स्वामी रामचरण गुरु-महिमा के गान में डूबते हुए भी नेत्रों को उन्मीलित रखते हैं। वे गुरु-अवगुण की ओर भी अंगुलि-निर्देश कर उससे विरत होने की बात कह जाते हैं। अंत में वे अपनी निम्नलिखित मान्यता द्वारा गुरु-यश का बखान कर 'गुरुमहिमा' ग्रंथ को समाप्त करते हैं—

"सत गुरु कूं मस्तक धरै, रामभजन सूं प्रीति।
रामचरण वै प्राणियां, गया जमारो जीति।"[६]

अभिव्यक्ति पक्ष—दोहा-चौपाई शैली में लिखी गई इस रचना में ४ दोहे और २० चौपाइयाँ हैं। काव्य की भाषा राजस्थानी हिन्दी है। अभिव्यक्ति के लियें उपदेशप्रधान

---

१. अ० वा०, गुरु महिमा, छं० ५, ६, ७; पृ० २०१।
२. वही; छं० ८, पृ० २०१।
३. वही, छं० १३; १४; पृ० २०१।
४. वही; छं० १३, १४, १५; पृ० २०२।
५. वही; छं० १९; पृ० २०२।
६. वही, छं० [दोहा] १; पृ० २०२।

शैली अपनायी गयी है। नारद, दत्त दिगंबर, शुकदेव, व्यास और जनकादि की चर्चा से हमारा ध्यान उनसे संबंधित अन्तर्कथाओं की ओर भी जाता है।

२. नाम प्रताप

स्वामी रामचरण के लघु ग्रंथों में यह दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। प्रकाशित 'वाणी' के छः पृष्ठों में मुद्रित यह ग्रंथ भी रामसनेही जनों में बड़ा लोकप्रिय है। फूलडोल के अवसर पर इस ग्रंथ का पाठ जनसभा में होता है। उस अवसर पर होने वाले अन्य कार्यक्रमों की भाँति इसका पाठ भी एक कार्यक्रम है और प्रमुख कार्यक्रम है। यह कार्यक्रम बहुत पहले से होता चला आ रहा है।

विषयवस्तु—निर्गुण उपासना में नामस्मरण की बड़ी महत्ता है। निर्गुण संत-साधकों ने नाम-सुमिरन को मोक्ष का एकमात्र साधन माना है और उनकी सम्पूर्ण साधना-प्रक्रिया का यह मेरुदण्ड है। यही वह तरी है जिसके सहारे सभी पार हो जाते हैं और जो इसे भूल जाता है उसकी उपस्थिति यमराज के द्वारे अवश्य होती है।

"जिन-जिन सुमर्‌यां नाम कूं, सो सब उतर्‌या पार।
रामचरण जो बीसर्‌या, सो ही जम के द्वार।"[१]

ग्रंथ का पूर्वार्द्ध विभिन्न देवी-देवताओं, पुराण-पुरुषों, एवं आचार्य-संतों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत करता है। नाम-स्मरण के प्रताप से इन लोगों का जीवन अवश्य प्रभावित हुआ है और आज भी उनकी भगवद्‌भक्ति आदर्श मानी जाती है। इन नामोपासकों में शिव, पार्वती, शुकदेव, रम्भा, नारद, ब्रह्मापुत्र सनकादि, शेष, ध्रुव, प्रह्लाद, अजामिल, गणिका, हनुमान, वाल्मीकि, गज, जनक, परीक्षित, नामदेव, रामानन्द, कबीर, कृष्णदास पयहारी, अग्रदास, तुलसी, परशुराम, संतदास और अपने गुरु कृपाराम जी की गणना की है। उपर्युक्त सभी ने निर्मल चित्त से नाम स्मरण किया और राम ने सभी को सद्‌गति दी। ग्रंथ का यह अंश कथा-रस की अनुभूति कराता है क्योंकि प्रत्येक नाम के पीछे एक अन्तर्कथा अवश्य है।

ग्रंथ का उत्तरार्द्ध 'सुरति शब्द योग' की साधना के विभिन्न सोपानों की स्थितियों से अवगत कराता हुआ जीव-ब्रह्म का 'ब्रह्मदेश' में मिलन कराता है। इस प्रक्रिया का आरंभ रसना द्वारा रामरटन से होता है। फिर मन को एकाग्र करना पड़ता है। रामरटन से रसना के अग्रभाग से पीयूष की अखंडित धार प्रवाहित होने लगती है। इस अमृतरस के पान से जलपान की इच्छा समाप्त हो जाती है, अमृत रस से विरत होने को बिल्कुल जी नहीं करता, भूख भी नहीं लगती।[२] साधना की इस अवस्था में शरीर का हर अंग सुख की धारा से स्नात रहता है। कवि के शब्दों में इस अवस्था का वर्णन ध्यान देने योग्य है—

---

१. अ० वा०, नाम प्रताप, छं० २, पृ० २०३।
२. वही, छं० ४४, ४५, पृ० २०६।

"रस पीवत क्षुधा सब भागी।
कंठा शब्द टगटगी लागी।
नाड़ि नाड़ि में चले गिलगिली।
सुखधारा अति बहै सिलसिली।
मुख सूं कछू न उचरैं बैना।
लग्या कपाट खुलै नहिं नैना।
श्रवणा चर्चा सुणैं न कोई।
कण्ठ ध्यान यह लक्षण होई।
कण्ठ ध्यान कँमकँमी जागै।
रोम रोम सीतंग सो लागै।
हियो गद्गदे श्वास न आवै।
नैणा नीर प्रवाह चलावै।"[1]

इस साधना प्रक्रिया की दूसरी स्थिति तब आती है जब 'शब्दब्रह्म' हृदयस्थ होता है। तब हृदय आलोकित हो उठता है जैसे अँधेरी रात में चन्द्रमा प्रकाशित हो। उस सुख की महिमा वर्णनातीत है।[2] तृतीयावस्था में ध्यान-ध्वनि हृदय से चलकर नाभिकमल को चेतना प्रदान करती है। उस ध्वनि से सभी नाड़ियाँ चैतन्य हो उठती हैं और रोम-रोम से राग सुनाई पड़ने लगते हैं। नौ सौ नाड़ियों के मंगलगीत से मन-भँवर अतिसुख पाता है। शब्द ब्रह्म के अमृतरस से शरीर शीतल हो जाता है।[3] चतुर्थ अवस्था कुण्डलिनी के सहारे शब्द का 'गगन' में चढ़ने से आरंभ होती है। 'गगन' तक पहुँचने के विभिन्न सोपान की चर्चा के साथ साधना की चरम सीमा हो जाती है। अनहद नाद की गर्जना, परमज्योति का प्रकाश, सुषमण नीर की झड़ी में सुरति का भींगना आदि का वर्णन करते हुए कवि 'ब्रह्म स्पर्श' की स्थिति में पहुँच जाता है[4] और तब—

"जाके अन्दर ब्रह्मरस बूठा।
सकल विह्वार होइ गया झूठा।
कनक कामिनी करै न नेहा।
छक्या ब्रह्मरस रहै विदेहा।
जैसे बूँद मिली सायर में।
कैसे पकड़ि सकै कोई कर में।

---

१. अ० वा०, नाम प्रताप, छं० ४६, ४७, ४८; पृ० २०६।
२. वही, छं० ४९, ५०, पृ० २०६।
३. वही, छं० ५१, ५२, ५३, पृ० २०७।
४. वही, छं० १, २, पृ० २०७।

जीव ब्रह्म मिली भया समाना।
ब्रह्म मिल्यां कर्म करै न आना।"[१]

अभिव्यक्ति पक्ष—यह ग्रंथ भी दोहा-चौपाई की शैली में लिखा गया है। ८ दोहे और ७२ चौपाइयों की यह लघु रचना है। इस काव्यकृति की भाषा राजस्थानी हिन्दी है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से काव्य के पूर्वार्द्ध में कथाप्रधान और उत्तरार्द्ध में अध्यात्मप्रधान शैली के दर्शन होते हैं।

३. शब्द प्रकाश

स्वामी रामचरण रचित छोटे ग्रंथों में तीसरा ग्रंथ 'शब्द प्रकाश' है। प्रकाशित 'वाणी' के ढाई पृष्ठों में इस ग्रंथ का विस्तार है।

विषयवस्तु—राम-नाम-स्मरण की महत्ता का जिस प्रकार प्रतिपादन 'नाम प्रताप' में हुआ है, वैसा पूरा तो नहीं किन्तु उसके उत्तरार्द्ध जैसा ही वर्णन इस ग्रंथ में हुआ है। विषय-वस्तु में कोई नूतनता नहीं मिलती। रामनाम तारक मंत्र है जिसे गुरु से प्राप्त कर शिष्य विश्वासपूर्वक अहर्निश जपे तो निश्चय उसे ज्ञान का प्रकाश मिलेगा।[२] नाम-स्मरण से शनैः शनैः 'सुरति शब्द योग' की स्थिति तक पहुँचने का वर्णन तो हुआ ही है, साधनावस्था में शरीर की क्या दशा हो जाती है, इसका चित्र भी कवि ने प्रस्तुत किया है—

"क्षीण शरीर त्वचा सकुचानी।
नीली नस दीसै झलकानी।
पीरो वदन नेतरां लाली।
मुकुर ज्योति ज्यूं दिपै कपाली।"[३]

किन्तु साधना के बाद साधक को 'ब्रह्मपद' की प्राप्ति हो जाती है—

"राम रट्यां का यह प्रकाशा।
मिल्या ब्रह्मपद भवभय नाशा।"[४]

'शब्द प्रकाश' का संदेश निम्नलिखित पंक्तियों में कवि ने स्पष्ट किया है—

"रामचरण कोई राम रटेगा।
सो जन एही धाम लहेगा।

---

१. अ० वा०, नाम प्रताप, छं० ३, ४, पृ० २०८।
२. वही, शब्द प्रकाश, छं० १, २, पृ० २०८।
३. वही, शब्द प्रकाश, छं० ६, पृ० २०९।
४. वही, छं० २१, पृ० २१०।

राम राम निशि वासर गासी।
सो नर भवसागर तिर जासी।"[1]

अभिव्यक्ति पक्ष—दोहा-चौपाई छन्दों में रचित इस ग्रंथ में ४ दोहे और २४ चौपाइयाँ हैं। भाषा राजस्थानी हिन्दी है। संतों की उपदेशपरक शैली में पूरा ग्रंथ अभिव्यक्त हुआ है।

४. चिन्तावणी

प्रकाशित 'वाणी' के साढ़े चार पृष्ठों में 'चिन्तावणी' ग्रंथ का विस्तार हैं। इस ग्रंथ-लेखन का उद्देश्य स्वामी जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त किया है—

"बंधे स्वाद रसभोग सैं, इंद्रघा तणै अरत्थ।
उन जीवन कै चेतबे, करूं चिन्तावणि ग्रंथ।
रामचरण उपदेशहित, कहूं ग्रंथ विस्तार।
पर्‌यो प्राणि भव कूप मैं, सो निकसै अर्थ विचार।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि स्वामी जी ने इस ग्रंथ की रचना उन लोगों को चेतावनी देने के लिये की थी जो इन्द्रियों को तृप्त करने में लीन भौतिक रस का भोग करते हैं। इस रचना का उद्देश्य ही सांसारिकता में पड़े लोगों को उद्धार का उपदेश देना है।

विषयवस्तु—ग्रंथारम्भ में स्वामी रामचरण मानवमात्र को उसकी दीवानगी देखकर चेतावनी देते हैं—

"दिवाना, चेत रे भाई, तुज सिर गजब चलि आई।
जरा की फोज अति भारी, करै तन लूटि कै ख्वारी।

... ...

बहुत कष्ट करि पाईयो, मिनख जन्म अवतार।
ताहि सुफल करि लीजिए, भजकै सिरजनहार।"[3]

आगे के आठ खण्डों में गर्भावस्था से लेकर बालपन, तरुणाई, वार्द्धक्य, मृत्यु, यम-यातना का वर्णन करके संसार की असारता और मिथ्यात्व की चर्चा करते हैं। अंत में

१. अ० वा०, शब्द प्रकाश, छं० २२, पृ० २१०।
२. वही, चिन्तावणी, छं० २, ३, पृ० ९७७।
३. वही, चिन्तावणी, पृ० ९७७।

उपदेश करते हैं कि बार-बार जन्म ग्रहण करने का कारण वासना में जीव का बँधा रहना है। अहर्निश राम का नाम-स्मरण करने से जन्म-मृत्यु से मुक्ति मिल सकती है। अंतिम छंद में अपनी चेतावनी स्वामी जी बड़े मार्मिक शब्दों में दुहराते हैं—

"चौरासी की मार, भजन बिना छूटै नहीं।
तातैं होइ हुंसियार, यहै सीख सतगुरु कही।"[1]

अभिव्यक्ति पक्ष—इस ग्रंथ की रचना दोहा, चामर और सोरठा छन्दों में हुई है। छन्द संख्या इस प्रकार है—दोहा २५, चामर १००, सोरठा २। १२७ छन्दों की यह रचना आठ खण्डों में है। पहले खण्ड में सामान्य चेतावनी, दूसरे में गर्भावस्था, तीसरे खण्ड में जन्म और शैशव, चौथे में यौवन पूर्वार्द्ध, पाँचवें में यौवन उत्तरार्द्ध, छठें में वार्द्धक्य, सातवें में मृत्यु, आठवें में नरक-यातना और अंतिम खण्ड में सांसारिकता से मुक्ति के लिये हरि-भजन की युक्तियों का वर्णन है। अभिव्यक्ति के लिये राजस्थानी हिन्दी को स्वामी जी ने अपनाया है किन्तु अनेक विदेशी मूल के शब्दों का भी धड़ल्ले से प्रयोग करने में वे चूके नहीं हैं। यथा—गाफिल, दीदार, निजर आदि। किन्तु ये शब्द हिन्दी भाषा में पर्याप्त समय से प्रयोग में आने के कारण हिन्दी के ही हो गये हैं। अतः इनका प्रयोग अस्वाभाविक नहीं लगता। यह ग्रंथ उपदेशपरक शैली में लिखा गया है।

५. मन खण्डन

'मन खण्डन' शब्द का अर्थ मन मारना है। इस ग्रंथ में स्वामी जी मन खण्डन का उपाय ढूँढ़ते हैं। यद्यपि यह ग्रंथ अत्यन्त लघुकाय है, फिर भी मन खण्डन जैसे महत्त्वपूर्ण विषय की चर्चा के कारण महत्त्वपूर्ण हो गया है।

विषयवस्तु—सप्तधातु निर्मित काया में चेतन राजा है और मन प्रधान है। इस मन के तीन प्रबल योद्धा सत्, रज, तम हैं और पाँच पियादे [शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध] इसके साथ हैं। फिर इन पाँचों के पाँच-पाँच घर हैं। ये सभी अपना-अपना भोग इस काया नगरी से चाहते हैं। प्रधान मन की निरंकुशता देखकर राजा चेतन ने मन को नियंत्रित करने के लिये 'निजमन' की कल्पना की है। यह 'निजमन' मन की चोरी पकड़कर राजा चेतन को बता देता है। 'निजमन' अपने राजा का सेवक है।[2] स्वामी जी ने मन को 'परकृति मन' की संज्ञा से अभिहित किया है। 'निजमन' 'परकृति मन' से कहता है—

"मैं तो हुकम राय को करि हूं।
तेरी चोरी कागद धरि हूं।
तेरै भोग राय दुख पावै।
बारबार ग्रभ मांही आवै।"[3]

---

१. अ० वा०, चिन्तावणी पृ० ९८१।
२. वही, मनखण्डन, चौपाई १, २, ३, पृ० ९८१।
३. वही, चौ० ४, ५; पृ ९८१।

यह 'निजमन' मन के साथ हो गया है और बराबर लगा रहता है। वह पुनः 'परकृति मन' से कहता है—

"मेरै धणी विदा कियो मोहि।
चोरी करता पकड़ूँ तोहि।
तेरा पांच पयादा मारूं।
रज, तम दोय टूक करि डारूं।
सात्विक कूं में लेहूं फेर।
काढूं नगर पचीशूं हेर।"[1]

स्वामी जी के अनुसार विषयवासना मन का भोग है पर यह 'निजमन' के लिये रोग है।[2] चेतन राजा का सेवक 'निजमन' 'परकृति मन' को हर क्षण नियंत्रित करने के लिये उसके सिर पर सवार रहता है। मन सांसारिकता की ओर जाता है किन्तु 'निजमन' वैराग्य की ओर उन्मुख करता है। मन का दाँव तनिक भी नहीं लगता क्योंकि 'निजमन' उसकी छाती पर पाँव रखे रहता है। मन को 'निजमन' द्वारा नियंत्रित कराने के अतिरिक्त मनखण्डन का अन्य उपाय नहीं। जो मनुष्य मन के मारे हैं उन्हें चौरासी लाख योनियों में विचरना पड़ता है और जिन्होंने मन को मार लिया है वे 'परम धाम' के वासी हुए हैं। इसलिए इस संदर्भ में स्वामी जी उपदेश देते हैं कि—

"मन खण्डै रामै भजै, तजै जगत गृह कूप।
रामचरण तब परसिये, आतम शुद्ध स्वरूप।"[3]

अभिव्यक्ति पक्ष—इस ग्रंथ में दोहा, चौपाई और सोरठा छन्दों का प्रयोग हुआ है। छन्दों की संख्या इस प्रकार है—दोहा ४, चौपाई २९ और सोरठा १। भाषा राजस्थानी हैं एवं प्रतीक शैली का सहारा लिया गया है। यद्यपि ग्रंथ की रचना संवाद शैली में नहीं हुई है फिर भी 'निजमन' के कथन 'मन' को संबोधित हैं। साम्प्रदायिक दृष्टि से यह लघु रचना बड़ी महत्त्वपूर्ण।

६. गुरुशिष्य गोष्ठि

यह लघु रचना प्रकाशित 'वाणी' में आधे पृष्ठ की है। ग्रंथ के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें गुरु-शिष्य का पारस्परिक विचार-विनिमय हुआ है।

---

१. अ० वा०, मन खण्डन, चौ० ६, ७, पृ० ९८१।

२. विषय वासना मन का रोग।
निजमन इनकूं जाणै रोग।
—वही, छं० १०, पृ० ९८१।

३. वही, मन खण्डन, दो० १, पृ० ९८२।

विषयवस्तु—संसार वृक्ष यद्यपि निराधार है फिर भी माया ने इसे मोह की डोर से तृष्णा के खूँटे में बाँध रखा है। इस मायात्मक जगत् के आकर्षण से बचने के लिये रामरटन ही एकमात्र विकल्प है। शिष्य गुरु से कहता है कि माया कुटनी है, वह मन को नहीं छोड़ती, तृष्णा को बढ़ाती है, वह मोह बंधन से बाँधती है, फिर कैसे मुक्ति मिले? गुरु ने समाधान किया कि वीर की भाँति वैराग्य की तलवार से सभी बंधन काट डालो।[1] अंत में स्वामी जी कहते हैं कि "ज्ञान भक्ति बैराग बिन, कोइ न उतर्‌यो पार।"[2]

अभिव्यक्ति शैली—इस ग्रंथ में झंपाल और दोहा छन्दों का प्रयोग स्वामी जी ने किया है। छन्दों की संख्या इस प्रकार है—झंपाल १२, दोहा २। भाषा राजस्थानी है। उपदेशपरक संवाद शैली में इस ग्रंथ की रचना हुई है।

७. ठिग पारख्या

'ठिग पारख्या' प्रकाशित 'वाणी' में कुछ पंक्तियों की रचना है। ठिग पारख्या का अर्थ है ठग परीक्षा।

विषयवस्तु—कुछ पंक्तियों की इस रचना में स्वामी रामचरण ने स्वयं को ठग की संज्ञा दी है। उनका कथन है कि संसार उन्हें ठग कहता है। इस कथन को वे स्वीकार करते हुए कहते हैं कि पहले मैंने माता-पिता, भाई-बहन, सगे-संबंधी, पत्नी, कुल-परिवार आदि को ठगा। वे लोग मुझसे संसार चलाने की आशा करते थे, पर मैंने सभी को त्याग कर अपना कार्य किया अर्थात् भगवद्भजन में लीन हो गया। इन सब को ठगने के बाद मैंने अपने मन को ही ठगा और उसे बरबस पकड़कर अपने वश में किया। मन इतना अधिक नियंत्रित हुआ कि वह हरि के चरण में लीन हो गया और पुनः वह नहीं जिया। संसार मुझे उचक्का कहता है, यह भी सत्य है क्योंकि मैंने उचक कर 'सत्य शब्द' को पकड़ लिया। गुरुमुख से जो ज्ञान की वाणी निकली उसे मैंने उचकाकर हृदय में धारण कर लिया। अंत में कहते हैं कि मैं ऐसा ठग उचक्का हूँ जिसे यमराज का धक्का नहीं लगता।[3]

अभिव्यक्ति पक्ष—इस रचना में चौपाई और दोहा छन्दों का प्रयोग स्वामी जी ने किया है जिनकी संख्या इस प्रकार है—चौपाई १४, दोहा १। भाषा राजस्थानी हिन्दी है। उत्तम पुरुष में अभिव्यक्त होने के कारण आत्मकथन शैली कही जायगी। वैसे ठग, उचक्का कहकर उन्होंने अपने ऊपर ही सही, व्यंग्य किया है। अतः इसे व्यंग्य प्रधान आत्मकथन शैली कहना समीचीन होगा।

---

१. अ० वा०, गुरुशिष्य गोष्ठि, पृ० ९८२।
२. वही, पृ० ९८३।
३. वही, ठिग पारख्या, पृ० ९८३।

८. जिद पारख्या

विषयवस्तु—जिद शब्द का अर्थ है भूत। तात्पर्य यह कि जो सांसारिक जीवन के लिए भूत बन चुके हैं अर्थात् साधुजन, उनकी परख का भाव इस लघुतम कृति में स्वामी जी ने व्यक्त किया है। केवल सिर मुँड़ाने, भीख माँगने और लकड़ी लेकर धुनी रमाने से कोई साधु नहीं हो सकता। सच्चा साधु वह है जो बुद्धि के छुरे से मन को मूँड़े, जो अपने विवेक की झोली में तत्त्व संग्रह करे। सदा जागृत होकर प्रेम जगावै, जो हर्ष-शोक की धुनी रमाये और उसमें 'मैं तैं' की लकड़ी का ईंधन लगावे।[१] सच्चा साधु मत, पंथ, जाति आदि से ऊपर होता है। कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस कथन की पुष्टि में सहायक हैं—

> **"हिन्दू तुरक दोऊ सीं न्यारा।**
> **निर्पख रहै रब्बदा प्यारा।**
> **कोई न मत का पकड़ै बन्ध।**
> **तत कूं ताय भया निर्बन्ध।"[२]**

अभिव्यक्ति पक्ष—केवल चौपाई छन्द का प्रयोग हुआ है जिसकी संख्या ९ है। भाषा राजस्थानी हिन्दी है, पर अन्य मूल की भाषा के कतिपय शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। जैसे—जिद, उस्तरा, गाफिल, रब्बदा। अभिव्यक्ति के लिये तथ्यनिरूपण की शैली अपनायी गयी है।

९. पण्डित संवाद

यह भी स्वामी रामचरण की एक लघु रचना है। कबीर आदि अन्य संत कवियों की भाँति स्वामी रामचरण भी समाज के ठेकेदारों, पाखण्डप्रिय ढोंगियों को खरी-खोटी सुनाने में पीछे नहीं रहे। स्मरणीय है कि अपने भीलवाड़ा के जीवन में उन्हें इन तत्त्वों से बड़ा संघर्ष करना पड़ा था। यद्यपि 'पंडित संवाद' में समाज के सभी वर्गों की चर्चा नहीं है, किन्तु समाज के अभिजात-वर्ग पर उनकी दृष्टि सीधे पड़ी है। समाज का अगुवा-वर्ग समाज-जीवन को प्रभावित करता है। समाज के सृजन, विकास और पतन—सभी में उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। अपने जीवन की कुरूपताओं से इन लोगों ने समाज-जीवन को भी कुरूप कर रखा था और स्वामी रामचरण द्वारा प्रचारित 'राम धर्म' को वे अपने मार्ग की बहुत बड़ी बाधा समझ बैठे थे। स्वामी रामचरण फकीर थे, उन्हें किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता की परवाह नहीं थी। अतः यथार्थ के धरातल पर अपनी वाग्देवी को चलने के लिये विवश किया।

---

१. अ० वा०, जिद पारख्या, पृ० ९८३।
२. वही, जिद पारख्या, पृ० ९८४।

विषयवस्तु—ग्रंथ के आरम्भ में ही स्वामी जी ब्राह्मणों को उनके कुकर्मों के लिये फटकारते हैं और बकवाद करने से रोकते हैं—

> **"ब्राह्मण बाद न कीजिये, तेरी लच्छ विचार।**
> **कर्म छांड़ि कुकर्म करै, तो धका खाय दरबार।"**[१]

वस्तुतः स्वामी रामचरण एक तो वैश्य-कुल के थे, दूसरे समाज को सदाचार, शील और नामोपासना की शिक्षा देते थे, सामाजिक रूढ़ियों एवं पाखण्डों से विरत होने की बात भी करते थे। राजस्थान की हिन्दू प्रजा और वहाँ के राव-राजा पण्डितों की जागीर थे, उनका स्वामी जी के बढ़ते प्रभाव से आतंकित होना स्वाभाविक ही था। इसलिये उन्होंने स्वामी जी का विरोध किया, पर स्वामी जी निश्चिन्त भाव से सामाजिक रूढ़ियों एवं पाखण्डों पर प्रहार करते रहे और उसके लिये उत्तरदायी पण्डितों की खबर लेते रहे। 'पण्डित संवाद' थोड़े में इन परिस्थितियों का सम्यक् चित्राधार है।

पण्डित समाज का एक चित्र स्वामी जी की दृष्टि में इस प्रकार है :—

> **"कलियुग के पंडित पाखण्डी।**
> **घर में कुबुधि करकसा रण्डी।**
> **न्हाय धोय अपरश ह्वै बैठा।**
> **मन में मैलि चाहि का पैठा।"**[२]

इसलिये उन्होंने तत्काल सुझाया कि शरीर धोने से कोई उत्तम नहीं होता, उत्तम मन नामस्मरण से होता है।[३] किन्तु पण्डित करते क्या हैं? उनके कार्य-व्यापार का एक संक्षिप्त ब्यौरा स्वामी जी के शब्दों में ध्यान देने योग्य है—

> **"पापी कूं धर्मी कह भाखै।**
> **रामजनां सूं द्रोहता राखै।**
> **माथे शिव का तिलक लगावै।**
> **शिव सुमरै सो भेद न पावै।**
> ... ...
> **कामणि संग कूकर ज्यूं लागै।**
> **विष की लहरि सुमति नहिं जागै।"**[४]

---

१. अ० वा०, पंडित संवाद, पृ० ९८४।
२. वही, पृ० ९८४।
३. 'तन धोया उत्तम नहिं कोई। उत्तम नाम लियां मन होई'—वही।
४. वही।

वे पण्डितों को ललकारते हैं इस प्रश्न के साथ—

"तन मन मैल्यो मूत विकारा।
मोहि बताय कहाँ आचारा।
जीं द्वारै होइ कै तूं आया।
सोई फिर भुगतण कूं ध्याया।"[1]

निरुत्तर पंडित को वे उसकी खीझ पर ध्यान न देते हुए उपदेश देते हैं।—

"द्वारा दोन्यूं एक कहीजे।
पंडित होइ ये काम न कीजे।
रह्या मास दस ग्रभ के मांही।
काया रस सूं रुचि उपजाहीं।
. . . .
बहुर्‌यूं फिर वाही मनमानी।
सैंधी ठाम सूं रुचि उपजानी।
कैसे तुम कूं सुच्चि कहीजे।
उत्तम होई ये कृत्य न कीजे।"[2]

आदर्श पण्डित के लक्षणों की चर्चा वे निम्नलिखित पंक्तियों में करते हैं—

"पण्डित सोही पिंड कूं शोधै।
महा अपरबल मन कूं बोधै।
काम क्रोध का संग निवारै।
आशा छाड़ि निराश विचारै।
ईश्वर इच्छा रहै उदास।
भिक्षा भोजन परम निवास।
माया का संग्रह नहि करै।
निशि दिन ध्यान ब्रह्म को धरै।"[3]

स्वामी रामचरण की दृष्टि में कोई ऊँच या नीच नहीं है। चारों वर्ण राम द्वारा निर्मित हैं, इसमें कोई उत्तम-मध्यम नहीं। हाँ, मध्यम वही है जो राम-विमुख है। पण्डितों को वे बार-बार राम-भजन के लिये प्रेरित करते हैं और विश्वास के लिये वेद की साक्षी भी देते हैं—

---

१. अ० वा०, पण्डित संवाद, पृ० ९८४।
२. वही।
३. वही।

"मेरी बात नहीं पतियाना।
तो वेद मांहि फिर देख सयाना।
वेद बतावै सो अब कीजै।
रामचरण कूं दोष न दीजै।
हम तेरा कारज की भाखी।
तूं हम सूं दुबध्या जनि राखी।"[1]

अभिव्यक्ति पक्ष—दोहा, सोरठा और चौपाई छन्दों में यह ग्रंथ रचा गया है। छन्द संख्या इस प्रकार है—दोहा २, सोरठा २, चौपाई २२। भाषा राजस्थानी हिन्दी है। उपदेशपरक तथ्य-निरूपण शैली में 'पण्डित संवाद' अभिव्यक्त है।

१०. लच्छ अलच्छ जोग

प्रकाशित 'वाणी' के दो पृष्ठों में इस रचना का विस्तार है। जहाँ 'पण्डित संवाद' में स्वामी रामचरण ने समाज के अगुवा किन्तु ढोंगी ब्राह्मणों, पण्डितों की खबर ली है और आदर्श पण्डित के लक्षण गिनाकर उन्हें नाम-स्मरण करने की सीख दी है, वहीं उन्होंने 'लच्छ अलच्छ जोग' में साधु वेशधारी पाखण्डियों की भी खबर ली है और सच्चे साधु के लक्षण गिना कर उनकी महिमा कही है। यह ग्रंथ भी उनकी निर्भीक प्रवृत्ति का परिचायक है।

विषयवस्तु—ग्रंथारंभ में स्वामी रामचरण अपनी बात कहने से पूर्व सभी साधुओं से विनय करते हैं कि उनकी बात सभी साधु सुनें, पहले ही भड़कें नहीं। यथा—

"सब साधां सूं बीनती, कीज्यौ बांच विचार।
पहले ही मति भिड़कज्यो, मैं खानाजाद तुम्हार ॥"[2]

इस निवेदन के साथ उन्होंने साधुवेशी असाधुओं की कड़ी आलोचना आरम्भ की। उनके अनुसार कलियुग में नागा साधु एक विपत्ति हैं। यदि कहीं यज्ञमहोत्सव हो रहा है तो ये उसे विध्वंस करने का प्रयास अवश्य करते हैं, इन नागाओं की फौज से 'नगरी दुनिया' आतंकित हो उठती है। निर्वाणी, निर्मोही, गूदड़धारी, विरक्त, खाकी, निम्बावत, मध्वाचार्य के अनुयायी, विष्णुस्वामी के अनुयायी, निरंजनी, दादू पंथी, आदि अनेक मत पंथों के वेश धारणकर लोग घूमते हैं पर साधु-मत को कोई नहीं समझता। साधुओं की वेश-भूषा, बोलचाल, अस्त्र-शस्त्रों आदि की विस्तार से चर्चा इस ग्रंथ में हुई है। उनके धुनी लेना, आसन जमाना आदि के संबंध में भी अपना मत देते हैं। ये लोग वसूली करते फिरते

---

१. अ० वा०, पण्डित संवाद, पृ० ९८४।
२. वही, लच्छ अलच्छ जोग, पृ० ९८६।

हैं और लोग इनसे डरकर विरत होते हैं। उनके अनेक दुर्गुणों की चर्चा करते हुए वे उन्हें 'रण्डीदास' भी कह देते हैं और अन्त में कहते हैं—

"मैं कहा लगि करूं बड़ाई।
ये नागा की ठकुराई।

रामचरण नागा नगन, प्रत्यग काल स्वरूप।
जगत विचारो क्या करै, धड़को मानै भूप।"[1]

'साध लच्छ वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी रामचरण सच्चे साधु की पहचान बताते हैं। साधु भगवान के चरण सेवक होते हैं। जब इन साधुओं की मण्डली पधारती है तो नगर भर में प्रसन्नता व्याप्त हो जाती है। ये गरीबनिवाज होते हैं। सभी लोग इनके दर्शन हेतु जाते हैं। ये मधुरभाषी होते हैं। ये विभिन्न मत-पंथों के झमेले से दूर रहकर एक 'राम' का ध्यान करते हैं। कवि के शब्दों में उनके कुछ लक्षण इस प्रकार हैं—

"ये लोभ मोह बैरागी।
यां रीति जगत की त्यागी।
ये हर्ष शोक सूं न्यारा।
माया का तज्या पसारा।
या काम क्रोध रिपु मार्‌या।
या शांसा सकल से हार्‌या।
ये निर्द्वन्दी निरबादी।
ये नहसंगी नहस्वादी।
या सार पचीशूं मारी।
ये ऐसा बड़ा खिलारी।"[2]

सच्चे साधु भाँग, तम्बाकू, गाँजा आदि अमलों से दूर रहते हैं। कवि के शब्दों मे ये—"अमल रामरस खावै, निशिवासर नींद न आवै।"[3]

ग्रंथ के अंतिम खण्ड में इन्होंने साधुओं के जो लक्षण गिनाये हैं, वे सभी रामसनेही साधुओं में पाये जाते हैं अर्थात् रामसनेही साधु के लक्षण आदर्श हैं। कवि के शब्दों में कुछ इस प्रकार हैं—

---

१. अ० वा०, लच्छ अलच्छ जोग, पृ० ९८७।
२. वही, लच्छ अलच्छ जोग, पृ० ९८७।
३. वही।

"सब राम राम की वाणी।
ये साधां की निशाणी।
कोइ बैठा वाणी बांचै।
ये मतै लग्या है साचै।
कोइ निर्गुण सापद गावै।
सब साधां के मन भावै।
... ...
ये मुख सूं झूठ न भाखै।
ये इष्ट सांच को राखै।
ये परधन सूं रह रूठा।
ये कूड़ कपट सूं पूठा।
सतगुरु की सेवा शूरा।
ये साधमता में पूरा।
ये पाणी पीवै छाण्यो।
या सब घट आतम जाण्यो।
ये हिंसा सूं रह डरता।
ये निरखि निरखि पग धरता।
ये नांही दुख का दाता।
ये चाहवें सब कुसलाता।
श्रद्धा को भोजन पावै।
कै भिक्षा करिकै खावै।
ये निर्मल बुद्धि शरीरा।
ये जैसो शीतल नीरा।
ऐसी मति कै साधू।
ये दूजा सकल उपाधू।"[१]

अभिव्यक्ति पक्ष—ग्रंथ 'लच्छ अलच्छ जोग' में दोहा, चौपाई और चम्पक छन्दों का प्रयोग हुआ है जिनकी संख्या इस प्रकार है—दोहा ५, चौपाई ४ और चम्पक ६३। इस ग्रंथ में स्पष्टतया तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में नागा साधुओं की आलोचना, दूसरे में सच्चे साधुओं के लक्षण और तीसरे में रामसनेही साधुओं की पहचान दी हुई है। इसकी भाषा सरल, बोलचाल की राजस्थानी हिन्दी है। तथ्यनिरूपण की निवेदन शैली में इस ग्रंथ की रचना हुई है।

---

१. अ० वा०, लच्छ अलच्छ जोग, पृ० ९८८

११. बेजुक्ति तिरस्कार

तीखी आलोचना, अतियथार्थ से भरपूर यह ग्रंथ स्वामी रामचरण के निर्भीक एवं स्पष्टवादी व्यक्तित्व का परिचायक है। प्रकाशित 'वाणी' में लगभग एक पृष्ठ में ही इसका विस्तार है।

ग्रंथारम्भ में ही स्वामी रामचरण तारस्वर में घोषित करते है कि इस कलियुग में कोई बिरला ही विरक्त होगा अन्यथा सभी 'कनक कामिनी' में बुरी तरह लिप्त होकर साधुमत खो चुके हैं।[1] उन्होंने कनक कामिनी में रत रहने वाले काम-दाम की चिंता करने वाले, रामभजन से विरत होकर वन-बस्ती में माँगने वालों को बार-बार धिक्कारा है। अपनी खीझ में वे विभिन्न वेषधारियों की निन्दा तो करते ही हैं, व्यंग्योक्ति करने से भी नहीं चूकते। मुण्डित विरक्तों पर वे किस प्रकार टूटते हैं, ध्यान देने योग्य है—

"भद्र भेष नारी सूं संग।
बिना मूंछ दोन्यू इक रंग।
मूंछा बिना पुरुष नहिं दीसै।
जैसे रांड रांड मिल पीसै।
बार-बार वाकूं धिरकार।
विरक्त होइ भुगते भगद्वार।"[2]

इसी प्रकार केशधारी सन्यासियों का पर्दाफाश निम्नलिखित पंक्तियों में करते हैं—

"माथै बाल रखै सन्यासी।
केश कस्या कामणि संग वासी।
वाकी जटारु वाका पटा।
उलझ पुलझ दोन्यां का लटा।
बारबार वाकूं धिरकार।
खाख चढ़ाय चढ़ै भगद्वार।"[3]

स्वामी रामचरण ने ऐसे ही कनफट्टा योगियों, भगवाधारियों, जैन यतियों, दिगम्बरों तथा विभिन्न वेशियों की खबर तो ली ही है कलमापाठी, रोजा-नमाज के विश्वासी मुल्लाओं को भी नहीं छोड़ा है। यथा—

---

१. रामचरण कलु काल में, बिरकत बिरल कोय।
कनक कामणी रत घणा, बैठा जतमत खोय॥
—अ० वा०, लच्छ अलच्छ जोग, पृ० ९८८

२. वही, पृ० ९८८।

३. वही, पृ० ९८८-८९।

"जिंदा होय जिंद नहिं खोजा।
कलमां बांग निवाजा रोजा।
स्याह सब्ज नीला पट रंग।
नकटी नारि निसरड़ी संग।
बारबार वाकूं धिरकार।
भेख पहर भुगतै भगद्वार।"[1]

सभी वेशधारियों को धिक्कार कर अंत में स्वामी रामचरण जी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

"बेजुक्ति जुक्ति करि मान ली, हरि हरिजन सूं तोड़।
सतगुरु सूं मुख मोड़ कै, फिरै जु मनसा मोड़।
रामचरण ऐसे धणे, कनक कामणी रत्त।
उभय जीत रत राम सूं, बिरला जन विरकत्त।"[2]

अभिव्यक्ति पक्ष—स्वामी रामचरण ने इस ग्रंथ में दोहा, चौपाई और सोरठा छन्दों का प्रयोग किया है, जिनकी संख्या इस प्रकार है—दोहा ३, चौपाई १४, और सोरठा १। भाषा बोलचाल की राजस्थानी हिन्दी है। ग्रंथ में व्यंग्यात्मक तथ्य निरूपण शैली के दर्शन होते हैं।

१२. काफर बोध

अति लघुकाय होने के बाद भी 'काफर बोध' महत्त्वपूर्ण रचना है। स्वामी रामचरण का समय उत्तर मुग़लों का समय है। यद्यपि मुग़ल शासन पतनोन्मुख था फिर भी मुसलमान अपने को शासक जाति का समझ कर हिन्दू जाति को हेय दृष्टि से देखते थे और हिन्दुओं को 'काफिर' कहते थे। इस काफिर शब्द से प्रेरित होकर स्वामी जी ने यह रचना की है।

ग्रंथ के आरंभ में ही 'काफिर' किसे कहते हैं, इस प्रश्न का उत्तर स्वामी रामचरण ने देना प्रारम्भ किया है और तेज स्वर में उन्होंने मुसलमानों का प्रत्याख्यान भी किया है। काफिर वह है जिसे मियाँ कहते हैं, जिसके हृदय में जीवहत्या का भाव रहता है। काफिर की कहानी स्वामी रामचरण के शब्दों में सुनिए—

"गले विराणै करद चलावै।
काफर मांस पराया खावै।
काफर हरै दुनी का माल।
काफर चलै काफरी चाल।

---

१. अ० वा०, लच्छ अलच्छ जोग, पृ० ९८९।
२. वही, पृ० ९८८।

काफर मांडे झूठाबाद।
इन्द्रया हेत करै अपराध।"[1]

काफिर विषय-वासना में लीन रहता है, वह धर्म छोड़कर संसार में मस्त रहता है। उसकी कथनी और करनी में अन्तर होता है। स्वामी रामचरण हिन्दुओं को काफिर कहने वाले मुसलमानों को संबोधित करते हैं—

"कहर करद कूं दूरि निवारो।
महर मया हिरदा मैं धारो।
राम रहीम एक ही जांणों।
दुबध्या दिल सूं दूरि उठांणों।"[2]

राम-रहीम की एकता का प्रतिपादक कवि मन से संदेह दूर करने की बात इसलिए भी करता है क्योंकि 'दुबध्या सूँ साहिब है दूरा।'[3] अन्त में काफर की परिभाषा करते हुए वे कहते हैं—

"काफर हिन्दू तुरक न होई।
काफर गुन्हीं खुदाय का सोई।
हम तुम काफर नांही दोय।
कियां बंदगी बंदा होय।
बिना बंदगी काफर होई।
मुख सूं कह्या न बंदा होई।"[4]

स्वामी जी इसी संदर्भ में कहते हैं कि ये मुसलमान ज्ञान के अभाव में हैरान होते हैं। अन्य लोगों को काफ़िर कहते हैं किन्तु स्वयं शुद्ध न होने के कारण काफ़िर की कोटि में आते हैं। वस्तुतः कोई भी काफ़िर नहीं जो लोकोत्तर मार्ग का राही है।[5]

अभिव्यक्ति पक्ष—केवल चौपाई छन्द का प्रयोग इस रचना में हुआ है जिनकी संख्या १२ है। बोलचाल की सामान्य राजस्थानी भाषा है किन्तु प्रत्याख्यान होने के कारण भाषा में तेजी है।

---

१. अ० वा०, काफर बोध, पृ० ९८८।
२. वही, पृ० ९९०।
३. वही, पृ० ९९०।
४. वही, पृ० ९९०।
५. वही, पृ० ९९०।

१३. शब्द

स्वामी रामचरण रचित छोटे ग्रंथों में यह अंतिम रचना है। छः शब्दों की इस रचना में स्वामी जी ने नाम-महिमा के साथ-साथ कलियुगी ढोंगियों का तिरस्कार भी किया है।

विषयवस्तु—यह संसार तीन गुणों वाला है, स्वामी जी इन तीनों से परे चौथे में रत होने की बात कहते हैं। इस संदर्भ की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं—

> **"तीनां सेती तर्क करि चित चौथे राता।**
> **जिन ये भेद बताईया सो सतगुरु दाता।**
> **ओसां आरत नां बुझै बिन पावस पाणी।**
> **रामचरण ई शब्द की संधि साधां जाणी।"**[1]

यह चौथा 'शब्द' 'राम' है जिसकी संधि साधु ही जानते हैं। यह तीनों गुणों से परे है। इसका रहस्य बतलाने वाला सतगुरु ही है।

कलियुगी योगियों और ब्राह्मणों से स्वामी जी को स्वाभाविक अरुचि है। मुद्रा-भगवाधारी को संसार योगी कहता है किन्तु वह सच्चे अर्थों में योगी नहीं है क्योंकि वह आदि-पुरुष का रहस्य नहीं जानता, 'सुरति शब्द का योग' उसे नहीं मिला। वह भीख माँगता है, नाना प्रकार के भोग-विलासों में लिप्त रहता है, योगिनी के साथ निकल जाता है। जीवित अवस्था में वे इतना कर्म कमाते हैं और मरने के बाद 'पीर' की संज्ञा से अभिहित होते हैं। ये पंचरस भोगी कलियुग के योगी हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणों की खबर लेने में भी वे नहीं चूकते हैं। ब्राह्मण अपनी स्थिति से गिर चुका है और साधुओं से व्यर्थ 'कुवाद' करता है।

अभिव्यक्ति पक्ष—निशाणी, चौपाई और दोहा छन्दों में लिखित इस रचना में ६ शब्द हैं। ढोंगी ब्राह्मणों और योगियों का पर्दाफाश करते समय कवि का स्वर तीव्र हो उठा है। भाषा बोलचाल की राजस्थानी हिन्दी है। तथ्य-निरूपण की वर्णनात्मक शैली में इस ग्रंथ की रचना हुई है।

३. बड़े ग्रंथ

स्वामी रामचरण ने अंगबद्ध वाणी एवं छोटे ग्रंथों के अतिरिक्त नौ बड़े ग्रंथ भी लिखे हैं, जिनके नाम निम्नलिखित हैं—

१. अणभो विलास
२. सुख विलास
३. अमृत उपदेश
४. जिज्ञास बोध

---

१. अ० वा०, शब्द, पृ० ९९०।

५. विश्वास बोध
६. विश्राम बोध
७. समता निवास
८. रामरसायण बोध
९. दृष्टान्तसागर

उपर्युक्त नौ ग्रंथ स्वामी जी के महा संग्रह ग्रंथ 'स्वामी जी श्री रामचरण जी महाराज की अणभै वाणी' के मुख्यांश का निर्माण करते हैं। इन रचनाओं का विस्तार महाग्रंथ के ८०० से ऊपर पृष्ठों में हुआ है। इन सभी ग्रंथों के सम्पादक एवं लिपिकार स्वामी रामचरण के अवधूत शिष्य एवं उनके आचार्य पद के उत्तराधिकारी स्वामी रामजन हैं। यहाँ इन सभी का सामान्य परिचय एवं संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत है।

१. अणभो विलास

सम्पादन—स्वामी रामचरण रचित इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का सम्पादन स्वामी रामजन द्वारा माघ सुदी पूर्णिमा, मंगलवार संवत् १८४५ वि० को पूर्ण हुआ। शुभस्थान शाहपुरा में संतों के सत्संग में इस 'अणभो विलास' नामक ग्रंथ को यह स्वरूप दिया गया।[१]

> **"रामचरण महराजि के, अणभो छोल अनूप।**
> **ताकी जोड़ बणाय येह, कीन्हों ग्रंथस्वरूप।"[२]**

इसी संदर्भ में संग्रहकार रामजन जी द्वारा रचित ग्रंथ-महिमा की निम्नलिखित पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं—

> **याको सवाद मीठो दीठो हम चाखियेह,**
> **फीको लगै काम दाम रामजी सूं राग है।**
> **उत्तम शबद सत्य नित जाकी शोभ भारी,**
> **उचारी है गिरा ज्ञान अज्ञता को त्याग है।**
> **भगती भजन मन जीतिबे की गति कही,**
> **गही जो विचारवान वोही बड़भागी है।**

---

१. संवत संख्या सार, अट्ठारा सै पैंताल जू।
माघ सुदी मूबार, पूनूँ पूरण ग्रंथ है।
शाहिपुरै शुभ धाम, सत्संगति संताशरण।
ग्रंथ वण्यो येह नाम, निज अणभोज विलास जू॥
—अ० वा०, अणभो विलास के अन्तर्गत रामजन का वक्तव्य, पृ० ३२४

२. वही।

अणभै विलास महासुक्ख को निवास जानूं,
बखानू जो कहा येह परम वैराग है।"[१]

ग्रंथ के अन्त में रामजन जी ने उपर्युक्त पंक्तियों में स्पष्ट कहा है कि स्वामी रामचरण महाराज के अनुपम अनुभवों को जोड़कर ग्रंथ का रूप दिया। इस पूरे ग्रंथ को २१ प्रकरणों में विभक्त किया गया है। इसको सम्पादक 'अणभो विलास आनंद निवास' नाम देता है।

विषयवस्तु—इक्कीस प्रकरणों में विभक्त इस ग्रंथ के प्रत्येक प्रकरण का नामकरण उसकी विषय वस्तु को ध्यान में रखकर किया गया है। यहाँ प्रत्येक प्रकरण के नाम एवं उसके अन्तर्गत आये विषयों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत है—

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
१.	अणभो समोध गुरुशिष्यपारख निरूपणम्	त्रिधास्तुति, गुरुसमर्था, गुरुदातार, लोभी गुरु, [illegible]।
२.	दुनियागति अपारख निरूपणम्	शिष्यपारख शिष्यप्रतापी, गुरुशिष्य पारख, नृदेह दुर्लभता, अज्ञानि, दुनिया गति।
३.	भक्ति विधान टेक प्रतीति निरूपणम्	निष्काम भक्ति, कन्या विक्रेनिषेध, तृष्णा लोभ, सरल भक्ति निन्दा, नहचो प्रतीति, टेक-नकल निन्दा।
४.	दास भाव इकतार निरूपणम्	अर्चन भक्ति, दासलछ, भक्त रक्षा, संतसेवा, प्रणाम महात्म्य, सकाम निन्दा।
५.	मनोगति पंथ क्रिया निरूपणम्	सुमरण विशेषता, मन विकलता, मन उपदेश, पारषद, पंथक्रिया, नाम माहात्म्य।
६.	स्वार्थ निषेध निरूपणम्	कलिसमय धर्म, स्वार्थनिषेध।
७.	नाम समर्था बीनती विरह निरूपणम्	नाम समर्था, बीनती, विरह प्रेम।
८.	घट परचै एकता निरूपणम्	परचय, कारज-कारण, एकता, देवासुर लक्षण, वाजी विस्तार।
९.	ज्ञान स्वरूप दृढ़वैराग्य निरूपणम्	ज्ञानस्वरूप, ज्ञानी अलिप्त, जीवन्मुक्ति, महावैराग्य।
१०.	उत्तम वैराग्य अजाचिन शोभ निरूपणम्	आशा निन्दा, संसार संगबर्ज, शुक्ल भिक्षा, याचना निषेध।

१. अ० वा०, अणभोविलास, पृ० ३२३-२४।

११. निवृत्ति प्रवृत्ति भेद फकीरी निरूपणम्	उत्तम विरक्त, प्रवृत्तिनिन्दा, मिलाप अण मिलाप।
१२. वाचक कुसंग निरूपणम्	कुसंगत्याग, वाचक निन्दा।
१३. रामविमुख संसारगति निरूपणम्	ज्ञानदग्ध, रामविमुख असाधु, आन देव खण्डन।
१४. विश्वास पतिव्रत निरूपणम्	विश्वास, व्यभिचार, पतिव्रत।
१५. साच असाच कपट अदया निरूपणम्	सत्य-असत्य, व्यसन-विधि धर्म, स्वभाव वर्णन, निंदन विंदन, हिंसक वर्णन।
१६. मायागति निरूपणम्	माया-सूक्ष्म माया।
१७. भेख पारख निरूपणम्	कुवेष निन्दा, स्त्री सन्यास निन्दा, पारख-अपारख।
१८. कामखण्डन शूर कायर निरूपणम्	काम-नारी निन्दा, परस्त्रीत्याग, विषयगीत निन्दा, शूरता-कायर।
१९. काल चिंतावणी पाप-पुण्य फल निरूपणम्	काल-चिंतावणी, शुक्ल-कृष्ण कर्म।
२०. सत्संगपारख साधलच्छ निरूपणम्	सत्संग महिमा, संग पारख, मुक्त-लक्षण, जिज्ञासीलक्षण, साधलक्षण, जगत धर्म्म।
२१. गुरुमहिमा उपदेश निरूपणम्	संत महिमा, उपदेश, निर्गर्विता, गुरुमिलाप महिमा, गुरुस्तुति।

ऊपर प्रकरण क्रम के अनुसार विषयों की सूची से स्पष्ट है कि सम्पादक या संग्रहकार ने कितने परिश्रम से ग्रंथ को विषयबद्धता दी थी। विस्तार भय से केवल प्रकरण एवं उसके अन्तर्गत आये विषयों की रूपरेखा भर दी गयी है। स्वामी रामचरण ने पूरे ग्रंथ की विषयवस्तु का सार-रूप विवेचन निम्नलिखित पंक्तियों में किया है—

"ये परकाश परम गुरु किरपा,
अणभै तणों विलासम्।
सुणै सुबुद्धी अति सुख पावै,
कुबुधी होय उदासम्।
यामें ज्ञान भक्ति वैरागं,
सार ही सार बखाने।
अणभो रूप लिया कर सतगुरु,
भर्म सबै फटिकाने।
कर्मकाण्ड पाखण्ड मान मद,
कूर कपट चतुराई।

ओर अलछि अपराध अजुगी,
सब निर्मूल कराई।
भय भैंचक यह सबै बिहंडन,
मण्डन अणभौ ज्ञानं।
मम्मोखी सुणि सुमरण करि है,
उपजावै उर ध्यानं।
राम राम आनंद सूं गावै,
पावै परम निवासम्।
रामचरण गुरुचरणारत्ता,
ये अणभोज विलासम्।"[1]

स्वामी रामचरण ने ग्रंथ के अन्त में गुरु महिमा का सन्दर्भ उपस्थित कर अपने गुरु स्वामी कृपाराम जी का गौरव गान किया है। यों तो सम्पूर्ण संत-साहित्य [illegible] भण्डार है किन्तु स्वामी रामचरण अपने गुरु स्वामी कृपाराम की कृपालुता का वर्णन करते जैसे अघाते ही नहीं—

"सतगुरु संत जी किरपाल।
जीते जगत मायाजाल।
न्यारे निरजूं अम्भोज।
पाया जाण अणभौ मोज।
. . . .
महिमा करत नांही पार।
सतगुरु नमो जी निरकार।
उपजै उमंग ज्यूं ज्यूं बोल।
आवै नांहि महिमा तोल।
किरपाराम जी किरपाल।
मो परि भये हैं दय्याल।
बोले राम ही चरणा।
में नित गुरां की शरणा।"[2]

ग्रंथारम्भ में ही स्वामी जी गुरु का अवलम्ब ग्रहण करते हैं। सहस्रों सूर्य और चन्द्रमा के विकास से हृदय में ज्ञान का आलोक नहीं होता, हृदय नयनों में ज्योति तभी आती है जब उसे गुरु ज्ञान का आलोक प्रदान करता है। यथा—

---

१. अ० वा०, अणभो विलास, एकविंशमो प्रकरण, पृ० ३२३।
२. वही, अणभो विलास, एकविंशमो प्रकरण, पृ० ३२३।

"सहँस सूर शशि कै उदैं हीये न होय उजास।
सतगुरु ज्ञान उद्योत सैं हिर्दय होत प्रकास।
हिर्दय होत प्रकास भर्म अंधियारो भागे।
स्वप्नावत संसार जांण सोवत सो जागे।
परख भजै परमातमा रखै न मैली आस।
सहँस सूर शशि कै उदै हीये न होय उजास।"[1]

इसी प्रकार सत्संग, सत्पुरुष, जिज्ञासु, भक्तजन-महिमा आदि विभिन्न विषयों पर बड़े मार्मिक वचनों से पूर्ण यह ग्रंथ है। कतिपय उदाहरण देखना अनुचित न होगा। सत्संग-रहस्य पर प्रकाश डालनेवाली निम्नलिखित पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

"रामबाग है सत्संग।
जामैं बैठ कीजे रंग।
प्याला रामरस पीवो।
जासूं जुगे जुग जीवो।
जहाँ अतिज्ञान डमरी फूल।
भागे भर्मना सब भूल।
जहाँ निज तरू उत्तम ध्यान।
जाकै लगै फल विज्ञान।
ताको नांहि कबहूं भंग।
ऐसो बाग है सत्संग।"[2]

'राम' और 'संत' के सम्बन्ध का यह रूपक भी बड़ा मार्मिक है—

"खान स्वरूपी संत हैं, हीरा रूपी राम।
रामचरण जन देत हैं, लेत होय आराम॥"

इसी प्रकार विभिन्न विषयों पर बड़े मार्मिक एवं रसयुक्त छन्दों से भरपूर इक्कीस प्रकरणों का यह ग्रंथ 'अणभो विलास' स्वामी जी के अनुभवों की खान है जिसके अनुभव रूपी हीरों के आलोक से भक्तजनों का मानस जगमगा उठता है।

कला पक्ष

अणभो विलास २१ प्रकरणों में विभक्त विभिन्न छन्दों में रचित स्वामी रामचरण की एक सशक्त रचना है। प्रत्येक प्रकरण के अन्त में प्रकरणगत विषयों के उल्लेख के साथ आगे वाले प्रकरण का विषय-संकेत भी है। यथा, सोलहवें प्रकरण के अंत का निम्नलिखित

---

१. अ० वा०, अणभो विलास, प्रथमो प्रकरण, पृ० २११।
२. वही, अणभो विलास, विंशमो प्रकरण, पृ० ३१०।
३. वही, अणभो विलास, एकविंशमो प्रकरण, पृ० ३१६।

दोहा प्रकरणगत विषय का उल्लेख तो करता ही है सत्रहवें प्रकरण के विषय का भी संकेत करता है—

"यह माया विपरीत गति, कह समझाई तोहि।
भेष धार मायारता, जे भाखूं सोहि।"[1]

इस ग्रंथ में दोहा, साखी, कवित्त, पद, सोरठा, चौपाई, कुण्डलिया, रेखता, झूलणा, अरेल, इंदव, मनहर, शिखरणी, निराज, त्रोटक, बेताल, चामर, त्रिभंगी, निशाणी, झंपाल, जुगती, पद्धरी नामक छन्दों का प्रयोग कवि ने किया है। सम्पादक ने अन्त में उपर्युक्त छन्दों की संख्या का विवरण भी दिया है जो इस प्रकार है—दोहा ३०, साखी २४३, कवित ३३, पद ११, सोरठा ५०, चौपाई ३३, कुण्डलिया ६५६, रेखता ३०, झूलणा ७, अरेल ३४, इंदव १०, मनहर २७, शिखरणी १, निराज ५, त्रोटक ५, बेताल ५, चामर २, त्रिभंगी ३३, निशाणी ३, झंपाल ६२, जुगती १, पद्धरी ११।

पूरे ग्रंथ में अभिव्यक्ति के लिए प्रश्नोत्तर शैली का सहारा कवि ने लिया है। यथास्थान शिष्य-गुरु में हुए प्रश्नोत्तर संवाद का रूप ले लेते हैं। गुरु द्वारा शिष्य को उपदेश देने की शैली में स्वामी जी ने अपने अनुभवों से जन-सामान्य को परिचित कराया है। 'अणभो विलास' की भाषा राजस्थानी हिन्दी है, जिसमें यत्र-तत्र विदेशी मूल के शब्दों का भी प्रयोग कवि ने किया है। यथा—गजल, फजल, फजीता आदि।

२. सुख विलास

सम्पादन—स्वामी रामचरण की बड़ी रचनाओं में दूसरी रचना 'सुख विलास' है। तेरह प्रकरणों की इस कृति का सम्पादन एवं संग्रह स्वामी रामजन जी ने किया था। ग्रंथ के अन्त में सम्पादन संबंधी टिप्पणी में स्वामी रामजन ने लिखा है कि कलिजीवन के लिये दयापूर्वक स्वामी रामचरण जी महाराज ने 'सुख विलास' के वचन कहे।[2] इसी संदर्भ में संग्रहकार आगे लिखता है—

"रामचरण जी सतगुरु मेरा दया करी है भारी।
जिन ये अणभै बैन उचारे शब्द कहे सुखकारी।
रत्न अमोलक सतगुरु बायक जाकी जोति अनूपा।
ताकी जोड़ ग्रंथ ये कीन्हो सुखविलास सुखरूपा।
यह गुरु महर भई मो ऊपर तब ये जोड़ बणाई।
रामजन शरणागत तुम्हरी सतगुरु रखो सदाई।

---

१. अ० वा०, अणभो विलास, षष्ठदशमो प्रकरण, पृ० २९०।

२. "रामचरण महाराज सुख विलास बायक कहे।
कलि जीवन के काज, दया विचारी उर मही॥'
—वही, 'सुखविलास' के अन्तर्गत स्वामी रामजन का सम्पादकीय, पृ० ४३०

क्षुद्र बुद्धि शुद्धि नहि मेरै ये किरपा गुरु कीन्हीं।
जातैं भेद पाय बुद्धि परगट ग्रंथ जोड़ यह चीन्हीं।"[1]

इस ग्रंथ का संकलन एवं संपादन स्वामी रामजन ने शाहपुरा में संवत् १८४६ अगहन सुदी ३, गुरुवार को पूर्ण किया। सम्पादक ग्रंथ के अन्त में स्वयं इस सूचना का उल्लेख इस प्रकार करता है—

"नगर साहापुरो जान, शुभ सत्संगति धाम है।
ग्रंथ वण्यो परमाण, सुख विलास सुखरूपजू।
अठारा सैं छीयाल, ये संवत संख्या कही।
मिगसिर सुद्धि बिसाल, तीज तिथी गुरुवार है।
भयो संपूर्ण ग्रंथ ये, अर्थ भर्‌यो रस राम।
कहै सुणै धारण करै, जो पावै सुखधाम।"[2]

इतने स्पष्ट उल्लेख के बाद सम्पादन या संकलन के संबंध में किसी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं। सम्पादक ने बड़े परिश्रम से संग्रह और सम्पादन किया है। इसे 'सुख विलास परम निवास' नाम से अभिहित किया है।

विषयवस्तु

'अणभो विलास' की भाँति 'सुख विलास' भी प्रकरण शैली का तेरह प्रकरणों वाला बड़ा ग्रंथ है। इसमें भी हर प्रकरण का नाम प्रकरण के वर्ण्य विषय को ध्यान में रखकर रखा गया है। नीचे प्रकरण-क्रम से विषय-तालिका प्रस्तुत है—

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
१.	उत्तम ज्ञान रचना निरूपण	स्तुति-रचना, वर्ण अभिमान निषेध आपो निषेध-मोह वासना, कारण-कारज-सर्वगता, उत्तमता—राम विमुख, पामर, राजनीति-कपटी, निंदक।
२.	गुरुशिखपारख निरूपण	कुबुद्धि, ज्ञानदग्ध, गुरुपारख, विवेक कसोटी, भूमि-विशेषता-बाट, ऋतघ्नी, मूर्ख-मुर्जाद, इकतार।

१. अ० वा०, पृ० ४३०।
२. वही।

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
३.	मन तिरस्कार नाम उच्चारण निरूपण	दासआशय, मनोगति, हरसां, भटकण निषेध, द्विविधमन, स्वार्थ, जिह्वा उपदेश, नाम महिमा, राम नाम विशेषता।
४.	टेक पतिव्रत-नाम निरूपण	राम नाम प्रभाव, समय धर्म, मूलधर्म-अस्ति-नास्ति, अकलबेअकल, बीनती, पतिव्रत, व्यभिचार, टेक भक्तद्रोही।
५.	आन भर्म माया खण्डन निरूपण	कपूत-आनदान, निबल-सबल शरण, असल-नकल निर्णय, अज्ञान, लोभमाया, अहिंसा धर्म, जलक्रिया।
६.	साधलच्छ सत्संग पारख निरूपण	सत्संग महिमा, साधलक्षण, संग्रहत्याग, मलादि दोष, नकल-भक्तिनिंदा।
७.	साध पारख निरूपण	प्रवृत्तिनिन्दा, निर्गुणक्रिया-गर्वापण, आरंभ तिरस्कार, साधु-असाधु।
८.	भेषलछ वाचक कहणी निरूपण	साधारण धर्म-वर्णाश्रम धर्म, निगुणा-सुगुणा, विनय विवेक, अविनय विवेक, ग्रही गुरु निषेध वंचक निषेध।
९.	मिलाप अण मिलाप निरूपण	आशय मिलाप, सज्जन मिलाप—व्यवहार परीक्षा, धर्माधर्म परीक्षा, विवाद निंदा, साध-पारख, असत्य भाषण, सत्यमित्र।
१०.	कामखण्डन जिज्ञास निरूपण	काम व्यभिचार निन्दा, गाली गाणो निषेध, लग्न जिज्ञासु, पाक नापाक।
११.	उपदेश शूरापण निरूपण	असाध्यरोग- मित्रकपट, उपदेश, श्रद्धा-भक्ति धर्मशूर।
१२.	चितावणी विरक्तपणो निरूपण	चिन्तावणी, नरदेह दुर्लभता, काल, ज्ञान-भक्ति-वैराग्य।
१३.	ग्रंथ संख्या निरूपण	ग्रह दुःख, आशा खण्डन, भजनानंद, शरण प्रभाव, गुरु-स्तुति, शिष्य दीनता।

स्वामी रामचरण ने सुख विलास के आरम्भ में गुरु की वंदना 'दातार' के रूप में की है। उस जैसा दाता संसार में दूसरा नहीं। राम शब्द की प्राप्ति उसी से होती है। राम-

नाम का स्मरण सुख का कारण है। सुख क्या है? वह कैसे प्राप्त होता है? शिष्य के इन प्रश्नों का उत्तर स्वामी जी ने सरलतम शब्दों में दिया है—

"सुण अर्ज गर्ज कर कहै आप।
सुख रूप जान शिख राम जाप।
जप राम जाप सुख धाम जाहु।
जहाँ अमित सुख्ख आनंद पाहु।
तहाँ मिलै अनंत साधू सुछंद।
ते बहुरि आय धारे न जिंद।
करि भजन सजन या विधि समाहु।
कहूं सहित रख्या उपाउ।
प्रथम हेतु ये सुख विलास।
नित रहो शिष्य रचना उदास।"[1]

राम का जाप सुख रूप है, अतः उसकी प्राप्ति भजन है। 'सुख विलास' के उद्देश्य पर भी यहाँ प्रकाश पड़ता है। 'सुख विलास' लिखने का प्रथम कारण यही है, वह शिष्य की 'रचना' से निर्लिप्त रहने का उपदेश देता है। 'रचना' (कर्त्ता की सृष्टि) से सम्बन्धित कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ बड़ी मार्मिक हैं—

"रामचरण करतार की रचना धरणि अकास।
जाकै भीतर बण रह्यो सब जीवां को बास।
सब जीवां को बास किते दुख सुख बरतां ही।
केइ करता सूं विमुख केई सन्मुखगुणगांही।
केई जगत् रत ह्वै रह्या केई मत्त उदास।
रामचरण करतार की रचना धरणि अकास।"[2]

वह कर्त्ता की सृष्टि को देखकर आश्चर्यान्वित है—

"नारायण का नगर को, इचरज कह्यो न जाय।
केई हर्ष आनंद करै, केई करै हाय हाय।"[3]

सृष्टिकर्त्ता के कर्त्तव्य अनुल्लेख्य हैं, कवि उन कर्त्तव्यों से निर्बन्ध रहने एवं राम से बँधने का संदेश देता है। इसी प्रकार विभिन्न विषयों की चर्चा अलग-अलग प्रकरणों में स्वामी

१. अ० वा०, सुख विलास, प्रथम प्रकरण, पृ० ३२५।
२. वही।
३. वही, पृ० ३२६।

जी ने की है। ग्रंथ के अन्तिम प्रकरण के अन्त में 'अणभो विलास' की भाँति ही अपनी दीन-हीन अवस्था और गुरु महिमा का वर्णन कवि ने किया है। यह सुख विलास गुरु कृपा से विलसित हुआ है। गुरु-वंदना के निम्नलिखित छंदों के साथ इस ग्रंथ को स्वामी रामचरण ने पूर्ण किया है—

परम सुक्ख दातार सतगुरु किरपाराम जी।
कीन्हो मोर उधार, महाकाल कलिजुग महीं।
यह निज सुक्ख विलास, रामचरण पायो खरो।
होय नहीं अब नाश, अविनाशी गुरु पद लह्यो।"[1]

कला पक्ष

सुख विलास ग्रंथ की विषयवस्तु को संपादक एवं संग्रहकार स्वामी रामजन ने तेरह प्रकरणों में प्रकरणबद्ध किया है। ग्रंथ के अंत में सम्पादक ने ग्रंथ में प्रयुक्त छंदों की संख्या भी गिना दी है। ग्रंथ में प्रयुक्त छन्द एवं उनकी संख्या इस प्रकार है—

दोहा १८, साखी ३३१, कवित २८, सोरठा ४०, कुण्डलिया ३९५, पद १०, चौपाई ३३, रेखता १५, झूलणा ८, सवैया १५, अरेल २३, मनहर ८, तोटक ६, निसाणी २, झंपाल २४, उद्धोर १, गीतक १, पद्धरी ९, भुजंगी १, बेताल ८, मोतीदाम १ और त्रिभंगी २०।

'अणभो विलास' की भाँति इस ग्रंथ में भी स्वामी रामचरण ने प्रश्नोत्तर शैली अपनायी है। विषय-निरूपण से ही प्रश्न निकालकर उसके उत्तर में सविस्तार व्याख्या द्वारा कवि एक विषय से दूसरे विषय पर पहुँचता है और अन्त में पूरे प्रकरण का संक्षेप एक पंक्ति में बतलाकर दूसरी पंक्ति द्वारा अगले प्रकरण का विषय निदेश भी कर देता है। जैसे छटें प्रकरण के अंत में उल्लिखित निम्नलिखित दोहा प्रकरण गत विषयों की चर्चा के साथ ही अगले सातवें प्रकरण के विषय का भी निदेश करता है।

"साधू लछ संगति परख, कही सकल ये जांन।
प्रवृत्ति लछ जन पारख्या, आगे कहूं बखान।"[2]

इस ग्रंथ की भाषा भी राजस्थानी हिन्दी है। स्थानीय शब्दों, मुहावरों, कहावतों एवं विदेशी मूल के शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग करने में स्वामी रामचरण ने पटुता दिखलायी है। प्रयोग के दो-एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं। यथा—ऊभा उभ मिलाप, जाके पील्यो नेतरां ताकूं सब पीला दर्शन्त, जे बहुतो मेलप वणै तो खड़भड़ बधि जाय, आदि।

३. अमृत उपदेश

सम्पादन—स्वामी रामचरण के बड़े ग्रंथों में तीसरी एवं महत्त्वपूर्ण कृति 'अमृत उपदेश' का संपादन भीलवाड़ा रामद्वारे में रामजन जी द्वारा संवत् १८४४, माघ बदी द्वादशी

१. अ० वा०, सुख विलास, त्रयोदश प्रकरण, पृ० ४२९।
२. वही, सुख विलास, षष्ठ प्रकरण, पृ० ३७७।

को पूर्ण हुआ। सम्पादक ने ग्रंथ के अन्त में 'ग्रंथ उपमा' शीर्षक के अन्तर्गत इस आशय का उल्लेख निम्नलिखित पंक्तियों में किया है—

"राम दवारे धाम, भीलाड़ो निज नगर जू।
कहै राम ही राम, ये अमृत उपदेश जू।
अणभै छोल अगाध, रामचरण महाराज की।
सतगुरु के परसाद, ग्रंथ जोड़ कहि रामजन।
अठारा से चम्माल, संवत संख्या ये कही।
वण्योज ग्रंथ रसाल, मकर मास बिद द्वादशी।"[1]

इसी संदर्भ में संकलनकर्त्ता गुरु कृपा से अमृत उपदेश के १५ प्रकाशों के जोड़ने का उल्लेख करता है—

"ये अमृत उपदेश के, पंचदश परकास।
रामजन्न गुरु महरसूं, जोड़ करी निजदास।"[2]

इस ग्रंथ को कवि ने 'अमृत उपदेश आनन्द प्रवेश' नाम से अभिहित किया है।

विषयवस्तु

अमृत उपदेश की विषयवस्तु का आरम्भ कवि गुरु-वंदना से करता है। वह गुरु और राम का अन्तर समाप्त कर उन्हें सर्वव्यापी देखता है—

"राम मई गुरु जाणिये गुरु मई जांणों राम।
गुरु मूरति को ध्यान उर रसना उचरै राम।
रसना उचरै राम भर्मना उर मैं नांही।
गुरु गोविन्द तन एक देख व्यापक सब मांही।
रामचरण कहाँ जाइये घट बध कोइ न ठांम।
राम मई गुरु जाणिये गुरु मई जांणों राम।"[3]

---

१. अ० वा०, अमृत उपदेश के अन्तर्गत रामजन रचित 'ग्रंथउपमा', पृ० ५०९।
२. वही, पृ० ५०९।
३. वही, अमृत उपदेश, प्रथम प्रकाश, पृ० ४३१।

पन्द्रह प्रकाश के इस ग्रंथ में प्रकाशों के अनुसार निरूपित विषयों की तालिका नीचे प्रस्तुत है—

प्रकाश संख्या	प्रकाश का नाम	प्रकाश निहित विषय
१.	काज अकाज भेद निरूपण	त्रिधा-स्तुति, गुरु-ब्रह्म एकता, अमृत निरूपण, त्रिगुण रचना, काज अकाज भेद।
२.	गुरुशिष्यपारख निरूपण	लोभी गुरु, शिष्यविश्वास, आज्ञाकारी मनमुखी, शिष्य परीक्षा।
३.	दास कुदास भेद निरूपण	भक्ति [illegible] भक्ति, ब्रह्म निरूपण, देवलक (कुदास) निन्दा, अज्ञान निन्दा।
४.	संग कुसंग साध लछ निरूपण	संत लक्षण—निरारंभ भिक्षा, संतदर्श महात्म्य, साध परमार्थी-संतमहिमा, सत्संग महिमा, तन कुसंग।
५.	मनोगति धर्म उपासना निरूपण	दृढ़ उपासना, मन की बांण, विरह, प्रेम।
६.	त्रिधा भक्ति	सर्वगता भावना प्रतीति, बीनती, भजन दुर्लभता, भक्ति सिद्धान्त।
७.	विरक्त वैराग्य निरूपण	तीव्र वैराग्य महात्म्य, निर्ममत्व, वासना त्याग—ज्ञानतृप्ति, माया त्याग।
८.	स्वार्थ काम खण्डन निरूपण	सरक्त विरक्त भेद, स्त्री त्याग, स्वार्थ काम गति, गणिका निषेध, यति लक्षण।
९.	माया तृष्णा गति निरूपण	माया चरित्र—मद्यपान निषेध, उत्तम माता, तृष्णा लोभ, चौर-जूप निन्दा।
१०.	विधि निषेध निरूपण	संतोष-शांति, पशु बुद्धि, पारघी निंदा, अवगुणी, जगत कुचाल।
११.	पुण्य पाप विश्वास बेविश्वास निरूपण	पाप पुण्य भोग, जीवत साफल संत वृत्ति, आपारहित, निराश वृत्ति, उदरदूषण।
१२.	पारख साध असाध गति निरूपण	गुण वस्तु अधिकार, कपट निन्दा, शून्य हृदय, संत असंत लक्षण, ज्ञानी के पाप जाय नहिं, मर्यादा वर्णन।
१३.	निबलसबल करणीअकरणी निरूपण	कुकवि कहणीरहणी, आनदेव खंडन, दुर्जन मित्रता।
१४.	कायरशूर हंसबुग भेख निरूपण	हंसबुगवेष, काम, कायर, लज्जा, यति-शूर।
१५.	गुरुस्तुति संख्या निरूपण	सत्यप्रशंसा, निन्दक, शिष्यदीनता, गुरुस्तुति।

उपर्युक्त पन्द्रह प्रकाशों में विभिन्न विषयों का समावेश स्वामी जी ने किया है। आध्यात्मिकता एवं लौकिकतापरक विषयों पर विचार कर अंत में नाम-स्मरण की महत्ता एवं गुरु-महिमा का प्रतिपादन वे करते हैं। लौकिकता के जहर से बचने के लिए अखण्ड नामोच्चारण का अमृत ग्रहण करने की बात वे बतलाते हैं। यथा—

"अब सुन शिष अमृत की बाता।
जातैं मिटै जहर की धाता।
अमृत नाम अखण्ड उचारा।
जन पीवे अमृत की धारा।"[1]

इस अमृत का स्राव रसना से ही होता है जब उससे राम का नाम अखण्ड गति से लिया जाता है—

"रामहि राम अखण्ड उचरही।
तब ही रसना अमृत झरही।"[2]

राम और संसार का सम्बन्ध अग्नि और धूम जैसा है। जैसे अग्नि से धूवाँ उत्पन्न होता है, उसी प्रकार राम से सृष्टि हुई है, सृष्टि से राम नहीं—

"धोम अग्नि सूं प्रगटै अग्नि धोम सूं नांहि।
रामचरण यूं राम जी समझ देखि मन मांहि।
... ...
ऐसें जगत राम तें होई।
राम जगत तें होइ न कोई।"[3]

तीसरे प्रकाश में स्वामी रामचरण भक्ति, भक्ति-महिमा, भक्ति के भेद आदि विषयों की विशद चर्चा करते हैं। निम्नलिखित कुण्डलिया में वे गंगा-गया के स्थान पर भक्ति-गंगा की महिमा बखानते हैं—

"रामचरण गंगा गया निर्मल करै न कोय।
राम भक्ति भागीरथी करैस निर्मल होय।

---

१. अ० वा०, अमृत उपदेश, प्रथम प्रकाश, पृ० ४३२।
२. वही, पृ० ४३२।
३. वही, पृ० ४३३।

करैस निर्मल होय सबै विख्यात बखांणै।
गंगा गया स्नान किया ताहि कोइ न जांणै।
ऊंच-नीच कुल का करम भक्ती डारै धोय।
रामचरण गंगा गया निर्मल करै न कोय।"[1]

स्वामी जी की दृष्टि में सुखी वही है जिसकी वासना समाप्त हो गई है। सप्तम प्रकाश की ये पंक्तियाँ इस संदर्भ में देखिए—

"जिनकी उठ गई वासना सो सदा सुखी दर्वेश।
भल एकै आसण रहो भल विचरो चहुँ देश।
भल विचरो चहुँ देश कियो जिव को निस्तारो।
कै जागो कै सोय कामना नहीं पसारो।"[2]

इसी प्रकार अष्टम प्रकाश में सरक्त विरक्त की गति की चर्चा स्वामी जी करते हैं। कवि सरक्त की तुलना चन्द्रमा से करता है क्योंकि उसमें घटने-बढ़ने का दोष है और विरक्त की सूर्य से क्योंकि वह सदा एकरसता के गुण से भरपूर है। यथा—

"रवि कै आथ्यां रैंण होइ उदै भयां दिन होय।
शशि ऊग्यां नांही दिवस आथ्यां निशा न कोय।
आथ्यां निशा न कोय साध यूं चाहि अचाही।
चाही शशि समान अचाही अर्क सदा ही।
रामचरण लछ अलछ कूं लखै विचक्षण सोय।
रवि कै आथ्यां रैंण होइ उदै भयां दिन होय।"[3]

इस प्रकार विभिन्न विषयों का निरूपण करते हुए स्वामी रामचरण पन्द्रहवें प्रकाश में आकर एक अन्तःसाक्ष्य की पुष्टि करते हैं। अब तक के ग्रंथों में इन्होंने अपने गुरु कृपाराम जी का गौरव-गान किया है। पर इस 'अमृत उपदेश' में अपने दादा गुरु संतदास जी की गरिमा का वर्णन करते हुए अपने गुरु कृपाराम जी को उनका पुत्र बतलाते हैं। यथा—

"संतदास अवतार जू, उचरे नाम रसाल।
ता प्रजजन प्रग्गट भये, कृपासिंधु किरपाल।

---

१. अ० वा०, अमृत उपदेश, तृतीय प्रकाश, पृ० ४४३।
२. वही, सप्तम प्रकाश, पृ० ४६७।
३. वही, अष्टम प्रकाश, पृ० ४६७।

कृपासिंधु किरपाल को कृपाराम जी नाम।
रामचरण पर करि कृपा सही करायो राम।"[1]

कला पक्ष

'अमृत उपदेश' ग्रंथ को सम्पादक ने प्रकाशों में बाँधा है। रचना के १५ प्रकाश निम्न-लिखित छंदों में अभिव्यक्त हुए हैं—पद, साखी, त्रिभंगी, मनहर, कवित कुण्डलिया, दोहा, मोतीदाम, भुजंगी, पद्धरी, झंपाल, निसाणी, रेखता, सोरठा, सवैया, चौपाई, अरेल, झूलणा। 'ग्रंथ उपमा' में संपादक ने छन्दों की संख्या भी गिनायी है। पद ४, साखी १८५, त्रिभंगी १४, मनहर २२, कवित २७, कुण्डल्या ५४२, दूहा ३६, मोतीदाम १, भुजंगी ६, पद्धरी १ झंपाल १९, निसाणी ५, रेखता १०, सोरठा १३, सवैया ६, चौपाई २१, अरेल ११, झूलणा १।

इन विभिन्न छंदों में वर्णित 'अमृत उपदेश' का वर्ण्य विषय उपदेशपरक शैली में लिखा गया है। शिष्य-गुरु वाली प्रश्नोत्तरी शैली के भी दर्शन होते हैं, जिसमें उपदेशात्मकता का प्राधान्य है। ग्रंथ की भाषा राजस्थानी हिन्दी है। बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले विदेशी मूल के शब्दों का प्रयोग कवि ने बेहिचक किया है। प्रकाशित वाणी के ७८ पृष्ठों में इस ग्रंथ का विस्तार है।

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा इसे स्वामी रामचरण की एक महत्त्वपूर्ण कृति घोषित करते हुए कवि के विषय प्रस्तुतीकरण की सराहना करते हैं—"यद्यपि विवेचित विषयों के चुनाव में कोई नवीनता नहीं है, तथापि प्रस्तुतीकरण की विविधता में नवीनता अवश्य है।"[2]

४. जिज्ञास बोध

सम्पादन—स्वामी रामचरण की चौथी बड़ी कृति 'जिज्ञास बोध' के शोधनकर्त्ता के रूप में स्वामी रामजन का नाम 'ग्रंथ उपमा' शीर्षक में आया है। स्वामी रामजन ने अपने द्वारा सम्पादित ग्रंथों के अंत में उक्त शीर्षक के अन्तर्गत ग्रंथ की विषयवस्तु की संक्षिप्त चर्चा, सम्पादन का समय एवं स्थानादि का उल्लेख किया है। यह 'जिज्ञास बोध' स्वामी रामचरण के शब्दामृत का सार है जिसे रामजन जी ने प्रकरणबद्ध रूप में सम्पादित किया। इस ग्रंथ का नाम जिज्ञास बोध है।[3] इस ग्रंथ का निर्माण (संपादन) शाहपुरा में हुआ जिसकी निर्माण तिथि कार्तिक बदी २, सोमवार संवत् १८४७ विक्रमी है। यथा—

---

१. अ० वा०, अमृत उपदेश, पंचदश प्रकाश, पृ० ५०८।

२. डॉक्टर अमरचन्द वर्मा—स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ११६-१७।

३. "रामचरण महाराज का शब्द सुधा मइ सार।
रामजन्न ताहि सोधि के कीन्हों ग्रंथ विचार।

"शाहिपुरे सानंद सूं, संतां शरण निवास।
सतगुरु किरपा सूं बण्यो, ग्रंथ बोध जिज्ञास।
अठारा से सेंतालि कै, संवत कातिक मास।
बदी दोज सोमवार दिन, पूर्ण ग्रंथ जिज्ञास।"[1]

स्वामी रामजन द्वारा इक्कीस प्रकरणों में विभाजन का स्पष्ट संकेत भी उनकी निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है—

"जिज्ञास बोध उर सोधि करि, राम गुरू मम शीश।
जोड़ बणाई रामजन, ये प्रकरण इकीश।"[2]

प्रकाशित वाणी के १३३ पृष्ठों में इस ग्रंथ का विस्तार है। इसे कवि 'जिज्ञास बोध आत्म प्रबोध' नाम देता है या सम्पादक इसी नाम से अभिहित करता है।

विषयवस्तु

जहाँ तक विषयवस्तु का प्रश्न है 'जिज्ञास बोध' में कवि ने अन्य ग्रंथों में आये पुराने विषयों को ही लिया है। प्रकरणगत विषय-विस्तार की तालिका प्रत्येक प्रकरण के नाम के समक्ष अंकित है—

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
१.	जिज्ञासजोग गुरु पारख निरूपण	गुरुवंदन, जिज्ञास साधन, संत चरणरज महात्म्य, गुरुपारख, गर्वालक्षण-गुरु भेद।
२.	शिख पारख शरण बीनती निरूपण	शिष्य लक्षण, आज्ञाकारी, आज्ञाभ्रष्ट, शरण-प्रभाव, विनय।
३.	भक्ति नहचो वंदगी निरूपण	भक्ति महात्म्य, भक्तिविमुख निंदा, संतसेबा भजन, बन्दगी, नहचै, इकतार, मन्दभाग।

कीन्हों ग्रंथ विचार जोड़ परकरण वणाया।
न्यारे न्यारे भेद देश का देश मिलाया।
ग्रंथ नाम जिज्ञास ये शुद्ध बोध सुख धाम।
याहि विचारै दास होइ सो पावै पद राम।"
—अ० वा०, जिज्ञास बोध के अन्तर्गत रामजन रचित 'ग्रंथ उपमा', पृ० ६४३-४४।

१. वही, पृ० ६४४।
२. वही, पृ० ६४४।

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
४.	नाम महिमा सुमरण	मन चंचलता-रसना, मन उपदेश, भजन विशेषता, सुमरण विधि, नाम महात्म्य, राम शब्द विशेषता, परचय
५.	ज्ञानस्वरूप वैराग्य बिरक्तपणो निरूपण	ब्रह्मज्ञान, ज्ञान-वैराग्य मिश्रित उत्तम आतुर-विरक्तता, विश्वासघात।
६.	असल फकीरी लोभ संतोष निरूपण	जगत शत्रु, असल फकीरी, चाहि तिरस्कार, संतोष।
७.	तृष्णा जाचना तिरस्कार प्रवत्ति निरूपण	प्रवत्ति, निवत्ति दृष्टान्त, उच्चवृत्ति, यांचा निन्दा, तृष्णा-समता, अविद्या वर्णन।
८.	आशा स्वारथ मतलब प्रहार निरूपण	आशा नदी, दासदृढ़ता, मतलब, कलिजुग, बरदांन शापदांन
९.	बहुलगति फोकट सिद्ध तिरस्कार-निरूपण	आरूढ़ पतित (वेषत्याग). विकलपन मर्मफोकट सिद्धि।
१०.	लच्छ करणी रामदया निरूपण	वक्ताश्रोता लक्षण, शुद्धकरणी, संतवाणी महिमा, गुणी-अवगुणी।
११.	शूर कायर लच्छ निरूपण	शूरातण, मनदळ, कायरता।
१२.	रामविमुख सबलनिबल धर्म निरूपण	राम विमुख, दांन दढ़ता, सबल निबल धर्म, संसारी संशय रूप।
१३.	मायागति भेष निरूपण	माया की सबलता, पराधीनता-स्वाधीनता, काषाय धारण भजन सिद्धान्त, उतनत्यागदृष्टांत
१४.	साधलच्छ निरूपण	संतलक्षण, अलिप्तता, संतदातार, संतनिर्दोषता।
१५.	आशैमिलाप कुबुद्धिगति निरूपण	आशय मिलाप, कपटी, कुबुद्धि, भाग्यहीणता।
१६.	सत्संग पारख कुसंग त्याग निरूपण	सत्संग प्रभाव, संत महत्त्व, जाणपणों विवेक, कुसंगति।
१७.	काम कुसंग खण्डन शील निरूपण	कामी निन्दा, परस्त्रीत्याग, कुगीत निन्दा, नारी चरित्र, ब्रह्मचर्य।
१८.	निंदक विदक कर्म साच झूठ-निरूपण	निन्दक, सत्यअसत्य, पंचविवेक।
१९.	जतसत दया अदया निरूपण	संग्रही निग्रही भेद, यति सती, हीन विवेक, दया निरूपण, मांस निंदा।
२०.	चिंतावणी जोग निरूपण	चिंतावणी, देह मलिनता।
२१.	गुरुस्तुति ग्रंथ संख्या निरूपण	न्याव निरपक्षी-स्वामि धर्म, राजनीति, उपदेश, गुरुदातार, गुरुअलि प्रस्तुति।

एक विषय को नवीन ढंग से कहने में स्वामी रामचरण पटु हैं। 'जिज्ञास बोध' में यद्यपि उन्होंने पीछे विवेचित विषयों को ही पुनः लिया है पर कथन की नवीनता के कारण विषय भी नया होता गया है। कवि इस ग्रंथ का आरम्भ भी गुरु-महिमा से ही करता है। स्वामी जी गुरु की समता भादो की घटा से करते हुए कहते हैं—

> "रामचरण भादू घटा वर्ष करै दह चाल।
> यूं सतगुरु दाता ज्ञानघन शिक्खा करै सुकाल।"[१]

गुरु की गरिमा उन्होंने गुरु को गोविन्द से गुरु बता कर की है—

> "गुरु गोविन्द सूं अधिक है गुरु मिल गोविन्द पाय।
> रामचरण भारी वस्तु हल्की कही न जाय।"[२]

दूसरे प्रकरण में स्वामी जी ने दो प्रकार के गुरु का निदेश किया है—१. मैला, २. उज्ज्वल। यथा—

> "गुरु कहावै जगत में पैं मैला उज्ज्वल होय
> मैला गुरु मैला करै लोक बिगाड़ै दोय।
> लोक बिगाड़ै दोय, ऊजला ऊजल करि है।
> सुजश होय संसार बहुरि परलोक सुधरि है।"[३]

किन्तु उज्ज्वल गुरु बिरला होता है—

> "उज्ज्वल तो बिरला गुरू, कोई कोई साजन्न।
> मैला मंगता मोकला, जाका फूटा मन्न।"[४]

तृतीय प्रकरण में स्वामी रामचरण भक्ति-महिमा का उल्लेख करते हैं। भक्ति को उन्होंने भवजल पार करने के लिए पोत कहा है।[५] जो भक्ति में तन्मय हो गए उन्हें परमात्म-पद की प्राप्ति हो गई।[६] चतुर्थ प्रकरण में स्वामी जी मन की समीक्षा करते हैं। उनके अनुसार विचलित मन की तृप्ति कहीं संभव नहीं।

---

१. अ० वा० जिज्ञास बोध, प्रथम प्रकरण, पृ० ५१५।

२. वही।

३. वही, द्वितीय प्रकरण, पृ० ५१८।

४. वही।

५. "भक्ति भवनीर पर जान ये पोत है बहुत नर-नारि चढ़ि पार हूवा।" वही, जिज्ञास बोध, तृतीय प्रकरण, पृ० ५२५।

६. "भक्ति मांहि जो मिले चले परमातम पद कूं।"

—वही।

"बिचल्या मन की बिचलता कहीं न तिरपति होय।
जो देखै जापर चलै थिरता रहै न कोय।"[1]

उनकी दृष्टि में भागवत-गीता-श्रवण, नित्य नेम, स्नानादि सभी व्यर्थ है यदि मन का मल कामना नहीं मिटती।[2] इसके लिए वे सत्संग की आवश्यकता समझते हैं। संसार का कच्चा मन सत्संग में ही पकता है—

"काचो मन संसार को सो पाकै सत्संग मांहि।"[3]

इसी प्रकरण के अन्त में नाम-स्मरण का चमत्कार बतलाते हुए कहते है कि 'राम-रटन' से मरण का भय दूर हो जाता है और 'अनहद' की सद् ज्योति जागृत होती है।[4] और तब—

"जागी जोति जगत गुरुदर्या, परख्या अगम सयाना वे।
रसना बिना रामधुनि लागी, जानै संत सुजाना वे।
गगन मण्डल में गाजे अनहद सुणि है बिन ही काना वे।
चरण बिना जहाँ नृत्य करत है, देखत है ब्रह्म दाना वे।
भाँति भाँति सुखदाई नाटक प्रेममग्न गलताना वे।
रीझ रमइया मोजां बकसी, जामण मरण मिटाना वे।"[5]

इसीलिए कवि कहता है—

'रामरसायण अजब सार का सार रे।
पीया प्रेम उपाय गया जग पार रे।
नित्य निरंजन राम मिल्या जाइ रास है।
परिहां रामचरण निज ज्ञान भयो परकाश है।"[6]

---

१. अ० वा०, जिज्ञास बोध, चतुर्थ प्रकरण, पृ० ५३२।

२. भागवत सुणै गीता गुणै, नित नेम करै सनांन।
मन मल मिटै न कामना, तो मण सुण रहे अज्ञान।"—वही पृ० ५३३।

३. वही, पृ० ५३३।

४. "सकल सुखधाम आरामकर राम हैं अष्ट ही जाम धुनि एक लागी।
राम ही चरण अब मरण का भय मिट्या धुरत अनहद सद जोति जागी।"
—वही पृ० ५४०।

५. वही, पृ० ५४०।

६. वही, पृ० ५४०।

इसी प्रकार कवि विभिन्न लौकिक एवं आध्यात्मिक विषयों का स्पर्श करता हुआ इक्की-सवें प्रकरण में समर्थ गुरु की समर्थाई की प्रशंसा में रत हो जाता है—

"मुरसद का दीदार कै, सदकै करूं शरीर।
दे अलह इल्फ की बंदगी, जिन काट्या भ्रम जंजीर।"[1]

कला पक्ष

'जिज्ञास बोध' को ग्रंथ के सम्पादक ने इक्कीस प्रकरणों में विभक्त किया है। इसकी पुष्टि वे स्वयं स्वकथन से करते हैं—'राम जन्न गुरु शरण जोड़े, ये प्रकरण इकबीस है।'[2] इस ग्रंथ में आये छन्द एवं उनकी संख्या भी इसी में उन्होंने गिनायी है। दोहा २९, साखी ३६८, कवित ५४, पद ६, सवैया ६, मनहर २६, कुण्डलिया १०३७, रेखता ८, झूलणा ७, त्रिभंगी १४, अरैल ३७, पद्धरी २, चौपाई ५, झंपाल १२, भुजंगी १, सोरठा १४ और बेताल ५।

स्वामी रामचरण के इस ग्रन्थ में तथ्य निरूपण शैली की गम्भीरता दृष्टिगोचर होती है। गम्भीर आध्यात्मिक विषयों के विवेचन में आत्मानुभूति का प्राधान्य हो गया है। यत्र तत्र प्रश्नोत्तर के माध्यम से भी विषय की विवेचना कवि ने की है। 'जिज्ञास बोध' की भाषा राजस्थानी हिन्दी है पर बोलचाल के विदेशी मूल के शब्द भी प्रचुरता से प्रयुक्त हुए हैं। दीदार, मुरीद, मुरसद, आशिकी, अलह, इलफ, आशिक, दरिया आदि अनेक शब्दों का निःसंकोच भाव से समावेश करने में कवि चूका नहीं है।

विश्वास बोध

सम्पादन—'अणभो विलास' और 'जिज्ञास बोध' के बाद 'विश्वास बोध' स्वामी राम-चरण की अत्यधिक प्रकरणों वाली तीसरी एवं नौ बड़ी कृतियों में पाँचवीं कृति है। 'ग्रन्थ उपमा' के अन्तर्गत स्वामी रामजन इस ग्रन्थ की सम्पादन तिथि, स्थान और ग्रन्थ-गरिमा का उल्लेख करते हैं। ग्रन्थ सम्पादन के सन्दर्भ में उनकी ये पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

"रामचरण महाराज रूप।
जिन कहें ब्रह्म बायक अनूप।
ताहि जोड़ कियो निज ग्रंथ गेह।
विश्वासबोध अति सुखा गेह।

---

१. अ० वा०, जिज्ञास बोध, एकविंशोप्रकरण, पृ० ६४२।

२. वही, जिज्ञास बोध के अन्तर्गत रामजन रचित 'ग्रन्थसंख्या' शीर्षक, पृ० ६४४।

गुरुदेव भेव दाख्यो दयाल।
महाराज मोंहि कीन्हों निहाल।
तब दई बुद्धि सारांग सार।
जब ग्रंथ जोड़ कीन्हों विचार।
परकरण प्रगट जानो इकीस।
मधि रामभजन कारण बरीस।
गुरु रामचरण जी कृपा कीन।
ताहि चरण चित मोर लीन।
कर जोड़ि जोड़ि कह रामजन्न।
विश्वास बोध सुख परमधन्न।
कोइ घाट बाध जो जोड़ होय।
सब क्षमा कीजियो संत सोय।
गुरु शरण लह्यो निजनाम धन्न।
दासानुदास कह रामजन्न।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण द्वारा उच्चरित अनुपम ब्रह्म-वाणी को स्वामी रामजन जी ने ग्रन्थ रूप दिया जिसमें उन्होंने २१ प्रकरण बनाये। ग्रन्थ-संग्रह में यदि कहीं घटबढ़ की त्रुटि हुई हो तो उसके लिए संग्रहकार सभी सन्तों से क्षमाप्रार्थी भी हैं।

इस ग्रन्थ का सम्पादन स्वामी रामजन ने भाद्रपद सुदी १४, गुरुवार सम्वत् १८४९ वि० को भीलवाड़ा नगर के रामद्वारा धाम में पूर्ण किया—

"अठारा सैं गुणचास, संवत भाद्रप मास सुदि।
पूर्ण ग्रंथ प्रकाश, चतुर्दशी गुरुवार है।
रामदुवारो धाम, भीलेड़ो निज नगर जू।
पाय परम आराम, ग्रंथ जोड़ कहि रामजन।"[2]

प्रकाशित वाणी के १२८ पृष्ठों में यह ग्रन्थ पूर्ण मुद्रित है। इसे 'विश्वास बोध आत्म-बोध' नाम दिया गया है।

बिषयवस्तु

विश्वास बोध में यद्यपि अधिकांशतः पूर्व निरूपित ग्रन्थों के विषयों की चर्चा ग्रन्थकार ने की है फिर भी 'साकार निराकार निर्णय', 'इस्क इकतार', 'शुद्ध निर्वेद',

१. अ० वा०, विश्वास बोध की 'ग्रन्थ उपमा', पृ० ७७२।
२. वही, विश्वास बोध की 'ग्रंथ उपमा', पृ० ७७२।

'शृंगार गायन निन्दा' जैसे नये शीर्षकों का समावेश भी दीख पड़ता है। प्रकरणवद्ध विषय तालिका नीचे प्रस्तुत है—

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
१.	होतव विश्वास निरूपण	त्रिधा स्तुति, गुरु विशेषता, गुरु मिलाप-महिमा, विश्वास-विधि-होतब, धर्म-प्रशंसा।
२.	गुरु शिष्य लक्षण पारख निरूपण	गुरुकल्पवृक्ष, गुरुसमर्था, कुगुरु-लोभीगुरु लक्षण, शिष्य लक्षण, कृतघ्नी।
३.	सुमरण नाम विरह प्रचड निरूपण	रामनाम महात्म्य, भजन अधिकार, साकार निराकार निर्णय, रामनाम विशेषता, विरह बीनती, तत्व-परिचय।
४.	भक्ति बीनती शरणो निरूपण	अद्वैतज्ञान-कर्मजाति, उत्तमचलण-देहात्मभिन्नता, ग्रही भक्तिकठणता, भक्ति अधिकार-आपो अर्पण, शरण-बीनती, शरण प्रताप।
५.	पतिव्रत इकतार नहचै निरूपण	इस्क इकतार, व्यभिचार निन्दा, पतिव्रत महात्म्य, मनस्विता, निश्चय।
६.	ज्ञान-वैराग्य निरूपण	अद्वैतज्ञान महात्म्य, ज्ञानी अलिप्त, समता दृष्टान्त, ज्ञानरक्षा, शुद्ध निर्वेद, दावै दुःख।
७.	अजाची वैराग्य जगत तिरस्कार निरूपण	गर्वापण, अयाची वैराग्य, ज्ञान वैराग्य अनुक्रम, शृंगार गायन निन्दा, जगत् संगवर्ज्य, परवन निन्दा।
८.	आशा तृष्णा लोभ खण्डन निरूपण	आशा प्रबल, तृष्णा, सन्तोष-लोभ-तिरस्कार।
९.	मायानारी जोग तिरस्कार निरूपण	माया विचलता, त्याग सैं सुख, काम-कामणि निन्दा, पत्र स्त्री त्याग।
१०.	मनोगति कुसंगत्याग निरूपण	मनोगति मन उपदेश, भ्रमभटकण, आचार स्नेहता निषेध, शांतितृप्ति, आशय मिलाप, अज्ञानी-पाखण्डी-दुर्जन, कुसंग त्याग।

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
११.	साधलच्छ निरूपण	साधलक्षण, हरसनिंदा, हीणलक्षण को दृष्टान्त, त्याग महिमा, संत महिमा।
१२.	सत्संगमहिमा पारख निरूपण	सत्संग महिमा, सत्संगपारख, आशय-पिछांण, संगभेद।
१३.	साच शूरापण निरूपण	सत्यभाषण, शूरापण, कायर, साल्यापण-निषेध।
१४.	वाचक ज्ञानदग्ध तिरस्कार निरूपण	ज्ञानदग्ध, वाचक तिरस्कार।
१५.	रामविमुख फोकटसिद्ध तिरस्कार निरूपण	रामविमुख, फोकटसिद्ध तिरस्कार।
१६.	भेषलच्छ अलच्छ निरूपण	कुवेषनिंदा, प्रतिग्रह निन्दा।
१७.	आन अधिकार खण्डन निरूपण	आनदान, अन्यदेव खण्डन, प्रभुसमर्था, मांसनिन्दा।
१८.	भर्म कर्म खण्डन निरूपण	भ्रमविध्वंस, देहमलिनता, सावधानी।
१९.	अकल महिमा जगतरीति निरूपण	बेअकल, अकल प्रशंसा, उत्तमचलण, वचन विवेक, जशकर्तब।
२०.	कालचितावणी निरूपण	काल चितावणी निरूपण, उपदेश।
२१.	गुरुमहिमा ग्रन्थ संख्या	समयधर्म, जिज्ञासा, गुरु की वकशीश मततत्व वर्णन, गुरु महिमा।

'विश्वास बोध' के द्वारा विभिन्न लौकिक एवं आध्यात्मिक विषयों का स्पर्श तो कवि ने किया ही है, राम के प्रति विश्वास-भाव का जागरण भी किया है। मन को स्थिर करने वाला तारक नाम 'राम' है। कवि के अनुसार कार्य-सिद्धि का मूल विश्वास-भाव ही है। विश्वास की महिमा कवि द्वारा निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णित है—

> **"सुनो शिख मन थीर कारक, एक तारक नाम है।**
> **राखिए विश्वास याको, नाम जाको राम है।**
> **बिना एक विश्वास भाई, कार्य-सिद्धि न जानिए।**
> **जहां तहां विश्वास आदर, सर्वथा ही मानिए।**
> **विश्वास तैं विधि जुक्ति सारी, क्रिया को फल पावहीं।**
> **विश्वास सूं निज मिंत मानो, लोक वेद स गावहीं।"**[1]

१. अ० वा०, विश्वास बोध, प्रकरण १, पृ० ६४६।

नाम-स्मरण की महत्ता के सन्दर्भ में कवि रामनाम को सभी ग्रन्थों का सारतत्त्व घोषित करता है। उसके अनुसार नाम महिमा के समक्ष ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं, सभी नाम-स्मरण के समान अधिकारी हैं—

"सब ग्रंथन को अर्थ है राम नाम ततसार।
ऊँच नीच कोई भजो यो सबही कूं अधिकार।"[1]

स्वामी रामचरण साकार और निराकार, दोनों ही उपासना विधियों में नाम-स्मरण की महत्ता स्वीकारते हैं—

"कोई सेवै आकार कूं कोइ ज्ञान कथै निरकार।
रामचरण निज नाम ल्यो ये उभै नाम की लार।"[2]

सन्तों की दुनिया में विरह की दशा भी लोकोत्तर होती है। प्रियतम 'राम' के लिए भक्त विरहिणी-सदृश आतुर रहता है, वह प्रिय के दर्शन द्वारा सांसारिक कर्मों से मुक्त भी हो सकता है। स्वामी रामचरण विरहिणी का हृदय लिये प्रियतम राम की किस औत्सुक्य से प्रतीक्षा करते हैं। यथा—

"आज राम बर आवहीं बिरहनि जोवै बाट।
रामनिरंजन नाथ जी दर्श हरो कर्म काट।
दर्श हरो कर्म काट घाट हरि आप सुधारो।
खानपान सुख सेझ आप बिन सबही खारो।
रामचरण ब्रद बीनती सुण हो रामनिराट।
आज राम बर आवहीं विरहनि जोवै बाट।"[3]

स्वामी रामचरण जहाँ निर्गुण को आदर्श मानते हैं, वही सगुण को श्रृंगारपरक। फल-स्वरूप उसे कामोद्रेक का कारण कहते हैं। आदर्श की पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

"रहणी करणी एक रस निर्गुण नाम उपास।
असन बसन काया कसन जग सैं रहै उदास।"[4]

और सगुण की रसात्मकता से जगनेवाला प्रेम संयोग जिससे मनुष्य नाद-प्रेमी भुजंग के समान विभोर होकर कामुकता में गोते लगाता है—

---

१. अ० वा०, विश्वास बोध, तृतीय प्रकरण, पृ० ६६१।
२. वही, पृ० ६६३।
३. वही, पृ० ६६६।
४. वही, सप्तम प्रकरण, पृ० ६९२।

"रस रति गावै सरगुणी, सरगुण राजस भोग।
जासूं मन विपरीति होइ, उपजै प्रीति संजोग।
ज्यूं पूंगी को राग सुणि, आवै भवंग चलाय।
यूं शब्द सिंगारू गायकै, देवै काम जगाय।"[१]

इसी प्रकार सूचीबद्ध विषयों पर स्वामी रामचरण ने संक्षेप या विस्तार में प्रकाश डाला है। 'विश्वास बोध' स्वामी रामचरण के गम्भीर चिन्तन एवं सूक्ष्म भाव-दृष्टि की अनेक झाँकियाँ प्रस्तुत करता है।

कला पक्ष

इक्कीस प्रकरणों में बद्ध 'विश्वास बोध' ग्रन्थ में गम्भीर तथ्य निरूपण, उपदेशपरक एवं आत्माभिव्यंजक शैलियों के दर्शन होते हैं। गुरु-शिष्य प्रश्नोत्तर पद्धति का भी अनुगमन कवि ने किया है। काव्य की भाषा राजस्थानी हिन्दी है किन्तु स्थान-स्थान पर विदेशी मूल के शब्द भी निःसंकोच आए हैं। नीचे एक कुण्डलिया उद्धृत है जिसमें ऐसे शब्दों की भरमार है—

"मुरसद मोजां महर की क्या करिये तारीफ।
मुरीद मुलामी पाक दिल सो झेलै बड़ हारीफ।
सो झेलै बड़ हारीफ इस्क इकतार सम्हाया।
रजू बंदगी माँहि रिंदगी फैन गुमाया।
रामचरण आसिक सोही सरू स्याम सामीप।
मुरसद मोजां महर की क्या करिये तारीफ।"[२]

स्वामी रामचरण ने इस ग्रन्थ में जिन विभिन्न छन्दों के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त किया है उनके नाम एवं उनकी संख्या नीचे दी जाती है—दोहा २५, सोरठा १२, चौपाई ५, साखी २८१, पद २, झंपाल १४, कवित ३४, कुण्डलिया ९५९ रेखता २८, छन्द मनहर ४९, बेताल ४, सवैया ३, तोटक २, पद्धरी २, त्रिभंगी ४, अरेल ३०, झूलणा २।

६. विश्राम बोध

सम्पादन—स्वामी रामचरण रचित 'विश्राम बोध' प्रकाशित 'वाणी' के ८५ पृष्ठों में मुद्रित रचना है। ग्रंथ के सम्पादक रामजन जी ने 'ग्रन्थ उपमा' के अन्तर्गत निम्नलिखित पंक्तियों में अपना सम्पादन वक्तव्य दिया है—

---

१. अ० वा०, विश्वास बोध, सप्तम प्रकरण, पृ० ६९२।
२. वही, एकविंशप्रकरण, पृ० ७७१।

"रामचरण महाराज मुख भाखे शब्द अनूप।
जोड़ बणाई रामजन कीनो ग्रंथ स्वरूप।
कीनो ग्रंथ स्वरूप, अंग विश्राम बनाये।
अणभो बायक अगम छोल मैं संतां गाये।
ताकों शोध विचारकै रचे ठांम के ठांम।
ग्रंथ नाम ये जानिये प्रगट बोध विश्राम।"[1]

इस उद्धरण में पाँचवीं पंक्ति ध्यान देने योग्य है जिसमें सम्पादक 'रचे ठाम के ठाम' लिखकर स्पष्ट करता है कि स्वामी रामचरण द्वारा कथित काव्य-पंक्तियों को तत्काल ही रामजन जी ने लिख लिया था और ग्रन्थ का स्वरूप विश्राम अंगों में विभाजित कर निर्मित किया था। इसे 'विश्राम बोध सुख समोध' नाम दिया गया है।

ग्रन्थ-स्वरूप को पूर्णता सम्वत् १८५१, कुवार सुदी २, गुरुवार को शाहपुरा नगर में रामजन जी ने स्वामी रामचरण की उपस्थिति में दी।

"साहिपुरो निज नगर जू सतसंगति सुख धाम।
संत बिराजै सुभ समै, जहाँ बण्यो बोध विश्राम।
अठारा सो इक्यावना, आसोज शुक्ल पख होय।
दोज तिथी गुरुवार को, ग्रंथज पूरण सोय।"[2]

विषयवस्तु—'विश्राम बोध' में कवि पुराने विषयों एवं नये शीर्षकों के संगम पर जैसे आकर रुक गया है। गुरु विशेषता, शिष्य-दैन्य, कुवेषनिन्दा, सत्संगपारख, साधलक्षण, विश्वास आदि पहले निरूपित विषयों की चर्चा तो करता ही है, उसके ज्ञान-आलोक की सीमा में वासना, प्रतीति भावना, दास भाव, संपत्तिविपत्ति, प्रीति लक्षण आदि अनेक नये शीर्षकों के द्वारा भी अपना सन्देश हम सभी को प्रेषित करता है। नीचे विश्रामानुसार विषय-तालिका प्रस्तुत की जाती है—

विश्राम संख्या	विश्राम का नाम	विश्राम-निहित विषय
१.	विधिगुरुशिख पारख निरूपण	गुरुस्तुति, गुरु विशेषता, विश्राम-विधि, ज्ञानवर्णन, वासना, गुरुशिष्य मिश्रित धर्म, मतलब तिरस्कार, शिष्य दीनता।

१. अ० वा०, विश्राम बोध की 'ग्रन्थ उपमा', पृ० ८५७।
२. वही।

विश्राम संख्या	विश्राम का नाम	विश्राम-निहित विषय
२.	सुमरण समाधान निरूपण	दास भाव, सबलनिर्बल शरण, बीनती, समता, संपति, विपति, मावी-मन चंचल, मनमापाप, मन बसिकरण, मूलभक्ति।
३.	वैरागलछ सरक्त विरक्त भेद निरूपण	वैराग्यह्लाल, शुधभिक्षा-यति सती-धर्म, निर्दावै, प्रवृत्ति-तिरस्कार—सहित प्रशंसा, आगेनिषेध, माया नारीत्याग।
४.	सत्संग पारख उत्तम चलण निरूपण	सत्संग-पारख, श्रद्धाभक्ति, हंसवृत्ति, सार असार पारख, ऊंचवृत्ति, वर्ण धर्म्म अधिकार।
५.	साध लक्षण निरूपण	साधलक्षण, विश्वास, चाहि तिरस्कार प्रीति लक्षण, द्विविधसृष्टि, संत जाति अच्युत, भ्रान्ति निषेध, सन्तवचन प्रमाण, सन्त परमार्थी।
६.	फोकट सिद्धवाचक तिरस्कार निरूपण	सेवक स्वामी लालची, दवावेदवा, वाचक, पण्डित लक्षण।
७.	काम भ्रम कुबुधि तिरस्कार निरूपण	युद्धशूर, भूंडूनर, झूठ-साच, विषय गीत निन्दा, भोग निन्दा, कपट, कुबुद्धि सुबुद्धि, नकल भ्रम तिरस्कार।
८.	भेष दर्शण लच्छअलच्छ निरूपण	कुवेष निन्दा, नागी सेना, कलि-युग, लच्छ अलच्छ।
९.	काल चितावणी निरूपण	काल, चितावणी, वृद्धावस्था।
१०.	माया लोभ तृष्णा खण्डन निरूपण	माया गति, आशा-तृष्णा, लोभ, सन्तोष।
११.	उपदेश गुरुमहिमा ग्रंथ संख्या निरूपण	स्वार्थ खण्डन, उपदेश, जशजीवन, आतुरदांन, गुरुमहिमा।

अन्य ग्रन्थों की भाँति इस ग्रन्थ के आरम्भ में भी गुरु-स्तवन है, फिर कवि विषय-वैविध्य के बीच 'विश्राम' प्राप्ति का साधन खोजता है—

"कहो विश्राम किसी विधि पावै।
सतगुरु पूछ्यां भेद बतावै।"[१]

उसे तत्काल विश्राम-प्राप्ति का साधन विदित हो जाता है—

"चाह्वै विसराम तो बताऊँ तोहि ठीक ठाम,
भरम करम काम कामनानि वारिये।
आंन मांन खोय चित्त पोय परब्रह्म पद,
सद्द ये सदीब सदा नाम कूं उचारिये।"[२]

नाम-स्मरण ज्ञान का कारण है। ज्ञानी नाम-स्मरण से सुखी होता है—

"राम भजन परताप तैं ज्ञानी सुखिया होय।"[३]

ज्ञान विश्राम रूप है, इस विश्राम की प्राप्ति के बाद घर वन सदृश लगता है। ज्ञानप्राप्ति के पश्चात् जो घर में रहते हैं उनके निवास की स्थिति जल में कमल की होती है—

"जे ज्ञान पाय गृह मैं रहै ज्यूं कमला जल मांहि।
लेय जीविका तास मधि जग सुख लिपैज नांहि।"[४]

द्वितीय विश्राम का आरम्भ कवि 'सुमरण'—महत्ता से करता है। स्वामी रामचरण 'सुमिरन' को सभी धर्मों का सिरताज और सभी साधनों का तिलक कहते हैं। सुमिरन बिना सभी कार्य-कलाप फीके लगते हैं, इसी से हृदय में प्रेम का विकास होता है और भक्ति तत्त्व की प्राप्ति होती है—

"सुमरण धर्म सकल शिरताजा, सब साधन को टीको।
सुमरण बिना करो कोइ किरिया, किरतब लागै फीको।
सुमरण सैं उर प्रेम बढ़ावै, भक्ती को तत लहिये।
रामहि राम उचारै रसना, आंन बाद नहिं बहिये।"[५]

कवि का जोर इकतार पर किस प्रकार है, देखिए—

"इकतार लियां सो आसिकी, महर करै महबूब।
बिन इकतार हुलास करि, महर न पावै खूब।"[६]

---

१. अ० वा०, विश्राम बोध, प्रथम विश्राम, पृ० ७७४।
२. वही।
३. वही।
४. वही, विश्राम बोध, प्रथम विश्राम, पृ० ७७५।
५. वही, द्वितीय विश्राम, पृ० ७८०-८१।
६. वही, पृ० ७८३।

और अब 'स्वार्थ'—जिसके कारण प्रीति बेप्रीति और बेप्रीति प्रीति बन जाती है। स्वामी रामचरण इससे विरत होने की बात इसी विश्राम मे करते हैं—

"प्रीति पलटि बेप्रीति होइ बेप्रीति पलटि होय प्रीति।
सब कोइ देखो निजर करि ये स्वारथ की रीति।
ये स्वारथ की रीति जगत गति ऐसी जांनो।
संत सदा रस एक जहां परमारथ मांनो।
रामचरण भज राम कूं तजि स्वार्थ सर्क अनीति।
प्रीति पलटि बेप्रीति होइ, बेप्रीति पलटि होइ प्रीति।"[1]

चतुर्थ विश्राम में कवि इकतार लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सत्संग की ओर उन्मुख होने का परामर्श देता है—

"सत्संगति मिल पाइयें उत्तम लछ इकतार।
तातैं संगति कीजिये ज्यूं मन का हरै विकार।"[2]

पंचम विश्राम में 'साध लक्षण' की चर्चा के सन्दर्भ में कवि दीनता का परित्याग कर राम में विश्वास करने का उपदेश देता है, क्योंकि राम तो गगनवासी अनल पंख का भी प्रतिपाल करता है। यथा—

"अनिल पंख आकाश उड़ै धरणी नहिं वैसै।
जिनकी आदू रीति अडिग मत रहै जु ऐसै।
राम करै प्रतिपाल चूंण उनही कूं देवै।
तो हरिजन भूपर बसै फिरै क्यूं धन्ध करेवै।
वृत्ति अजगरी भंवर तजि करि करसण संचै धरै।
रामचरण विश्वास बिन दिवस रैंण दूभर भरै।"[3]

इसी सन्दर्भ में स्वामी रामचरण सन्तों को 'अविगत का अवतार' भक्ति प्रसारण का देवदूत आदि कहते हैं। ऐसा आदर्श सन्त कलियुग में कबीर हो गया है। यथा—

"भ्रांति न कीजै साध सूं ये अविगत अवतार।
भक्ति चलावण आईया पठिया हरि करतार।
पठिया हरि करतार जुगे जुग जन प्रगटांना।
रामचरण निज धर्म तास का करत बखांना।

१. अ० वा०, विश्राम बोध, द्वितीय विश्राम, पृ० ७८४।
२. वही, चतुर्थ विश्राम, पृ० ७९६।
३. वही, पंचम विश्राम, पृ० ८०६।

आन भर्म कूं छेक राम ही राम उचारन।
कलिजुग संत कबीर भये बहु जीव उधारन।"[1]

स्वामी रामचरण कबीर के प्रशंसक हैं। यहाँ वे कबीर जी के समय, स्थान, गुरु आदि का उल्लेख करते हैं। निम्नलिखित पंक्तियाँ कबीर के जीवनवृत्त से संबंधित साक्ष्य हैं—

"साहा सिकंदर की समै अरु काशी भवन सथीर।
गुरु रामानन्द प्रताप तैं प्रगटे दास कबीर।
प्रगटे दास कबीर भक्ति कारज अवतारा।
रमता राम अराध भर्म भेंचक सैं न्यारा।
रामचरण बंदन करै ब्रह्मवेत्ता संत सधीर।
साहा सिकंदर के समै अरु काशी भवन सथीर।"[2]

इसी प्रकार काम, भ्रम, कुबुद्धि, भेष दर्शन, माया, तृष्णा, काल, चेतावनी आदि विभिन्न विषयों का निरूपण करते हुए अंत में गुरु महिमा के गान में लीन होकर स्वामी जी ग्रन्थ की समाप्ति करते हैं—

"ये विश्राम बिधी गुरु दाखी, भाखी भिनभिन जुगती।
रामचरण गुरु महिमा भारी, जिनूं किये मोहि मुक्ती।"[3]

कला पक्ष—स्वामी रामचरण का यह ग्रन्थ ग्यारह विश्रामों में विभक्त है। ग्रन्थ में प्रश्नोत्तर शैली द्वारा तथ्यों का निरूपण कवि ने किया है। 'विश्राम बोध' में कवि अपने को अधिक प्रभावशाली शैली में व्यक्त करने में सफल हुआ है। 'ग्रन्थ संख्या' शीर्षक में प्रयुक्त छन्द, संख्या समेत सम्पादक ने लिख दिया है जो निम्नलिखित है—दोहा २२, साखी १६६, सोरठा ९, चौपाई २, चन्द्रायणा ३४, सवैया ३, मनहर १५, पद २, त्रिभंगी ३, झंपाल ७, पद्धरी ३, रेखता ५, कुण्डलिया ७१४, कवित १६, हंसाल १, बेताल २।

'विश्राम बोध' की भाषा अन्य ग्रन्थों जैसी राजस्थानी हिन्दी है जिसमें विदेश मूल के शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग हुआ है। ये शब्द हिन्दी में सामान्य बोलचाल की भाषा में व्यवहृत होते हैं। यथा—मुलक, अरदास, गाफिल, महबूब, आशिकी आदि। अनेक शब्दों का हिन्दीकरण भी उन्होंने किया है। जैसे—गाफिल से गाफिलाई आदि।

---

१. अ० वा०, विश्राम बोध, पंचम विश्राम, पृ० ८१०।
२. वही, पृ० ८१०-११।
३. वही, एकादश विश्राम, पृ० ८५६।

७. समता निवास

सम्पादन—स्वामी रामचरण रचित बड़े ग्रन्थों में सातवाँ किन्तु विवेचित छः ग्रन्थों से आकार में अपेक्षाकृत छोटा ग्रन्थ 'समता निवास' प्रकाशित वाणी के ७० पृष्टों में मुद्रित है। इस ग्रन्थ के सम्पादक रामजन जी ने 'ग्रन्थ उपमा' नामक सम्पादकीय शीर्षक के अन्तर्गत 'समता निवास' के उद्देश्य की चर्चा की है। वे कहते हैं—

> **"समता काज कहे सुखदानी, ये समताज निवासं।**
> **कहै सुनै अरु धारै याकूं, सो पावै सुख वासं।"[1]**

इसी सन्दर्भ में सम्पादक ग्रन्थ पूर्णता की तिथि, स्थान भी घोषित करता है। यह ग्रन्थ संवत् १८५२, पौष सुदी १, सोमवार को शाहपुरा में स्वामी रामचरण के सत्संग में पूर्ण हुआ—

> **"सवत अष्टादश पोष सुदि बावना।**
> **एकै सोम सु ग्रंथ सम्पूरण भावना।**
> **साहिपुरै सुखधाम राम सत्संग है।**
> **परिहां दास रामजन जोड़ बणाया ग्रंथ है।"[2]**

'ग्रन्थ संख्या' शीर्षक की अन्तिम पंक्ति में स्वामी रामजन जी यह स्पष्ट करते है कि ग्रन्थ-रचना के साथ ही साथ वे इसका संग्रह, सम्पादन, लेखन सभी कुछ करते गए—

> **"अंग जोड़ परकरण ठाम की ठामज दूहा।"[3]**

यहाँ 'ठाम की ठाम' से यह ध्वनि निकलती है। पुनश्च 'ग्रन्थ उपमा' की ऊपर उद्धृत पंक्ति 'साहिपुरै सुखधाम राम सत्संग है' से भी इस कथन की पुष्टि होती है। इस ग्रन्थ को 'समता निवास शाता प्रकाश' नाम से अभिहित किया गया है। सम्पादक ने अपने सम्पादकीय का निचोड़ निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकट कर दिया है—

---

१. अ० वा०, समता निवास की 'ग्रन्थ उपमा', पृ० ९२८।

२. वही।

३. वही, समता निवास की 'ग्रन्थ संख्या, पृ० ९२८।

"जिज्ञासा चितावणी, गुरु उपदेशज सार।
गुरु महिमा ग्रंथ ओपमा, संख्या शब्द विचार।"[१]

विषयवस्तु—'ग्रन्थ उपमा' के अन्तर्गत सम्पादक रामजन जी ने 'समता निवास' ग्रन्थ की विषयवस्तु की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। इस सन्दर्भ की कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"ये तो जुक्ति भक्ति के कारण, कही अमोलिक गाथा।
समता ज्ञाता धीरउ पावन, बोले सतगुरु दाता।
भक्ति भजन ज्ञान निर्वेद, कारण कारज भाखे।
कारज अनित्त नित्य सोहि कारण, सो कारण दृढ़ राखे।
बहुर्यूं निरणा साच झूठ का, तदाकार दर्शाये।
जाके हिरदै होय सचेती, भेद जिनों ये पाये।"[२]

'समता निवास' के सभी ९ प्रकरणों की प्रकरणबद्ध विषयतालिका इस प्रकार है—

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
१.	गुरुशिष्य लक्षण समता ज्ञान निरूपण	गुरुवंदन, समता भजन सनातन धर्म, जीवन्मुक्ति, अलिप्तता, होतब-विश्वास, मनोरथ-त्याग, गुरुपारख, गुरुभेद-शिष्यभेद।
२.	दासशरणो भक्ति भजन पतिव्रत निरूपण	रामदास, गुरुशरण, प्रतीति भक्ति, नवधा भक्ति, भजन प्रताप, अभ्यास-भक्तवत्सलता, अवतार पतिव्रत।
३.	रामविमुख झूठसाच पारख निरूपण	रामविमुख, असत्य, अवगुणग्राही, पारख अपारख, सिद्ध साधु भेद, संसारगति।
४.	संग पारख निरूपण	सत्संग, संगपारख, मंदभाग, स्वकर्म सें जाति, उत्तमकनिष्ट चलण, साल्या-पण, कुबुद्धि-उत्तमबुद्धि।

१. अ० वा०, पृ० ९२८।
२. वही।

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
५.	साधवृत्ति वैरागलच्छ निरूपण	साधुलक्षण, क्रोधभेद, अनिकेत, यांचा तिरस्कार, संसार संग त्याग।
६.	प्रवृत्ति माया आशैकाम खंडनो निरूपण	प्रवृत्तित्याग, संतोष, तृष्णा, आशा, मन्द आशयमिलाप, कामी कुसंग।
७.	मनविकल्प श्रोतावक्ता वाचक निरूपण	मनहरस, श्रृंगार निन्दा, श्रोतावक्ता लक्षण, वाचक तिरस्कार।
८.	भ्रमभेष रीति जानबो निरूपण	भ्रम रीति, नकल भक्ति, बिचलबेरागी, साध असाध पारख।
९.	गुरुमहिमा ग्रंथ संख्या निरूपण	चितावणी, [illegible], पितृभक्ति, गर्व निन्दा, सबल बैर, काल, रुदन-निषेध, जिज्ञासा, उपदेश, समय लाभ, गुरुगुण, शिष्य-दीनता।

'समता निवास' के पहले प्रकरण में 'गुरुवंदन' के अन्तर्गत स्वामी रामचरण अपने गुरु की प्रशंसा में रत हैं। वे उनकी तुलना कबीर से करते हैं—

> **"काशी भया कबीर जी ज्यूंही भया दांतड़े संत।**
> **भवसागर की धार सें ज्यां तार्या जीव अनंत।**
> **ज्यां तार्या जीव अनन्त राम कै भजन लगाया।**
> **कूकस भर्म उड़ाय कृपा करि कण पकड़ाया।**
> **रामचरण वंदन करै सो मेरे उर बरतन्त।**
> **काशी भया कबीर जी ज्यूंही भया दांतड़े संत।"[1]**

द्वितीय प्रकरण में प्रतीति-भक्ति का सन्देश देते हैं और नवधा, दशधा भक्ति की चर्चा करते हैं। वे नवधा के ऊपर दशधा भक्ति की महत्ता प्रतिपादित करते है। नवधा भक्ति में भक्त के उलझाव की बात निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए—

> **"कर करि नवधा भक्ति भक्त उरझात है।**
> **शांसो सिंह संताप सर्क उपजात है।"[2]**

---

१. अ० वा०, समता निवास, प्रथम प्रकरण, पृ० ८५९।

२. वही, द्वितीय प्रकरण, पृ० ८६९।

इसीलिए दशधा भक्ति की प्राप्ति की महत्ता बखानते हैं—

"नव अंग नवधा भक्ति के जापर दशधा सार।
जे दशधा प्रापति नहीं तो सबही जांण असार।
तो सबहीं जांण असार सार बिन कर्तब फीको।
देखो हिये विचार नाम नवधा शिर टीको।
रामचरण भज राम कूं धार्‌या दृढ़ इकतार।
नव अंग नवधा भक्ति के जापर दशधा सार।"[1]

यह दशधा भक्ति नामोच्चारण है। यों तो राम का नाम युग-युगों से प्रकट है पर कलियुग में इसका विशेष महत्त्व है—

"रामनाम जुग जुग प्रगट पै कलियुग अति अधिकार।
और धर्म लागत लियां, सो सधै नहीं इकतार।"[2]

तीसरे प्रकरण में 'रामविमुख' की सविस्तार चर्चा स्वामी ने की है। राम-विमुख खर, शूकर और श्वान के सदृश हैं—

"खर शूकर अरु श्वान कै, उर ओखर को घाव।
यूं रामविमुख जे विकर्मी, ज्यां अशुभ किरत परभाव।"[3]

उच्चकुल का अभिमान करने वाले रामविमुखों की स्थिति तो कुत्ते की पूंछ जैसी होती है—

"श्वान पूंछ करड़ी रहै, निज कारज हेत निकाम।
ऊँचा कुल अभिमान तें, हरि सूं होय हराम।"[4]

नवम् प्रकरण में स्वामी जी संसार की असारता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। अन्तिम समय में स्वार्थी संसार केवल रोना और तोबा करना जानता है, पर हित कोई नहीं, हितैषी तो केवल 'रामजी' हैं—

"हाय बहारां हिन्दू रोवै, भी तोबा तुर्क पुकारै।
ये करामात दोइ अलिभ केरी, कोइ विरला राम सम्हारै।

---

१. अ० वा०, समता निवास, द्वितीय प्रकरण, पृ० ८७०।
२. वही।
३. वही, तृतीय प्रकरण, पृ० ८७५।
४. वही, पृ० ८७६।

राम सम्हारै बिरला कोई, तोवा हाय न रोवै।
रोयां सूं नहि पाछो आवै, ज्ञान गांठ की खोवै।"[1]

अंतिम समय में राम का स्मरण न कराकर जो कुटुम्बी जनों के प्रति हृदय में मोह उत्पन्न करते हैं उन्हें हितैषी नहीं द्रोही समझना चाहिए। अंतिम समय का हितैषी राम है या जो राम का स्मरण कराता है। यथा—

"अंत समय परिवार का, जो मोह उपावै रोय।
तो उनकूं हितू न जांणिये, वे सबही द्रोही जोय।
अंत समय हरिजी हितु, कै राम कहावै सोय।
रामचरण वें बखत में, और हितू नहिं कोय।"[2]

ऐसे ही विभिन्न विषयों का निरूपण करते हुए स्वामी जी अन्त में गुरुमहिमा में लीन होकर 'समता निवास' पूर्ण करते हैं।

कला पक्ष—नौ प्रकरणों में बद्ध 'समता निवास' ग्रन्थ में तथ्य निरूपण भली प्रकार हुआ है। विषयों को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न प्रतीकों का सहारा लिया गया है। भाषा राजस्थानी हिन्दी है जिसमें तत्कालीन बोलचाल के विदेशी मूल के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। जैसे—नापाक, फतूर, ख्वार, जाहिर, दिलबरी आदि।

'समता निवास' में कवि ने निम्नलिखित छन्दों का प्रयोग किया है। दोहा, सोरठा, चौपाई, साखी, सवैया, कवित, कुण्डलिया, रेखता, पद्धरी, उद्धोर, झंपाल, चन्द्रायणा। इन बारह छन्दों की संख्या सम्पादक ने 'ग्रन्थ संख्या' शीर्षक के अन्तर्गत इस प्रकार दी है—दोहा १२, सोरठा १८, चौपाई ३, साखी २६४, सवैया १, कवित ४, कुण्डल्या ५७४, रेखता २, पद्धरी ३, उद्धोर १, झंपाल २, चन्द्रायणा ४६ ।

८. रामरसायण बोध

सम्पादन—स्वामी रामचरण जी के बड़े ग्रन्थों में आठवाँ किन्तु उन सभी से छोटा ग्रन्थ 'रामरसायण बोध' स्वामी जी की अन्तिम रचना है। इस ग्रन्थ के निर्माण के पश्चात् उन्होंने कोई ग्रन्थ रचना नहीं की और उनका देहावसान हो गया। ग्रन्थ-सम्पादक इस ग्रन्थ के अन्त में अपने सम्पादकीय वक्तव्य में इस ओर संकेत करता है—

"ये बायक फुरमाय पधारे धांम कूं।
ररंकार में लीन उचारे राम कूं।

---

१. अ० वा०, समता निवास, नवमो प्रकरण, पृ० ९२४।
२. वही।

अठारा सै पचपन्न वदी पाँचै खरी।
परिहां बैसाख गुरुवार देह त्यागनकरी।"[१]

ऊपर उल्लिखित पंक्तियाँ यह स्वरित करती है कि 'रामरसायण बोध' की वाणी उच्चारण के तत्काल बाद स्वामी जी का स्वर्गवास हो गया और निधन-तिथि के ठीक पाँच महीने बाद कुवार बदी ५, शनिवार को इस ग्रन्थ का सम्पादन पूर्ण हो गया। स्वामी रामजन ने लिखा है—

"संवत अष्टादश पचावन जांनिये।
आशोज पंचमी वदी सनीसर मांनिये।
महाराज कहे जो शब्द बणायो ग्रंथ है।
परिहां सबके काज अनूप न अर्थ है।"[२]

ग्रन्थ का सम्पादन-स्थान शाहपुरा है। इस सन्दर्भ में स्वामी रामजन पुनः लिखते हैं—

"ग्रंथ बणायो शोध, निज बायक महाराज का।
राम रसायण बोध, साहिपुरै सत्संग में।"[३]

ग्रन्थ सम्पादक ने इस ग्रन्थ की बड़ी प्रशंसा की है और इसके शब्दों को अमृततुल्य कहा है। स्वामी रामचरण के ये शब्द मोती-नग हैं—

"ये रामरसायण बरणियो, ग्रंथ सुधामइ सार।
महाराज अमी बिरषा करी, जा सैं यहै विचार।
रामचरण महाराज मुख, अमृत बिरखा कीन।
पी पी जीवैं दास जो, आश उनों पदलीन।
शब्द यह महाराज का, नग मोताहल जोय।
ग्रंथ जोड़ कहि रामजन, खांनाजाद जु होय।"[४]

विषयवस्तु—'रामरसायण बोध' के सम्पादक ने ग्रन्थ की विषयवस्तु की भूरि भूरि प्रशंसा की है। स्वामी रामजन ने 'रामरसायण बोध' के इन वचनों को रामचरण जी द्वारा मुक्ति हेतु कथित कहा है। यह रामरसायण रस से पूर्ण है—

---

१. अ० वा०, रामरसायण बोध में स्वामी रामजन का कथन, पृ० ९७५।
२. वही।
३. वही।
४. वही।

"ये बायक उद्धार करन कूं, रामचरण जी भाखे।
रामरसायण रस का भरिया, आप सबन कूं दाखे।
ताकी जोड़ ग्रंथ ये परगट रामजन्न बणवायो।
ज्ञान भक्ति वैरागरु जुक्ती, मुक्ती पंथ बतायो।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में ग्रन्थ-प्रशंसा के साथ ही सम्पादक ग्रन्थ में आये प्रमुख विषयों की ओर भी संकेत करता है। नीचे पाँचों प्रकरणों की विषय सूची दी जाती है—

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
१.	गुरुशिष्य पारख निरूपण	गुरुवन्दन, रस-रसायण, गुरुशिरोमणि, गुरुमुखी सिद्धान्त को दृष्टांत, गुरुपारख, शिष्यमनमुखी, शिष्य गुरुमुखी, शिष्य मर्जादीक।
२.	शरणोसुमरण ज्ञानधारणा निरूपण	गुरुशरण महिमा, कामना-रहितविनय, गुरुसमर्थी-सुमरण धर्म, रकार मकार सिद्धान्त, भजनमहिमा, प्रेम-प्रतीति, अध्यात्मज्ञान, ज्ञानक्रिया, चलाचल भेद, भोग-तिरस्कार।
३.	अकलधार कुलछ तिरस्कार आशै-मिलाप निरूपण	अकल विचार, चंचलतातिरस्कार, साल्यापण निषेध, वाचक तिरस्कार, असलाकी आशामुखी, श्रद्धाभक्ति-दासधर्म, कुदासनिंदा, आशय अण मिलाप, एकता वृथा भेष, षट्दर्शण गति।
४.	माया मतलब हिंसा लोभ खण्डन उपदेश चिंतावणी निरूपण	मायारंग, लोभ, तृष्णा-संतोष, मतलब-तिरस्कार, हिंसा-तिरस्कार, दया, उपदेश, चिन्तावणी।
५.	कामखण्डन उत्तमसंग शूरापण गुरुमहिमा ग्रन्थसंख्या निरूपण	कामनिरूपण, निष्कामता, साधन-सिरै सत्संग, पतिव्रत-शूरापण, निवृत्तिधर्म, भजन सिद्धान्त, गुरुविनय।

१. अ० वा० रामरसायण बोध में स्वामी रामजन का कथन, पृ० ९७५।

प्रथम प्रकरण में विषयवस्तु का आरंभ गुरुवंदन से कवि ने किया है। स्वामी रामचरण जिस गुरु की वन्दना करते हैं वह परमनिधान ब्रह्मरूप है।[1] वह गुरु ताप मिटावन, शांतिकर, आनन्दकार, उदार, दुख-द्वन्द्व से दूर, ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मभजन में लीन, तीन गुणों से परे है। ये अध्यात्मी उपकार सतगुरु से ही सम्भव हैं।[2] 'राम-रसायण बोध' में चर्चित रस 'राम रस' है जिसका पानकर्त्ता पुनः जन्म नहीं लेता--

"जननी कबहूं नां जणै जो पीवै राम रसांण।
राम रसायण पीवतां मिटै जीव की बांण।
मिटै जीव की बांण हाणि विषिया सब जावै।
निर्विष निर्मल अंग अभंगी पदै सम्हावै।
ये गुरु बायक में कही हिये अकल कर छांण।
जननी कबहूं नां जणै जो पीवै राम रसांण।"[3]

यह राम-नाम का रसायन भी मोक्ष प्रदाता है। पर यह उसे ही प्राप्त होता है जिस पर भगवान की कृपा होती है। इसकी समता अन्य रस नहीं कर सकते। यह महा मधुर रस है जिसका पान भक्तजन करते हैं। इस रस का पान जो भी ऊँच-नीच करता है अनुपम हो जाता है—

"पीवै राम रसाण राम किरपा ये जांनो।
या कै तुल्य न ओर किते रस करो बखांनो।
महा मधुर जन पिवै शेष शंकर से सारा।
वेद पुराणा साखि पतित बहु किये उधारा।

---

१. "सतगुरु परम निधान पद, हदसूं बेहद जोय।
रामचरण वंदन करै, ब्रह्म रूप नित सोय।"
—अ० वा०, रामरसायण बोध, प्रथम प्रकरण, पृ० ९२९।

२. "ताप मिटावन गुरू शांतिकर आप सदाई।
आनंदकार उदार मार ममता सुखदाई।
दुख द्वन्द रता दूर पूर इक ब्रह्म बतावै।
ब्रह्म भजन मैं लीन तीन गुण मैं नहिं आवै।
ये उपकार अध्यात्मी सतगुरु जी सूंही वणै।
रामचरण पी रामरस बहुर्यूं जननी ना जणै।"
—वही।

३. वही।

ऊंच नीच कोइ बरण पिवै स होय अनूप।
मन तन तांबो पलटि वे रामचरण रसकूप।"[1]

तीसरे प्रकरण में 'भेख दर्शण' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी राम भजन से विमुख साधु-वेशियों की उपमा उस नदी या सागर से देते हैं जो जलहीन हैं—

"सरिता सायर जल बिना यूं राम भजन बिन भेख।
वहां दझाली तप्त अति याकै तृष्णा रेख।
याकै तृष्णा रेख अलेखी राम बिसार्‌या।
आशा लोभरु काम दाम संग मांम जु हार्‌या।
शाता समता नां भई करै जहां तहां धेक।
सरिता सायर जल बिनां यूं राम भजन बिन भेख।"[2]

चतुर्थ प्रकरण का 'माया रंग' शीर्षक से कवि आरंभ करता है। माया अनन्त रंगी है, उसका पार पाना सहज नहीं। माया के छल-छन्द और रस-रंग में जीव भूला रहता है। सच्चे जन वही हैं जो माया को देखकर भी अपना मन विचलित नहीं करते।[3] इसी प्रकार तृष्णा, मतलब तिरस्कार, हिंसा तिरस्कार, दया, कामगति आदि विषयों का परसन करता हुआ कवि अन्तिम प्रकरण में सत्संग पर आ जाता है। वह कहता है—

"उत्तम जन को संग रंग है राम को।
जाकै संग प्रताप लहै सुखधाम को।"[4]

और अन्त में अध्यात्म ज्ञान के दाता गुरु से अपनी दीनता का निवेदन कर वे शब्द में समा जाते हैं। इस दृष्टिकोण से ग्रन्थ-सम्पादक रामजन जी का यह कथन महत्त्व रखता है—

"यूं तरुवर को स्वाद बीच रसफल मैं जांना।
रामचरण महाराज शब्द के बीच समांना।"[5]

---

१. अ० वा०, रामरसायण बोध, प्रथम प्रकरण, पृ० ९३२।
२. वही, रामरसायण बोध, प्रथम प्रकरण, पृ० ९५३।
३. "माया के रंग अनन्त प्यारे ताको पार कहो कुंण पाय है जी।
छल छंद अनेक दिखाय भारे रस-रंग मैं जीव भुलाय है जी।
कहुं आय रहै कहुं जाय रहै अधबीच मैं बहुत झुलाय है जी।
जन रामचरण्ण वे जन्न सही माया देखि न चित्त चलाय है जी।"
वही, रामरसायण बोध, चतुर्थ प्रकरण, पृ० ९५५।
४. वही, पंचम प्रकरण, पृ० ९६७।
५. वही, रामरसायण बोध में स्वामी रामजन का कथन, पृ० ९७५।

कला पक्ष—पाँच प्रकरणों में समाप्त ग्रन्थ 'रामरसायण बोध' स्वामी जी द्वारा निर्मित अन्तिम रचना है, जिसका सम्पादन उनके निधन के ठीक पाँच महीने बाद पूर्ण हो गया। इस ग्रन्थ के अलावा सभी का सम्पादन एवं संग्रह स्वामी रामचरण के जीवन काल में ही पूर्ण हो गया था। राम-नाम के रसायण में डूबे वचनों को रामजन ने प्रकरणबद्ध कर दिया और विभिन्न विषयों का निरूपण तथ्य निरूपण की गम्भीर शैली में कवि ने किया है। प्रारम्भ में शिष्य-गुरु वचन द्वारा संवाद शैली का प्रवेश भी ग्रन्थ में हो गया है। अन्य ग्रन्थों के समान ही इसकी भाषा भी बोलचाल की राजस्थानी हिन्दी है और दीदार, महबूब, आशिक आदि विदेशी मूल के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। 'ग्रंथसंख्या' के अन्तर्गत सम्पादक ने ग्रन्थ में प्रयुक्त छन्द एवं उनकी संख्या का उल्लेख किया है जिनका विवरण नीचे दिया जाता है।

साखी ४४, दोहा १८, सोरठा ६, मनहर ९, चन्द्रायणा १६, झंपाल ७, झूलणा ९, पद्धरी २, कवित ४२, कुण्डलिया ३००, रेखता १८ और पद २।

प्रकाशित वाणी के ४८ पृष्ठों में इस ग्रन्थ का विस्तार हुआ है। इसे 'राम-रसायण बोध आनन्द प्रमोद' नाम से अभिहित किया है।

९. दृष्टान्त सागर

सम्पादन एवं टीका—स्वामी रामचरण द्वारा रचित ९ बड़े ग्रन्थों में अन्तिम 'दृष्टांत सागर' कूट ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का सम्पादन एवं उसकी टीका स्वामी रामजन जी ने की है।[1] 'दृष्टान्त सागर' की महिमा का वर्णन करते हुए सम्पादक एवं टीकाकार रामजन कहते हैं—

> **"यह ग्रंथ सागर सुधा, भरिया गहर गंभीर।**
> **पीवै सो जीवै सही, राम नाम सुखसीर।"**[2]

इसी सन्दर्भ में टीकाकार ग्रन्थ-टीका का समय एवं स्थान भी घोषित करता है। गुरु की कृपा से रामजन ने इस ग्रन्थ की टीका शाहपुरा के सत्संगति धाम में संवत् १८४९ अगहन शुक्लपक्ष में पूर्ण की—

> **"शाहपुरा मधि येह सिधि, सत्संगति शुभधाम।**
> **टीका कृत भये रामजन, गुरु किरपा सुख राम।**

---

१. "दृष्टान्तज सागर ग्रन्थ यह, जामैं बहु दृष्टांत।
बुधि अनुमारै रामजन, टीका विधि भाखंत।"
—अं० वा०, पृ० १०६७।

२. वही, पृ० १०६७।

अठारा सै गुणताल, ये संवत संख्या कही।
मगसर सुदी विशाल, टीका पूर्ण रामजन।"[1]

इस ग्रंथ की स्वामी रामजन कृत टीका की भाषा गद्य है।

विक्रम की १९वीं शती के राजस्थानी गद्य का यह भाष्य अच्छा उदाहरण है। टीकाकार अपने वक्तव्य का अन्त गुरुवन्दना से करता है—

"करगह काढ्यो कूप तें, रामचरण जी आप।
रामजन के उर सदा, एक तुम्हारो जाप।"[2]

इस ग्रन्थ को टीकाकार 'दृष्टान्त सागर सुधा आगर' नाम से अभिहित करता है।

विषयवस्तु—'दृष्टान्त सागर' ग्रन्थ स्वामी रामचरण के पाण्डित्य एवं कवि-कौशल का परिचायक है। इस ग्रन्थ में स्वामी जी ने विषयवस्तु में कोई परिवर्तन कर नूतनता का समावेश तो नहीं किया है किन्तु 'स्वामी जी ने जीव, ब्रह्म, सृष्टि आदि के रहस्यों को छिपाकर प्रकट किया है।'[3] 'इस ग्रन्थ में स्वामी जी ने अपने पांडित्य-प्रदर्शन करने के साथ-साथ आध्यात्मिक जगत की बातों की गम्भीरता को प्रकट किया है।'[4] नीचे एक दृष्टान्त उद्धृत है जिसमें वासना के स्वरूप को ककड़ी बीज के माध्यम से स्पष्ट किया गया है—

"सात हाथ की काकड़ी, बीज बध्यो नव हाथ।
आठ फाड़ अरु तीन रस, माली संग सनाथ।"[5]

इसकी टीका पर भी एक दृष्टि अपेक्षित होगी—

'सात हाथ की काकड़ी, सोही देह सात धातु की भई, नव हाथ बीज सोही नव तत्व, पंच तो विषय, शब्द-१, स्पर्श-२, रूप-३, रस-४, गंध-५, इति विषय अरु च्यार अंतःकरण, मन-१, बुद्धि-२, चित्त-३, अहंकार-४, ये नवतत्व रूपी वासना बीज बधे, सो बारंबार या वासना का संबंध सूं उगै है, सोही जन्म मरण पावै, आठ फाड़ सो, पृथ्वी-१, जल-२, तेज-३, पवन-४, आकाश-५, इति तत्व, तीन गुण—सत्व-१, रज-२, तम-३, इति गुण तत्व आठ फाड कहिये है, तीन रस, वायु-१, कफ-२, पित्त-३, इति रस, ऐसो ककड़ो काया, सो माली कै संग सनाथ, सो माली प्रांण रामजी के आधीन, त्यां प्रांणा बिना देह स्याल कूंकरां को खांण है जैसे माली काकड़ी न खालै नहीं, तो स्याल खा जाय, तांसू माली कै संग सनाथ कहिये, पै जो लूं जीव

---

1. अ० वा०, पृ० १०६७।
2. वही, पृ० १०६७।
3. केवलराम स्वामी : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ७१।
4. डॉ० अमरचन्द वर्मा : स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० १२६।
5. अ० वा०, दृष्टान्त सागर, पृ० १०१५।

में बासना है, तो लूं माली ब्रह्म कूं पिछाणै नहीं, ब्रह्म पिछाण्या बिना जीव संसार में भरमत है, वासना कै संग सो कहिये है।"[1]

कला पक्ष—प्रकाशित वाणी के ५१ पृष्ठों में मुद्रित यह रचना प्रकरण, विश्राम या प्रकाशों से बद्ध नहीं। इसे रामजन जी ने टीकाबद्ध करके छोड़ दिया है। 'इसमें भावों का प्रवाह नहीं है। कोरा पांडित्य और वाग्वैदग्ध्य है। टीका वचनिका न हो तो इस ग्रन्थ का समझना मुश्किल हो जाय।'[2] कूट शैली में लिखे गये इस ग्रन्थ में 'ग्रन्थ संख्या' शीर्षक के अन्तर्गत छन्दों एवं उनकी संख्या का विवरण स्वामी रामजन ने प्रस्तुत किया है—

> **"दोहा पचासरु एक शत, तीन सोरठा जान।**
> **कुण्डलिया षट् रामजन, ग्रंथ मूल परमान।**
> **तापर टीका वचनका, चौगांनी यह सार।**
> **गोप्यज्ञान चौगांन में, रामजन्न विस्तार।"[3]**

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि १५० दोहा, ३ सोरठा, ६ कुण्डलिया और रामजन रचित टीका वचनिका के गद्य से यह रचना सजी हुई है। प्रतीकों एवं रूपकों का बाहुल्य है। दृष्टान्त सागर की भाषा राजस्थानी हिन्दी है जिसमें तत्सम शब्द अधिक आये हैं। टीका का गद्य सरल राजस्थानी गद्य है। टीकाकार ने प्रतीकों को स्पष्ट करने का उत्तम प्रयास किया है।

४. फुटकर

गावा का पद

सम्पादन—यों तो स्वामी रामचरण के विभिन्न ग्रन्थों में छन्दों के बीच-बीच में पद भी आये हैं किन्तु १०५ फुटकर पदों का संकलन संवत् १८२० वि० में वाणी संग्रह करते समय श्री नवलराम जी ने 'गावा का पद' नाम से किया था। इस आशय की सूचना संग्रहकार ने पद-संग्रह के अन्त में दी है जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। प्रकाशित वाणी के २२ पृष्ठों में इस संग्रह का विस्तार हुआ है। ये पद विभिन्न रागों में लिखे गये हैं।

विषयवस्तु—विषय की दृष्टि से इन पदों में पीछे निरूपित विषय ही आए हैं। ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, चेतावनी आदि विभिन्न विषयों को कवि ने अपने इस गीत काव्य का विषय बनाया है। 'कहीं विरहिणी आत्मा की पुकार है तो कहीं पिया के दिव्य सौन्दर्य की

---

१. अ० वा०, दृष्टान्त सागर, पृ० १०१५-१६।
२. केवलराम स्वामी : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ७१।
३. अ० वा०, ग्रन्थ संख्या, पृ० १०६७।

बाँकी झाँकी, कहीं नाम महिमा की रट है तो कहीं आत्म-दैन्य का सुष्ठु वर्णन।"[1] नाम महिमा का महत्व समझकर ही वह राम-नाम पर न्यौछावर है—

"राम तुम्हारे नाम की मैं बलिबलि हारी।
जीव तिरत कहा देर है सायर शिलतारी।"[2]

राम सर्वव्यापी हैं। वह कहाँ है और कहाँ नहीं, कहा नहीं जा सकता। अगम अगोचर राम निकट नहीं दीखते किन्तु स्मरण करने से वह हृदय में ही भासित होने लगते हैं—

"रमईयो सब में रमि रह्यो हो।
हां हो कहुं नांहि कह्यो नहि जाय।
अवनी उदक दारु में हुतभुक, पुष्पगंध तिल तेल।
पय में घिरत परशि परिपुरण, ऐसें हो मिल्यो है सुमेल।
अगम अगोचर निकट न दर्शें, बिन करणी सुख दुर।
भजन किया उर अन्दर भासै, आपा पर में भरपूर।"[3]

कवि अपने रूठे राम को रिझाकर मनाने के लिए नट सदृश नाटक कर उसे मोहना चाहता है—

"रूठा राम रिझाय मनाऊँ, निसिवासर गुण गाऊं हो।
नटवा ज्यूं नाटक करि मोहूं, सिन्धू राग सुणाऊं हो।
शील संतोष दया आभूषण खम्याभाव बधाऊं हो।
सुरति निरति सांईं में राखूं, आन दिशा नहिं जाऊं हो।
... ...
इस विधि करिकैं राम रिझाऊं, प्रेम प्रीति उपजाऊं हो।
अनंत जन्म को अंतर भागा, रामचरण हरि भाऊं हो।"[4]

ररंकार पति और सुंदरी सुरति के होली खेलने का दृश्य भी कितना महिमामय है—

"ररंकार पति सुरति सुंदरी अर्श पर्श रमैं होरी हो।
वर अकिगत नहचल अविनाशी, सुंदरि नवलकिशोरी हो।

---

१. स्वामी केवलराम : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ७०-७१।
२. अ० वा०, गावा का पद, पृ० १०००।
३. वही, पृ० १०००।
४. वही, पृ० १००१।

पचरंग पीस गुलाल उड़ाई, तिरगुण केसर गारी हो।
अर्थ अबीर साच करि सूंघो, भरत प्रेम पिचकारी हो।
शील सिंगार नेह अति नौतम, खेलत पिया पियारी हो।
अनहद नाद बैन धुनि ऊठे, गरजत गगन मझारी हो।
फागुन फाग रमत भयो भादु, अंबर बरसै भारी हो।
भीजत सुरति गरक भई सुख में, निरखत रूप मुरारी हो।
जीवन सफल भयो नागरि को, लागो रंग करारी हो।
रामचरण पिव फगवा बकस्या पूरी आश हमारी हो।"[1]

ऐसा राम कवि का जीवन प्राणाधार है—

"रमइयो मेरो जीवन प्राण अधारो रे।
सतगुरु शरण परम निधि पाई जाको वार न पारो रे।
रामरसायण भरि भरि पीऊं माया को रस खारो रे।
आदि न अंत मरै नहिं जामैं सोही इष्ट हमारो रे।
जल में लहरि लहरि में जल है यूं सब धूर पसारो रे।"[2]

राम रसायण का स्वाद उसे बरबस उससे दूर नहीं होने देता—

"रामरस पलक न कीजै न्यारो।
ऐसी सूंज बहुरि नहिं आवै नर तन को अवतारो।"[3]

स्वामी रामचरण का कवि व्यक्तित्व गावा के पदों में खूब निखरा है। कबीर की भाँति वे भी राम की बिरहिणी हैं। साँई से 'महर' (कृपा) के लिए वे कितनी उत्कण्ठा से निवेदन करते हैं—

"सांईया अरज हमारी हो।
बिरहिनि ऊपर कीजिये, टुक महर तुम्हारी हो।"[4]

पर नीचे की पंक्तियों में तो मीरां की बेचैनी स्वामी जी के हृदय को मथ रही है, पंथ निहारते आँखें थक जाती हैं, रात-दिन नाम लेकर पुकारती है रसना रस की आशा में—

---

१. अ० वा०, गावा का पद, पृ० १००१।
२. वही, पृ० १००४।
३. वही।
४. वही, पृ० १००६।

"रमईया मेरी पलक न लागे हो।
दरश तुम्हारे कारणें, निशि बासर जागें हो।
दशूं दिशा आतर करूं, तेरो पंथ निहारूं हो।
राम राम की टेर दे, दिन रैंण पुकारूं हो।
नैंन दुखी दीदार बिन रसना रस आशै हो।
हिरदो हुलसै हेत कूं, हरि कब परकाशे हो।
स्वाति बूंद चातक रटै जल और न पीवै हो।
घन आशा पूरै नहीं तो कैसें जीवै हो।
दास की अरदास सुण पिया दरशण दीजै हो।
रामचरण बिरहनि कहै, अब बिलम न कीजै हो।"[1]

विरहिणी की 'अरदास' प्रियतम ने सुन ली और तभी फाग खेलने में ही उसे सुहागिन बना दिया। विरहिणी सनाथ हो गई, उसके मन का भ्रम दूर हो गया। यथा—

"खेलत फाग री, मोहि बकस्यो राम सुहाग।
पकर्‌यो हाथ नाथ अबला को, अंतर भरम बिलायो।
जाग्यो भाग राग बंध्यो पिव सूं, शरणा को फल पायो।
भरि पिचकारी प्रेम पियारी, सन्मुख श्यांम चलाई।
अवत हुवस लई पति हित सूं, सुंदरि अंग लगाई।
अपणो अंग दियो गुण सागर, चंचल अचल कराई।
जैसे नीर बहै सरिता को, समंद समंद होइ जाई।
अरस परस अंतर नहिं दर्शे, परसै प्रीतम प्यारी।
जैसें डरी गरी सरबस की, कूंण करै जल न्यारी।"[2]

शरीर की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता पर भी कवि की दृष्टि है। वह शरीर को उस पाहुने के समान समझता है जो आज या कल में उठकर चल दे—

"यो तन पाहूणो रे, मति कोइ करो गुमान।
पिरसूं काल्ह कि आज में रे, उठ चलै मिझमान।"[3]

उसे मृगजल की ओर आकर्षित भ्रमित मन पर दया आती है। वह मन को सजग होने की चेतावनी भी देता है—

१. अ० वा०, गावा का पद, पृ० १००६।
२. वही, पृ० १००९।
३. वही, पृ० १००९।

"मन तू भरम भूल्यो बीर।
मृगतृष्णा जल देखि ध्यायो, परिहरि परगट नीर।
साचा प्रीतम परिहर्‌या रे, कोइ न बंधावै धीर।
मात पिता सुत भामिनी रे, इन संग पावै पीर।
धन जोवन मति देख भूलै, ये सब नांही थीर।
जगत धार्‌यो राम बिसार्‌यो, गह कौड़ी तज हीर।"[1]

सम्पादक ने इस संग्रह के अन्त में स्वामी रामचरण के तीन आरती के पद रखे है। आरती के तीसरे पद में आरती की पाँच स्थितियों के वर्णन द्वारा 'सुरति शब्द योग' अर्थात् जीव और ब्रह्म के मिलन का सुंदर चित्र प्रस्तुत करता है—

"आरति अचल पुरुष अविनाशी।
घट घट व्यापक सकल प्रकाशी।
परथम आरति मंदिर बुहार्‌या।
राम राम रटि कर्म निकार्‌या।
दूसरी आरति दीपक जोया।
हिरदै प्रेम चांदणा होया।
तीसरी आरति कुम्भ भराया।
नाभि कमल सूं गगन चढ़ाया।
चौथी आरति चौकि बिराजै।
जहां अनहद का बाजा बाजै।
पांचइ आरति पूरण कामा।
सुरति परसिया केवल रामा।
सेवक स्वामी भया समाना।
रामहि राम और नहि आंना।
रामचरण ऐसी आरति कीजै।
परसि अमर बर जुग जुग जीजै।"[2]

कला पक्ष—'गावा का पद' स्वामी रामचरण का पद-शैली में रचित एक मधुर एवं गेय पदों का संग्रह है। इन पदों को कबीर आदि संत कवियों द्वारा रचित पदों के समकक्ष समझा जाना चाहिए। पदों में स्वामी जी विधिवत् स्पष्ट हुए हैं। विभिन्न रागों में निर्मित इन

---

१. अ० वा०, गावा का पद पृ० १०१०।
२. वही, गावा का पद, पृ० १०१३।

पदों में स्वामी रामचरण का कवि गम्भीर से गम्भीरतर और गम्भीरतम विषयों को सरल ढंग से अभिव्यक्त करने में सफल हुआ है। 'काव्य सरल होना चाहिए' मिल्टन की यह भाव-धारा स्वामी जी के पदों पर भलीभाँति चरितार्थ होती है। १०५ पदों के इस संग्रह में २५ रागों का प्रयोग हुआ है। २५ विभिन्न रागों में रचित पदों की संख्या हर राग के समक्ष यहाँ दी जाती है—१. राग भैरव ३, २. राग ललित ५, ३. राग विभास १, ४. राग बिलावल ६, ५. राग जंजैवंती ५, ६. राग आसा २, ७. राग गोंड ६, ८. राग सारंग ५, ९. राग गोड़ी २, १०. राग वसंत, ५, ११. राग काफी ४, १२. राग आसासिंधू ४, १३. राग कल्याण ३, १४. राग कनड़ो २, १५. राग कनड़ी ४, १६. राग विहाग ३, १७. राग मंगल २, १८. राग पंजाब ८, १९. राग सोरठ ९. २०. राग मारू १, २१. राग जैतश्री ५, २२. राग धनाश्री ५, २३. राग केदारो ६, २४. राग जोग धनाश्री ६, २५. राग आरती ३।

स्वामी रामचरण का यह पद-संग्रह विभिन्न रागों में लिखा होने के कारण स्वामी जी के संगीत प्रेम का परिचायक सिद्ध होता है। संत कवि फक्कड एवं मस्तमौला होते थे। उनका संगीत प्रेमी होना अस्वाभाविक नहीं। इस रचना के माध्यम से कवि पाठक को गम्भीर विषयों की निकटता प्राप्त कराने में सफल हुआ है। संगीत की स्वर लहरियों में डूबा स्वामी रामचरण का कवि, दार्शनिक, भक्त एवं साधक का व्यक्तित्व इन पदों के माध्यम से एक साथ लोकप्रिय हो उठा है। दास्य और माधुर्य भावों के अनुपम संगम की लहरें संत रामचरण के इन निर्गुण पदों में तरंगायित दृष्टिगोचर हो रही हैं। भाषा राजस्थानी हिन्दी है पर इसमें विदेशी मूल के शब्दों को स्वामी जी ने उदार होकर स्नेह दिया है। वस्तुतः यह उन पर सूफी प्रभाव की ओर निर्देश करता है। दरवेश, खलक, औलिया, पीर, फकीर, अलमस्ताना, रब्बदा, दोजख, भिस्त (बहिश्त), अदल, फदल, आब, गुसल, ओंजूद, दीदार, मुरसद (मुर्शिद) आदि बहुत से शब्द, जो हैं तो विदेशी मूल के पर हमारे जीवन में ये समरस हो गए हैं और अब अपनी भाषा के बाहर इनका अस्तित्व मात्र ऐतिहासिक रह गया है।

स्वामी रामचरण का विशाल साहित्य जिसे उनके शीलव्रती गृहस्थ शिष्य श्री नवलराम एवं अवधूत वैरागी शिष्य स्वामी रामजन ने परिश्रमपूर्वक संगृहीत करके स्वामी जी के जीवन-काल में ही सम्पादित कर दिया था, वह अभी साहित्य के अनुरागियों एवं खोजकर्त्ताओं की दृष्टि आकृष्ट करने में सफल है।

द्वितीय खण्ड : विचारधारा

पंचम अध्याय : अध्यात्म-पक्ष

षष्ठ अध्याय : लोक-पक्ष

पंचम अध्याय

स्वामी रामचरण की विचारधारा : अध्यात्म-पक्ष

स्वामी रामचरण रचित एक हजार पृष्ठों का विशाल वाणी एवं ग्रन्थसाहित्य उनके विचारों का अतुल भण्डार है। स्वामी रामचरण सन्त थे। उन्होंने उच्च वैश्य कुल में जन्म लेकर यौवन के आरम्भिक कई वर्ष जयपुर-राज्य के उच्चपदस्थ कर्मचारी के रूप में व्यतीत करने के उपरान्त सन्त जीवन ग्रहण किया था। 'प्रवृत्ति थाट' छोड़कर निवृत्ति की ओर उन्मुख होना उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटना थी। उन्होंने अपने सन्त जीवन में व्यक्तिगत साधना के अनेक प्रयोग किये और उन अनुभवों को लेकर समाज की ओर तीव्रगति से मुड़े। समाज के पाखण्डप्रिय एवं ढोंगी ठेकेदारों के कुचक्रों से संघर्ष कर 'राम धर्म' की विजय पताका उन्होंने राजस्थानी भूमि पर फहरायी और लोकमंगल करने का यश अर्जित कर काशी के कबीर सदृश 'राजस्थान के रामचरण' हुए।

स्वामी रामचरण विचारक थे। उनकी विचारसरणि जीवन के विभिन्न अनुभवों से संशोधित होकर अध्यात्म एवं लोक दोनों पक्षों का विधान करने में सफल हुई है। जीवन और जगत के नाना व्यापारों पर उनकी दृष्टि थी। साथ ही लोक-परलोक, ईश्वर जीव, आदि के सम्बन्ध की जिज्ञासाएँ भी उनके साहित्य का शृंगार बनकर आई है। स्वामी जी ने अनेक दर्शनोत्पन्न विचारों का मंथन भली प्रकार किया था और 'सार सार को गहि रहै' का सिद्धान्त अपनाकर 'राम-धर्म' एवं रामसनेही पंथ को उन्होंने प्रतिष्ठित किया। जहाँ वे अपने पीछे साधुओं एवं गृहस्थों का एक सुव्यवस्थित संगठन छोड़ गए वहीं उन्होंने समाज को एक सुचिन्तित विचार-दर्शन भी दिया। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उसे हम दो पक्षों में विभाजित कर सकते हैं—

१. अध्यात्म पक्ष
२. लोक पक्ष

१. अध्यात्म-पक्ष

डॉक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार 'निर्गुण सम्प्रदाय के अन्तर्गत प्रायः उन सभी बातों का सुंदर समावेश पाया जाता है जो भारतीय आध्यात्मिक विचारों में मूल्यवान समझी जाती हैं। अपने सारग्राही स्वभाव के ही कारण इसने भारत की आध्यात्मिक पद्ध-

तियों के सारतत्त्व को अपना लिया है। भारत के विभिन्न आन्दोलनों ने समय-समय पर जाग्रत होकर, संस्कृति के क्षेत्र में जो कुछ भी उसे प्रदान किया है वह कबीर के आविर्भाव के पहले से ही, निर्गुण विचारधारा में सम्मिलित हो चुका था। अजपाजाप के साथ-साथ योगाभ्यास, तंत्रों से उधार ली गई उसकी रहस्यमयी शरीर-रचना प्रणाली, उसके द्वारा प्राण आदि का उपयोग, शंकराचार्य का अद्वैतवाद, भक्ति की साधना-पद्धति और तंत्रवाद में दीख पड़ने वाले उपासनात्मक भावों की इन्द्रियस्पर्शिनी तीव्रता जिसमें विषयी जीवन के उस घृणास्पद अंश का अभाव रहा करता है जो तांत्रिक साधना का अभिशाप है, ये सभी यहाँ आकर एक सुसंगत व्यापक रूप में संश्लिष्ट हो गए हैं।"[1]

डॉ॰ पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल द्वारा प्रस्तुत सन्त मत की आध्यात्मिक विचारधारा की यह समीक्षा युक्तियुक्त है। वस्तुतः सन्त स्वानुभूति को प्रमुखता देते थे। इसीलिए कबीर आदि विभिन्न सन्तों को तत्कालीन भक्ति या योग सम्प्रदायों की विचार सीमा में बाँधा नहीं जा सका। वे प्रचलित विचार-धाराओं एवं उपासना पद्धतियों पर सीधी नजर डालते थे और बुद्धि की कसौटी पर उसकी परख करते थे, सत्संगों में खण्डन-मण्डन एवं तर्क-वितर्क द्वारा भी उसे जाँचते थे और इस प्रकार उनके आदर्श के धरातल पर खरे उतरे सिद्धान्त उनके अपने हो जाते थे। फिर चाहे वे किसी पंथ या मत के हों किन्तु जो विचार या पद्धति उनके मापदण्ड नहीं सम्हाल पाती उसकी तीखी आलोचना करने में भी वे नहीं चूकते थे। इसलिए सन्तों की वाणी विभिन्न विचारधाराओं की संगमस्थली है। 'इसी से संतवाणी कोमल और मधुर है, साथ ही प्रचण्ड और उग्र'[2] और यही कारण है कि संत मध्यमार्गी कहे जाते हैं।

स्वामी रामचरण का मध्यमार्ग

स्वामी रामचरण ने 'मध्य को अंग', 'निरपख को अंग' और 'पंथ को अंग' में मध्यमार्ग का निरूपण किया है। अतिवादी छोरों को छोड़कर मध्यमार्ग के ग्रहण की बड़ी स्पष्ट भावना स्वामी जी की वाणी में दृष्टिगोचर होती है। स्वामी जी गृहत्यागी एवं गृहवासी दोनों से अलग पर बीच के राही—समन्वय मार्गी—को सन्त कहते हैं। सन्त जन घर छोड़कर वन में निवास करने वाले या गृह प्रपंचों में लिप्त रहने वालों से परे मध्यमार्ग के अनुगामी होते हैं—

> **"कोई गृह तजि बन गया, कोई रहै गृह मांहि।**
> **रामचरण वै संतजन, मधि के मारग जांहि।"[3]**

सन्तों को प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के बीच का पथ ही सहज प्रतीत हुआ क्योंकि प्रवृत्ति में मनुष्य संशयों के बीच जलता है और निवृत्ति में उसे अभिमान जलाता है। इन दोनों

---

१. डॉ॰ पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ॰ ८-९।
२. वैद्य केवलराम स्वामी : श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ॰ ७२।
३. अ॰ वा॰, साखी, मध्य को अंग, पृ॰ ५०।

अतिवादों के दुःख से परे होकर संत 'भजन' में रत होता है। यह भजन ही मध्यमार्ग है जिस पर चलने का संदेश स्वामी रामचरण देते हैं—

"गृह में तो सांसो वहै, वन मांही अभिमान।
रामचरण दोन्यूं तजै, संत भजन गलतान।"[1]

कोई योग साधना में रत है तो कोई भोग-कामना में। स्वामी रामचरण योग-भोग दोनों को रोग समझकर उससे दूर रहने का विचार व्यक्त करते है और राम-भजन के मध्यमार्ग पर चलने की बात कहते हैं, जो इस मध्यमार्ग पर चलते हैं वही साधु हैं। उन्हें भरपूर सुख मिलता है। योगी और भोगी दोनों ही अतिवादी हैं पर साधु मध्यमार्गी है।

"कोई साधै जोग कूं कोई बंछै भोग।
रामभजन मधि मारिगा, चालै हरि का लोग।
जोग भोग दोइ रोग है, रामचरण तजि दूर।
मधि मारग साधू चल्या, पाया सुख भरपूर।"[2]

स्वामी रामचरण लोक-परलोक दोनों के सुख को दुःख ही समझते हैं—

"कोई आश परलोक की, कोई लोक का सुक्ख।
रामचरण संत राम का, देखै दोन्यू दुःख।"[3]

कोई आकार की सेवा करता है तो कोई निराकार का भाव। पर सन्त जन मध्यमार्ग की साधना करते हैं—

"कोई सेवै आकार को, कोई निराकार का भाव।
रामचरण वै संत जन, मधि का करै उपाव।"[4]

निर्गुण और सगुण, भक्ति के दोनों प्रकारों में 'नाम' ही साक्षी होता है। यह 'नामस्मरण' ही मध्यमार्ग है।

"कहिबे आया सो सगुन, निर्गुण पुद्गल नांहि।
यूं नाम सूं साखी रामचरण, उभै भक्ति कै मांहि।

---

१. अ० वा०, साखी, मध्य को अंग, पृ० ५०।
२. वही।
३. वही।
४. वही।

मधि मारग है रामनाम, सुमरण भरिये भीख।
रामचरण हम क्या कहैं, या अनंत कोटि की सीख।"[1]

निष्कर्ष यह कि स्वामी रामचरण गृहवास-गृहत्याग, योग-साधना-भोग-वासना, लोक-सुख-परलोक आशा, आकार सेवा-निराकार भाव, सगुण-निर्गुण आदि अतिवादी छोरों से दूर हटकर निष्काम भाव से 'राम भजन' रूपी मध्यमार्ग पर चलने का उपदेश देते हैं। निष्काम भाव से नामोपासना करने वाला ब्रह्मस्वरूप हो जाता है—

"मधि कै मारग चालतां, पला न पकड़ै कोय।
राम भजै आशा तजै, तो ब्रह्म स्वरूपी होय।"[2]

स्वामी रामचरण द्वारा निर्दिष्ट 'राम भजन' का मध्यमार्ग स्वर-बन्धन, जल-पान और सूर्याहार की क्रियाओं से परे सहज पंथ है। यह हद-बेहद से न्यारा मार्ग है।[3] यह योग-भोग, साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण आदि विभिन्न पक्षों से परे निष्पक्ष पंथ है। जहाँ मत-पक्ष है वहाँ हरि नहीं। 'हरि' तो उनके निकट होता है जो 'निरपख' (निष्पक्ष) होते हैं—

"मत की पख हरि दूरि है, निरपख राम नजीक।
रामचरण निरपख भया, जिनहीं पाई ठीक।"[4]

स्वामी जी मत-पक्षों को खींचतान से पूर्ण और झंझटों से युक्त मानते हैं तथा सुखी उसे मानते हैं जो 'निरपख' है—

"पखा पखी उलझाड़ है खेंचाताणी होय।
रामचरण निरपख बिना, सुखी न देख्या कोय।"[5]

निष्पक्ष का प्रतीक 'राम' शब्द है। वह तीनों लोक में ध्वनित हो रहा है—

"राम शब्द निरपख है, तीन लोक धुनि होय।"[6]

---

१. अ० वा०, साखी, मध्य को अंग पृ० ५०। २. वही।
३. "बांधै स्वर कोई जल पिवै, सूरज करै अहार।
रामचरण तू राम कह, मधि का पंथ बिचार।
कोई सुमरै हद्द मैं कोई बेहद जाय।
रामचरण जन राम का मधि में रहै समाय।"
वही, साखी, मध्य को अंग, पृ० ५१।
४. वही, साखी, निरपख को अंग, पृ० ५१।
५. वही। ६. वही।

भक्त उसी रामनाम का स्मरण कर मन का विश्राम स्थल पा लेता है—

"जगत गहै मत आंन को, भक्त भजै इक राम।
रामचरण फल पाईये, मन की मजल मुकाम।"[१]

'मन की मजल मुकाम' तक पहुँचने के लिये स्वामी जी एक ही पन्थ का निर्देश करते हैं—

"रामचरण संतां तणां, रामनाम पंथ एक।
अबै भर्म की भूलि सैं, मत का बन्ध अनेक।"[२]

यही एक पन्थ (मध्यमार्ग) सभी समझदारों का पन्थ है। जो नासमझ हैं, उनके मार्गों की गणना नहीं की जा सकती—

"समझ्या समझ्या एक पथ, पहुंचै निज घर मांहि।
रामचरण अणसमझ का, गैला गिण्या न जांहि।"[३]

मार्ग की सूक्ष्मता

स्वामी रामचरण ने 'मध्य को अंग' में जिस मध्यमार्ग या राम पन्थ के अनुगमन की बात कही है, उस पन्थ से सम्बन्धित सूक्ष्मता की चर्चा वे 'सुक्षम मार्ग को अंग' शीर्षक के अन्तर्गत करते हैं। स्वामी जी के अनुसार 'हरि मारग' अत्यन्त सूक्ष्म है, उस मार्ग से किसी भारवाही को पहुँचते नहीं सुना गया है।[४] वे हरिभक्ति के लिये मन की स्थूलता का निषेध करते हैं और सूक्ष्म मार्ग पर चलने का निर्देश देते हैं जिसमें लघुता की अति है। इसमें अभिमान को मार कर सबसे छोटा होना पड़ता है; तभी इस राह पर चला जा सकता है—

"रामचरण हरि की भगति, मोटे मन नहीं होय।
सुक्षम मारग चालतां, अति लघुताई जोय।
सब सूं नान्हां होय रहे, अहूंमान कूं मार।
रामचरण यूं चालिये, सुक्षम राह विचार।"[५]

---

१. अ० वा०, साखी निरपख को अंग, पृ० ५१।
२. वही।
३. वही, साखी, पंथ को अंग, पृ० ५१।
४. "हरि मारग बहु सूक्ष्म है, पैसै फोरा होय।
रामचरण शिर भार ले, पंहुंता सुण्या न कोय।"
—वही, साखी, सुक्षम मार्ग को अंग, पृ० ५२।
५. वही।

यही सूक्ष्म मार्ग 'अगम घर' का मार्ग है जिस पर रात भर तो चला नहीं जा सकता, हाँ, दिन रहते वेग से दौड़ना पड़ता है। स्वामी रामचरण 'लख चौरासी' को रात और 'नरदेह' को दिन तथा 'राम भजन' को पथ का रूपक देते हैं—

"सुक्षम पैंडा अगम घर, निश भर चल्या न जाय।
रामचरण दिन कै छतां, बेगाबेगी ध्याय।
लख चोराशी रातड़ी, तामैं कछू न होय।
रामचरण नर देह दिन, रामभजन करि सोय।"[1]

स्वामी रामचरण के अनुसार सूक्ष्म मार्ग मुक्ति का मार्ग है जिस पर साधु चलता है। 'चोड़ा पंथ' (स्थूल मार्ग) 'अधोगति' का मार्ग है जिस पर सारा संसार चलता है। इसलिए सूक्ष्म मार्ग को शोध कर जो उस पर चलता है, वह 'सूक्ष्म' होता है, वह सदा सुखी रहता है, उसे दुखी नहीं देखा गया—

"सुक्षम मारग मुक्ति का, सुक्षम साधू माय।
चोडा पंथ अधोगति, सब जग चाल्या जाय।
सुक्षम मारग सोधि कै, चालैं सुक्षम होय।
रामचरण सुक्षम सुखी, दुखी न देख्या कोय।"[2]

स्वामी रामचरण इस सूक्ष्म और स्थूल को कितने सामान्य ढङ्ग से समझाते हैं, ध्यान देने योग्य है—

"सुक्षम मार्‌या नां सुण्यां, मोटा मार्‌या जोय।
सुक्षम बूड़ा नां कह्या, बूड़ा भारी होय।"[3]

स्वामी रामचरण के राम : रमतीत राम

रामावत सम्प्रदाय में दीक्षित स्वामी रामचरण रामोपासक थे, किन्तु इनके राम विष्णु के अवतार दशरथ के पुत्र नहीं। ये 'रमतीत राम' हैं, जो ब्रह्म के पर्याय हैं, 'अणभैवाणी' का आरम्भ ही 'रमतीत राम' की स्तुति से होता है—

"नमो राम रमतीत नमो गुरुदेव स्वामी।
नमो नमो सब संत नाम रटि भये जु नामी।"[4]

---

१. अ० वा०, साखी, सुक्षम मार्ग को अंग, पृ० ५२।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ३।

इन्हीं 'राम' के समक्ष नतमस्तक कवि तन, मन, धन, प्राण सभी कुछ न्यौछावर करने को तत्पर दीखता है—

"जिनके चरणों हेठि रहो नित शीश हमारा।
तन मन धन अरु प्राण करूं नवछावर सारा।"[1]

यह 'राम' सर्वव्यापी, ख्यातनामा, करुणामय, करतार, भक्तवत्सल, सर्वेश, जगपालक, जगद्‌गुरु, आनन्दघन, सुखराशि, चिदानन्द, निरालम्ब, निर्लेप, अन्तर्यामी है—

"नमो राम रमतीत सकल व्यापक घणनामी।
सब पोषै प्रतिपाल सबन का सेवक स्वामी।
करुणामय करतार करम सब दूरि निवारै।
भक्त विछलता विरद भक्त तत्काल उधारै।
रामचरण बंदन करै सब ईशन के ईश।
जगपालक तुम जगतगुरु जग जीवन जगदीश।
आनंदघन सुखराशि चिदानन्द कहिए स्वामी।
निरालंब निरलेप अकल हरि अन्तर्यामी।
वारपार मधि नांहि कूण विधि करिये सेवा।
नहिं निराकार आकार अजन्मा अविगत देवा।
रामचरण वंदन करै अलह अखंडित नूर।
सूक्ष्म स्थूल खाली नहीं रह्या सकल भरपूर।"[2]

ऊपर की पंक्तियों से यह भी स्पष्ट है कि उसका ओर-छोर नहीं, वह न निराकार है न साकार, वह अजन्मा है, अविगत है, वह अखण्डालोकपूर्ण है, सूक्ष्म-स्थूल सभी उससे पूर्ण हैं। स्वामी जी ने उसे कैवल्य से परे साक्षात् परब्रह्म कहा है, वह परब्रह्म अभङ्ग, असङ्ग, अलेख, अक्षेप है, वह आवागमन से रहित कर्म, काया से परे है, वह अमाप है, अथाप है और अनन्त है। शेष, सनकादि, शिव आदि भी जिसका अन्त नहीं पाते, ऐसा है वह 'निरंजण कंत।'

"नमो नमो परब्रह्म नमो नहकेवल राया।
नमो अभंग असंग नहीं कहु गया न आया।
नमो अलेख, अछेप नहीं कोई कर्म न काया।
नमो अमाप अथाप नहीं कोई पार न पाया।

---

१. अ० बा०, पृ० ३।
२. वही।

शिव सनकादिक शेष लूं रटत न पावै अन्त।
रामचरण वंदन करै नमो निरंजण कंत।"[1]

'यह निरंजण कन्त' ही 'निरंजण राम' है—

"रामचरण का शीश पर एक निरंजण राम।"[2]

वह राम चिदानन्द चिरञ्जीव होता तो है ही, सुख का सागर भी है, उसी में सभी सुख हैं—

"चिदानंद चिरंजीव है, है सुखसागर राम।
रामचरण सुख राम में, और सबै बेकाम।"[3]

सब तत्वों का सार 'राम' का नाम है—

"राम नाम ततसार है, या बिन और कछु नांहि।"[4]

वह रूप-वर्ण से रहित, 'सकल सृष्टि को मूल करतार'—राम है—

"रूप वरण सूं रहित है, धरै नहीं अस्थूल।
रामचरण तो सुमरिये, सकल सृष्टि को मूल।
सब देवां सिर देव है, सृष्टि तणो करतार।
रामचरण ताकै परै, सोही देव हमार।"[5]

'राम' अकेला सामर्थ्यवान् है, अन्य सभी देव उसके समक्ष याचक हैं—

"समर्थ एको राम है, जाचक सबही देव।"[6]

'रकार' ही ब्रह्म है—

"ब्रह्म शब्द रक्कार है।"[7]

---

१. अ० वा०, पृ० ३।
२. वही, पृ० ६।
३. वही।
४. वही।
५. वही, पृ० ९।
६. वही, पृ० १६।
७. वही, पृ० २९।

वह आत्मपति परमात्मा देश-काल, शुभ-अशुभ और भेदाभेद से परे सर्वत्र व्याप्त है—

"देश काल पुनि शुभ अशुभ, भेदाभेद सु नांहि।
आतमपति परमात्मा, बरत रह्यो सब ठांहि।"[1]

उस घट-घट व्यापी राम को मनुष्य मृग-बुद्धि के कारण प्राप्त नहीं कर पाता—

"ऐसे घटघट राम हैं, सतगुरु सूं गम होय।
रामचरण नर मृग बुधी, तातैं लहैं न कोय।"[2]

'नाम समर्थाई को अंग' में स्वामी रामचरण के 'राम' निरधारों के आधार, 'सकल सिरताज', 'गरीब निवाज', भक्तवत्सल विरुदधारी रूप में वर्णित हैं—

"निरधारां आधार सकल शिरताज है।
अनाथूं के नाथ गरीब निवाज है।"

अनाथूं के नाथ निरञ्जन राम जी हैं।

"भक्त बिछलता बिड़द भक्त पछ सोयरे।
परिहां रामचरण यह साखि भरै सब कोय रे।"[3]

'चन्द्रायणा विचार को अंग' में स्वामी जी ने एक राम को ही सृष्टि का आधार माना है—

"परिहां रामचरण इक राम सृष्टि आधार है।"[4]

वह राम ही सबका 'सिरजणहार' है—

"यूं सबको सिरजणहार एक है राम रे।"[5]

वह राम न श्वेत है, न जर्द, न रक्त है, न सब्ज, और न श्याम ही है अर्थात् अवर्ण है। वह सत् रज, तम के तिरगुन फाँस की सीमा से परे है। वह 'रमैया' न तो दृष्टिगोचर होता है और न मुष्टि में ही आता है। उसका नाम ही सब कामनाओं की तृप्ति करने में समर्थ है—

---

१. अ० वा०, पृ० २७।
२. वही, पृ० ४७।
३. वही, पृ० ७६।
४. वही, पृ० ८३।
५. वही।

"स्वेत जर्द अरु रक्त सब्ज नहिं स्याम रे।
सत रज तम त्रिय पास नहीं किस जाम रे।
दृष्टि मुष्टि नहीं परै रमैया राम रे।
परिहां रामचरण तिस नाम तृप्ति सब काम रे।"[१]

'कवित विचार को अंग' में स्वामी जी उस राम की चर्चा 'अचिंत पुरुष' और 'अगम शब्द' कहकर करते हैं—

"गगन मण्डल में रमि रह्या ऐसा पुरुष अचिंत।
अगम शब्द कूं लखत है कोइ कोइ बिरला संत।"[२]

यह सम्पूर्ण सृष्टि राममय है, जैसे काष्ठ में अग्नि, दुग्ध में घृत, पुष्प मे गन्ध, तिल में तेल और धरती मे नीर का वास है, वैसे ही सम्पूर्ण विश्व मे राम रम रहा है—

"राम सृष्टि आधार राम का सकल पसारा।
ओत पोत मिल रह्या राम कहुं नांही न्यारा।
ज्यूं काष्ठ में अनल खीर में घृत मिलाया।
पुष्प गंध तिल तेल धरणि मधि नीर समाया।
रामचरण भरिपूर है कहु खाली दीसै नांहि।
राम विश्व में रमि रह्या विश्व राम कै मांहि।"[३]

पर 'कुण्डल्या सुमरण को अंग' में कवि का राम गरीब निवाज का विरद धारण कर 'गरीब निवाज' होगया है, दास्य-भाव से उसे स्मरण करने पर सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं—

"राम गरीब निवाज का बिड़द गरीब निवाज।
दीन होय सुमरण करै जाका सरि हैं काज।"[४]

स्वामी रामचरण के राम निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार से भिन्न हैं। वस्तुतः इस 'राम' शब्द में दोनों समाहित हैं। चौबीस अवतारों का तत्त्व इन्हीं दोनों अक्षरों में समाया हुआ है। ब्रह्म और माया के साक्षी भी क्रमशः यही दोनों अक्षर हैं।[५] राम नाम के सहारे अगुण-सगुण सभी सिद्ध होगये—

---

१. अ० वा०, पृ० ८०।
२. वही, पृ० १२३।
३. वही।
४. वही, पृ० १३९।
५. "ब्रह्म शब्द रक्कार है, माया रूप मकार।
रामचरण यह युगल है, निराकार आकार"—अ० वा०, पृ० २९।

"सर्गुण कहबे आईया निर्गुण नहि आकार।
रामचरण अक्षर उभय चोबीशां का सार।
चोबीशां का सार ब्रह्म माया का साखी।
कहै बेद अरु पुराण सुमरि संतां यूं भाखी।
अगुण सगुण सबही सध्या रामनाम की लार।
सर्गुण कहबे आईया निर्गुण नहि आकार।"[1]

स्वामी जी का 'राम' इतना व्यापक है कि उसमें साकार-निराकार दोनों के अर्थ आ जाते हैं। विश्व के सभी आकारों का आधार निराकार है। निराकार का ध्यान करने से साकार दोषरहित हो जाता है। निराकार-साकार की समन्वित साधना इसी प्रकार से साधु करता है, वह निर्गुण और सगुण का भेद त्याग कर एक राम की आराधना करता है—

"रामचरण आकार सब निराकार आधार।
निराकार का ध्यान धरि दोषरहित आकार।
दोष रहित आकार इसी विधि साधू साधै।
निर्गुण सर्गुण भेद दोय तजि एक अराधै।
राम नाम मैं आईया सबही अथ विचार।
रामचरण आकार सब निराकार आधार।"[2]

कवि निराकार और साकार को क्रमशः आत्मा और देह रूप में स्वीकार कर 'राम' नाम को दोनों के साक्षी रूप में प्रस्तुत करता है—

"निराकार निज आत्मा देहादिक आकार।
रामचरण इन दोय को साखी नाम विचार।"[3]

'साच को अंग' में रामनाम की सत्यता बताते हुए स्वामी जी अन्य सभी को असत्य एवं व्यर्थ घोषित करते हैं—

"साच राम को नाम है दूजा असत निकाम।"[4]

---

१. अ० बा०, पृ० १६६।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० १७७।

इसी अंग में सत्य राम की एक कल्पना निम्नलिखित पंक्तियों में ध्यान देने योग्य हैं—

"निस्प्रेही निर्बेरता निराधार निरकार।
सकल सृष्टि में रम रह्यो सबको सिरजनहार।
सबको सिरजनहार राम सो ताहि भणीजे।
दृष्टि मुष्टि आकार रूप माया जगिणीजे।
रामचरण व्यापक व्योम ज्यूं ताको सुमरणसार।
निस्प्रेही निर्बेरता निराधार निरकार।"[1]

यह राम अचल है, 'सदा सजीवन मूरि' है, रमतीत है—

"अचल राम रमतीत है सदा सजीवन मूरि।
आभा उपजै विनशि है नम्म नह्वै है दूरि।"[2]

स्वामी जी ने राम को गरीब निवाज, विरुदधारी, अनाथों का नाथ आदि तो कहा ही है, 'ग्रंथ नाम प्रताप' में आकर वे राम के विभिन्न रूप में अवतरण की प्रशंसा भी करने लगते हैं। भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिये खम्भे से प्रकट हुए भगवान् राम के सन्दर्भ की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं—

"राम राम प्रह्लाद पुकार्यो।
ताको पिता बहुत पचि हार्यो।
संकट सह्यो पण राम न छांड्यो।
राम भरोसे मरणांहि मांड्यो।
अग्निधार पर्वत सूं राख्यो।
सिंह सर्प गज परि हरि नाख्यो।
अन्धकूप में राम बचायो।
जन को जश हरि जग बिखरायो।
कोप्यो असुर खड्ग लियो कर में।
जन के हित प्रगट्यो हरि खंभ में।
मार्यो असुर भक्ति विस्तारी।
जन प्रह्लाद की मीच निवारी।"[3]

---

१ अ० वा०, पृ० १७७।
२, वही।
३. वही, पृ० २०३।

'अणभो विलास' के पञ्चम प्रकरण में स्वामी रामचरण ने 'राम' को अजन्मा, (क्योंकि जो जन्म लेता है, मरता है, वह भ्रम है) निराधार, सकल सृष्टि का कर्त्ता कहा है। वह 'राम' अनित्य और नित्य का एकमेव कर्त्ता है। सूक्ष्म और स्थूल से मरा यह सृजन उस राम का ही है—

"उपजै खपेस मर्म सब बिन उपज्या निरधार।
रामचरण वो राम है सब ही को करतार।
कर्तार एक करुणा निधान।
किये कृत्य विधि विधि विधान।
... ...
परमाण किये सब ठाम ठाम।
किया अनित्य नित एक राम।
किया सबे ही राम का सुखम थूल भरपूर।
सोवै आपन होय हैं आपस कल तें दूर।"[1]

'सुख विलास' में आकर कवि राम को 'सांईया', 'पति','भर्तार' और 'पीव' रूप में देखने लगता है। अपने 'परम स्नेही राम' के लिये स्वयं 'पतिव्रता' नाम धारण करता है। उसे ही तन-मन अर्पण है। अन्य के लिये हृदय में ठौर नहीं—

"मेरा शिर पर सांईया, रखूं रमइया एक।
तन मन अर्प्या तास कूं अब दूजा फिरो अनेक।
अब दूजा फिरो अनेक ठोर मेरै घर नांही।
मो सिर समर्थ पीव सबै देखूं उन मांही।
रामचरण नहचै करी ये निज संतां की टेक।
मेरा शिर पर सांईया रखूं रमइया एक।"[2]

'पतिव्रता' नाम की सार्थकता 'परम स्नेही राम' को 'एकरस' होकर भजने में है—

"मैं मुख सुमरूं एक रस, परमस्नेही राम।
दूजा दृष्टि न देखि हूँ, तो पतिव्रता नाम।"[3]

वह 'राम भर्तार' के लिये मन को 'इकतार' धारण करने की सीख देता है, क्योंकि बिना इकतार के कर्तार का स्पर्श सम्भव नहीं। वह राम अन्तर्यामी है, वह 'साच अंतर' को देख लेता है—

---

१. अ० वा०, पृ० २३३।
२. वही, पृ० ३५६।
३. वही।

"एक राम भर्तार को मनां धार इकतार।
मनां एक इकतार बिन नहिं परसन कर्तार।
नहिं परसन कर्तार शोभली सबै अलेखै।
अन्तरजामी राम साच अंतर को देखै।
रामचरण तातें कहूं नहचो राख करार।
एक राम भर्तार को मनांधार इकतार।"[1]

'अमृत उपदेश' में स्वामी जी राम को सर्वज्ञ, पूर्ण, सर्वव्यापी तो कहते ही हैं, कञ्चन-भूषण के प्रतीक द्वारा राम एवं विभिन्न अवतारों की स्थिति स्पष्ट कर उसे अभेद कहते हैं—

"सर्वंग पूर्ण रामजी, व्यापक सबही जान।
रामचरण भरपूर है, भूषण कनक समान।
कंचन तो सर्वंग है, भूषण भेदाभेद।
काज नाम भूषण धरे, कारण राम अभेद।"[2]

और भी—

"सतजुग त्रेता द्वापरा कलि समैं समैं अवतार।
राम अखण्डित अजन्मा धरैं न को आकार।"[3]

राम 'शब्द स्वरूपी' है, सम्पूर्ण सृष्टि उसी में है और वह सम्पूर्ण सृष्टि में समाया हुआ है, जैसे 'घटपूर्ण आकाश' में सभी घट उत्पन्न होते हैं और नष्ट भी होते हैं; किन्तु आकाश स्थिर रहता है, वह न कर्त्ता है, न अकर्त्ता, न उसका कोई आधार है—

"शब्द स्वरूपी राम, उपज बिनशैऊ नांही।
सकल सृष्टि ता मांहि, सृष्टि में आप समांही।
ज्यूं घट पूर्ण आकाश, सर्व घट तामैं जांनो।
घट उपजै विनशाहि, नभ थिर नहचल मांनो।
नां कर्ता नां अकर्ता, नहि किस्कै आधार।
रामचरण ता राम को, निशिदिन नाम उचार।"[4]

---

१. अ० वा०; पृ० ३५६।
२. वही, पृ० ४६२।
३. वही।
४. वही।

'जिज्ञास बोध' के चतुर्थ प्रकरण में स्वामी रामचरण 'राम' के दोनों वर्ण 'र' और 'म' का रहस्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जैसे सूर्य और चन्द्र ब्रह्माण्ड के दो नेत्र हैं, वैसे ही बेद (ज्ञान) के 'रकार' और 'मकार' दो नेत्र हैं—

"उभय नैन ब्रहमण्ड के रवि शशि कहिए सोय।
ऐसें नेतर वेद के रकार मकार ज दोय।"[1]

इन दोनों नेत्रों से ही ज्ञान का प्रकाश मिलता है। इनके बिना क्रिया-कर्म, साधन-श्रम सब अन्धे हैं, इस गति को 'सांई का बंदा' ही जानता है। इसलिए बन्दा 'निज बंदगी' में लीन होकर 'ब्रह्म शब्द इकराम' का उच्चारण करता है—

"रवि स्वरूप रक्कार मकार ज चंद कही जे।
उभे नैन ये जांन ज्ञान परकाश लही जे।
या बिन किरिया कर्म श्रम्म साधन सब अंधा।
ये गति जाने संत जिके सांई का बंदा।
बंदा रत निज बंदगी सुमरण आठूं जाम।
रामचरण उचरै सदा ब्रह्म शब्द इकराम।"[2]

स्वामी जी ने राम और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित करते हुए भी यह बतलाया है कि ब्रह्म शब्द की सार्थकता भी 'रकार' 'मकार' के बिना सम्भव नहीं—

"राम कहै सो ब्रह्म है ब्रह्म कहै सो राम।
ये भिन्न भयां एको सरू दूजो रहै निकाम।
. . . .
ब्रह्म शब्द तबही बंचै, मिले रकार मकार।
रकार मकार मिलाप बिन, वह बांचै बांचणहार।
राम बिना वह शब्द है, ब्रह्म न कहिए ताहि।
रकार मकार ज ब्रह्म है, रामचरण सुमराहि।"[3]

'विश्वास बोध' के तृतीय प्रकरण में स्वामी जी दोनों वर्ण 'रकार' और 'मकार' के अन्तर्गत 'निराकार-आकार', 'माया-ब्रह्म', 'स्थूल-सूक्ष्म' और 'जड़-चेतन' सभी को समाहित कर लेते हैं। यह ऐसा तत्त्व है जिससे अलग कोई भी नहीं। वही लोग अलग समझते हैं जो अज्ञानी हैं—

---

१. अ० वा०, पृ० ५३८।
२. वही।
३. वही।

"उभै अखर बिच आईया, निराकार-आकार।
रामचरण माया ब्रह्म, भजो रकार मकार।
... ...
माया ब्रह्म स्वरूप है, जांण रकार मकार।
जुगल बरण जपि लीजिये, सब सारां का सार।
ये सब सारां का सार रह्या कोई न्यारा नांही।
न्यारा जो कोई कहै जिनूं ये समझ न पांही।
... ...
कहा स्थूल सूक्षम कहा, जड़ चेतन इस मांहि।
रामचरण भज राम कूं, ज्यूं उलझण रहै न जांहि।"[१]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण के इस विशाल संग्रह महाग्रन्थ में 'राम' के उन सभी रूपों का वर्णन है जिसका सन्त-साहित्य ऋणी है और स्पष्ट यों कि स्वामी जी की सम्पूर्ण वाणी ही राममय है। स्वामी जी द्वारा राम के विशद विवेचन का ही प्रभाव है कि रामसनेही सम्प्रदाय में 'राम' शब्द बड़ा लोकप्रिय है। रामसनेही सम्प्रदाय के साधु, गृहस्थ, नर-नारी, बाल-वृद्ध सभी एक-दूसरे से मिलने पर 'रामजी राम' कहकर अभिवादन करते हैं। वृद्धजन या साधु जन 'राम' कहकर ही आशीर्वाद भी देते हैं। वस्तुतः राम नाम तारक मन्त्र है।[२] ब्रह्म भी यदि राममय है तभी उसकी सार्थकता है। सम्पूर्ण सृष्टि-रचना राम का कार्य है। राम स्वयं कारण हैं। यह 'राम' शब्द स्वामी रामचरण के सम्प्रदाय के सम्पूर्ण जीवन-दर्शन का आधार है। स्वामी जी ने अपने पन्थ को रामसनेही नाम दिया था और धर्म को राम धर्म कहा था। उनके पंथ एवं धर्म की आधारशिला यह 'राम' ही है। कैप्टेन वेस्मकट ने भी महंत नारायण दास जी से प्राप्त 'वाणी' के कुछ संकलित हस्तलिखित अंश के हर पृष्ठ पर राम शब्द लिखा देखकर सम्प्रदाय में राम शब्द की महत्ता का अनुमान अपने ढङ्ग से लगाया है। वेस्मकट लिखते हैं—

The head of each page is inscribed with the holy name of Ram, used by the society as an initial title of respect, corresponding with the Alif (Allah) of Musalmans and Sri of the Hindus and signifying, that an author solicits the blessing of God on commencing a work, and invokes success on the undertaking."[3]

---

१. अ० वा०, पृ० ६६४।

२. "राम नाम तारक मंत्र है, सुमिरै शंकर शेष।
रामचरण साचा गुरु, देवे यो उपदेश।"
—वही, पृ० २०८।

3. Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

स्वामी जी के सम्पूर्ण साहित्य में 'रमतीत राम' का इतना महत्त्व है कि अंगवद्ध वाणी के प्रत्येक अंग का आरम्भ वे निम्नलिखित दोहे से करते हैं—

"रमतीत राम गुरुदेव जी, पुनि तिहूं काल के संत।
जिनकूं रामचरण की, वंदन वार अनन्त।"

यह दोहा उनके छोटे-बड़े ग्रन्थों में प्रत्येक प्रकरण, प्रकाश और विश्राम के आरम्भ मे तथा फुटकर पदों के संग्रह के पहले उल्लिखित है। स्वामी रामचरण के अनुसार जैसे सम्पूर्ण सृष्टि का आधार राम है, वैसे ही स्वामी जी के सम्पूर्ण साहित्य की प्रेरणा 'रमतीत राम' है।

जीवात्मा

"सन्त-साहित्य में भी ब्रह्म और जीव की एकता स्वीकार की गयी है। पर इस एकत्व की स्थिति में व्यवधान उत्पन्न करने वाली माया को माना गया है।[1] रामसनेही संतों ने जीव और ब्रह्म को तत्त्वतः एक माना है।"[2] अणभैवाणी में जीव व शीव के एक होने की बात जगह-जगह पर प्रतिपादित है।[3] स्वामी रामचरण ने जीव को ब्रह्म का अंश कहा है पर उसी अर्थ में जिस अर्थ में सूर्य का अंश उसका प्रतिबिम्ब होता है। सूर्य से पृथक् उसके प्रतिबिम्ब का अस्तित्व नहीं, वैसे ही जीव, ब्रह्म का अंश है। शरीर, जीव और ब्रह्म के बीच माया का आवरण है। उस आवरण के हटते ही जीव और ब्रह्म की अद्वैतता परिलक्षित होने लगती है—

"जीव ब्रह्म का अंश है, ज्यूं रवि का प्रतिबिम्ब होय।
घट पड़दा दूरां भया, जीव ब्रह्म नहिं दोय।"[4]

'सन्त-साहित्य मे 'जलतरंग न्यायवत्' ब्रह्म और जीव के स्वरूप का विवेचन हुआ है।'[5] स्वामी जी भी 'रामरसायण बोध' के द्वितीय प्रकरण में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए 'नीर-तरंग', 'अग्नि झाल', 'कनक-भूषण' सदृश जीव-जगदीश की अभेदता का वर्णन करते हैं—

"रामचरण चित लीन करि, उर धर ध्यान सदीव।
रोम रोम में राम जी, सदा निरंतर शीव।

---

१. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल : सन्त साहित्य, पृ० १०५।
२. डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी : रामसनेही-सम्प्रदाय (अप्रकाशित शोधप्रबन्ध)
३. केवलराम स्वामी : रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ९३।
४. अ० वा०, पृ० ८।
५. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल : संत-साहित्य, पृ० १०५।

सदा निरंतर शीव नहीं जाम अंतराई।
नीर तरंग न दोय जोय जल एक सदाई।
अग्नि झाल नहीं भिन्न मन्न नहचै करि आंनो।
भूषण-कनक न भेद जीव जगदीश बखांनो।
रामचरण दुतिया नहीं मही बांझ इक राम है।
जाकूं परगट दर्श है जे जन नित नहकाम है।"[1]

'कुण्डल्या विचार को अंग' में जीव की ब्रह्म से अभिन्नता सिद्ध करने के लिये कवि ने विभिन्न प्रतीकों का सहारा लिया है। जैसे खाँड़ और उससे निर्मित छोटे-बड़े खिलौने, काष्ठ और उससे निर्मित पुतली, पत्थर और उससे निर्मित प्रतिमा, पाला-ओला-बुद्‌बुदा और जल अभिन्न हैं, वैसे ही ऊंचे-नीचे सभी आकार में स्थित जीवात्मा ब्रह्म से अभिन्न हैं—

"कियां खिलौना खांड का नाना विधी अनेक।
ज्ञान दृष्टि करि देखिये तो खांड एक ही एक।
तो खांड एक ही एक दोष बुधि धरिये नांही।
ऊंच-नीच आकार ब्रह्म व्यापक सब मांही।
रामचरण कासूं करै घट बिध अंतर रेख।
कियो खिलौना खांड का नाना बिधी अनेक।"[2]

और भी—

"काष्ट केरी पूतली काष्ट न्यारी नांहि।
ज्यूं पाहण की प्रतिमा पाहण कै ही मांहि।
पाहण कै ही मांहि राम रटि ऐसो दर्श्यो।
मिट्यो नकल गुण भास असल पूर्ण पद पर्श्यो।
पाला ओला बुद्‌बुदा जल तज कहूं न जांहि।
काष्ट केरी पूतली काष्ट न्यारी नांहि।"[3]

'कवित परचा को अंग' में भी ब्रह्म-जीव के मिलन को सरिता-सिन्धु-मिलन, जल में नमक का घुलन, पाला का पानी रूप में गलन कहकर, स्वामी जी ने बतलाया है कि इसी प्रकार जीव, ब्रह्म में मिलकर, घुलकर और गलकर एक हो जाता है। जैसे जल के बुलबुले जल से अलग

---

१. अ० वा०, पृ० ९३८-९४०।
२. वही, पृ० १६६।
३. वही।

नहीं, जैसे नदी की लहरें उससे अलग अपना अस्तित्व नहीं रखतीं, वैसे ही जीवात्मा परमात्मा या ब्रह्म से भिन्न नहीं—

"राम राम मुख गाय ब्रह्म का पद कूं पायो।
जैसें सिलता नीर ध्याय धुरि समंद समायो।
जल की उत्पत्ति लूंण उलट अपणों पद पर्स्यो।
पालो पांणी मांहि गल्यां दूजो नहि दर्स्यो।
ज्यूं जल केरा बुदबुदा जलसूं न्यारा नांहि।
रामचरण दरियाव की लहर्‌यां दरिया मांहि।"[1]

अथवा 'जिज्ञास बोध' के पाँचवें प्रकरण में ये पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—.

"निराकार निर्लेप निरंजन, पूर्व थांन मिलाया वे।
लहरि बुदबुदा जल तेंहूवा, जल में उलटि समाया वे।"[2]

'विश्वास बोध' के चतुर्थ प्रकरण में स्वामी जी ने ब्रह्म को जल और जीव को 'हेम' (हिम) बतलाया है। ज्ञानसूर्य के उदय से हेम (हिम) गलकर 'आप' रूप हो जाता है—

"कहूं तो हिया को विचार।
जल रूप ब्रह्म सोहु एक सार।
कोई रीति अज्ञता तम तुषार।
जल बंध भयो तहां हेम भार।
तबै अर्क उदियो ज ज्ञान।
गलि हेम भयो आपै समान।"[3]

ब्रह्म से जीव की भिन्न स्थिति का सङ्केत देते हुए स्वामी जी स्पष्ट करते हैं कि जैसे जल से 'खार' (क्षार) की उत्पत्ति विकार है जो जल से भिन्न स्थिति में दीख पड़ता है, वैसे ही देहाभिमान, भाँति-भाँति के स्नेहबन्धन, शरीर के वैभव के प्रति प्रीति आदि विकार उत्पन्न होकर जीवात्मा को ब्रह्म से भिन्न स्थिति में ला देते हैं—

"बहुरि कहूं जल मध्य खार।
स्वतै सिध उपज्यो विकार।
सोहु आप मान अभिमान देह।
तब भांति भांति बांध्यो सनेह।

---

१. अ० वा०; पृ० १०७।
२. वही; पृ० ५४०।
३. वही, पृ० ६६८।

तन आदि विभव यह प्रीति भोंन।
यूं जांण जीव जल भिन्न लोंन।"[१]

जल और नमक की एकता को ब्रह्म और जीव की एकता का प्रतीक मानकर स्वामी जी कहते हैं—

"जल सेती पैदा भया नाम धर्‌या तब लोंन।
जल में मिल जल ही भया लोंन कहै अब कौन।"[२]

'सवैया विचार को अंग' में स्वामी रामचरण जी जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब घोषित करते हैं। जीवात्माएँ जल से पूरित कुम्भ के समान हैं और रवि का प्रतिबिम्व सब में पड़ता है—अर्थात् सभी जीव ब्रह्म प्रतिबिम्बवत् हैं—

"जल सूं भर कुंभ अनेक धर्‌या रवि को प्रतिबिंब पर्‌यो सब मांही।
पवन लग्यां सेती नीर हलै कहुं सूरज तेज हलै चलै नांही।
ऐसें ही ब्रह्म आनन्द लह्यो जिन देह इन्द्री गुण व्यापै न कांही।
देह अध्यासी कूं सुक्ख नहीं थिर नीर भया बिन नां दरसांही।"[३]

'सवैया सुमरण को अंग' में कवि ने बहुत स्पष्ट रूप से 'ब्रह्म के अंश' जीव को राम-स्मरण के लिये प्रेरित किया है—

"रामहिं राम रटी निशिबासर काहे कूं दूसरो थाट थटोरे।
ब्रह्म का अंश कूं ब्रह्म उपासना माया उपासत सोहि बटोरे।"[४]

स्वामी रामचरण ने अपने 'दृष्टान्तसागर' नामक ग्रन्थ में ब्रह्म से जीव की उत्पत्ति विक्षेप और पुनः मिलाप की प्रक्रिया को अग्नि और कोयला का दृष्टान्त देकर समझाया है—

"पावक सै पैदा भया, पावक सूं जीवंत।
गुण ऊरमी नाम तजि, फिर पावक ही अंत।"[५]

जैसे कोयला, अग्नि से उत्पन्न होता है वैसे ही जीव की उत्पत्ति ब्रह्म से है। कोयला, अग्नि से जीता है, जीव को भी ब्रह्म ही जिलाता है। जलती आग पर मिट्टी डालकर बुझा देने से कोयला

---

१. अ० वा०, पृ० ६६८।
२. वही।
३. वही, पृ० ८७।
४. वही, पृ० ८६।
५. वही, पृ० १०६१।

हो जाता है। इसी प्रकार ब्रह्म के शुद्ध रूप पर मायाजनित विषयों का आवरण पड़ जाने से जीव संसारी हो जाता है और कोयला-अग्नि सदृश जीव का ब्रह्म से विक्षेप हो जाता है। पुनः अग्नि-सम्बन्ध होने पर कोयला पावक हो जाता है, माया का आवरण हटते ही जीव ब्रह्म से मिलकर ब्रह्म हो जाता है।

स्वामी रामचरण ने संतपरंपरानुमोदित जीवात्मा और परमात्मा की एकता का विचार-निरूपण अपनी वाणी एवं काव्य ग्रन्थों में किया है। उन्होंने जीव और ब्रह्म में अंश-अंशी अद्वैत सम्बन्ध का विशद विवेचन विभिन्न प्रतीक उदाहरणों द्वारा किया है। 'अद्वैत-दर्शन के अनुसार जीव, ब्रह्म से तभी तक भिन्न है जब तक माया का स्वरूप विद्यमान है। माया के हटते ही जीव और ब्रह्म की एकता सम्भव है।'[1] स्वामी जी ने बतलाया है कि शरीर माया का आवरण है, इस आवरण के हटते ही जीव और ब्रह्म अभेद हो जाते हैं। यह आवरण ज्ञान के प्रकाश से निरावरण में परिवर्तित होता है। जीव, रामरसायण का प्रेमपूर्वक पानकर ज्ञान के आलोक से आलोकित हो 'नित्य निरन्जन राम' से जा मिलता है—

"राम रसायण अजब सार का सार रे।
पीया प्रेम उपाय गया जग पार रे।
नित्य निरंजन राम मिल्या जाइ दास है।
परिहां रामचरण निज ज्ञान भयो परकाश है।"[2]

माया

"माया, ब्रह्म की शक्ति के रूप में है। ब्रह्म में वह उसी रूप में समाई हुई है जिस प्रकार अग्नि में उसकी दाहिका शक्ति। इसके दो भेद हैं—एक विद्या तथा दूसरा अविद्या। सृष्टि का निर्माण, उसकी स्थिति तथा अन्ततोगत्वा उसका प्रलय के रूप में अवसान माया के विद्या रूप का कार्य है। माया का अविद्यात्मक रूप ही नियति का चक्र माना गया है। यह दुःख-रूपा होती है।"[3]

डॉक्टर प्रेमनारायण शुक्ल ने उपर्युक्त पंक्तियों में संक्षेप में माया एवं उसके दोनों रूपों की चर्चा की है। सन्त-साहित्य में माया का वर्णन खूब हुआ है। इस सन्दर्भ में डॉक्टर शुक्ल की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं। "संतों ने माया के अविद्यात्मक रूप की ही विशेष चर्चा की है। उनका यह विश्वास है कि ब्रह्मोपासना में सबसे बड़ी बाधा माया की ही है। इसलिए वे इसे नाग, नागिन, डाइन, ठगिनी, नटनी, छुरी आदि अनेक रूपों में कहीं तो प्रतीकात्मक शैली में और कहीं रूपक योजना द्वारा वर्णन करते हैं।"[4]

---

१. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल : संत साहित्य, पृ० १०४।
२ अ० वा०, पृ० ५४०।
३. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल : संत साहित्य, पृ० ११२।
४. वही, पृ० ११४।

स्वामी रामचरण ने भी अपने विशाल वाणी साहित्य एवं ग्रन्थों में माया का वर्णन खूब किया है। 'साखी माया को अंग' में उन्होंने माया को विभिन्न प्रतीकों एवं रूपकों द्वारा स्पष्ट किया है। माया की मधुरता के सामने 'हरि का नाम' खारा लगता है।[1] माया पापिनी अपनी उत्पत्ति को स्वयं खा जाती है। पहले सेवा द्वारा पोषण करती है, बाद में सभी को नष्ट कर देती है—

"जणि जणि खावै पापणी, दया न उपजै तास।
पहले सेवै पोखदे, पीछे करै सकल को नास।"[2]

इस अर्थ में वह 'नागिनी' भी है। नागिन जन्म देकर अपने बच्चों को ही खा जाती है। कोई एकाध बच्चा बच निकलता है, वैसे ही माया भी अपने पुत्रों को चुन-चुनकर खा लेती है, उससे बचने वाला कोई 'अवधूत' ही होता है जो राम का भजन करता है—

"माया काली नागणी, चुणि चुणि खाया पूत।
रामचरण भज राम कूं, उबर्‌या कोइ अवधूत।"[3]

और वह भक्ति की 'बैरिन' भी है—

"माया बैरणि भक्ति की, ज्यूं त्यूं घालै घाव।
रामचरण खाउ खाउ करै, कोइ संत चुकावै दाव।"[4]

वह माया 'कर्त्ता' की सृष्टि है, बड़ी बला है, 'डाकणी' भी है—

"रामचरण कर्ता करी, माया बड़ी बलाय।
छल बल कर संसार कूं, डाकणि खाया जाय।"[5]

'कुण्डल्या माया को अंग' में कवि 'राम' और 'राम की माया' को रवि और उसकी छाया सदृश देखता है। भक्त के सम्मुख राम है तो पीछे माया—

"माया मेरे राम की ज्यूं रवि की छाया होय।
सेवक सन्मुख राम रवि, तो पीछै लागै सोय।

---

१. अ० वा०; पृ० ५४। माया तो मीठी लगै खारा हरि का नाम।
२. वही, पृ० ५४।
३. वही, पृ० ५४।
४. वही।
५. वही; पृ० ५५।

पीछे लागै सोय, फिर्या सूं आगै न्हासै।
ये प्रत्यग् दृष्टान्त, सबन कूं प्रगट भासै।"[1]

माया और भक्त का 'हरि' से दासी और दास का सम्बन्ध है। चञ्चल माया हरि की दासी है और 'हरिजन' हरि के दास हैं—

"माया हरिदास चपल, हरिजन हरि के दास।
जे माया चित्त चहूंटै तो दास धर्म को नास।"[2]

वस्तुतः माया झूठी है किन्तु सत्यपुरुष की रचना होने के कारण सच्ची-सी लगती है—

"माया झूठी राम की साची सी दर्शाय।
रचना साचा पुरुष की ताते लखी न जाय।
ताते लखी न जाय उपजतो हर्ष बधावै।
बिनसत उपजे शोक मींड कर शीश धुणावै।
रामचरण भज राम कूं तज सब आन उपाय।
माया झूठी राम की साची सी दर्शाय।"[3]

माया और जीव क्रमशः कमल और मधुकर के समान हैं—

"माया कमल स्वरूप जीव मधुकर सब झूलै।
विषिया रस मोहीत होय निज घर कूं भूलै।
च्यार पहर गए बीति प्रीति सूं नहीं अघाने।
उड़ि न सके मति हीण मांहि मरि खरे खिसाने।"[4]

संसार और माया क्रमशः 'माखी' और 'मीठे गुड़' के सदृश हैं—

"माया यो संसार मिष्ट गुड़माया बीठी।
कली लिपटे पग पांख चाखि रसना रस मीठी।
अंतर आशा स्वाद परे नर तनु को हांनो।
माया चलै न साथ जीव जब करै पयांनो।

1. अ० बा०, पृ० १७५।
2. वही।
3. वही।
4. वही, पृ० १२६।

माथो धूंणैं कर घसैं सुलक्षण नहीं बसाय।
रामचरण संग शोक ले चले भोग छिटकाय।"[1]

माया, राम और साधु का सम्बन्ध कवि कांदो (कीचड़), जल और मछली के रूपक से स्पष्ट करता है—

"माया कांदो रामजल साधू मीन समान।
कादै जन राचै नहीं, जल बिछड़त तजै पराण।"[2]

माया ने सर्व संसार का भक्षण कर लिया, उससे बचकर कोई नहीं भाग सका। यदि कोई बचा तो वह सन्त ही बचा राम के चरणों में लवलीन होकर—

"माया खायो जगत सब, सक्यो न कोई भाग।
उबर्‌या कोई संत जन, रामचरण लिव लाग।"[3]

कवि की दृष्टि में माया-काया में कोई भेद नहीं, अतः हरि इन दोनों के साधकों से दूर है। 'भरपूर' (राम) का दर्शन तभी होगा जब इन दोनों को छोड़ दिया जाय—

"माया काया एक है, इन साधन हरि दूर।
रामचरण दोन्यू तजै, तब दर्शे भरपूर।"[4]

माया ने सभी के गले में फंदा डालकर पकड़ रखा है। सभी माया की उपज हैं चाहे वो ब्रह्मा हों, विष्णु हों या महेश हों। केवल एक 'ब्रह्म' ही अजन्मा है—

"माया पकड़ो जगत सब, डारि गला में पासि।
माया तजि हरि कूं भजै, वां संतां की दासि।
माया की पैदासि सब, एक ब्रह्म नांपैद।
ब्रह्मा विष्णु महेश लग, माया कीया कैद।"[5]

स्वामी जी ने माया को ब्रह्म की जोरू या स्त्री तथा सकल सृष्टि की माता कहा है अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् मायाजात है। जो व्यक्ति ब्रह्म की जोरू को अपनी कहता है, वह यमपुरी जाता है। फिर माया तो जननी है, अतः जो जननी को नारी रूप में देखता है वह अवश्य खराब होता है। जननी को स्त्री समझने के पाप का परिणाम 'चौरासी की मार' है—

---

१. अ० वा०, पृ० १२६।
२. वही, पृ० ५४।
३. वही।
४. वही।
५. वही।

"माया नारी ब्रह्म की, मात करै प्रतिपाल।
रामचरण मेरी कहै, सो हरामखोर बेह्वाल।
माया जोरू ब्रह्म की, सकल सृष्टि की माय।
रामचरण अपणी कहै, सोही जमपुर जाय।
× × ×
जननी कूं नारी गिणै, सो नर होसी ख्वार।
रामचरण ई पाप सूं, चोराशी की मार।"[1]

कवि की दृष्टि में पिता, माता, पुत्र, स्त्री, धन-धाम, बन्धु, परिवार, जाति आदि सभी माया या माया रूप हैं।[2] जहाँ तक दृष्टि जाती है, सब माया का रूप ही दीखता है। चाहे नरपति हो या सुरपति, जिससे भेंट हो गयी उसे ही ग्रस लेती है—

"जेता आवै दृष्टि में, सब माया का रूप।
यासूं मिल्या स ग्रासिया, कहा सुरपति कहा भूप।"[3]

कभी 'पीव' को विस्मृतकर माया के पीछे दौड़ने वाले जीव पर ही उसे झुंझलाहट होती है—

"माया बिचारी क्या करै, बड़ा हरामी जीव।
जहाँ तहाँ हेरत फिरै, याद करैं नहिं पीव।"[4]

'कवित माया को अंग' में स्वामी रामचरण माया को वह 'शिकारणि' (शिकारिन) कहते हैं जो योगियों पर डोरे डालती है, जो तपस्वी जनों का बल तोड़ देती है, यतियों का 'सत्त' डिगा देती है, संन्यासी को पाप लगा देती है, दर्वेशों को रगड़कर ब्राह्मणों से बेगार कराती है—

"माया करि किलकार अहेड़ै चढ़ी शिकारणि।
भोगी दिया गुड़ाय, जाल जोग्यां पर डारणि।
तपस्यां का बल तोड़ जत्यां का जत्त डिगाया।
जंगम लीन्हा जीति, सन्यासी पाप लगाया।
दर्वेशां कूं दर्मल्या, विप्र पकड़ बेगार।
रामचरण एतां शिरै संतां की पणिहार।"[5]

---

१. अ० वा, पृ० ५५।
२. माया पिता मात सुत दारा, धन धाम बन्धु परिवारा।
माया रूप जाति कुलबंध, ता संग राम भूलि भ्रन्या नर अंध।—वही, पृ० ५५।
३. वही, पृ० ५४।
४. वही।
५. वही, पृ० १२७।

स्वामी जी के शब्दों में माया मोहक शक्ति रखने वाली है—

"माया हरि की मोहिणी जीं मोह्या सब संसार।
पटक पछाड़्या भागता भक्ता किह्या खवार।"[1]

वह राजा राणा, रंक, बादशाह सभी को मोह लेती है, पर मोहासक्त जन तृप्त कभी नहीं होते प्रत्युत आशा में पड़े युग-युगों तक रोया करते हैं—

"राजा राणा रंक पातिशा सबही मोहै।
तिरपत भये न कोय आशधरि जुग जुग रोये।"[2]

'अणभो विलास' के सोलहवें प्रकरण में स्वामी जी माया 'डाकिणि' के दो रूप 'वाम-दाम' बतलाते हैं। इन्हीं दो रूपों में माया अनेक लोगों की फजीहत कर चुकी है। माया से बचने का 'अजीत ओट' रामभजन है—

"डाकिणि सूं डरता रहो मति कोइ रहो नचीत।
बाम दाम दोय रूप धरि ई केता कीया फजीत।
केता किया फजीत प्रीति करि अति भर्माया।
छल्या सु चेतै नांहि मार कै गर्द मिलाया।
रामचरण भज राम कूं या निर्भय ओट अजीत।
डाकिणि सूं डरता रहो मति कोइ रहो नचीत।"[3]

'अमृत उपदेश' के नवें प्रकाश में कवि माया लोक में हर्ष एवं शोक के अनेक थोक एवं भीड़ देखता है। तन-मन मे अनस्थिर माया स्वयं उत्पन्न करके उसे ही खा लेती है, संसार को आकृष्ट करती है, नाच नचाती है, अति भ्रमित करती है, फिर भी हाथ नहीं आती। वह झूठ बोलने की प्रेरणा है और राम के विस्मरण की भी—

"माया लोक हर्ष अरु शोकं नाना थोकं बहु भीरं।
आप उपावै आपहि खावै, जग परचावै दै धीरं।
नाच नचावै अति भरमावै, हाथ न आवै सह पीरं।
राम भुलावै झूठ बुलावै, तन मन माया ना थीरं।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ५९१।
२. वही, पृ० १२७।
३. वही, पृ० २८९।
४. वही, पृ० ४७५।

'जिज्ञास बोध' के तेरहवें प्रकरण में 'माया रचना' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी ने माया की रचना का कारण तीन गुणों को माना है। माया की 'त्रयगुण'—शक्ति द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ है। उसमें 'चेतन-अंश' के रूप में हरि वैसे ही व्याप्त हैं जैसे दूध में घी—

"माया रचना त्रय गुण मांही सब ब्रहमंड बनाये।
चेतन अंश आप हरि व्यापक ज्यूं घृत दूध समाये।"[1]

इसी सन्दर्भ में कवि माया को 'बाजी' कहता है। वस्तुतः माया उस 'बाजीगर' की 'बाजी' है—'उपजै खपै रहै थिर नांही ये बाजीगर की बाजी'। इस बाजी का बहुत विस्तार है। इसका कोई पार नहीं पा सकता, अतः विवेकपूर्ण बाजी के कर्तार को ही सम्हालने की आवश्यकता पर कवि बल देता है। माया और ब्रह्म का सम्बन्ध और स्पष्ट करने के लिये स्वामी जी ने वृक्ष एवं उसकी डालों और पत्तों के सम्बन्ध का दृष्टान्त लिया है—

"पार नहीं बाजी तणूं बाजी बहु विस्तार।
तातैं समझ सम्हालिये बाजी को कर्तार।
बाजी को कर्तार सकल बाजी ता मांही।
ज्यूं डारपात उपडार वृक्ष सैं न्यारी नांही।
रामचरण भज राम कूं सबही को आधार।
पार नहीं बाजी तणूं बाजी बहु विस्तार।"[2]

यहीं कवि को माया की सबलता का भी आभास होता है। माया बड़ी प्रबल है, किसी को भी उसे निर्बल नहीं समझना चाहिए। संसार-दह से पार होते को वापस करके दह में घेर देती है। इतना ही नहीं, वह सभी को गर्दन पकड़कर दबाती है और योगी-यती, ऋषि-तपस्वी किसी को उबरने नहीं देती। जो उबरता है वह नाम के प्रताप से ही—

"रामचरण माया सबल कोइ निबल जांणज्यो नांहि।
पार पहूंता फेरि कै घेरि देवै दह मांहि।
घेरि देवै दह मांहि गर्दनों पकड़ि दबावै।
ऋषि तपसी जति जोगि दव्यां मंहि उकसण पावै।
जे उबरै नाम प्रताप सैं रहै चरण लिपटांहि।
रामचरण माया सबल कोइ निबल जांणज्यो नांहि।"[3]

---

१. अ० वा०; पृ० ५८९।
२. वही।
३. वही।

'विश्वास बोध' के नवें प्रकरण में कवि 'माया गति' की चर्चा करता है। राम की अद्भुत माया का विस्तार तीन लोक, चौदह भुवनों में है। माया-माया सभी कहते हैं पर माया का रहस्य कोई नहीं जान पाता है। जहाँ तक मन-वाणी है, सब मायामय है, सूक्ष्म-स्थूल सभी माया के निर्माण हैं। त्रिगुणात्मिका माया के अनन्त नाटक एवं भिन्न-भिन्न छलछन्द हैं। रामजी की माया अद्भुत लीलाकारिणी है—

"माया माया कहै पण, माया को न भेद हाथ,
साथ लागा फिरै सारा मरम न पाय है।
मन वाणी जाय जहाँ तहाँ लूं स्वरूप माया,
सुखिम सथूल पुनि जेती बणी काया है।
नाटक अनन्त छलछंद भाँति भाँतिन के,
त्रिगुण किरत बपु चौबीसूं धराया है।
राम ही चरण याकी कहाँ लौ बणाय कहूँ।
लीला अद्भुत यह राम जी की माया है।"[1]

× × ×

"अद्भुत माया राम की ऊँच नीच विस्तार।
तीन लोक चवदा भवन एक राम आधार।"[2]

विघ्न-विपत्तियों की खान जहाँ है वहीं माया का घर है—

"विघ्न बिपति की खान स माया धाम है।"[3]

माया, गणिका रूप है। यह सज्जनों को लड़ाती है। इससे दूर रहकर राम-भजन करना ही श्रेयस्कर है—

"यासूं रहिये दूर राम कूं भज्जना।
परिहां माया गणिका रूप लड़ावै सज्जना।"[4]

'विश्राम बोध' के दशम विश्राम में कवि माया की दो रीतियों की चर्चा करता है, इसका रहस्य कोई विरला ही जान पाता है। भक्तों की फजीहत करना और जगत् की शोभा के रूप में दीख पड़ना ही ये दोनों रीतियाँ हैं—

---

१. अ० वा०; पृ० ७००-१।
२. वही, पृ० ७०१।
३. वही।
४. वही।

"माया की दोइ रीति भद कोइ बिरला पावै।
भक्तां करै फजीत जगत की शोभ दिखावै।"[१]

'रामरसायण बोध' के चतुर्थ प्रकरण में माया का वर्णन 'माया रंग' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है। स्वामी रामचरण ने माया को अनन्तरङ्गिनी कहा है जिसका पार पाना किसी के लिये भी मुश्किल है। यह अनन्त रंगोंवाली अनेक छल-छन्द दिखाकर मार डालती है और जीव ऐसा है कि उसी माया के रस-रंग में सदैव भूला रहता है। वह कभी आता है, कभी जाता है और कभी 'अधबीच' में ही झूलता रहता है।

"माया के रंग अनन्त प्यारे, ताको पार कहो कुंण पाय है जी।
छल छंद अनेक दिखाय मारै, रसरंग में जीव भुलाय है जी।
कहुं आय रहै कहुं जाय रहै, अधबीच में बहुत झुलाय है जी।
जन रामचरण वे जन्न सही, माया देखि न चित्त चलाय है जी।"[२]

बहुरूपिणी माया का एक रूप रूपदास (रुपया) का भी है जिसके द्वारा यह माया सर्व संसार को मोल लेती है; पर साधुजन इससे अलिप्त रहते हैं, उस पर मुग्ध नहीं होते—

"रूपदास के रूप मैं, मोहे सब संसार।
साधूजन मोहे नहीं, मोहै तो होइ ख्वार।"[३]

स्वामी रामचरण ने माया का बड़ा विशद वर्णन किया है। अपनी वाणी और अपने ग्रन्थों में माया को उन्होंने खूब समझा है और विस्तृत समीक्षा भी की है। 'दृष्टान्त-सागर' जैसे 'कूटग्रंथ' में भी 'मन-माया सम्बन्ध' और 'माया के दास मन' को लेकर प्रतीकात्मक शैली में माया का विवेचन उन्होंने किया है। इस मायात्मक संसार में हरिजन ही ऐसे हैं जो माया के विपरीत पथ पर चल, मनोकामनाओं को जीतकर 'निरञ्जन राम' का भजन करते हैं—

"हरि मग चालै हरिजना, मनां मनोरथ जीत।
भजै निरंजण राम कूं, तज माया विपरीत।"[४]

जगत्

जगत् सम्बन्धी विचार के सन्दर्भ में 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों की निम्नलिखित पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

"अद्वैत के अनुसार यह सारा संसार मिथ्या है, यह माया का परिणाम है और ब्रह्म का विवर्त्त हैं। संसार मृगमरीचिका है।"[1]

स्वामी रामचरण ने अपने विभिन्न ग्रन्थों में जगत् की अस्थिरता, नश्वरता आदि का वर्णन किया है। ग्रन्थ 'अणभोविलास' के नवें प्रकरण में वे संसार को **'शीतकोट'** और **'मरीची नीर'** (मृगजल) कहते हैं। संसार मरीची नीर (मृगतृष्णा नीर या मरुमरीचिका आदि) के समान मिथ्या है, यह कल्पना विभिन्न कवियों ने की है पर संसार की अस्थिरता, मिथ्यात्व आदि के लिये 'शीतकोट' का प्रतीक स्वामी रामचरण की अभिनव कल्पना है। शीतकोट को 'सीकोट' भी कहा जाता है। श्री रामस्नेही सम्प्रदाय के लेखकों ने इस शीतकोट को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

"मरुभूमि में ग्रीष्म के दिनों में तो सूर्य की किरणों से पानी की भ्रान्ति होती है, उसे मृगतृष्णा, मरुमरीचिका आदि कहते हैं, उसी प्रकार सर्दी के दिनों में सूर्योदय के कुछ पहले पश्चिम दिशा में 'कोट कंगूरे' बुर्ज आदि से युक्त नगर-सा दिखायी देता है; देखनेवाला भ्रमित हो जाता है, थोड़ी देर बाद सूर्य के प्रकाश के साथ वह न जाने कहाँ उड़कर गायब हो जाता है, उसे (शीतकाल) से बना हुआ कोट-किला-कहते हैं; यही शीतकोट है। दार्शनिकों को संसार के मिथ्यात्व प्रदर्शन के लिये ये दो उदाहरण मरुभूमि से मिले हैं। शीतकोट ही गंधर्वनगर है।"[2]

इसी शीतकोट और मरीची नीर-सदृश अस्थिर और असार है यह संसार। स्वामी जी के शब्दों में यह वर्णन बड़ा ही मार्मिक है—

"शीतकोट संसार अथिर सब वीर रे।
माया छक सुखराज मरीची नीर रे।
मन मृग्गा सत जान प्यास धर दौरि है।
परिहां देखत जाय बिलाय रहे शिरफोर है।
शीतकोट की ओट पोट पाला तणी।
ज्यूं मृगतृष्णा नीर सीर दरिया घणी।
ऐसे यो संसार अथिर है नीर रे।
परिहां रामचरण भजि राम निर्भय सुख थीर रे।"[3]

---

१. केवलराम स्वामी तथा अन्य—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ९७।
२. वही फुटनोट, पृ० ९७-९८।
३. अ० वा० पृ० २५०।

स्वामी जी संसार को मन की कल्पना से अधिक नहीं समझते। 'मन कलिपत संसार' से 'यारी' न करने एवं उसे 'ज्ञानदृष्टि' से देखने की राय देते हैं, क्योंकि यह सम्पूर्ण सृजन मिथ्या है, सच्चा केवल सर्जक है—

"मन कलिपत संसार सूं, मति बाँधे यारी।
तु अलिप्त होय राम भजि, ज्यूं जय जय होय थारी।"[1]

× × ×

"ज्ञान दृष्टि कर देखिये, मन कलिपत संसार।
सिरज्या सो सब झूठ है, साचा सिरजणहार।"[2]

स्वामी रामचरण की दृष्टि में संसार अँधेरा बाग है जिसके बहुरंगी फूल-फलों के लिये मन भ्रमर हो जाता है—

"जगत अंधेरो बाग है, विविध फूलफल रंग।
रामचरण मन भँवर होय, जहाँ किया परसंग।"[3]

यह संसार मोह बधिक की 'जाली' (जाल) है जिसमें जीव-मृग फँसा हुआ है। इस जाल के फन्दों को राम जी के अलावा अन्य कोई नहीं काट सकता—

"मोह बिधक जाली जगत, मैं मृग पड़्या तामांहि।
फंद काटण कूं राम जी, तुम बिन दूजा नांहि।"[4]

बाग, वृक्ष और बागवान के प्रतीक द्वारा स्वामी जी ने जगत्, जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध स्पष्ट किया है—

"सृष्टि बाग वृछ जीव सब बागवान करतार।"[5]

'अणभो विलास' के तीसरे प्रकरण में कवि संसार को रात का अँधेरा और 'नरतन' को अल्पसी 'चाँदणी' कहता है—

"राम ही चरण जग रेंण अंधियार है।
चदांणी अल्पसी क्यूं ठिगायो।"[6]

---

१. अ० वा०, पृ० २५०।

'विश्वास बोध' के आठवें प्रकरण में 'जगत भक्त परख' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी रामचरण भक्ति और जगत् की अपनी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। भक्ति का अर्थ 'भयगत' और जगत् का अर्थ 'जयगत' उन्होंने किया है—

"भक्ति किया भैगत्त होइ अरु भक्ता भै नहि सोय।
जगत कह्या जयगत भया लछ जिमि बायक होय।"[1]

'समता निवास' के पञ्चम प्रकरण में स्वामी जी जगत् के प्रति भक्त या वैरागी को सचेत करते हैं। जगत् के प्रभाव में आकर भक्त वैसे ही नष्ट होता है जैसे खटाई के सम्पर्क से दूध फट जाता है—

"जगत उजाड़ै भक्त कूं, ज्यूं कांजी फाड़ै दूध।
भाँति भाँति फुसलाय कै, करि दे ताहि अबुद्ध।"[2]

वैरागी को कभी संसार का विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि संसार वैरागी का शत्रु होता है। शत्रु के घर में रहनेवाला लापरवाह होते ही उसका परिणाम भुगत लेता है वैसे ही संसार में वास करनेवाला वैरागी गाफिल होते ही विनष्ट हो जाता है। संसार उस पर तनिक भी दया नहीं करता—

"जे बैरागी संसार को कोइ मति कीजो विश्वास।
ज्यूं बैरी बाड़ै बास करि गाफिल रह्यां विनास।
गाफिल रह्यां बिनास शत्रु नहिं दया बिचारै।
दे स्वारथ स्वाद दिनाव ज्ञान वैरागर मारै।
रामचरण भजराम कूं जग सूं रहो उदास।
जे बैरागी संसार को कोइ मति कीजो विश्वास।"[3]

स्वामी रामचरण संसार या संसारी से पलायन नहीं करते, प्रत्युत् वैराग्य में बाधा होने के कारण उससे प्रेम न करने की बात कहते हैं—

"संसार्यां की प्रीति सूं, बिगड़ि जाय बैराग।
जत सत सुमरण नां रहै, बधै सवायां राग।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ६९४।
२. वही, पृ० ८९४।
३ वही।
४. वही।

स्वामी जी ने जगत् या संसार सम्बन्धी अपनी धारणा से सभी को अवगत कराया है। इस विशाल ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर विभिन्न प्रतीकों द्वारा संसार या जगत् को स्पष्ट किया है। साथ ही, संसार से उदास होकर वैराग्य-जीवन को मर्यादित रखने का उपदेश भी दिया है। स्वामी रामचरण ने अपने यौवन के प्रवेशद्वार पर संसारी जीवन के अनुभव के कड़वे-मीठे घूँटों का स्वाद लिया था, अतः वैरागी होने पर उन्होंने 'मन कल्पित संसार' के प्रति प्रीति न करने का सुझाव दिया है। संसार से विरक्त होकर पुनः संसार की ओर उन्मुख होना, कवि की दृष्टि में उचित नहीं—

"घरवासी घर में रहै, बनवासी बन मांहि।
घर त्यागै बैराग ले, तो पर घर बसिये नांहि।"[१]

मन

भारतीय साधना में मन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल लिखते हैं कि "इसकी गति बड़ी ही तीव्र और सर्वत्र है। यह कभी अहं तत्त्व के पास रहता है और कभी तद्भिन्न जगत् में फँसकर दूर हो जाता है। वसन्त की शोभा, ग्रीष्म का उत्ताप, पावस की फुहार, शरद् की चाँदनी, हेमन्त का शीत और शिशिर का पाला यदि किसी के लिये है तो इसी मन के लिये। प्रकृति का समस्त वैभव, उसका समस्त प्रेयस् स्वरूप व्यर्थ हुआ होता यदि उसका उपभोक्ता मानव-मन न होता।"[२] हिन्दी संत-साहित्य मे मन की पर्याप्त चर्चा हुई है। प्रायः सभी सन्तों ने मन पर सीधी दृष्टि डाली है। कबीर कभी मन को जीव को नचाने वाला बाजीगर कहते हैं तो कभी उसे 'खुदा का कहर' बताते हैं।[३] प्रायः सभी सन्तों ने मन की चञ्चलता, सांसारिकता के प्रति उसकी आसक्ति और उसकी अनियंत्रित स्थिति का वर्णन किया है। इतना ही नहीं, उसे विषय-वासना से विमुख कर ईश्वरोन्मुख करने का उपदेश भी सन्तों की वाणी का विषय है।

स्वामी रामचरण ने 'मन को अंग' तथा विभिन्न ग्रन्थों में मन सम्बन्धी विवेचना की है। 'साखी मन को अंग' में स्वामी जी मन को वह 'मस्करा' कहते हैं जो कभी नियन्त्रण नहीं स्वीकारता, वह 'राम नाम' में लीन न होकर विकारों मे रमता है—

"रामचरण मन मस्करा, कदे न आवै हाथ।
रामनाम लागै नहीं, रमे विकारा साथ।"[१]

मन अनन्त रूपोंवाला है जिससे कवि सजग रहने एवं 'शब्द' मे 'थिर' होने का सन्देश देता है। कवि को आशंका है कि मन के अनन्त रूपों मे जीव कहीं भ्रमित न हो जाये—

"मन का रूप अनंत है, तु मति बहकै बीर।
सबही हर्षां छाँड़िकै, होय शब्द में थीर।"[२]

मन माया में वैसे ही रमा हुआ है जैसे दूध में घी। मन को माया से विरत करने के लिये कवि 'कसणी' की आवश्यकता अनुभव करता है—

"मन माया में रमि रह्या, जैसे खीर घिरत्त।
रामचरण कसणीं बिना, होता नहीं निरत्त।"[३]

यह मन अनन्त लहरों वाला है मानो समुद्र है भक्तजन इसे नियन्त्रित कर लेते हैं और अज्ञानी उन्हीं लहरों में बह जाता है।

"मन कै लहरि अनन्त है, सायर के समांन।
रामचरण जन बस करै, बह्या जाय अज्ञान।"[४]

वायु वेग के सदृश इस मन का वेग है जिसमें संसार उड़ा फिरता है, किन्तु भक्तजन स्थिर रहते हैं—

"मन का वेग उतावला, वायु वेग साधार।
रामचरण जन थिर रहै, उड्या फिरै संसार।"[५]

यह पापी मन बन्धन लगाता है, गुरु निर्बन्ध करता है। मन के मत से चलनेवाला डूब जाता है, उसे 'गुरुपद' की प्राप्ति नहीं होती—

"मनवो पापी बन्ध लगावै, गुरु निर्बन्ध बतावे।
मन के मते चल्या सो बूड़ा, गुरुपद नहीं समावे।"[६]

---

१. अ० वा०, पृ० ४८।
२. वही।
३. वही।
४. वही।
५. वही।
६. वही।

इसलिए इस मन का विश्वास नहीं करना चाहिए। कवि तो यहाँ तक कह जाता है कि जब तक शरीर में साँस है, मन अविश्वास के योग्य है।

"मन विश्वास न कीजिये, जब लग तन में स्वास।
रामचरण मृतक जीवे, गाफिल रहै न दास।
रामचरण ई मन्न को, ना करिये इतबार।
चढ़ता बहुतु साधन चढ़ै, पड़तां लगै न बार।"[1]

'कुण्डल्या मन को अंग' में कवि माया के रंग में रँगे मन को सिन्धु की तरङ्ग सदृश बतलाता है। स्वप्न में भी यह मन अचञ्चल नहीं होता, प्रत्युत् घर-घर डोलता फिरता है। यह 'कपट की गाँठ' रखता है और कभी सत्य नहीं बोलता, राम को अंगीकार नहीं करता, ऐसा है यह भोंदू मन—

"मन भोंदू भरमत रहै, जैसे सिन्धु तरंग।
रामनाम राचै नहीं, रचि माया कै रंग।
रचि माया के रंग स्वप्न में घर घर डोले।
रखै कपट की गाँठ साच कबहूँ नहिं बोलै।
अर्श पर्श होय राम सूं, मेलत नांही अंग।
मन भोंदू भरमत रहै, जैसे सिंधु तरंग।"[2]

'सुख विलास' के तीसरे प्रकरण में स्वामी जी मन से सदैव सचेत रहने की बात कहते हुए मन को भक्ति का भेदन करने वाला पशु बतलाते हैं—

"ए मन पशु समान है भेलै भक्ति खेत।
रामचरण तातें रहो या मन सूं सदा सुचेत।"[3]

'जिज्ञास बोध' के एकादश प्रकरण में स्वामी जी मन को शत्रु घोषित करते हैं—"मन शत्रु मर्दन करे जे जन शूराजांणि।"[4] इसी सन्दर्भ में स्वामी जी 'मनदल' की कल्पना करते हैं। 'मनदल' शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने मन को राजा, मोह को उसका मन्त्री और मदन को अधिकारी बतलाया है—

---

१. अ० वा०, ४८।
२. वही, पृ० १७३।
३. वही, पृ० ३४२।
४ वही, पृ० ५८०।

"मन राजा मंत्री जु मोह मदन तणो अधिकार।
जाकी सेना जांणिबो तोहि कहूं निरधार।"[१]

इस राजा की सेना में कौतुक, स्वाद और श्रृंगार सभी हैं, जिनके मोह और मदन सरदार हैं। ये दोनों सरदार संसार को बाँधे हुए हैं। सन्तजन, वीर सैनिक हैं जिन्होंने राम शब्द की तलवार से इनको जीत लिया है—

"कौतुक सरक सनेहता, षटरस स्वाद सिंगार।
नाना हरस हराम की, जांको मोह मदन सिरदार।
जाकूं मोह मदन सिरदार जगत कूं जेर किया है।
संत सिपाई शूर जिनों ये जीत लिया है।
राम शब्द समसेर बल तिनके भजन करार।
कौतुक सरक सनेहता षटरस स्वाद सिंगार।"[२]

इसीलिए स्वामी जी कहते हैं—

"अरि दल जीतै शूरवारु मन दल जीतै संत।"[३]

'विश्वास बोध' के दसवें प्रकरण में मन की गति का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने मन को काया कस्बा के राजा चेतन का मन्त्री कहा है। यह मन मन्त्री निरंकुश है, मनमानी करता है, राजा से डरता भी नहीं। केवल सावधान के वश में यह रहता है, गाफिल के वश मे नहीं।

"मन मंत्री चेतन नरप काया कस्बा मांहि।
सावधान सो बशि रखै गाफिल कै वश नांहि।
गाफिल के वश नांहि आपणा माया करिहै।
चालै बारा बाट नरप कै भय नहिं डरिहै।
राखि सुचेती रामचरण मति गाफिल होइ जांहि।
मन मंत्री चेतन नरप काया कस्बा मांहि।"[४]

'विश्राम बोध' के द्वितीय विश्राम मे कवि मन को तन घोड़ा के सवार के रूप मे चित्रित करता है। जैसे सवार घोड़े को जिधर चाहता है ले जाता है, उसी प्रकार मन, तन को विभिन्न दिशाओं में दौड़ाता है—

१ अ० वा०, पृ० ५८०।
२. वही।
३ वही।
४. वही, पृ० ७०७।

"तन घोड़ा असवार मन, ज्यूं फेरैं ज्यूंही फिरन्त।
जहाँ लग्न असवार की, जा दिशि दोड़ करन्त।"[1]

कवि मन की चञ्चलता पर विचार करता है और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि तन को निश्चल स्थिर करके रामनाम का उच्चारण किया जाय—

"मन कूं चंचल देखि कै, अन्तर यह विचार।
तन नहचल थिर राखि कै, रसना राम उचार।"[2]

मन की लहर में वही बहते हैं जो राम का स्मरण नहीं करते—

"जे मन की लहर्‌यां बहै जो सुमरैं नाही राम।"[3]

मनभंग-चितभंग

'समता निवास' के सप्तम प्रकरण में स्वामी रामचरण मन और चित्त को क्रमशः 'मनोरथ' और 'चितवन' से सम्बन्धित करते हैं। चित्त चितवन से चंचल और मन मनोरथ से संलग्न रहता है। ये दोनों वैराग्य के मार्ग में बड़े विघ्न हैं—

"चित चंचल चितवन तैं मन रहै मनोरथ लीन।
ये बड़े विघ्न वैराग नैं कोइ लखै साध परबीन।
कोइ लख साध परबीन इनूं सू तर्क उपावै।
आन भरमना मान राम सूं चित्त लगावै।
रामचरण इ साधना होय मनोरथ खीन।
चित चंचल चितवन तैं मन रहे मनोरथ लीन।"[4]

भगवान् के दर्शन के लिए मन और चित्त पर नियंत्रण अनिवार्य है। प्रतीक के सहारे कवि यहाँ कहता है कि 'बदरी दर्शन' के लिये 'मनभंग' और 'चितभंग' के पर्वतीय अड्डों को पार करना पड़ेगा—

"आडा बदरीनाथ कै, मनभंग चितभंग दोय।
जो कोइ ये पर्वत चढ़ै, तो बदरी दर्शण होय।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० ७८६।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ९०५।
५. वही।

कवि की दृष्टि में 'रामभजन' में दो मुकाम आते हैं—चित का चितवन और मन का मनोरथ—ये दो ऊँचे पर्वत हैं।[१] इन्हें पार करना चितभंग, मनभंग है। 'मनभंग मुसकिल बाट' है, जिस पर आते-जाते अभिमान का खेद चढ़ता है—

> **"मन भंग मुसकिल बाट चढ़त असलाक अनेका।**
> **आवत जावता खेद चढ्यो अभिमान विशेषा।"[२]**

निजमन की कल्पना

स्वामी रामचरण ने ग्रन्थ 'मनखण्डन' में मन से अलग 'निजमन' की कल्पना की है। सप्त धातु निर्मित शरीर-स्थान का राजा 'चेतन' और प्रधान मन्त्री मन है। इस मन के तीन योद्धा (सत, रज, तम) बड़े प्रबल हैं, इनमें से दो—रज, तम—समझाने पर भी नहीं मानते। मन के साथ पाँच प्यादे भी हैं। सभी अपना-अपना भोग चाहते हैं और इस प्रकार काया नगरी का बोझ बढ़ता जाता है। तब चेतन राजा ने एक युक्ति सोची और तदनुसार मनखण्डन के लिये 'निजमन' का विस्तार किया—

> **"तब नरपति इक मतो विचार्यो।**
> **मन खण्डन निज मन विस्तार्यो।"[३]**

यह 'निजमन' चेतन राजा का गुप्तचर है, वह मन्त्री मन की सब चोरी जानकर राजा से बतला देता है। यह निजमन राजा के हुजूर में सदैव रहता है—

> **"मन की चोरी निज मन पावै।**
> **नरपति आगे सब गुदरावै।**
> **नरपति को निज सदा हजूरी।**
> **परकृति मन मुख बांधै धूरी।"[४]**

कवि मन को 'परकृति मन' कहकर 'निजमन' से उसे भिन्न व्यक्त करता है। 'निजमन' 'परकृति मन' से कहता है कि मैं तो राजा का आदेश मानूंगा और तेरी चोरी पकड़ूंगा। तेरा भोग राजा के दुःख का कारण है, तेरे ही कारण राजा को बार-बार गर्भ में आना पड़ता

---

१. "यूं रामभजन कूं रामचरण, आडा कहिये सोय।
चित चितवण मन मनोरथां, ये ऊँचा पर्वत दोय।" अ० वा० पृ० ९०५।

२. वही।

३. वही, पृ० ९८१।

४. वही।

है। 'निजमन' मन के साथ सदैव लगा रहता है और एक क्षण के लिये भी उसका सङ्ग नहीं छोड़ता—

"मैं तो हुकम राय को करि हूँ।
तेरी चोरी कागद धरि हूँ।
तेरे भोग राय दुख पावै।
बार बार ग्रभ मांही आवै।
× × ×
निजमन लागा मन को लार।
संग न छांड़ै एक लगार।"[1]

निजमन आगे मन्त्री मन (परकृति मन) से कहता है कि मेरे स्वामी ने मुझे, तुझे चोरी करते पकड़ने के लिये भेजा है। मैं तेरे पाँचों प्यादों को मार डालूँगा और रज तथा तम के दो टुकड़े कर डालूँगा।

"मेरै धणी बिदा कियो मोहि।
चोरी करता पकड़ूं तोहि।
तेरे पाँच पयादा मारूं।
रज तम दोय टूक करि डारूं।"[2]

विषय-वासना मन का भोग है पर निजमन के लिये रोग है—

"विषय वासना मन का भोग।
निजमन इनकूं जांणै रोग।"[3]

मन माया की उत्पत्ति का कारण है जबकि निजमन दृढ़ वैराग्य को जन्म देता है—

"मन वो माया कूं उपजावै।
निजमन दृढ़ वैराग उपावै।"[4]

निजमन जीव और ब्रह्म को एक करता है और मन की चञ्चलता को निश्चलता में परिवर्तित करता है—

---

१. अ० वा०, पृ० ९८१।
२. वही।
३. वही।
४. वही।

"जीव ब्रह्म निज एको करै।
चंचल मन नहचल में धरै।"[१]

'परकृति मन' विश्वास योग्य कदापि नहीं। इसके अनुसार चलने पर अनन्त योनियों में भरमना पड़ता है।[२] ऐसे मन का खण्डन करने का स्वामी रामचरण उपदेश देते हैं। यह शिक्षा उन्हें 'सत्गुरु' से मिली है।

"ऐसैं मन कूं खण्डो भाई।
यह सीख सतगुरु सूं पाई।"[३]

निजमन द्वारा मन खण्डन तो हो जायगा पर मन का शुद्ध रूप? स्वामी जी ने 'विश्राम-बोध' के द्वितीय विश्राम में आदर्श मन की कल्पना निम्नलिखित पंक्तियों में की है—

"नीति रीति परतीति जीत मन सोय रे।
रामभजन परताप कामना खोय रे।"[४]

मन को आदर्श रूप प्राप्त करने के लिए उसमें परिवर्त्तन अपेक्षित होता है। यह परिवर्त्तन सत्गुरु के उपदेश द्वारा संभव है—

"रामचरण मन उलटिया, सतगुरु के उपदेस।
विषय विकार सब छांड़ि कै, निर्गुन किया भेस।"[५]

'कवित मन को अंग' में स्वामी जी मन से भाईचारा स्थापित करते हुए निम्न-लिखित सीख देते हैं—

"रे मन मेरी सीख मान हिरदै धरि भाई।
इन्द्र्यां केरा भोग भोगियां नांहि भलाई।
समझि सैण सुजांण राम रटि अमृत पीजे।
जन्म-मरण मिट जाय ब्रह्म मिल जुगजुग जीजे।
रामचरण ऐसी कियां नरतनु लागै ठौर।
अब कै अवसर चूकियो तो मूरख मति को जोर।"[६]

---

१. अ० वा०, पृ० ९८१।
२. "जो परकृति मन के चलै सुभाय—तो अनन्त जूणि में गोता खाय।"
३. वही पृ० ९८२
४. वही, पृ० ७८६।
५. वही, पृ० ४८।
६. वही, पृ० ११९।

स्वामी रामचरण ने मन की बड़ी विशद चर्चा अपने साहित्य में की है। निष्कर्षतः वे मन को अनन्त रूप, मायालिप्त, वायुवेग सदृश तीव्रगति, सागर की लहरों सदृश चञ्चल, स्वेच्छाचारी मन्त्री आदि अनेक रूपों में देखते हैं और रामभजन द्वारा उसे नियन्त्रित करने का उपदेश भी देते हैं। निजमन की कल्पना करके उन्होंने मन को अनुशासित करने की बात कही है। स्थान-स्थान पर उन्होंने मन को मनसा रहित होने का सन्देश भी दिया है। एकाव स्थल पर उन्होंने मन को 'पापी' भी कह डाला है। मन सतगुरु के उपदेश से परिवर्तित भी होता है। इसलिये स्वामी जी ने मन को खण्डित करने की बात कही है। आत्मा व्याधि रहित है, व्याधि रोग मन की उपाधियाँ हैं। जिन्होंने ये उपाधियाँ छोड़ दी हैं, वे शुद्धस्वरूप हैं—

"आतम कूं नहीं व्याधि, व्याधि रोग मन मानिये।
जिन ये तजी उपाधि, शुद्ध स्वरूप ते जाणिये।"[1]

काल

स्वामी रामचरण ने काल को 'महाबलवन्त', 'महाप्रचण्ड' आदि विशेषणों से विभूषित किया है। सन्तों ने काल से बचने के लिये सदैव सचेत किया है—'काल महाबलवंत मुख' है, जो इस संसार में उत्पन्न हुआ, काल के मुख मे गया। काल से केवल वे ही बचते हैं जो अविगत रत हरिजन हैं—

"काल महाबलवन्त मुख, उपज्या सबै पड़ंत।
रामचरण अविगतिरता, उबरै हरि का संत।"[2]

पावक, तेल, दिया-बत्ती के दृष्टान्त द्वारा कवि काल की विनाशक-शक्ति का वर्णन करता है। जैसे पावक, तेल को दिया-बत्ती की शैली द्वारा निगलता है, वैसे ही काल मनुष्य को स्वार्थ-कर्म के माध्यम से निगल लेता है। जैसे-जैसे बाती सरकती है, तेल जलता है, वैसे ही कर्म के विकास द्वारा मनुष्य हँसते काल का ग्रास बनता है—

"पावक ग्रासै तेल कूं, दीवा बाती ढंग।
काल गरासै आव नित, स्वार्थ कर्मा संग।
ज्यूं सरकाव बाति कूं, त्यूं त्यूं तेल बलै।
रामचरण बधतां कर्म, हंसि हंसि काल गिलै।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० ९८२।
२. वही, पृ० ३३।
३. वही, पृ० ३२।

काल की चक्की आठो याम चलती रहती है, इस चक्की में काल देव-मानव सभी को बिना नाम से परिचित हुए पीस डालता है—

"चक्की चालै काल की, निसि दिन आठूं जाम।
सुर नर सबही पीसिया, रामचरण बिन नाम।"[१]

इस 'काल महाबली' से ब्रह्मा भी डरते हैं तो फिर मानव की क्या बिसात है?

"ब्रह्मा डरपैं काल सूं, तो नर की कितियक आव।
रामचरण भज राम कूं, ज्यूं जम का लगै न दाव।"[२]

केवल एक 'अकाल शब्द' ही भयरहित है, जिसे यह शब्द प्राप्त हो जाता है वह भय-रहित हो जाता है। किन्तु यह मिलता किसे है? उसे ही मिलता है जो भ्रम-जन्जाल से मुक्त हो जाता है। भ्रम-जन्जाल से मुक्त होने पर ही काल का भय मिट जाता है—

"काल तणां भै मिट गया, छूटा भर्म जंजाल।
रामचरण निरभै भया, पाया शब्द अकाल।"[३]

यह 'महाप्रचण्ड काल' किसी को नहीं छोड़ता, यह काल ही मृत्यु है। राजा, राणा, देवता सभी काल के वश में हैं। हजार या दस हजार वर्ष भी यदि यह तन रहता है तो भी उसे काल से छुटकारा नहीं। देह धारण करने वाले अवतार, सुरासुर सभी मृत्यु को प्राप्त होते हैं—

"काल महापरचण्ड न छोड़ै कोय रे।
राजा राणा देव सकल बस होय रे।
उबरै दास निरास राम की ओट रे।
परिहाँ रामचरण तजि ओट खाय सब चोट रे।
सहस वर्ष दस सहस लखूं भी तन रहै।
देह धारि अवतार सुर असुर नां रहै।
मृत्यु लोक कै मांहि मृत्यु सबसूं बली।
परिहां रामचरण भजि राम नरूं की क्या चली।"[४]

---

१. अ० बा०, पृ० ३३।
२. वही।
३. वही, पृ० ३२।
४. वही, पृ० ८२।

'सवैया काल को अंग' में स्वामी जी काल को महाविनाशक के रूप मे देखते हैं। काल हाथ में कुदाल लेकर संसार के विभिन्न गढ़ों को गिराता फिर रहा है। संसारी जनों का आखेट वैसे ही करता है, जैसे चूहे का आखेट बिल्ली करती है—

"काल कुदाल लियां कर मैं निशिवासर ही गढ़ ढावत है।
दोइ स्वास उस्वास पड़ै दरबा बसि ताहि मैं क्यूं सुख पावत है।
छिन मांहि गिराय करै चकचूरण मूसै मंजारी ज्यूं ध्यावत है।
कहै रामचरण्ण मिथ्या फिट् जीवण राम सगो बिसरावत है।"[1]

काल ने संसार पर 'विधि निषेध' का जाल फैला दिया है जिसमे नर-नारी होड़ लगाकर फंस रहे हैं।[2] यह काल अहेरी, है, महाबलवन्त है, सभी जन्तुओं को मारकर परास्त कर देता है। "काल महाबलवन्त जन्तु सब मारि पछाड़ै।"[3] इसी सन्दर्भ मे कवि काल को ममत्व का जाल पसारते देखता है। यह जाल सुर, नर, असुर एवं अनेक जीवों पर वह डाल देता है। यह बाल-वृद्ध-तरुण सभी का खोज-खोजकर भक्षण करता है, छिपने से कोई बच नहीं पाता—

"काल बड़ो बलवन्त ममत की जाल पसारी।
सुर नर आसुर ओर जीव सबहिन पर डारी।
कहा वृद्ध अरु तरुण बाल की बाड़ न आवै।
हेरि हेरि कै खाय छिप्यां कहुं बचन न पावै।"[4]

इसी आशय की पंक्तियाँ 'समता निवास' के नवम प्रकरण में भी मिलती हैं—

"काल पसारी सृष्टि पर, मोह ममत की जाल।
जासैं उलझ्या जीव बुधि, बिसर रामरिछपाल।"[5]

'सुखविलास' में 'काल' शीर्षक के अन्तर्गत कवि संसारी जीव को 'मेरी-मेरी' करते देखता है, तभी काल आ पहुँचता है और उसे पकड़ ले जाता है।

---

१. अ० वा०; पृ० ९१।
२. "विधि निषेध की जाल जगत पर काल पसारी।
करि करि होडाहोड मांहि उलझे नर-नारी।"—वही, पृ० ११७।
३. वही।
४. वही, पृ० ११८।
५. वही, पृ० ९२३।

"मेरी मेरी करत ही आय पहूंचै काल।
प्रांण पकड़ ले जावतां कोइ न होय रिछपाल।
कोई न होय रिछपाल खड़ा देखै सब रोवै।
क्या आपणा क्या और किसी सूं जोर न होवै।
रामचरण सत राम है ओर निकामी जाल।
मेरी मेरी करत ही, आय पहूँचै काल।"[१]

इस ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी काल की कैद में हैं। अनेक सूक्ष्म एवं स्थूल तनधारियों को काल नित्य मारता है। फिर भी अन्धा मानव भौतिक कर्मों से दूर न होकर उसी के बन्धन में पड़ जाता है—

"काल सूं कूंण ब्रहमण्ड में ऊबरै जीव जेता सबै जेर किया।
सुखिम अरु थूल तन धार केता कहूं नित्य मारै अरु मार लीया।
तोहु नर अंध कोउ धंध तर्कै नहीं बंध में परत बेकाम कूरा।
देख संसार का ह्वाल तोसूं कहूं कोई घर रोज कोइ बजै तूरा।"[२]

महाप्रचण्ड काल के समक्ष संसार के सभी रिश्ते-नाते महत्त्वहीन हो जाते हैं। काल पिता के समक्ष पुत्र को धर दबाता है पर पिता का कोई जोर नहीं चलता, शिष्य को गुरु के सामने ही पकड़ लेता है पर गुरु बेबस देखता रहता है, खसम के सामने ही जोरू को खींच ले जाता है, स्वामी देखता रहता है और चाकर को पकड़ कर भाग जाता है। सुर, नर, असुर सभी उसका स्वर सुनकर काँप जाते हैं। केवल राम में लीन जन होनहार के बल से अभय होकर रहते हैं—

"काल दबावै पूत पिता को जोर न कोई।
पकड़ै आय मुरीद पीर को नहीं बसाई।
जोरू को ले जाय खसम को जोर न लागै।
ठाकर देखत रहै पकड़ चाकर कूं भागै।
सुर नर आसुर हाकसूं सुणत अगाऊ थरहरै।
रामरता जन राम का होतब के बल नां डरै।"[३]

काल की गर्जना से तीनों लोक धड़क उठता है।[४] उसके कार्य-कलापों के समक्ष ब्रह्मा भी अधीर हो उठते हैं, फिर उनकी सृष्टि का क्या ठिकाना जिसके वे मालिक हैं—

---

१. अ० वा०, पृ० ४१७।
२. वही, पृ० ४१७।
३. वही, पृ० ४१८।
४. "काल गलारै गरज कै, धड़कै तीनूं लोक"—वही।

"काल गिलारै आय कै तब ब्रह्मा धरै न धीर।
तो ब्रह्म सृष्टि की कहाचली जिनको ब्रह्मा मीर।"[1]

जैसे तीतर को बाज अचानक आकर दबा लेता है, वैसे ही काल अचानक मनुष्य को दबाकर पकड़ लेता है और वह अवश कुछ नहीं कर पाता। सृष्टि के सभी साज पड़े रह जाते हैं।[2] ग्रन्थ 'समता निवास' में भी कवि इसी आशय से पूर्ण पंक्तियाँ लिखता है—

"काल पकड़ ले जायगा ज्यूं तीतर कूं बाज।
रामचरण माया विभव पड्या रहै सब साज।"[3]

स्वामी रामचरण ने सृष्टि एवं सृष्टिकर्त्ता दोनों को काल की प्रचण्डता के समक्ष नत, अवश एवं निर्बल पाया है। इस महावली के समक्ष किसी का जोर नहीं चल पाता। यह समस्त ब्रह्माण्ड, काल का भोजन है। इस काल से वही निर्भय रहता है जो 'अकाल शब्द' पा जाता है। इसीलिए स्वामी जी पल-पल ममत्वहीन होकर राम को स्मरण करने का उपदेश देते हैं, इस महाप्रचण्ड योद्धा से बचने का यही एकमेव उपाय है क्योंकि इससे धन का व्यय, औषधोपचार या तलवार की धार कोई नहीं बचा सकते। 'समता निवास' नवम प्रकरण की निम्नलिखित पंक्तियाँ उपर्युक्त आशय की घोषणा करती हैं—

"काल महा परचण्ड सूं बचै न कोई विचार।
धन खरचो भेषज करो भल पकड़ो तरवार।
भल पकड़ो तरवार जोध सूं जोर न कोई।
धड़कै तीनूं लोक डरै ब्रह्मादिक सोई।
तातें ममत न बाँधिये पलपल राम संभार।
काल महा परचण्ड सूं बचै न कोई विचार।"[4]

मोक्ष

मोक्ष सामान्यतया मुक्ति के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। डॉ० वासुदेव शर्मा लिखते हैं—"मुक्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित धारणाएँ भारतीय समाज के मध्यकाल में प्रचलित थीं—

(१) जगत्नाश, आवागमन, जगत्सन्ताप और क्लेश का उच्छेद अथवा पूर्णनाश ही मुक्ति है, अत्यन्त क्लेशाभाव और क्लेशोच्छेद-स्वरूप।

---

१. आ० वा०, पृ० ४१८।
२. 'काल दबावै आय कै, ज्यूं तीतर कूं बाज।
तुरत पकड़ि ले जायगा, पड्या रहै सब साज।"—वही, पृ० ४१७।
३. वही ९२३।
४. वही।

ज्ञान सदा तिरपत्ति है, सारो बात संतोख।
रामचरण रत राम सूं, जो जन जीवन मोख।"[१]

'जीवनमृतग को अंग' में स्वामी रामचरण लिखते हैं कि जीवनमुक्त पाखण्ड एवं अभिमान को छोड़कर रामरत होता है—

"जीवत मृतग होय रहै, तजि पाखण्ड अभिमान।
रामचरण मन राम रत, सदा रहै गलतांन।"[२]

जीवनमुक्त का हाथ परमात्मा पकड़ता है। जीवनमुक्त रात दिन भगवान के सम्पर्क में बना रहता है—

"ऐसा होय हरि कूं भजै, तब हरि पकड़ै हाथ।
निसिबासर संग ही रहै, जन को तजै न साथ।"[३]

'सजीवण को अंग' में कवि ने बतलाया है कि देह के गुणों का विस्मरण ही 'सजीवण मूल' है। इसी सप्राणता में कवि का विश्वास है—

"रामचरण सतगुरु मिल्या, दिया सजीवण मूल।
सिख साध्या विश्वास करि, गया देहगुण भूल।"[४]

यह सप्राणता या अमरता जिसे कवि सजीवण या सरजीव कहता है, रामभजन से प्राप्त होती है—

"गुण जीतै रामैं भजै, सोही सजीवण जांन।
गुण पोखै रामैं तजै, सो सब मृतक समान।"[५]

तीनों लोक में केवल राम का नाम 'सजीवण' (अमर) है, कवि की दृष्टि में 'सजीवण' होने के लिये निशिदिन नामोच्चारण अपेक्षित है—

"रामचरण तिहुं लोक में, एक सजीवण नाम।
हुवा सजीवण चाहिए, तो निशि दिन कहिए राम।"[६]

---

१. अ० वा०, पृ० २५२।
२. वही, पृ० २८।
३. वही।
४. वही।
५. वही, पृ० २९।
६. वही।

बिना रामभजन के जीव चितेरे की पुतली है, किन्तु रामभजन से वही जीव 'सजीवण सीव' हो जाता है।

"लिखा चितेरे पूतली, यूं राम भजन बिन जीव।
रामचरण रामैं भजैं, सोही सजीवण सीव।"[१]

'सजीवण ब्रह्म' का ध्यानी सजीवण जन्म-मरण, आवागमन से मुक्ति पा जाता है—

"भया सजीवण नां मरैं, ब्रह्म सजीवण ध्याय।
रामचरण जामण-मरण, वे नहिं आवैं जाय।"[२]

स्वामी जी के अनुसार संसार में जन्म लेने वाला मनुष्य काल के वश में होकर मृत्यु को वरण करता है, किन्तु जो 'अकाल शब्द' से मिल जाते हैं वे 'सजीवण' होते हैं—

"जो उपज्या सो काल बसि, सबही मृत्तक जोय।
मिलैं अकाली शब्द सूं, सोही सजीवण होय।"[३]

काम-क्रोध पर विजय, लोभ-मोह की पराजय, मैं-तैं का दाह, स्वामी जी के अनुसार सरजीव विचार (सप्राण या अमर विचार) हैं—

"काम क्रोध कूं जीतिया, लोभ मोह गया हार।
रामचरण मैं तैं जली, सो सरजीव विचार।"[४]

भौतिक सुखों के त्याग, रामभजन के प्रति स्नेह भाव से सजीवण, ब्रह्म में मिल जाता है और इस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति उसे हो जाती है—

"सकल स्वाद तन का तजैं, रामभजन सूं नेह।
मिले सजीवण ब्रह्म सूं, तो फिर नहीं धारैं देह।"[५]

स्वामी रामचरण के साहित्य में मोक्ष की कल्पना जीवन-मुक्ति मात्र नहीं है, वरन् जीवनमुक्ति या सरजीवता (सप्राणता) इसलिए है कि ब्रह्म से एकता स्थापित हो सके और

---

१. अ० वा०, पृ० २९।
२. वही।
३. वही।
४. वही।
५. वही।

जीव को भौतिक शरीर से छुटकारा मिल जाय। इसी मोक्ष को स्वामी जी अपने ग्रन्थ 'राम रसायण बोध' के पञ्चम प्रकरण में 'अगमपद' नाम से अभिहित करते हैं। यह 'अगमपद' 'अहम्' की समाप्ति कर ब्रह्म में मिलकर ब्रह्मरूप हो जाना है। इस 'अगमपद' की प्राप्ति से जीव जन्म-मरण और जरा से मुक्त हो जाता है—

"आपा मेट आप में मिलिया, आप रूप होइ रहिया।
जनमैं मरै न जरा संतावे, इसा अगम पद लहिया।
वा पद की तारीफ न आवै, करिये कहा बखांना।
गुणातीत पचरंग न वाकै, अंग संग नहि जांना।
अंग न संग भंग नहि भिनता, सर्वंग पूरण स्वामी।
निर्विकार निर्लेप निरंजन, परिपूरण धण नामी।
छोट न मोट न छाना परगट, घटघट अघट समाया।
अन्दर बाहर एक समांना, जहां न व्यापै माया।
माया पारब्रह्म अविनाशी, सद सुख रासो राया।
रमता राम धाम धर न्यारा, भजन करे कर पाया।
सो अब लीन सदाता मांही, कबहु न धरहैं काया।
रामचरण बलिहारी गुरु की, जिन ये भेद बताया।
पाया भेद खेद सब भागी, जागी अणभै ऐसी।
मैं भ्रम गया रह्या था सोही, कहिये सो गति कैसी।
अकथ कहांणी सतगुरु दाखी, कीन्हीं महर निधाना।
रामचरण नित चरणां शरणैं, पाया अध्यातम ज्ञाना।"[१]

स्वामी रामचरण द्वारा वर्णित 'अगमपद' की कल्पना 'परब्रह्मपद' से अभिन्न है। उनके सम्पूर्ण अध्यात्मज्ञान का सार इस पद की प्राप्ति ही है। इस 'अगमपद' या 'परब्रह्मपद' में लीन हो जाना ही मोक्ष है। मन-वाणी से परे इस 'परब्रह्मपद' या मोक्ष तक पहुँचने का माध्यम गुरु है। स्वामी रामचरण की निम्नलिखित पंक्तियाँ उक्त कथन की पुष्टि करती हैं—

"पहुँचाये पर ब्रह्म पद, मन वाणी के पार।
गुरु मिलियां सूं ऊपजै, ज्ञान अध्यातमसार।"[२]

---

१. अ० वा०, पृ० ९७३।
२. वही, पृ० ९७४।

साधना-पक्ष

भारतीय साधना-जगत् में गुरु की महत्ता असन्दिग्ध है। सगुण-निर्गुण, सभी उपासना-पद्धतियों में गुरु की अनिवार्यता देखी जाती है। सन्त-साहित्य में गुरु, साधक का पथ-निर्देशक या प्रदर्शक माना गया है। साधना जगत् में उसकी अनिवार्यता पर टिप्पणी करते हुए डॉ० बड़थ्वाल लिखते हैं कि—"साधक चाहे जितने भी साधुओं का सत्संग करे, उसे अपनी आध्यात्मिक शक्ति में उत्तेजना लाने के लिए उनके साथ केवल कभी-कभी संसर्ग में आने से ही काम नहीं चल सकता। उन्हें एक ऐसे डायनमो की आवश्यकता है जो उन्हें अनवरत रूप में अभीप्ट विद्युत् शक्ति की धारा पहुँचाता रहे। उसे चाहिए कि किसी एक साधु-विशेष के साथ सदा के लिए संबंध स्थापित कर ले जिससे वह अपनी आध्यात्मिक साधना में बाधा उपस्थित होने की कभी आशंका आने पर पथ-प्रदर्शन की सहायता प्राप्त कर सके।"[1]

उपर्युक्त कथन इस तथ्य का द्योतक है कि आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में गुरु की आवश्यकता अपरिहार्य है। साधनारत साधक को प्रतिपल उत्साह ग्रहण करने के लिये गुरु एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण उत्साह-केन्द्र है। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में भी गुरु का महत्त्व आँका गया है। "बौद्ध सम्प्रदाय में बुद्ध, जैनियों में जिन, इस्लाम के पीर-पैगम्बर और ईसाई धर्म के फादर पाल वही महत्त्व रखते हैं जो महत्त्व हिन्दू धर्म के अन्तर्गत गुरु को प्राप्त है।"[2] डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल के इस कथन के प्रति पूर्ण आस्था व्यक्त करते हुए निवेदन है कि भारतीय साधना-प्रणाली में गुरु, पीर-पैगम्बर और पाल से बहुत आगे हैं। भारतीय 'गुरु' कभी ईश्वर के समक्ष और कभी उससे भी अधिक महिमामय बतलाये गये हैं, जैसा कि संत कबीर ने कहा है—'हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर।'

डॉ० शुक्ल ने अपने शोध-प्रबन्ध 'संत-साहित्य' में 'गुरु' शब्द की व्याख्या में अद्वैतार्कोपनिषद् की पंक्तियाँ उद्धृत करके बतलाया है कि, "**गु शब्द का अर्थ है अंधकार और रु शब्द का अर्थ है निरोधक। जो अंधकार का विनाश करता है वही वास्तव में गुरु है।**"[3]

> **गु शब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः।**
> **अंधकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते। —अद्वैतार्कोपनिषद्**[4]

---

१. डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, नवीन संस्करण, पृ० २३६-३७।
२. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल : संत साहित्य, पृ० १७६।
३. वही, पृ० १७८।
४. वही, पृ० १७८ का फुटनोट।

हिन्दी-सन्त-साहित्य में गुरु की विशद चर्चा हुई है। विभिन्न साधना-पक्षों में गुरु की आवश्यकता समानरूप से आँकी गयी है। चाहे योग-साधना हो या भक्ति-निरूपण गुरु सभी स्तरों पर वर्तमान दीखता है। स्वामी रामचरण ने 'गुरुदेव को अंग' एवं विभिन्न ग्रन्थों में गुरु की चर्चा की है। बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन करने पर भी वे गुरु के गुणों का पार पाने में समर्थ नहीं हैं। उसके अनन्त उपकारों के सामने वे नत-मस्तक हैं––

''कहा वरणूं बिसतार कर, सतगुरु गुणां न पार।
रामचरण दे राम धन, अनन्त किया उपगार।''[1]

सासांरिक वासना विष है जो रोम-रोम में परिव्याप्त है। स्वामी जी की दृष्टि में गुरु ही वह गारडू (विष-वैद्य) है जो 'रामसुधारस' के द्वारा 'निरविष' कर सकता है—

''रोम रोम विष से भर्या, निरविष कैसें होय।
राम सुधा रस पायके, सतगुरू करि हैं सोय।
ऐसी कोई न कर सकै, सो सतगुरु सैं होय।
रामचरण गुरु गारडू, सब विष डारैं धोय।''[2]

स्वामी जी सत्गुरु को इन्द्र के समान बतलाते है जो बिना भेदभाव के ज्ञान की वर्षा करता है, अब भक्तहृदय की भूमि के अनुरूप ही उसमें बेलि का विकास होगा—

''सतगुरु बरस्यां इन्द्र ज्यूं, दुबध्या रखी न कोय।
जैसी साखा नीपजै, तिसी भूमिका होय।''[3]

खाली खेत सदृश अचेत शिष्य के हृदय पर गुरु ज्ञान की वर्षा प्रभावहीन ही सिद्ध होगी—

''घमंड घमंड घन बरसिया, ऋतु बिन खाली खेत।
यूं रामचरण गुरु क्या करै, जो सिख होय अचेत।''[4]

अतः शिष्य को उस वर्षा का जल ग्रहण करने के लिये जिज्ञासु होना आवश्यक है, तभी सत्गुरु-मेघ की ज्ञान-वर्षा 'निरफल' नहीं होगी—

---

१. अ० वा०, पृ० ३।
२. वही, पृ० ४।
३. वही।
४. वही।

"सतगुरु बरसै मेघ ज्यूं, शिख जिज्ञासी होय।
रामचरण तब नीपजैं, निरफल जाय न कोय।"[1]

भक्ति की खेती जिज्ञासु के शुद्ध हृदय रूपी खेत मे नाम का बीज डालने से होती है। इस बीज से ब्रह्मज्ञान का फल तभी उत्पन्न होगा जब गुरु की कृपा का जल पड़ेगा—

"रामचरण करसण भक्ति, सुद्ध हिरदो सू खेत।
नाम बीज गुरु महर जल, ब्रह्मज्ञान फल देत।"[2]

सत्गुरु आलोकमय है। वह मन को माया से विरत कर ब्रह्ममय कर देता है। उसके बिना ज्ञान का आलोक कौन बिखेरे?—

"रामचरण सतगुरु बिना, कूंण करै परकास।
माया सूं मन काढ़ि कै, किया ब्रह्म में बास।"[3]

वह 'शीव' (ब्रह्म) सर्वव्यापी है, प्रत्येक घट में उसका वास है, पर सत्गुरु के बिना जीव उसका रहस्य जानने मे असमर्थ है—

"जहाँ तहाँ भरपूर है, घट घट व्यापक शीव।
रामचरण सतगुरु बिना, भेद न पावै जीव।"[4]

गुरु की सामर्थ्य का वर्णन करते हुए स्वामी जी 'गुरु समर्थाई को अंग' में लिखते हैं कि सत्गुरु बड़ा सामर्थ्यवान् बाहुबली है, वह जीव का संशय दूरकर अपने चरण कमल की छाया में स्थान देता है। वह दीर्घ-बुद्धि एवं सागर सदृश गम्भीर होता है—

"सतगुरु समर्थ बाहोबली, ले काढ़ै गह बांह।
सांसा सबै निवारि कै, राखै चरण कमल की छांह।
गुरु समर्थ दीरघबुधी, सायर जिसा गंभीर।
शिख सींगीमछ होय पिवै, हरि सुख मीठी सीर।"[5]

भवजल में पड़े जीव को रामनाम की अपनी नौका पर चढ़ाकर सत्गुरुरूपी केवट ही पार करता है—

---

१. अ० वा०, पृ० ४।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ५।
५. वही।

"जीव पर्‌यौ भवकूप, अपने बल नहि पार है।
सतगुरु केवट रूप, रामनाम निज नाव है।"[१]

'कवित गुरुदेव को अंग' में स्वामी जी 'सतगुरु ब्रह्म स्वरूप नित्य चेतन परकासै'[२] कहकर गुरु को ब्रह्म स्वरूप कहते हैं, किन्तु वहीं जैसे संम्हलकर गुरु एवं ब्रह्म की तुलना करने लगते हैं—

"सब गिरां शिरै सुम्मेरु तास पर तरु के तरुही।
मलया गिरिगुण येह सकल मलयागिरि करही।
यूं सृष्टि ब्रह्म आधार सें ब्रह्म न होई।
ब्रह्म प्रकाशी संत संत करि लेवै सोई।
हरि गुरु एता आंतरा हरि रच्यो गुणा विस्तार।
रामचरण गुरु पलटि गुण ले पहुंचावै पार।"[३]

यही तो हरि और गुरु का अन्तर है। ब्रह्म सुमेरु है। सुमेरु पर्वतराज है, उस पर भी तरुराजि सजती है, पर मलयागिरि तरुओं को अपनी गन्ध से भर देता है। सृष्टि का आधार ब्रह्म है किन्तु सृष्टि ब्रह्म नहीं हो सकती, पर ब्रह्म के आलोक से आलोकित सन्त अन्य जनों को सन्त बना देता है। हरि, गुणों का विधाता एवं उसका विस्तारक है पर गुरु शिष्य को गुणातीत करके पार पहुँचा देता है। स्वामी रामचरण इस विवेचन के सहारे ब्रह्म के समक्ष गुरु की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं।

सत्‌गुरु जब शिष्य पर प्रसन्न होता है तब शिष्य के हृदय में भक्ति और वैराग्य का उदय होता है और जब ज्ञान के साथ नामस्मरण में रत होता है तो पूर्ण भाग्योदय हो जाता है—

"सतगुरु रीझै शिष्य पर तब उदय भक्ति बैराग।
ज्ञान सहित सुमरण करै तो प्रगटै पूरण भाग।"[४]

स्वामी जी की दृष्टि में गुरु के समान परमार्थी अन्य नहीं। अन्य सभी स्वार्थी होते हैं, पर 'दातार' सत्‌गुरु की दृष्टि सदैव एकरस होती है—

"सतगुरु सम परमार्थी और न दीसै कोय।
दूजा सब स्वारथ भर्‌या चाहि लगावै सोय।

---

१. अ० वा०, पृ० ५।
२. वही, पृ० १०५।
३. वही।
४. वही, पृ० १३८।

चाहि लगावै सोय दोय दिल में दर्शावै।
सध्याँ रीझं सन्मान सध्याँ बिन खीज धकावै।
रामचरण दातार की दृष्टि एकरस होय।
सतगुरु सम परमार्थी और न दीसै कोय।"[1]

'गुरु-महिमा' नाम के अपने लघु ग्रन्थ में स्वामी रामचरण कहते हैं कि गुरुसेवा के साथ ही 'निरंजन देव' की प्राप्ति होती है, इसलिए पहले गुरु की सेवा करनी चाहिए। गुरु की कृपा से ही बुद्धि स्थिर होती है और 'तृष्णा-ताप' से मुक्ति मिलती है—

"प्रथम कीजै गुरु को सेव।
ता संग लहै निरंजन देव।
गुरु किरपा बुधि निश्चल भई।
तृष्णा ताप सकल बुझि गई।"[2]

ज्ञान, भक्ति और मोक्ष तीनों का दाता गुरु ही होता है। बिना गुरु के 'नुगरा' को नरक की प्राप्ति होती है—

"गुरु बिन ज्ञान कहो किन पाया।
बैन सैन करि गुरु समझाया।
सतगुरु भक्ति मुक्ति का दाता।
गुरु बिन नुगरा दोजग जाता।"[3]

स्वामी जी गुरु को गोविन्द से अधिक घोषित करते हैं। गुरु के मिलने पर ही गोविन्द की प्राप्ति होती है—

"गुरु गोविन्द सूं अधिका होई।
या सुनि रोस करो मति कोई।
प्रथम गुरु सूं भाव बधावै।
गुरु मिलिया गोबिन्द कूं पावै।"[4]

अथवा 'विश्राम बोध' की यह पंक्ति—

"गुरु गोविन्द सूं अधिक है देवे उत्तम बोध।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० १३९।
२. वही, पृ० २०१।
३. वही।
४. वही।
५. वही, पृ० ७७३।

'उजास' कर्त्ता गुरु

ग्रन्थ 'शब्द प्रकाश' में कवि तारक मन्त्र 'राम नाम' का उपदेश गुरु से ही प्राप्त होने की बात कहता है। शिष्य, गुरु प्रदत्त रामनाम को विश्वासपूर्वक हृदय में धारण कर जब निशिदिन स्मरण करता है तो निश्चय ही उसके हृदय में 'आलोक' होता है—

"रामनाम तारक मंत्र है, सुमिरै शंकर शेष।
रामचरण साचा गुरु, देवै यो उपदेश।
सतगुरु बकसे रामनाम, शिख धारै विश्वास।
रामचरण निशिदिन रटै, तो नहचै होय प्रकाश।"[1]

यह 'प्रकाश' ही ग्रन्थ 'अणभो विलास' में 'निधान को उजास' नाम से कवि द्वारा उजागर किया गया है। इस 'उजास' (आलोक) की उपलब्धि गुरुज्ञान से होती है जिससे हृदय की आँखों को प्रकाश मिलता है। यह 'उजास' सूर्य और चन्द्र भी हृदय को नहीं दे सकते—

"यह उजास गुरु ज्ञान सैं, उरलोचन परकास।
रामचरण रवि शशि उदय, हीए न होत उजास।"[2]

यहाँ कवि का दावा है कि सत्गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान-ज्योति से ही हृदय प्रकाशित हो सकता है, हजारों सूर्य-चन्द्र का विकास हृदय को आलोकित नहीं कर सकते। गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान के आलोक से हृदय में छाया भ्रमान्धकार दूर होता है और साधक संसार को स्वप्न समझकर जैसे सोते से जाग उठता है—

"सहँस सूर शशि के उदय हीये न होय उजास।
सतगुरु ज्ञान उद्योत सैं हिर्दय होत प्रकास।
हिर्दय होत प्रकास भर्म अंधियारो भागै।
स्वप्नावत संसार जाण सोवत सो जागै।
परख भजै परमात्मा रखै न मैली आस।
सहँस सूर शशि के उदय हीये न होय उजास।"[3]

गुरु दातार

स्वामी रामचरण गुरु को 'समर्थ दातार' कहते हैं। 'अणभै वाणी' में वे स्थान-स्थान पर उसके सामर्थ्यशील दानीरूप की चर्चा करते जैसे अघाते नहीं। स्वेच्छया जलदान करने

---

१. अ० वा०, पृ० २०८।
२. वही, पृ० २११।
३. वही।

वाले मेघ के सदृश सत्गुरु ज्ञान का दान करता है। बादल जलदान का प्रतिदान जैसे नहीं माँगता, वैसे ही गुरु भी ज्ञान का प्रतिदान नहीं माँगता। ज्ञान-कथन का भाड़ा माँगने वाले 'दातापद' के योग्य कदापि नहीं। ज्ञान के याचक (जिज्ञासु) को गुरु नकारता नहीं—

"धनहर कछु माँगै नहीं पर आप इच्छा अप देह।
यूं सतगुरु दाता ज्ञान का भाखि न भाड़ा लेह।
भाखि न भाड़ा लेह सोही दाता पद मांही।
कोई गाहिक मांगै आय तासकूं नाटै नांही।"[1]

गुरु, ज्ञानदाता तो है ही, 'राम' दाता भी वही है उसी मेघ की तरह। "वर्षा दाता मेघ है, यूं गुरु दाता दे राम।"[2] 'सुख विलास' के प्रथम प्रकरण में भी कवि गुरु के 'दातार' रूप का निरूपण करता है। उसके अनुसार संसार में गुरु के समान दूसरा दाता कोई नहीं, वह 'रामशब्द' से पुरस्कृत करता है पर बदले में कुछ भी नहीं चाहता—

"सतगुरु सम दातार ओर नहीं जगतर मांही।
राम शब्द बक्षीस करै कछु बंछै नांही।"[3]

ग्रन्थ 'विश्राम बोध' के प्रथम विश्राम में भी स्वामी रामचरण 'दातार गुरु' की अनन्यता पर मुग्ध हैं। गुरु ने 'समता धन' का दान कर शिष्य के लिये कोई कमी नहीं छोड़ी—

"रामचरण सतगुरु जिसा और न दाता होय।
ज्यां समता धन बखशीस करि कमी न राखी कोय।"[4]

इसी प्रकार 'समता निवास' ग्रन्थ में दातार गुरु कवि को निर्वेद, सत्य और समता के साथ 'नाम अगाध' का पुरस्कार देकर दयापूर्वक उसे मनुष्य से साधु बना देता है—

"निर्वेद साच समता सहित बकस्या नाम अगाध।
सतगुरु दया विचार कै किया मिनख सें साध।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० २१३।
२. वही।
३. वही, पृ० ३२५।
४. वही, पृ० ७७३।
५. वही, पृ० ८५९।

राम-गुरु की एकता

गुरु के उपकारों से विनत, उसके ज्ञान उजास से आलोकित एवं उसके निस्पृह दातार रूप से प्रभावित जिज्ञासु (शिष्य) राम एवं गुरु की अभिन्नता का विश्वासी बन जाता है। कवि, राम और गुरु की अभेद स्थिति का चित्रण ग्रन्थ 'अमृत उपदेश' के पहले प्रकाश में इस प्रकार करता है—

"राम मई गुरु जांणिये गुरु मइ जांणों राम।
गुरु मूरति को ध्यान उर रसना उचरै राम।
रसना उचरै राम भरमना उर में नांही।
गुरु गोविन्द तन एक देखि व्यापक सब मांही।
रामचरण कहां जाईये घटबध को न ठाम।
राम भई गुरु जांणिये गुरु मइ जांणों राम।"[1]

'विश्वास बोध' के प्रथम प्रकरण की यह पंक्ति भी राम-गुरु की एकरूपता का निरूपण करती है—"परिहां रामचरण गुरु राम एक ही रूप रे।"[2]

सकल शिरोमणि गुरु

स्वामी रामचरण ने अपने ग्रन्थ 'रामरसायण बोध' के पहले प्रकरण में गुरु को 'सकल शिरोमणि' कहा है जो मिलते ही क्षण भर में निहाल कर देता है। भ्रमों का परिहार कर रामस्मरण कराता है वह परमार्थी है, सहज प्रतिपालक है और है परम दयाल, समर्थ तथा सकल शिरोमणि—

"सकल शिरोमणि है गुरु समर्थ परम दयाल।
रामचरण ताहि मिलत ही पल में करै निहाल।
पल में करै निहाल साल बोइ तुरत मिटावै।
आन भर्म परिहार राम ही राम रटावै।
यू सतगुरु परमार्थी सहज करै प्रतिपाल।
सकल शिरोमणि है गुरु समर्थ परम दयाल।"[3]

गुरुपारख

स्वामी रामचरण ने गुरुपारख का निरूपण सविस्तार किया है। उनका निश्चित मत है कि बिना परखे गुरु नहीं करना चाहिए—

---

१. अ० वा०, पृ० ४३१।
२. वही, पृ० ६४५।
३. वही, पृ० ९३३।

"रामचरण पारख बिनां, गुरू कियां क्या होय।
गुरु बंध्या संसार सूं, तो शिख कुंण देवै खोय।"[1]

'रामरसायण बोध' के प्रथम प्रकरण में 'गुरुपारख' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी ने गुरु के लक्षणों की चर्चा की है। उनके अनुसार गुरु को गुणातीत गम्भीर होना चाहिए। वह आदित्य के समान प्रकाशवन्त, नीर सदृश निर्मल, धरती के समान धैर्यशाली एवं शशि सदृश शान्त हो। वह रामनाम का दाता हो। ये लक्षण जिनमें हों वह गुरु होने के योग्य हैं—

"गुरु पारख सोही गुरू गुणातीत गंभीर।
आदीत जिसा परकाशवत निर्मल जैसा नीर।
निर्मल जैसा नीर धीर धरि शांति शशी है।
राम नाम दातार गुरू गति जान इसी है।
रामचरण ये लक्षणा सो मेरे शिर पीर।
गुरु पारख सोही गुरू गुणातीत गंभीर।"[2]

गुरुपद उसी को शोभा देता है जो निर्लोभी, निर्मोही, निर्बन्ध और आनन्दमय हो। वह सम्पूर्ण सृष्टि में गुणातीत के ज्ञाता के रूप में विख्यात हो और शरीर तथा मन से परे रामरूप हो, साथ ही अन्य को राम का रङ्ग लगाता हो एवं अभङ्ग के सङ्ग वास करे—

"गुरू पद शोभ जाके लोभ को न लेश कोई।
निर्मोही निबंध नित आनन्दमय मांनिये।
गुणातीत ज्ञाता सो विख्याता सारी सृष्टि मांही।
नाहीं तन मन जाकै राम रूप जांनिये।
राम रूप सही आप राम को लगावै रंग।
करत अभंग संग वासूं सदा बांनिये।
राम ही चरण जो शरण ऐसै गुरु जी के।
सीखे हम सांच कांच कर्मन कूं मांनिये।"[3]

ग्रन्थ 'सुख विलास' के दूसरे प्रकरण में स्वामी जी गुरु के लक्षणों की चर्चा तो करते ही हैं, साथ ही ऐसे जनों से सचेत भी करते हैं जो "गुरु पण और जोर जणाय कै ढिग ढिग खावै

---

१. अ० वा०, पृ० ३८।
२. वही, पृ० ९३४।
३. वही।

सोय।"[१] इसीलिए कवि कहता है, "गुरु तो सो थिर कीजिये जामैं गुरुता होय।"[२] आद गुरु का लक्षण निम्नलिखित कुण्डलिया में वर्णित है—

"गुरु कीजै आसैं अमल राम नाम दातार।
जिनके आसा अलख की सतब्रत पालणहार।
सतब्रत पालणहार दया साता उर मांही।
बाहर भीतर सुचि असुचि क्रम परसैं नांही।
उनकी संग जिहाज सैं भवजल उतरैं पार।
गुरू कीजै आसैं अमल रामनाम दातार।"[३]

यही पर स्वामी जी ने जिज्ञासु-जनों को 'गाफिल गुरु' न करने का सत्परामर्श भी डाला है, क्योंकि—

"उनका चेला होय करि कहो कूंण घर जांहि।
गाफिल गुरू न कीजिये ज्यां सावधानता नांहि।"[४]

इसी सन्दर्भ में स्वामी जी दो प्रकार के गुरुओं की चर्चा करते हैं—१. कन फूंका गुजरान गुरु, २. भवतारन ज्ञान गुरु—

"गुरू गुरू सब कहत है पैं गुरू दोय परकार।
कनफूंका गुजरांन गुरु ज्ञान गुरू भवत्यार।
ज्ञान गुरू भवत्यार जनूं कै स्वारथ नांही।
परमारथ की नाव दया उनके मन मांही।
रामचरण भू ऊपरैं बिचरैं पर उपगार।
गुरू गुरू सब कहत हैं पैं गुरू दोय परकार।"[५]

गुरु 'अयाची पुरुष' होता है। याचना करने वाले को कवि, गुरु नहीं, 'मंगता' की संज्ञा देता है—

"जाचिक तो सतगुरु नहीं, जाचिक मंगता होय।
अजाचिक गुरु जांनिये, पार उतारैं सोय।"[६]

१. अ० वा०, पृ० २३५।
२. वही।
३. वही, पृ० २३५-३६।
४. वही, पृ० २३६।
५. वही।
६. वही।

'गुरु पारख को अंग' में कवि लिखता है कि ऐसा सतगुरु कीजिए जो 'दीरघ चित्त' एवं 'उदारचित्त' हो, जो शिष्य को रामनाम दे सके और जिसकी शरण जाने से संसार से मुक्त हुआ जा सके—

"सतगुरु ऐसा कीजिये जाका दीरघ चित्त।
रामचरण दे शिष्य कूं रामनाम निज तत्त।
सतगुरु ऐसा कीजिए जाका चित्त उदार।
रामचरण वाकी शरण छूटै यो संसार।"[1]

इसी प्रकार स्वामी रामचरण ने 'चन्द्रायणा गुरु पारख को अंग' एवं 'जिज्ञास बोध,' 'समता निवास' आदि ग्रंथों में भी 'गुरु पारख' की विस्तृत चर्चा की है।

लोभी गुरु

स्वामी रामचरण ने 'लोभी गुरु' और 'मनमुखी शिष्य' की निन्दा की है। शिष्य से आशा रखने वाला गुरु किसी काम का नहीं होता—

"लोभी गुरु किस काम का, करै शिखां की आस।
राति दिवस चिन्ता रहै, स्वप्नै नहीं निवास।"[2]

'लोभी गुरु को अंग', 'अणभो विलास', 'विश्वास बोध' और 'समता निवास' आदि विभिन्न ग्रन्थों में स्वामी जी ने लोभी गुरु की चर्चा कर उससे सावधान रहने का उपदेश दिया है। 'विश्वास बोध' के द्वितीय प्रकरण में वे कहते हैं कि बिना परखे लोभी गुरु का सङ्ग करने से जन्म ही ठगा जाता है। लोभी गुरु न स्वयं तरता है और न शिष्य को ही तारता है—

"जन्म ठिगासी परखि बिन करि लोभी गुरु को संग।
ऊ तिरै न त्यारै और कूं जे फूटी नाव कुसंग।"[3]

लोभी गुरु के मन में सदा माया की प्यास लगी रहती है।[4] ऐसे गुरु के साथ सदैव हृदय की ग्लानि बढ़ती है।[5] लोभी गुरु स्वामी जी की दृष्टि में 'त्रयताप' स्वरूप है। 'जिज्ञास बोध' की निम्नलिखित पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

---

१. अ० धा०, पृ० ३८।
२. वही।
३. वही, पृ० ६५५।
४. 'लोभी गुरु कै लगि रहै मन माया की प्यास'—वही।
५. 'लोभी गुरु कै संग बधै हिरदै सदा गिलानि'—वही।

"शीत उष्ण पावस ऋत्त है अतिसैं त्रय ताप।
आवत सी प्यारी लगै पीछै लगै संताप।
पीछै लगै संताप इसैं लोभी गुरु पायो।
करत समय कर लियो जाचतां लगै अभायो।
रामचरण भज राम कूं तजि लोभ पाप की थाप।
शीत उष्ण पावस ऋत्त है अतिसैं त्रय ताप।"[1]

इसलिए स्वामी जी लोभी गुरु की शरण को बुरा समझते हैं और उसकी ओर कभी न जाने की राय देते हैं। 'अणभो विलास' की यह साखी देखिए—

"लोभी को शरणो बुरो, कबहूं लीजे नांहि।
निर्भयता उपजै नहीं, सदा शंक मन मांहि।"[2]

लोभी गुरु के कृत्यों का संक्षिप्त विवरण 'अणभो विलास' के इस पद में स्पष्ट हुआ है—

"लोभी गुरु आशा मुखी, कहा ज्ञान बतावै।
अपणा मतलब कारणें, भर्मी भर्मावै।
जब स्वारथ पूगै नहीं, तबही घुरकावै।
शिख मूरख समझै नहीं, मन भय उपजावै।
जे कारज कैसे करै, ते बोलै दावै।
बाल बुधि बहकाय कै, गुजरान चलावै।
रामचरण ऐसा गुरु, मदभागी पावै।
भवसागर की धार कै, दे बीच धकावै।"[3]

पर यदि गुरु-शिष्य दोनों ही क्रमशः कामी-पेटू हों तब कौन किसकी परीक्षा करे। 'मतलबी' शीर्षक के अन्तर्गत ऐसे चेला-गुरु का पर्दाफाश स्वामी जी करते हैं—

"शिष्य मिलै पेटार्थी, गुरू काम रत होय।
कुण परखै खोटा खरा, उत्तम स्वार्थी दोय।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ५१६।
२. वही, पृ० २१४।
३. वही, पृ० २१४-१५।
४. वही, पृ० २१७।

जब गुरु और शिष्य दोनों का हृदय विवेक शून्य हो जाता है तो दोनों को अज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। "गुरु शिख हिये विवेक बिन मिलिया उभै अज्ञान"[१] पर उन्हें विवेक मिले भी तो कैसे? 'समता निवास' में 'गुरु शिख भर्मी' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी इसका समाधान करते हैं—

"धर्मी शिख भर्मी गुरु मिलामिली लछ एक।
उन मिल कैसें पाइये भर्मा रहृ विवेक।"[२]

पर जब शिष्य का हृदय ज्ञानातुर हो और गुरु का तृष्णातापी तो दोनों का मिलाप वैसे ही असम्भव है जैसे रात और दिन का—

"शिख उर आतुर ज्ञान की, गुरु उर तृष्णा ताप।
रामचरण कैसें बणै, रजनी दिवस मिलाप।"[३]

निष्कर्ष

तब गुरु कैसा करना चाहिए? यह प्रश्न इस विशद चर्चा के अन्त में स्वाभाविक रूप से उठता है। स्वामी जी के 'विश्वास बोध' ग्रन्थ के द्वितीय प्रकरण में इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। कवि ने गुरु का आदर्श मलयगिरि और पूनम के चाँद को माना है—

"दीरघ सतगुरु कीजिये मलयागिरि सम सोय।
कंटक तरु मलया करै यूं गुरु कस्मल दे खोय।
× × ×
ऐसा सतगुरु कीजिए जैसा राका रजनी चंद।
चंद हरै जड़ मलिनता गुरु कस्मल करै निकंद।
गरु कस्मल करै निकंद मंद बुधि निर्मल होई।
राम भजन परताप ताप तन रहै न कोई।
रामचरण परकाश उर नयन लहै ज्यूं अंध।
ऐसा सतगुरु कीजिए जैसा राका रजनी चंद।"[४]

जिज्ञासी

साधना के विभिन्न पक्षों में जैसे गुरु या सत्‌गुरु अपेक्षित है, वैसे ही साधक भी। साधना तो साधक द्वारा ही सम्भव है, फिर वह चाहे योग-साधना हो या भक्ति साधना। गुरु जिसे अपनी

१. अ० वा०, पृ० ८६४।
२. वही।
३. वही, पृ० ८६४।
४. वही, पृ० ६५४।

साधना से उद्भूत अनुभवों की पूंजी देता है वह साधक ही है। साधक जिज्ञासु होता है। वह गुरु के बताये साधना पथ पर चलकर साधना रत होता है और गुरु से सदैव सीखने की जिज्ञासा रखता है। स्वामी रामचरण ने इस साधक को ही 'जिज्ञासी' कहा है। उन्होंने जिज्ञासी के लक्षण एवं पात्रता आदि पर भी विचार किया है।

'साखी जिग्यासी को अंग' में स्वामी जी जिज्ञासु का लक्षण निरूपित करते हैं। जिज्ञासु वह है जो ज्ञानोपलब्धि के द्वारा भगवन्नाम का अमिय रस ग्रहण करता है। ज्ञान होने के बाद वह फिर माया के वशीभूत नहीं होता—

"सोही जिग्यासी जाणींए, जाग अमी रस खाय।
रामचरण जाग्यां पिछै, कबहूं सोय न जाय।"[1]

जिज्ञासी का जागरण

जिज्ञासु का ज्ञानदाता गुरु है। अनेक जन्मों का भ्रमी जीव सत्गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान से सदा के लिये जाग उठता है और उसके सभी सांसारिक दुःख स्वप्नवत् गत हो जाते हैं—

"सूता जन्म अनेक का, सतगुरु दिया जगाय।
रामचरण स्वप्ना तणां, सब दुख गया बिलाय।"[2]

स्वामी जी उस जिज्ञासु को ज्ञान देना उचित समझते हैं जो ज्ञानोपलब्धि के बाद राम नाम में रत हो जाये। यदि वह नामस्मरण में लीन नहीं होता तो उसके ज्ञान से अनर्थ की सम्भावना हो जाती है—

"रे शिख जागै तो नांइ लग, तांतर रहिये सोय।
रामचरण सुमरण बिनां, जाग्यो अनर्थ होय।"[3]

जाग्रत जिज्ञासु सोता नहीं, वह सत्गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान का विचार कर माया-मोह से विरत हो 'हरिमारग' पर गतिशील होता है—

"जाग्या सो फिर ना सुवै, हरि मारग लागै।
सतगुरु शब्द विचार कै, माया मोह त्यागै।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ३७।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ३८।

जिज्ञासी का भाव

जिज्ञासु साधना के लिये समर्पित प्राणी होता है। उसे केवल एक राम का भरोसा रहता है, वह संसार से विरक्त हो जाता है—

> "एक भरोसो राम को, त्यागो आन उपास।
> रामचरण जासूं तरक, राम स्नेही दास।"[1]

उसकी 'रहणी' और 'कहणी' में अन्तर नहीं होता—

> "रहणी कहणी एक है, तो लगी साध की फेट।"[2]

वह 'सुघरी' को राम का किया कहता है और 'बिगड़ी' को अपने शिर ओढ़ लेता है—

> "सुघरी सूपें राम कूं, बिगड़ी अपने शीश।"[3]

वह गुरु का जूठन प्रेमपूर्वक ग्रहण करता है और उसकी आज्ञा का सदैव पालन करता है। इस प्रकार इन्द्रिय-निग्रह एवं रामभजन द्वारा ब्रह्मपद प्राप्त करता है—

> "गुरु उच्छिष्ट ले प्रीति सूं, अज्ञा लोपै नांहि।
> राम भजै इन्द्रयां दवै, सो मिलै ब्रह्म पद मांहि।"[4]

जिज्ञासी का आचरण

जिज्ञासु इष्ट राम की उपासना में रत रहता है। नंगे पाँव गुरु-दर्शन को जाता है, दयाशील होता है, विषय एवं विष-वचन का परित्याग करता है, हानि-लाभ के अवसर पर भगवान में भरोसा रखता है। जुआ, चोरी, प्रलोभन, झूठ, कपट आदि से दूर रहता है। भाँग, तम्बाकू आदि अखाद्य का सेवन नहीं करता। वह अहिंसाव्रती, संयमी, श्रद्धालु तथा सादा भोजन वाला होता है और सादा वस्त्र शरीर पर धारण करता है—

> "इष्ट राम रमतीत आंन कूं पूठ दई है।
> पग नंगे गुरु दर्श दया की मूंठ गही है।
> विषय त्याग विषवचन हांसि खिलवत नहिं जांणैं।
> हांणि वृद्धि की बार भरोसो हरि को आंणैं।

---

१. अ० वा०, पृ० ३८।
२. वही।
३. वही।
४. वही।

जूवा चोरी परलुब्धि झूठ कपटाँ नहि राखै।
भांग तमाखू अमल अखज मद पांन न चाखै।
पांणी बरतै छांणि कै निरख पाँव धरणी धरै।
वे रामसनेही जांणिये सो कारज अपणो करै।
खारा मीठा स्वाद साग बनफल परिहरिये।
श्रद्धा सेती त्याग समर्था मन मैं धरिये।
तन पर निर्गुण साज मास बारा सम मांनै।
बार तिह् वार उछाव भर्म मन को सब भांनै।
मेला होली कीर्तन कदे न देखै जाय।
रामचरण तन पीड़ कूं हिंसा तजै उपाय।"[१]

जिज्ञासी के दो रूप

स्वामी रामचरण ने अपने ग्रन्थ 'सुख विलास' के दसवें प्रकरण में जिज्ञासु को दो रूपों में निरूपित किया है—१. लगन जिज्ञास २. कपट जिज्ञास।

वस्तुतः 'लगन जिज्ञास' ही जिज्ञासी का सही रूप है। 'कपट जिज्ञास' दुविधा में ही पड़ा रहता है और गुरु की चिन्ता नहीं करता—

"दुब्धया मांहि दुरंग होइ गुरु गम रहै जु नांहि।"[२]

स्वामी जी 'कपट जिज्ञास' को उस लोहे के सदृश समझते हैं जो पारस के स्पर्श से भी अपरिवर्त्तित ही रहता है। साधु-संगति का उस पर प्रभाव ही नही पड़ता—

"लोहा पारस मिल्यां न पलट्या तो बिच अंतर जांनो।
ऐसें साधु संगति करतां कपटी ना पलटानो।
पारस मिल कर हेम न हूंवा जिन मिल जनपद मांही।
तो बिच कोई पड़दो कहिए पारस दोष न कांही।"[३]

पर 'लगन जिज्ञास' की स्थिति इससे बिलकुल भिन्न क्या विपरीत है। 'लगन जिज्ञास' लगनशील प्राणी होता है। स्वामी जी ने लगन जिज्ञासुओं को '**नर बुद्धि प्राणी**' कहा है। जैसे

---

१. अ० वा०, पृ० १२२।
२. वही, पृ० ४०३।
३. अ० वा०, ४०४।

कुमार्गियों की लगन होती है, वैसे ही इन जिज्ञासुओं की हरि मार्ग पर होती है। वे ज्ञान में लीन तत्त्व विचारक होते हैं और सत्संग में समय व्यतीत करते हैं। अहं भाव और ममता की कलुषता को धोकर निरन्तर 'रामरटन' में रत रहते हैं—

"जैसी लगन कुमार्गी यूं हरि मारग पें होय।
रामचरण वे प्राणियां नर बुधि कहिये सोय।
नर बुधि कहिये सोय ज्ञान गम तत्व विचारै।
सत्संगति में बैठ आपणो आपो तारै।
राम राम रसना रटै अहूं ममत मल धोय।
जैसे लगन कुमार्गी यूं हरि मारग पें होय।"[1]

'लगन जिज्ञास' की लगन का वर्णन करते कवि अघाता नहीं। जैसे काम के अधीन रह कर कामी लगनशील होता है, जैसे पराये धन पर चोर की आसक्ति होती है, गाय का बछड़े से जैसा लगाव होता है, सीप की स्वाती में जो अनुरक्ति होती है, सरिता सागर की ओर जैसी लीन होकर दौड़ती है, प्यासा पानी के लिये जिस प्रकार उद्यम रत रहता है, क्षुधातुर भोजन के लिये जैसा बेहाल रहता है, चंद्रमा के लिये जैसी आसक्ति चकोर मे होती है, लोभी दाम के लिये जिस प्रकार साधन रत होता है और मेह के लिये मोर जितना आतुर होता है वैसी लगन, आसक्ति या आतुरता आठो पहर 'लगन जिज्ञास' की रामभजन में रहती है—

"लगावै लगन्न ऐसी कहूं में बखांन जैसी,
कामी कामाधीन जैसें परधन पें चोर है।
गऊ बच्छ हेत जांनो सीप हू कै स्वाति मानो,
सरिता समंद लीन ऐसी याकी दोर है।
प्यासे की लगन पानी उद्यम में जाय जांनी,
खुध्यार्थी भोजन यूं चन्द कूं चकोर है।
लोभी के उपाय दांम ऐसें जन भजै राम,
आठूं जांम जांन तैसें मेह काज मोर है।"[2]

जिज्ञासा गति की सूक्ष्मता

स्वामी रामचरण अपने ग्रन्थ 'जिज्ञास बोध' के प्रथम प्रकरण में जिज्ञासा गति को अति सूक्ष्म निरूपित करते हैं। इस गति तक वही पहुँच सकता है जो स्वयं सूक्ष्म हो। इस जिज्ञास

---

१. अ० वा०, पृ० ४०२।
२. वही।

गति की शोभा और माहात्म्य दोनों गम्भीर हैं। वेद-पुराण भी इसकी सूक्ष्मता का गान करते हैं। योगी, यती, तपस्वी, ऋषि या और भी जो साधक हैं, सभी के लिये 'जिज्ञासा धर्म' के समान दूसरा धर्म नहीं—

"जिज्ञासा गति अति ही झीणी झीणा होय सो पावै।
जाकी शोभ महातम भारी वेद पुराणा गावै।
जोगी जती तपी ऋषि जेता साधन और अपारं।
जिज्ञासा तुल धर्म न कोई ये जांनो निरधारं।"[१]

जिज्ञासु की साधना में दास्यभाव का प्राधान्य होता है। स्वामी जी कहते है कि जिज्ञासु को सत्पुरुष की उपासना दास्यभाव से तन-मन लगाकर करनी चाहिए और स्वयं को गुरु को अर्पित कर देना चाहिए। जिज्ञासु को अपनी साधना में तभी सफलता मिलती है जब वह वर्ण, धर्म, कुल, कर्मकाण्ड, लोक-गौरव से मुँह मोड़ कर अभिमान, मान, मद, मत्सरादि का भी परित्याग कर देता है। वह गुरु की वाणी सुने, नयन से उसका दर्शन करे, मुख से प्रश्न करे, दोनों हाथ जोड़कर आज्ञा की प्रतीक्षा करे, जिह्वा से राम-नाम का उच्चारण करता रहे। गुरु का चरण धोकर उसे चरणोदक पान करना चाहिए, जिससे उसका मन उज्ज्वल हो, सीतप्रसाद ले। इस प्रकार 'प्रीतिपण' दास्य भाव से सम्भव है—

"दास भाव सत्पुरुषां केरो कीजे तन मन लाई।
अपना आपा अर्प जनां कूं सूंपो लाज बड़ाई।
वर्ण धर्म कुल किरिया सारी लोक बड़ाई डारो।
तजि अभिमान मांन मद मत्सर यूं जिज्ञास विचारो।
सुनि गुरु बैन नैन सूं दर्शण मुख तैं परसन करना।
आज्ञाकार दोऊ कर जोड्यां रसना राम उचरना।
चरण धोय चरणोदक पीजै ज्यूं मन उज्ज्वल होई।
सीत प्रसाद प्रीतिपण सेती दास भाव सूं होई।"[२]

जन-जिज्ञासी

स्वामी रामचरण ग्रन्थ 'विश्वास बोध' के इक्कीसवें प्रकरण में जन-जिज्ञासी सम्बध पर प्रकाश डालते हैं। यहाँ उन्होंने जन का अर्थ परमात्मा से माना है। जिज्ञासु का एकमेव

१. अ० वा०, पृ० ५१२।
२. वही, ५१२-१३।

आधार 'जन' है। जैसे कमल जलवासी है और उसकी आशा दिवाकर आकाश में रहता है। पर सूर्योदय के साथ ही कमल अपने अन्तर के उल्लास एवं लगन के साथ विकसित हो जाता है। यही स्थिति 'जन' और 'जिज्ञासी' की भी है। परमात्मा जिज्ञासु के हृदय में वैसे ही समा जाता है जैसे सूर्य कमल के हृदय में। जैसे आकाशवासी सूर्य दूर रहकर भी कमल के निकट का वासी हो जाता है, वैसे ही 'जन' जिज्ञासी के हृदय के निकट पहुँच कर उसे हर्षोल्लास से भर देता है और जिज्ञासी सदा के लिये शुद्ध भावना से 'जन' का अनुकूल दास बन जाता है—

"अम्बुज बासो अम्बु मैं आशो अर्क आकाश।
उदै भयां बिकसै कमल अंतर लग्न हुलास।
अंतर लग्न हुलास जांण यूं जन जिज्ञासी।
जन हिरदै रहै समाय दूरि सो निकट निवासी।
रामचरण शुध भावना सदा सनमुखा दास।
अम्बुज बासो अम्बु मै आशो अर्क अकाश।।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण ने 'जिज्ञासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया है। उनका 'जिज्ञासी' साधना की हर स्थिति में अपनी दास्य-भावना के साथ, अपने नम्र आचरण के सहारे, गुरु की आज्ञा में रहकर 'अमी रस' का पान करने मे तत्पर है। वह अम्बुज सदृश जगत-जलाशय मे रहते हुए भी ब्रह्म की ज्ञान रश्मियों से ज्योतित होकर अमित लगन एवं हुलास से परिपूर्ण रहता है। उसका हृदय **'स्वाति की चातक आशा'** से भरा रहता है, इसीलिए तो स्वामी जी कहते हैं—

"पिवो रामरस होय जिज्ञासी अविनाशी सुख पावो।"[2]

योग

डॉक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ 'नाथ सम्प्रदाय' में लिखा है कि 'योगशिखोपनिषद्' में "चार प्रकार के योग कहे गये हैं—मन्त्र योग, हठ योग, लय योग और राज योग। मन्त्र योग में कहा गया है कि जीव के निश्वास-प्रश्वास में 'ह' और 'स' वर्ण उच्चरित होते हैं। 'ह' कार के साथ प्राणवायु बाहर आता है और 'स' कार के साथ भीतर जाता है। इस प्रकार जीव सहज ही 'हं-सः' इस मन्त्र का जाप करता है। गुरु वाक्य जान लेने पर सुषुम्ना मार्ग में यही मन्त्र उल्टी दिशा में उच्चरित हो 'सोऽहं' हो जाता है और इस प्रकार योगी 'वह' (सः) के साथ 'मैं' (अहम्) का अभेद अनुभव करने लगता है। इसी मन्त्र योग के सिद्ध होने पर हठ योग के प्रति विश्वास पैदा होता है। इस हठ योग में हकार सूर्य का वाचक है और ठकार

---

१. अ० वा०, पृ० ७६९।
२. वही, पृ० ५१३।

चन्द्रमा का। इन दोनों का योग ही हठ योग है। हठ योग से जड़िमा नष्ट होती है और आत्मा-परमात्मा का अभेद सिद्ध होता है। इसके बाद वह लय योग शुरू होता है जिसमें पवन स्थिर हो जाता है और आत्मानन्द का सुख प्राप्त होता है। इस लय योग की साधना से भिन्न अन्तिम राज योग है। योनि के महाक्षेत्र में जपा और बन्धूक पुष्पों के समान लाल रज रहा करता है। यह देवी तत्व है। इस रज के साथ रेत का जो योग है, वही राज-योग है।...निश्चय ही यहाँ पारमार्थिक अर्थ में 'रज' और 'रेतस्' (शुक्र) का उल्लेख हुआ है।"[1]

नाम-साधना

सन्त-साधना में योग की महत्ता है, पर सन्तों ने योग को स्वानुभूति का विषय बनाया। ऐसा नहीं कि सन्तजन योग की शास्त्रीयता से अपरिचित थे। पर वे योग की सहजता के विश्वासी थे। उन लोगों ने विभिन्न योगों को अपनी अनुभूति का आधार देकर ग्रहण किया और अपनी विचार शैली से उसकी साधना की। वस्तुतः मन्त्र योग, लय योग और हठ योग आदि का सन्तों ने परिष्कार किया और अपनी अनुभूतियों के सहारे उन्हें सहज बना दिया। डॉ० बड़थ्वाल 'नाम सुमिरन' को 'मन्त्र योग' कहते हैं और उसे ही सारे योगों का योग बतलाते हैं। सभी योग इसी के रूपान्तर हैं। इसे ही वे 'सुरति शब्द योग' का दूसरा रूप कहते हैं।[2] पण्डित परशुराम चतुर्वेदी ने 'संतकाव्य' के अन्तर्गत संतों की पारिभाषिक शब्दा-वली में 'सुमिरन' की परिभाषा दी है। "सुमिरन—नामस्मरण की साधना जो वस्तुतः अनाहत नाद के श्रवण को लक्ष्य करती है और जो सुरति शब्द संयोग का कारण बनकर संतों के लिए आत्मोपलब्धि में सबसे प्रधान सहायक है।"[3]

डॉक्टर बड़थ्वाल ने नामस्मरण की साधना में रत होने वाले साधक के लिये उस पनिहारिन का आदर्श सुझाया है जो "मार्ग पर चलती हुई बातचीत भी करती जाती है, किन्तु उसका मन सदा अपने सिर पर रखे हुए भरे घड़े की ओर ही लगा रहता है। इसी प्रकार साधक को भी चाहिए कि अपने को उस पनिहारिन की स्थिति में रखे और बाह्यरूप से संसार में व्यवहार करता हुआ भी अपनी सुरति को सदा ईश्वर में ही लगाये रहे।"[4]

इसी सन्दर्भ में डॉ० बड़थ्वाल सुमिरन के तीन प्रकारों का भी उल्लेख करते हैं—"(१) 'जाप' जो कि बाह्य क्रिया होती है, (२) 'अजपा जाप' जिसके अनुसार साधक बाहरी जीवन का परित्याग कर आभ्यन्तरिक जीवन में प्रवेश करता है, (३) 'अनाहत'

---

१. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृ० १४३-४४।

२. डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (नया संस्करण), पृ० २५५।

३. पण्डित परशुराम चतुर्वेदी : संतकाव्य, पृ० ५७४।

४. डॉ० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० २५०।

जिसके द्वारा साधक अपनी आत्मा के गूढ़तम अंश में प्रवेश करता है, जहाँ पर अपने आप की पहचान के सहारे वह सभी स्थितियों को पार कर अन्त में कारणातीत हो जाता है।"[१] जाप में होठ, जिह्वा से नाम को बार-बार दुहराया जाता है। पर अजपा-जाप 'अव्यक्त जाप' है, उद्‌बुद्ध आत्मा ईश्वर में तल्लीन हो जाती है फिर मुख की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसके बाद अनहद शब्द सुनने की स्थिति आ जाती है। "आराध्य को स्मरण करते-करते आराधक उसके द्वारा इतना भरपूर हो जाता है कि वह उसकी जगह ले लेता है।"[२] इस मग्नावस्था के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सुरति शब्द योग

सन्त नाम-जप के सहारे ही सुरति का शब्द से संयोग कराने में समर्थ होता है। जाप, अजपा जाप और अनाहत की पूर्णता के बाद ही सुरति शब्द संयोग हो पाता है। इस सुरति शब्द योग की संक्षिप्त चर्चा यहाँ आवश्यक है। डॉक्टर बड़थ्वाल ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है—"वह योग जिसके द्वारा सुरति एवं शब्द का संयोग सिद्ध होता है और उक्त सीमायें शब्द में फिर से लीन हो जाती हैं, शब्द योग अथवा सुरति शब्द योग कहलाता है और वह शब्द सर्वप्रथम भगवन्नाम के रूप में मुँह से निकलता है और अन्त में स्वयं शब्द रूप ब्रह्म हो जाता है। इसे सहज योग भी कहा जाता है, क्योंकि इसकी सहायता से भी प्रत्यभिज्ञान का उदय होता है।"[३] अन्ततः यह सुरति है क्या? पण्डित परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि—"सुरति जीवात्मा परमात्मा का वह प्रतीक है जो उसकी स्मृति वा प्रतिनिधि के रूप में मनुष्य के भीतर वर्त्तमान है। सुरति का सन्तों ने अपने पति परमात्मा से बिछुड़ी हुई दुलहिन के रूप में भी वर्णन किया है। वह उससे मिलने के लिये आतुर हो नामस्मरण की सहायता से अनाहत शब्द के साथ संयोग कर लेती है जिससे अन्त में उसे तदाकारता की उपलब्धि होती है।"[४]

डॉ० धर्मवीर भारती ने अपने ग्रन्थ 'सिद्ध साहित्य' में 'सुरति' पर विचार किया है। उनके अनुसार "सिद्धों ने इस शब्द का प्रयोग निःसंदेह प्रेम-क्रीड़ा के अर्थ में किया था।"[५] आगे इसी सन्दर्भ में नाथ-संप्रदाय से भी इसे जोड़ते हैं। "नाथ सम्प्रदाय का एक बहुत पुराना नाम शब्द सुरति योग बताया जाता है।"[६] गोरख-मछिन्द्र संवाद के आधार पर डॉ० भारती सुरति शब्द की व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—"सुरति शब्द की वह अवस्था है जब

---

१. डॉ० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० २५२।
२. वही।
३. वही, पृ० २५६।
४. पण्डित परशुराम चतुर्वेदी : संतकाव्य, पृ० ५७४।
५. डॉ० धर्मवीर भारती : सिद्ध साहित्य, पृ० ४०९।
६. वही।

वह चित्त में स्थिर रहता है। शब्द अनाहद नाद है जो विशुद्धाख्य तथा आज्ञाचक्र में सुन पड़ता है।"[1]

'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने सुरति को राजस्थानी शब्द 'सुरतां' का पर्याय बताते हुए लिखा है कि—'राजस्थानी भाषा में आज भी 'सुरतां' शब्द का प्रयोग ईश्वरोन्मुख ध्यान के लिए प्रचलित है। 'सुरतां' का प्रचलित अर्थ ऊर्ध्वगामिनी चित्त-वृत्ति है।"[2] सन्त साहित्य के अन्य अनेक विद्वानों ने इस शब्द के कई सामान्य एवं विशेष अर्थ ग्रहण किये हैं। जैसे—स्मृति, स्रोत, आध्यात्मिक किरण आदि।

'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने 'सुरति शब्द योग' का निरूपण इस प्रकार किया है। यह मत स्वामी रामचरण के सुरति शब्द योग सम्बन्धी निरूपण में सहायक सिद्ध होगा। "संत मत का दूसरा नाम सुरति शब्द योग है। यह शब्द योग संतमत का प्राण है, मर्म है, उसका सार है, सर्वस्व है। यह संतमत का मध्यम मार्ग है, इसमें न तो सिद्धों जैसी महामुद्रा की साधना है और न हठयोगियों जैसी कृच्छकाय साधना। यह लय योग है, यही सहज समाधि है। सभी सन्तों ने 'परचे' के अंग मे इस अपरोक्षानुभूति का बड़ा ही प्राणवन्त, हृदयस्पर्शी और उल्लासपूर्ण वर्णन किया है।"[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सन्तों की योग-साधना न तो सिद्धों का कमल कुलिश का सुरत विलास है, न हठयोगियों का हठ योग। मन्त्र योग का 'सोऽहं' भी सन्तों को अग्राह्य हुआ। उन लोगों ने 'सोऽहं' के स्थान पर 'राम' का भजन करना उचित समझा। वस्तुतः यह वैष्णव प्रभाव था। वैष्णवों में रामभजन की बड़ी महिमा है और रामभजन को ही मुक्ति का साधन भी बतलाया गया है।

स्वामी रामचरण की दृष्टि में योग

स्वामी रामचरण ने हठ योग, लय योग, सुमिरन के मिस मन्त्र योग, एवं सुरति शब्द योग की चर्चा की है। यहाँ इन सभी पर स्वामी जी के दृष्टिकोण की संक्षिप्त चर्चा हमारा अभीष्ट है।

हठ योग

स्वामी जी ने 'हठ जोग को अंग' के कवित और कुण्डलिया शीर्षकों में हठ योग की समीक्षा की है। हठ योग में आसन, प्राणायाम तथा षट्कर्मों का विधान है। हठयोगी प्राणवायु का निरोध करता है। प्राणवायु के निरोध से कुण्डलिनी का जागरण होता है।

---

१. डॉ० धर्मवीर भारती : सिद्ध साहित्य, पृ० ४१०।

२. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १०२।

३. वही।

कुण्डलिनी षट्चक्रों का भेदन करके, ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचकर ब्रह्म से मिल जाती है। प्राण-वायु निरोध, कुण्डलिनी का जागरण और षट्चक्रों के भेदन की प्रक्रिया सहज नहीं।

स्वामी जी कहते हैं कि योगी पवन का निरोध करके काल से बदला चुकाता है, वह रात दिन इसी क्रिया में लीन रहता है पर राम का स्मरण कभी नहीं करता। कवि योगी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि रामभजन के बिना तुम्हारे योग को ब्रह्म में ठिकाना नहीं—

"जोगी पवन चढ़ाय काल सूं दाव चुकावै।
निशिदिन पवन उपाय राम कबहू नहि गावै॥
ज्यूं चाकर होय अमांन धणीं सूं गढ सजि राखै।
जब आवै फुरमांन वचन सब उल्टा नांखै॥
रामचरण ब्रह्मा कल्प रहै आपणै जोर।
तोहि रामभजन बिन जोग कूं नहीं ब्रह्म मैं ठोर॥"[१]

योगी अष्टांग योग की साधना करता है, शरीर, मन एवं इन्द्रियों का निग्रह करता है, प्राणवायु को पकड़कर रखता है किन्तु भजन बिना उसके ये सभी धन्धे व्यर्थ हैं और वह आँख रहते अन्धा है—

"नहीं ब्रह्म में ठोर और साधन जो साधै।
करै जोग अष्टांग देह मन इन्द्री बाँधै।
प्राणवायु कूं पकड़ि पंचै निशिवासर अंधा।
करि है कूड़ी खेद भजन बिन सबही धंधा॥"[२]

कवि का विचार है कि स्वर-साधना, जलपान आदि यौगिक क्रियायें निरोग रहकर सोने के लिये की जा सकती हैं पर इससे मुक्ति नहीं मिल सकती। बिना रामस्मरण के मुक्ति सम्भव नहीं। इस प्रकार की योगसाधना से न तो परमात्म-सुख ही मिल सकता है और न मन का भ्रम (माया अंधकारादि) ही दूर हो सकता है।

"सुर साधन करि जल पिवै रहे निरोगा सोय।
रामचरण इक राम बिन वाको मुक्ति न होय।
वाको मुक्ति न होय झूठ के सागै लागा।
परमातम सुख त्याग भर्म उर का नहि भागा॥"[३]

---

१. अ० वा०, पृ० १२५।
२. वही।
३. वही, पृ० १७४।

यद्यपि स्वामी रामचरण ने रामस्मरण के सामने हठ योग की क्रियाओं की व्यर्थ
प्रतिपादित की है, किन्तु सुरति शब्द योग के वर्णन में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, त्रिवेणी, त्रिकुट
अनहद नाद, मेरु की घाटी आदि हठ योग सम्बन्धी शब्दों का प्रयोग किया है। जैसा कि पहले क
जा चुका है कि सन्तों ने योग को भी स्वानुभूति का विषय बना लिया था और उसी आधा
पर उन लोगों ने योग का ग्रहण किया था। अतः स्वामी रामचरण ने भी यदि हठ योग क
परिष्कार कर लिया तो वह सन्त परम्परा के अनुरूप ही था। इस सन्दर्भ में डॉक्टर राधिकाप्रसा
त्रिपाठी का यह मत समीचीन है—"उनका हठ योग प्रेम की डगर में चलते-चलते नाथयोगि
का हठ योग न रहकर संतों का सुरति शब्द योग हो गया।"[1]

लय योग

डॉक्टर बड़थ्वाल लिखते हैं कि "'लय योग' वह है जिसे निर्गुणी 'लौ' की संज्ञा दे
हैं।"[2] स्वामी रामचरण ने 'लै को अंग' में 'लै,' 'ल्यो' और 'ल्यौ' शब्दों का प्रयोग 'लय' के लि
किया है। लय योग पिण्ड में ब्रह्माण्ड निरूपित करता है। जो ब्रह्माण्ड में है, वह सब पिण
में भी है। प्रकृति का पुरुष में लय होना ही लय योग है। कुण्डलिनी ही वह प्रक
है जो जाग्रत होकर सहस्रार मे स्थित पुरुष में लय होती है।[3]

स्वामी रामचरण कहते हैं कि लय पहले 'रसना' में लगती है, फिर रसना से चलक
हृदय में पहुँचती है। लय जब हृदय से लग जाती है तो वही अजप्पा जाप कहा जात
है। इस स्थिति में पाप-पुण्य का भय सदा के लिये मिट जाता है—

> **"प्रथम लै रसना लगै, रामचरण निसि बास।**
> **रसना सूं हिरदै गई, बाझ नहीं परकास।**
> **हिरदै लै लागी रहै, सोही अजप्पा जाप।**
> **रामचरण तब ना रहै, पाप पुण्य की ताप।।"**[4]

वस्तुतः रसना से लय लगने का अर्थ नामस्मरण की आरम्भिक अवस्था है जिसे जा
कहा गया है और 'अजप्पा जाप' का तो स्वामी जी स्वयं नामोल्लेख कर देते है। इस लय
लग जाने पर भ्रम की निकम्मी आदत छूट जाती है और तब राम-मिलन होता है और ल
का निवास [ल्यो की धाम] का दर्शन हो जाता है।

---

१. डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी : रामसनेही सम्प्रदाय [अप्रकाशित शोध प्रबन्ध
गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रन्थालय, गोरखपुर]।

२. डॉ० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय [नया संस्करण], पृ० २५५

३. डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी : रामसनेही सम्प्रदाय [अप्रकाशित शोध प्रबन्ध
गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रन्थालय, गोरखपुर]।

४. अ० वा०; पृ० १२।

"रामचरण भ्रम ऊठतो, बाहर मिलसी राम।
गई खोड़ली बांण यह, दरसी ल्यो को धाम।"[1]

स्वामी जी कहते हैं कि जब तक भ्रम (माया) से मुक्ति नहीं मिलती, समझना चाहिए कि लय नहीं लगी क्योंकि लय लगते ही आनन्द प्रकट हो जाता है—

"हिरदै लै लागै नहीं, जब लग भरम न जाय।
रामचरण लैकै लग्यां आणंद प्रगटै आय।"[2]

लय लगने की पहचान यह भी है कि रातदिन, सोते-जागते कभी छूटे नहीं, सदा एकरसता बनी रहे। इस एकरसता से काल का जाल छूट जाता है और प्राणी कालातीत हो जाता है—

"लै लागी तब जाणिये, निसिदिन छूटै नांहि।
रामचरण रहै एक रस, सोवत जागत मांहि।
सोवत जागत एक रस, तो मार सकै नहि काल।
रामचरण लै कै लग्यां, कटी काल की जाल।"[3]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण ने लय योग की शास्त्रीय परिभाषा से अलग हटकर लय पर विचार किया है। उन्होंने लय को लगन या 'लौ' के अर्थ में उस सीमा तक लिया है जब 'अजपा जाप' की स्थिति निर्मित हो जाती है। किन्तु जैसा डॉक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि लय योग से आत्मानन्द का सुख मिलता है, स्वामी जी भी कहते हैं कि लय लगने से आनन्द प्रकट होता है। निष्कर्ष यह कि स्वामी जी लय में भी नामस्मरण या मन्त्र योग को महत्त्व देते हैं।

मन्त्र योग

मन्त्र योग नाम-साधना है। सभी सन्त नामोपासक रहे हैं पर उन्होंने मन्त्र योग के 'सोऽहं' को अपनी स्वीकृति नहीं दी। उन्होंने इसका भी अपने ढंग से परिष्कार किया और 'सोऽहं' के स्थान पर राम की प्रतिष्ठा की। स्वामी रामचरण 'साखी सुमरण को अंग' में स्पष्ट लिखते हैं कि 'ओम् सोऽहं' शब्द माया के विस्तार हैं,केवल 'रकार' माया रहित है—

"ॐ सोऽहं शब्द का, सब माया विस्तार।
रामचरण माया रहित, अखर एक रकार।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० १२।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ८।

स्वामी रामचरण की यह साखी सोऽहं के स्थान पर राम की प्रतिष्ठा ही न करती, वरन् सोऽहं के समक्ष राम शब्द की श्रेष्ठता भी यह कहकर प्रतिपादित करती है। 'ओम् सोऽहं' दोनों माया युक्त हैं और राम शब्द माया से परे है। यह राम-स्मर इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि यह शब्द तारक मन्त्र है। ग्रन्थ 'शब्द प्रकाश' में स्वामी ने बहुत ही स्पष्ट कहा है—

"रामनाम तारक मंत्र है, सुमिरै शंकर शेष।
रामचरण साचा गुरू, दैवै यो उपदेश।"[1]

कवि 'हरिनाम' पर इसलिए न्योछावर है क्योंकि उसके स्मरण से काया-नगरी प्रियतम से परिचय हो गया। नामस्मरण से ही सुरति शब्द संयोग भी होता है—

"रामचरण हरिनाम की मैं बलिहारी जांहि।
सुमर्या पिव परचै भया काया नगरी मांहि।
प्रथम शब्द श्रवणां शुणैं, रसना रटण लगाय।
सुरति समावै शब्द में, तब चित की चितवन जाय।"[2]

स्वामी जी रामस्मरण को 'मोक्ष पन्थ' घोषित करते हैं—

"सुमरै रमता राम कूं, गुण इन्द्री मन जीत।
रामचरण यह मोख पंथ, और सकल विप्रीत।"[3]

और 'सवैया सुमरण को अंग' में तो वे रामस्मरण को 'निर्मल धर्म' की संज्ञा दे डाल हैं, इससे 'परमपद' की प्राप्ति हो जाती है—

"रामचरण्ण ये निर्मल धर्म है,
होय पुनीत परमपद पावै।"[4]

इतना ही नहीं, जाने अनजाने भी यदि नित्य नामस्मरण किया जाय तो मुक्ति मि जाती है—

"जानि अजानि रटै नित राम कूं,
रामचरण्ण तिरैं ही तिरैंगे।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० २०८।
२. वही, पृ० ७।
३. वही, पृ० ९।
४. वही, पृ० ८६।
५. वही।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण ने राम के नामस्मरण को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना है। उन्होंने इसे मन्त्र योग से और भी श्रेष्ठ नाम 'मोख पंथ' और 'निर्मल धर्म' दिया है। यह राम-नाम का स्मरण ही सुरति शब्द योग का द्वार भी उन्मुक्त करता है। वस्तुतः यह सभी योगों की कुञ्जी है। सभी योग इसी में समाहित हैं। डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने उचित ही कहा है—"भक्ति योग, राज योग, मंत्र योग, लय योग, हठ योग एवं ज्ञान योग भी उसी के विविध रूपान्तर कहे जा सकते हैं। सभी के आधारभूत सिद्धान्त इसके भीतर आ जाते हैं।"[1] स्वामी जी 'नाम निरणा को अंग' में 'नाम का भेद कहो कूंण भाई ?' यह प्रश्न प्रस्तुत करके 'राम' नाम के स्मरण की स्पष्ट घोषणा करते हैं—

> "और सब नाम जुग जुग्ग उपजै खपै,
> एक रक्कार रहै, अखण्ड जोई।"[2]

स्वामी रामचरण का सुरति शब्द योग

स्वामी रामचरण ने सुरति शब्द योग का वर्णन अंगबद्ध वाणी के 'परचा को अंग' के विभिन्न छन्द शीर्षकों, 'नाम प्रताप' एवं 'शब्द प्रकाश' नामक लघुग्रन्थों तथा 'अणभो-विलास', 'जिज्ञास बोध' एवं 'विश्वास बोध' आदि बड़े ग्रन्थों में किया है। अन्य सन्तों की भाँति ही सुरति शब्द योग स्वामी रामचरण का स्वानुभूतिपरक योग है जिसे नाम योग की सिद्धि के सहारे प्राप्त होने की बात वे कहते हैं। 'स्वामी रामचरण की दृष्टि में योग' के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि नामस्मरण ही सब योगों का योग है। यह सभी योगों का मूल है। 'सुरति शब्द संयोग' इसी साधना से सम्भव है। इसे ही सहज योग भी कहा गया है।

भजन प्रताप की चार चौकियाँ

स्वामी जी ने सुरति शब्द योग की बड़ी स्पष्ट कल्पना प्रस्तुत की है। इस साधना के चार अवस्थान उन्होंने निरूपित किये हैं जिसे वे भजन प्रताप की चार चौकियाँ कहते हैं—

> "चोकी भजन प्रताप की, संत कह गए च्यार।
> रामचरण या सत्य है, दूजा भरम असार।"[3]

---

१. डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (नया संस्करण), पृ० २५५।

२. अ० वा०, पृ० १९२।

३. वही, पृ० १३।

इन चार चौकियों के मुकाम क्रमशः कण्ठ, हृदय, नाभि और ब्रह्माण्ड हैं—

"रसना कण्ठ रस पीय कै, हिरदै सुख विलास।
नाभि कमल सें उलटि कै, सुरति गई आकास।"[1]

सुरति शब्द योग की साधना की इन चारों अवस्थाओं का वर्णन स्वामी जी ने 'नाम प्रताप' एवं 'शब्द प्रकाश' में बहुत स्पष्ट किया है। यहाँ कवि के अनुसार चारों चौकियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है—

प्रथम अवस्थान

सुरति शब्द योग की साधना का प्रारम्भिक अवस्थान नाम जप है। यह 'राम-नाम' है जिसे स्वामी जी ने तारक मन्त्र कहा है। जिज्ञासु या साधक को इस रामनाम की उपलब्धि गुरु से होती है—

"प्रथम नाम सतगुरु सूं पाया।
श्रवणां सुनि कै प्रेह उपजाया।"[2]

सतगुरु से प्राप्त रामनाम का श्रवण कर जिज्ञासु को शब्द के प्रति प्रेमानुभूति होने लगती है और तब वह रसना की श्रद्धा का जागरण करके निशिवासर 'राम-रटन' में लीन होता है।

"पुनि रसना की श्रद्धा जागी।
राम रटनि निशिवासर लागी।"[3]

नाम के प्रति अनुराग भाव का जागरण ही रसना की श्रद्धा के जागरण का कारण होता है। तब अपर आशाएँ समाप्त हो जाती हैं और सुरति रामनाम में लग जाती है। मन एकाग्र हो जाता है और सुरति शब्द छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती—

---

१. अ० वा०, पृ० १३।

२. वही। यथा
"राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय।
रहना सूं सरक्या शब्द कण्ठ होय हिरदै ध्याय।
कण्ठ होय हिरदै ध्याय तृतीये नाभि निवासा।
नाभिकमल सूं उलटि गगन जाय किया विलासा।
चौकी च्यारूं परशि कै सहज समाधि समाय।
राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय।"—वही, पृ० १४१।

३. वही, पृ० २०८। तथा
"प्रथम नाम रसना सूं गावै।
मन कूं पकड़ि एक घर लावै।—वही, पृ० २०६।

"दूजी आशा सकल बुहारी।
तब रामनाम में सुरति ठहारी।"[1]

इस समय साधक पद्मासन लगाकर मन को निश्चल कर लेता है और साँस-उसाँस के साथ राम-जप में तन्मय हो जाता है। जप करते-करते नाम के प्रति जगी आसक्ति नामी राम के वियोग में परिणत हो जाती है।[2] नामोच्चारण करते-करते रसना की श्रद्धा उसके शिरोभाग से रसधार के रूप में स्रवित होने लगती है। यह स्राव अखण्ड होता है। इस स्राव का नीर दुग्धवत् होता है—

"तब रसना शिर छूटै धारा।
लगै अखण्ड नहिं खण्डै लगारा।"[3]

इसकी मिठास का क्या कहना! हर्ष और विश्वास की अनुभूति होने लगती है—

"रटतां रटतां भयो मिठास।
हर्ष भयो आयो विश्वास।"[4]

इस रसधार की मिठास से जल पीने की श्रद्धा समाप्त हो जाती है। साधक इस अमृत-पान से पल भर भी विलग नहीं होना चाहता। इस रस-पान से भूख नहीं लगती। प्रत्येक नाड़ी में गिलगिलो के चलने की अनुभूति होने लगती है और सुखधारा की अनवरतता शिराओं को मुदित कर देती है—

"जल पीवन की श्रद्धा नांही।
मति यो अमृत दूरि होइ जांही।
रस पीवत क्षुधा सब भागी।
कण्ठाँ शब्द टगटगो लागी।
नाड़ि नाड़ि में चलै गिलगिलो।
सुख धारा अति बहै सिलसिलो।

---

१. अ० वा०, पृ० २०८। तथा—
"राखे सुरति शब्द ही मांही।
शब्द छाँडि कहुं अनत न जांही।"—वही, पृ० २०६।

२. "श्वास उश्वांसा धवंण लगाई।
आरति करिकै विरह जगाई।"—वही, पृ० २०९।

३. वही, पृ० २०६। तथा—
"रसना अग्र खुली इक सीरा।
प्रथम वाको पय सो नीरा।"—वही, पृ० २०९।

४. वही, पृ० २०९।

मुख सूं कछू न उचरै बैना।
लग्या कपाट खुलै नहीं नैना।
श्रवणां चर्चा सुणै न कोई।
कण्ठ ध्यान यह लक्षण होई।"[१]

उपर्युक्त अवस्था को कवि 'कण्ठ ध्यान' की संज्ञा देता है। इस अवस्था में शिरायें तो आनन्दानुभव करती ही हैं, मुख से वाणी नहीं फूटती, नयन-कपाट बन्द हो जाते हैं, कान बाह्य चर्चा नहीं सुन पाते। शब्द जिह्वा से सरक कर कण्ठ-स्थान में आ जाता है। 'कण्ठ ध्यान' में कम्पन की अनुभूति होती है और रोम-रोम में शीतलता आ जाती है, हृदय गद्‌गद् हो जाता है, श्वास अवरुद्ध हो जाता है और नयनों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है—

"कण्ठ के ध्यान में कँमकँमी जागै।
रोम रोम सीतंग सो लागै।
हियो गद्‌गदे श्वास न आवै।
नैणां नीर प्रवाह चलावै।"[२]

यह कण्ठ-ध्यान विरहानुभूति की स्थिति है। कण्ठस्थान पर साधक की सुरति नामी राम का वियोग अनुभव करने लगती है। यह बड़ी कठिन अवस्था होती है। मुख से बोला नहीं जाता, खान-पान की रुचि नहीं रह जाती, शरीर क्षीण हो जाता है, त्वचाएँ सिकुड़ जाती हैं, नसें नीली पड़कर झलकने लगती हैं, चेहरा पीला पड़ जाता है, नेत्रों में लाली छा जाती है और ललाट आइने की ज्योति सदृश दीप्त हो उठता है, कम्पन और सिहरन चलने लगती हैं, छाती रुँध जाती है। विरहिणी की जैसी दशा हो जाती है। इस अवस्थान को या तो गुरु ही जानता है (जो विरह जगाता है) या फिर विरही स्वयं जो इसे झेलता है।[३]

---

१. अ० वा०, पृ० २०६। तथा
"केई दिवस रसना रस गटक्यो।
पीछे शब्द कण्ठ में अटक्यो।"—वही, पृ० २०९

२. वही, पृ० २०६।

३. "कण्ठ स्थान बहुत कठिणाई।
मुख सूं बचन न बोल्यो जाई।
खान पान में रुचि रहे थोरी।
मारग रुक्यो जाय कह वोरी।
क्षीण शरीर त्वचा सकुचानी।

द्वितीय अवस्थान

कण्ठस्थान की कठिनाई पारकर शब्द ने हृदय में प्रवेश किया।[1] यह साधना का द्वितीय अवस्थान है। कण्ठस्थान से चलकर हृदय-देश में शब्द के प्रवेश की क्रिया का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि एक दिन एक तमाशा हुआ, कण्ठ और हृदय के बीच 'हुलास' जगा। स्रवित होकर हृदय मे 'सीर सुखम रस' प्रवाहित होने लगा और 'शब्द ब्रह्म' हृदय में वास करने लगा। अन्धेरी निशा में शशि के आलोक-सा अनुभव होने लगा—

> "एक दिवस इक भया तमासा।
> कण्ठ हृदा बिच उठ्यो हुलासा।
> ज्यूं पाला की डोरणि छूटी।
> हिरदे सीर सुखम रस ऊठी।
> शब्द ब्रह्म हिरदै किया बासा।
> ज्यूं रैण अंधेरी चंद प्रकाशा।"[2]

परमसुख से हृदय आलोकित हो उठा जैसे रवि ने अन्धकार को विनष्ट कर दिया हो—

> "परम सुक्ख हिर्दै परकाशा।
> ज्यूं रवि कीनो तम को नाशा।"[3]

इस अवस्थान को कवि 'हृदय ध्यान' की संज्ञा से अभिहित करता है। इस अवस्था में भ्रम, कर्म, संशय सभी दूर जा पड़े और हृदय में अखण्ड जाप होने लगा। जब हृदय-

---

नीली नस दीसै झलकानी।
पीरो बदन नेतरां लाली।
मुकुर ज्योति ज्यूं दिपै कपाली।
चले कँमकँमी रूं थररावै।
छाती रुँधै स्वास न आवै।
ऐसी विधि विरहनि की होई।
विरहि जांणै कै सतगुरु सोई।"—अ० वा०, पृ० २०९।

१. "एक दिवस ऐसी बनि आंही।
शब्द सरक गयो हिर्दा मांही।"—वही, पृ० २०९।

२. वही, पृ० २०६।

३. वही, पृ० २०९।

ध्यान की ध्वनि होने लगती है तो सभी अन्य साधन लुप्त हो जाते हैं। इस सुख की महिमा अवर्णनीय है।[1] हृदय के भीतर होने वाले इस सहज सुमिरन का रहस्य बाहर कोई नहीं जान पाता—

"सहजै सुमरण हिरदै होई।
बाहिर भेद न जांणे कोई।"[2]

सोते-जागते हर अवस्था में यह सहज सुमिरन चलता रहता है। वन-बस्ती की शंका नहीं रह जाती। यह कवि की दृष्टि में 'अजपा जाप' की स्थिति है। इस अवस्था में बाहरी साधन बिला जाते हैं।

"सोवत जागत डोरी लागी।
बन बस्ती की शंका भागी।
रसना जप्यां अजप्पा पाया।
बाहिर साधन सकल बिलाया।"[3]

प्रेम का जागरण हो जाने पर सांसारिक मर्यादाओं के नियम बन्धन समाप्त हो जाते हैं। इस प्रेम साधना[4] द्वारा ही साधक को शरीर में 'राम धाम' मिल जाता है—

"जाग्यो प्रेम नेम रह्यो नांही।
पाई रामधाम घर मांही।"[5]

तृतीय अवस्थान

उर-स्थान में विश्राम कर शब्द नाभिप्रदेश में पहुँचता है। यह तीसरा मुकाम है—

---

१. "भर्म कर्म सांशो गयो भागी।
हिरदै ध्वनी अखण्ड लिवलागी।
कहा कहूं या सुख की महिमा।
ओर सुख सब दीशै पल मा।
हिरदै ध्यान ध्वनी जब होई।
दूजो साधन रहै न कोई।" —अ० वा०, पृ० २०६-२०७।

२. वही, पृ० २०९।

३. वही।

४. "सुमिरन एक प्रकार की प्रेम साधना है।"
—डॉ० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (नया संस्करण), पृ० २५३।

५. अ० वा०, पृ० २०९।

"उर अस्थान पाय विश्रामा।
शब्द किया जाय नाभि मुकामा।"[1]

'नाम प्रताप' में 'शब्द' को कवि 'लै' कहता है। यह 'लय' नाभिकमल मे जाकर चैतन्य हो जाती है—

"हिरदै सूं लै धरणी गई।
नाभिकमल में चेतन भई।"[2]

यहाँ पहुँचकर शब्द गुञ्जन करने लगता है जिससे सभी नाड़ियां जागृत हो जाती हैं। रोम-रोम से राग ध्वनित होने लगते हैं और नौ सौ नाड़ियों का मंगलगीत सुनायी पड़ता है। यहाँ मन-मधुप को अतीव सुख मिलता है—

"शब्द गुंजार नाड़ि सब जागे।
रोम रोम में होइ रही रागे।
नौ से नारी मंगल गावे।
तहाँ मन भँवरा अति सुख पावे।"[3]

काया शीतल हो जाती है, क्योंकि शब्द को ब्रह्मरस का अमृत प्राप्त हो जाता है।[4] रोम रोम ताँत यन्त्र की तरह झंकृत होने लगता है—

"रोम रोम झणकार झुणंकै।
जैसे जंतर तांत ठुणंकै।"[5]

चतुर्थ अवस्थान की ओर

नाभि-प्रदेश में ब्रह्मरस की अनुभूति करने के बाद शब्द गगन[6] की ओर अपनी यात्रा आरम्भ करता है। गगन का रास्ता मेरुदण्ड की घाटी से होकर है। इस मेरु में

---

१. अ० वा०, पृ० २०९।
२. वही, पृ० २०७।
३. वही। तथा
"नाभिकमल में शब्द गुंजारे।
नौ से नारी मंगल उचारे।"—वही, पृ० २०९।
४. "शीतल भई सबै ही काया।
शब्द ब्रह्म रस अमृत पाया।"—वही, पृ० २०७।
५. वही, पृ० २०९।
६. "गगन शरीर के भीतर का वह आकाशवत् अन्तराल जिसमें ज्योतिर्मय ब्रह्म

बीस गाँठें हैं। शब्द के वेग से बीसों गाँठें फट जाती हैं और गगन का मार्ग खुल जाता है।[1]

"अब तो शब्द गगन कूँ चढ़िया।
पछिम घाटि होइ कै अनुसरिया।"[2]

घाटी के मार्ग से होकर शब्द त्रिकुटी[3] पर पहुँचता है। इसके ऊपर 'अनहद' बजता है। यह त्रिकुटी इड़ा, पिंगला, और सुषुम्ना का त्रिवेणी संगम है। इस त्रिवेणी घाट पर स्नान करके जीव गगन में प्रवेश करता है—

"पहिली बैठा त्रिकुटी छाजे।
जाके ऊपर अनहद बाजे।
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया।
निर्मल होय आगे कूं ध्याया।

इंगला पिंगला सुखुमणा, मिले त्रिवेणी घाट।
जहाँ झाझ जल झूलि के, निर्मल होय निराट।
अब त्रिवेणी न्हाइ कै, कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूँ अलघ सुख, यो कोई चौथा देश।"[4]

चतुर्थ अवस्थान

अभी तक जिन तीन लोकों के सुख की चर्चा हुई है उससे बिल्कुल भिन्न सुखों वाला यह कोई चौथा देश है। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने इस अवस्थान पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि "यह साधना की अंतिम भूमिका है जहाँ सुरति शब्द को पकड़कर

का प्रकाश दीखता है और जहाँ से अनाहत की ध्वनि सुन पड़ती है। इसको कभी-कभी 'शून्य' भी कहा करते हैं।"—पण्डित परशुराम चतुर्वेदी, संत काव्य, पृ० ५७१।

१. पश्चिम दिशा मेरुकी घाटी।
बीसूं गांठि घोर से फाटी।—अ० वा०, पृ० २०९।

२. वही पृ० २०७।

३. त्रिकुटी—भूमध्य में स्थित वह बिन्दु है जहाँ इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना योग नाड़ियों का मिलन होता है और जिसे इसी कारण 'त्रिवेणी' भी कहा जाता है।"
—पं० परशुराम चतुर्वेदी : संतकाव्य, पृ० ५७२।

४. अ० वा०, पृ० २०७।
त्रिकुटी संगम कीया स्नाना।
जाइ चढ्या चौथे अस्थाना। —वही, पृ० २०९।

पुरुष ररंकार का यह मिलन और तज्जन्य आनन्द का विस्मयकारी वर्णन—यही संत साधना का अनर्घ अक्षय कोष है।"[1]

इस गगन लोक (चौथा घर) में निरंजन सिंहासनासीन है जिसकी ज्योति के प्रकाश से अनन्त सूर्य शोभा पाते हैं। जहाँ अनहद नाद अगणित रागों में ध्वनित होता रहता है। जहाँ सुषुम्ना नीर की फुहार निरन्तर स्रवित होती रहती है जिससे सुरति भींग कर गर्क हो जाती है। जहाँ अर्द्ध-उर्ध्व कमल विकसित है और सुरति भँवरा बनकर विलसती है। जहाँ अनहद की 'घरर-घरर' सुन पड़ती है और परम ज्योति का विद्युत् प्रकाश दीख पड़ता है—

"जहाँ निरंजन तख्त बिराजै।
ज्योति प्रकाश अनन्त रवि राजै।
अनहद नाद गिणत नहि आवै।
भाँति भाँति की राग उपावै।
स्रवै सुषुम्णा नीर फुहारा।
शून्य शिखर का यह विह्वारा।"[2]

'कुण्डल्या को अंग' में स्वामी जी इसे 'ब्रह्म सभा' कहते हैं। इस ब्रह्म-सभा का विस्मयकारी वर्णन उन्हीं की पंक्तियों में प्रस्तुत है—

"बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजै तूर।
बिन श्रवणां अनहद सुणें जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर।
जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर और कोई निजर न आवै।
सुरति रही मठ छाय देह तहां जांण न पावै।
रामचरण वै देश में बहु परकाशे सूर।
बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजै तूर।"[3]

---

१. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ११०।
२. अ० वा०, पृ० २०९ तथा।
"घरर घरर अनहद घहरावे।
परमज्योति दामणि भलकावे।
सुषुमण नीर लूंब झड़िलाई।
भीजत सुरति गर्क होइ जाई।
अर्घ ऊर्घ जहां कमल प्रकासा।
सुरति भंवर होइ करत विलासा।"—वही, पृ० २०७।
३. वही, पृ० १४१।

अपने ग्रन्थ 'जिज्ञास बोध' के पञ्चम प्रकरण में स्वामी जी उस अगम स्थान में सुरति-शब्द संयोग का दृश्य-वर्णन करते हैं—

"जागी ज्योति जगत गुरु दर्श्या, पर्श्या अगम सथाना वे।
रसना बिना रामधुन लागी, जानै संत सुजाना वे।
गगन मण्डल में बाजै अनहद, सुणि है बिनही काना वे।
चरण बिना जहां नृत्य करत हैं, देखत है ब्रह्म दांना वे।
भांति भांति सुखदाई नाटक, प्रेम मगन गलतांना वे।
रीझ रमइया मोजां बकसी, जांमण मरण मिटांना वे।"[1]

उस अगम लोक के अनाहद नाद का अलौकिक स्वर संगम का एक चित्र 'रेखता प्रचा को अंग' में स्वामी जी ने प्रस्तुत किया है—

"घोर अनहद की गगन गिरणाईयां होत बहु सौर नहिं कहत आवै।
झालरी बीण मरदंग सहनाईयां बांसुरी ताल झुणकार लावै।
भेरि नरसिंग करनाल बंक्या बजै चंग अरु उपंग गति करत न्यारी।
एक एक नाद में राग नाना उठै मधुर स्वर मधुर स्वर चलत भारी।
मंजीरा मान धधकार धोलक करै गिड़गिड़ी राय मोहोचंग बाजै।
रुणझुणूं रुणझुणूं नृत्य ज्यूं घुघरू घटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै।"[2]

इसी सन्दर्भ में स्वामी जी कहते हैं कि संसार में ३६ रागों का वर्णन किया गया है पर संतजन गगन में 'बेपरमाण अनहद' सुनते हैं—

"रामचरण संसार में, राग छतीस बखांण।
संत सुनत है गिगन में, अनहद बेपरमांण।"[3]

उस चौथे देश की बात अतुलनीय है, मुख से उसका वर्णन सम्भव नहीं। प्रत्यूष-वेला के अरुणालोक सदृश उस अगम देश का अवर्ण्य आलोक है। जहाँ अनहद गरजता रहता है, गगन झरता है, दामिनी चमकती है, वहीं सागर के तट पर हंस निवास करता है। हंस में सागर समा गया। द्वैत की यहीं समाप्ति है।[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ५४०।
२. वही, पृ० १९२-९३।
३. वही, पृ० १४।
४. "या तो बात अतोल है भाई।
मुख सूं कहा तोल ह्वै जाई।
... ..."

सुरति शब्द का संयोग बूंद और समुद्र का संयोग है। जैसे बूंद समुद्र में मिल जाती है, फिर उसे पकड़ा नहीं जा सकता वैसे ही जीव और ब्रह्म का मिलन अभिन्न है। स्वामी जी कहते हैं कि जब तक यह स्थिति न आ जाय, ध्यान नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि राम के बिना सारा ज्ञान ही फोकट है—

"जैसे बूंद मिली सायर में।
कैसे पकड़ि सके कोइ कर में।
जीव ब्रह्म मिली भया समाना।
ब्रह्म मिल्याँ कर्म करै न आना।

एह चहन दर्श्यां बिनां, मति कोइ छोड़ो ध्यान।
रामचरण इक राम बिन, सबही फोकट ज्ञान।"[1]

यही स्वामी रामचरण के सुरति शब्द योग की संक्षिप्त समीक्षा है। वैसे अपने विभिन्न ग्रन्थों एवं फुटकर पदों में उन्होंने सुरति शब्द योग का वर्णन विभिन्न प्रतीकों द्वारा भी किया है।

भक्ति

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि निर्गुण सन्तों की भक्ति पर वैष्णव सिद्धान्तों का प्रभाव रहा है। यद्यपि सन्तमत के मूल में नाथों की योग-साधना आबद्ध है, फिर भी सन्तमत के विकास के समय वैष्णव-भक्ति की भावधारा इतनी प्रबल थी कि वह सन्तों की साधना की एक प्रमुख भूमिका बन गयी। शनैः शनैः योग की कठिन प्रक्रियाओं का सन्त-साधना से एक प्रकार से बहिष्कार-सा हो गया। अब वे सुरति-शब्द योग के अभ्यासी बन गये थे, जिसकी सहजता की भावभूमि में वैष्णवों के रामभजन की प्रमुख भूमिका रही है। डॉ० रामकुमार वर्मा का निम्नलिखित मत इस विचार की पुष्टि करता है। वे लिखते हैं—"रामानन्द के प्रभाव से राम और उनकी भक्ति का प्रसार इतना अधिक था कि सन्त सम्प्रदाय में भी राम और उनकी भक्ति का रूप स्वीकार किया गया। यह बात दूसरी

रूप वर्ण कैसो तड़का को।
ऐसो कहा बखाँनो जाको।
अनहद गरजै नभ झरै, दामिनि ज्योति उजास।
रामचरण सुनि सायरां, हंसा करत निवास।
सायर तट हंस बैठा जाई।
सायर हंस में रह्या समाई।" —अ० वा०, पृ० २०७।

१. वही, पृ० २०८।

है कि राम का नाम ही संतमत में मान्य हुआ; राम का व्यक्तित्व नहीं। राम के ब्रह्म रूप को विस्तार देने के लिए एक ओर अवतार और मूर्ति का खण्डन किया गया और दूसरी ओर राम के अनेकानेक नाम तथा उनके निर्गुण रूप पर अधिक बल दिया गया।"[1]

डॉ० वर्मा के इस दृष्टिकोण की और भी स्पष्टता संत विनोबा की इन पंक्तियों से प्राप्त होती है जिसे 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने उद्धृत किया है—"कुछ ध्यानी नाम के साथ सगुण निराकार का ध्यान करते हैं। अक्सर हम- जहाँ निर्गुण-निराकार को छोड़ते हैं, सगुण-साकार में आ जाते हैं। लेकिन इन दोनों के बीच सगुण-निराकार की भी एक भूमिका होती है। इसमें भगवान को निराकार मानते हुए भी दया, वात्सल्य आदि अनन्त गुणों के परम आदर्श के तौर पर माना जाता है।"[2] वस्तुतः निर्गुण निराकार भगवान में आदर्श गुणों का आरोप वैष्णव भक्ति की भावधारा का प्रभाव है। सन्तों की भक्ति-साधना का अध्ययन करते समय उक्त विचार पर दृष्टि रखना नितान्त आवश्यक है।

स्वामी रामचरण की भक्ति-समीक्षा के संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि स्वामी जी ने रामावत वैष्णव-सम्प्रदाय में दीक्षा ली थी। उनकी गुरु गद्दी दांतड़ा की वैष्णव गद्दी है। उनके गुरु स्वामी कृपाराम जी परम वैष्णव सन्त थे जिनकी स्वामी जी ने अपनी 'अणभै-वाणी' एवं अन्य ग्रंथों में भूरि-भूरि प्रशंसा की है। स्वामी रामचरण के जीवन-वृत्त से यह भलीभाँति स्पष्ट है कि वे अपने विरागी जीवन के आरम्भ में एक रामानन्दी साधु के रूप में विख्यात थे और बाद में निर्गुणोपासक हुए। अतः स्वामी जी के भक्ति विषयक दृष्टिकोण पर वैष्णव प्रभाव स्वाभाविक है। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने लिखा है कि—"इस दृष्टि से स्वामी रामचरण जी की वाणी में भगवान का सगुण-निराकार रूप आया है; पर, सगुण होते हुए भी वह अलिप्त है—व्योमवत्; यही उसका वैशिष्ट्य है और यही मध्य भूमिका है।"[3]

स्वामी रामचरण की दृष्टि में भक्ति

महिमा

स्वामी रामचरण के विशाल साहित्य में सर्वत्र-भक्ति-भावना का आरोपण मिलता है। स्वामी जी ने भक्ति की श्रेष्ठता का अनुभव किया है। उनकी दृष्टि में भक्ति से सभी कुछ सम्भव है। 'कवित भक्ति महिमा को अंग' में भक्ति की महिमा का गायन करते हुए वे कहते हैं कि भक्ति के प्रभाव से सूखा सरोवर पल भर में जलपूरित हो सकता है और भरापूरा जलाशय उसी क्षण सूख भी सकता है। जलाशय ऊसर में परिणत हो सकता है।

---

१. संपादक—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड); पृ० २०७।
२. श्री केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ८९-९०।
३. वही पृ० ९०।

राक्षसकुलोद्भव प्रह्लाद 'भक्ति के खंभ' से ही उजागर हो गया और राजा उग्रसेन का पुत्र कंस दुर्बुद्धि के कारण असुर हो गया। स्वामी जी की दृष्टि में भगवान की गति वर्णनातीत है, वह अनहोनी को होनी में बदल देता है और जो होनी है वह बिला जाती है—

"सूका सरवर भरै भर्या पलमांहि सुकावै।
सर सूं ऊसर होय उसर्या सर होय जावै।
राखस कुल प्रह्लाद भक्ति के खंभ उजागर।
उग्रसेन सुत कंस भये आसुर बुधि आगर।
रामचरण कहिए कहा हरिगति लिखो न जाय।
अँणहोणी होणीं करै होणीं जाय बिलाय।"[1]

यह भक्ति ही है जिसकी महिमा में ध्रुव स्वर्ग को सुशोभित कर रहे हैं और सप्तर्षि उनकी परिक्रमा में रत हैं। भगवान तो अपने भक्त के प्रेम के भूखे हैं, इसीलिए तो उन्होंने ब्राह्मण और ऋषियों को छोड़कर शबरी का जूठन लिया। दुर्योधन का यज्ञ त्यागकर विदुर का 'साग' ही खाया।—

"ध्रू राजत बैकुण्ठ सप्त परिक्रमां देवै।
बड़े विप्र ऋषि नाह, झूठ शबरी को लेवै।
... ...
दुर्योधन जिग त्याग विदुर को साग ही पायो।"[2]

स्वामी जी ने बड़े निःसंकोच शब्दों में कहा कि हरिभक्त के बिना कुल की उत्तमता व्यर्थ है। यदि यवन और चाण्डाल भक्त हैं तो उत्तमकुलीन भी उनकी तुलना में नहीं आ सकते। भगवान का भजन करने वाले ऊँच-नीच सभी समान हैं। भक्ति की दुनियाँ में सर्वश्रेष्ठ जाति भक्तों की होती है। भक्ति-भावना से रहित ऊँच और श्वपच में कोई भेद नहीं—

"उत्तम कुल किस काम जहां हरि भक्ति न होई।
भक्त जवन चंडार तास तुलि ओर न कोई।
... ...
ऊंच नीच हरि कूं भजै सो ही उत्तम जांन।
रामचरण हरिभजन बिन ऊँचहि श्वपच समान।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० १२६।
२. वही।
३. वही।

इसी अंग में उन्होंने हनुमान, विभीषण, अजामिल, अंबरीष आदि अनेक भक्तों की चर्चा की है। इसी सन्दर्भ में स्वामी जी कहते हैं कि हरिभक्ति के बिना सभी साधन निरर्थक हैं—

"रामचरण हरि भजन बिन साधन सब बेकाम।
तातें साधन साधि कै निशिदिन रटिये राम।"[1]

ग्रंथ 'अणभो विलास' के तृतीय प्रकरण में 'चौरासी की थारा' के इलाज रूप में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य को महापद घोषित करते हुए भक्ति को सर्वश्रेष्ठ निरूपित करते हैं। उनके अनुसार अन्य साधन भय-भरित हैं, एक भक्ति ही भय रहित है—

"चोरासी की धारा भारी, जाको यह इलाजा।
ज्ञान भक्ति वैराग्य महापद, जानों धर्म जिहाजा।
सो अब सुणों कहूं गति जाकी, पाकी बुधि कर भाई।
जाकी शाख निगम नित गावै, सो गुरुदेव बताई।
दृढ़ता सेती उर मैं धरिये, करिये कारज भाई।
और सकल साधन भय भरिया, भक्ती निर्भय भाई।"[2]

ग्रंथ 'जिज्ञास बोध' के द्वितीय प्रकरण में स्वामी रामचरण भक्ति को 'भव नीर' के पोत के रूप में निर्दिष्ट करते हैं जिस पर चढ़कर अनेक स्त्री-पुरुष पार उतरे हैं। भक्ति के समान तीनों लोक में दूसरा कोई धर्म नहीं। अनन्त पुण्य, पाठ, तप, जाप, यज्ञ, वेद विद्या, योग-साधना, तीर्थ, दान, स्नान, पर्व आदि तुलना में भक्ति की बराबरी नहीं कर सकते। षट्दर्शन, वर्णाश्रम-धर्म की साधना भले ही कीजिए पर बिना भक्ति के भगवान् में प्रेम नहीं होता—

"भक्ति भवनीर पर जांन ये पोत है बहुत नर नारि चढ़ि पार हूवा।
भक्ति सौं धर्म तिहुं लोक में को नहीं भक्ति मधि सब नांहि जूवा।
अनन्त पुंन पाठ तप जाप जज्ञादि से वेद विद्या पढ़ै जोग धारा।
तीरथां दान संनान पर्व्यां तणो तोलिए भक्ति सम नांहि सारा।
दर्शणी वरण आश्रम का धर्म भल साधिये भक्ति बिन प्रेम नांही।
राम ही चरण कोउ बरण के आतमा भये जग पार मिज भक्ति मांही।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० १२६।
२. वही, पृ० २२१।
३. वही, पृ० ५२५।

ग्रंथ 'अमृत उपदेश' के तीसरे प्रकाश में स्वामी रामचरण भक्ति को 'नित्यधर्म' की संज्ञा देते हुए उसे अगाध बताते हैं। भक्ति से पावनता मिलती है, यह भ्रमविनाशिनी एवं कर्म की मलिनता दूर करती है, शुद्ध चित्त में ही इसका ग्रहण होता है—

"भक्ति सो अगाध कहै वेद रु पुराण साध,
ताहू को न अन्त होय जोय धर्म नित्त है।
पावन करन सब हरन मलीन कर्म,
भ्रम को विनाश करै धरै शुद्ध चित्त है।"[1]

स्वामी जी हरिभक्ति को मानव की ऋतु कहते हैं जिसे करने से मनुष्य पावन होता है—

"नर की ऋतु हरि भक्ति है, कियांस पावन होय।
रामचरण निज भक्ति बिन, पावन करै न कोय।"[2]

रामभक्ति की गंगा के अवगाहन से ही मनुष्य निर्मल होता है, गंगा, गया के स्नान निर्मलता नहीं प्रदान कर सकते। रामभक्ति की भागीरथी में स्नान करके निर्मल हुए भक्त की प्रसिद्धि होती है, बखान होता है पर गंगा गया के स्नानार्थी को कौन जानता है? भक्ति में ऊँच-नीच के सभी कर्मों को धो डालने की क्षमता है—

"रामचरण गंगा गया निर्मल करै न कोय।
रामभक्ति भागीरथी करै स निर्मल होय।
करै स निर्मल होय, सबै बिख्यात बखांणै।
गंगा गया स्नान किया ताहि कोइ न जांणै।
ऊँच नीच कुल का कर्म भक्ती डारै धोय।
रामचरण गंगा गया निर्मल करैं न कोय।"[3]

ग्रंथ 'विश्वास बोध' के चतुर्थ प्रकरण में स्वामी जी रामभक्ति की सूक्ष्मता का निरूपण करते हैं। उनकी दृष्टि में 'रामभक्ति' महाझीण' (अति सूक्ष्म) है, इसे वही कर सकता है जो सूक्ष्म हो, यह भक्ति स्थूल मन की साधना का विषय नहीं है—

"रामभक्ति महाझीण है, झीणा झीणी सोय।
मोटा मन सूं ना सधै, कोइ साधै झीणा होय।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ४४३।
२. वही।
३. वही
४. वही, पृ० ६७२।

इसी अंग में उन्होंने हनुमान, विभीषण, अजामिल, अंबरीष आदि अनेक भक्तों की चर्चा की है। इसी सन्दर्भ में स्वामी जी कहते हैं कि हरिभक्ति के बिना सभी साधन निरर्थक हैं—

"रामचरण हरि भजन बिन साधन सब बेकाम।
तातें साधन साधि कै निशिदिन रटिये राम।"[१]

ग्रंथ 'अणभो विलास' के तृतीय प्रकरण में 'चौरासी की थारा' के इलाज रूप में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य को महापद घोषित करते हुए भक्ति को सर्वश्रेष्ठ निरूपित करते हैं। उनके अनुसार अन्य साधन भय-भरित हैं, एक भक्ति ही भय रहित है—

"चोरासी की धारा भारी, जाको यह इलाजा।
ज्ञान भक्ति वैराग्य महापद, जानों धर्म जिहाजा।
सो अब सुणों कहूं गति जाकी, पाकी बुधि कर भाई।
जाको शाख निगम नित गावै, सो गुरुदेव बताई।
दृढ़ता सेती उर मैं धरिये, करिये कारज भाई।
और सकल साधन भय भरिया, भक्ती निर्भय भाई।"[२]

ग्रंथ 'जिज्ञास बोध' के द्वितीय प्रकरण में स्वामी रामचरण भक्ति को 'भव नीर' के पोत के रूप में निदर्शित करते हैं जिस पर चढ़कर अनेक स्त्री-पुरुष पार उतरे हैं। भक्ति के समान तीनों लोक में दूसरा कोई धर्म नहीं। अनन्त पुण्य, पाठ, तप, जाप, यज्ञ, वेद विद्या, योग-साधना, तीर्थ, दान, स्नान, पर्व आदि तुलना में भक्ति की बराबरी नहीं कर सकते। षट्दर्शन, वर्णाश्रम-धर्म की साधना भले ही कीजिए पर बिना भक्ति के भगवान् में प्रेम नहीं होता—

"भक्ति भवनीर पर जांन ये पोत है बहुत नर नारि चढ़ि पार हूवा।
भक्ति सों धर्म तिहुं लोक में को नहीं भक्ति मधि सब नांहि जूवा।
अनन्त पुंन पाठ तप जाप जज्ञादि से वेद विद्या पढ़ै जोग धारा।
तीरथां दान संनान पर्व्यां तणो तोलिए भक्ति सम नांहि सारा।
दर्शणी वरण आश्रम का धर्म भल साधिये भक्ति बिन प्रेम नांही।
राम ही चरण कोउ बरण के आतमा भये जग पार मिज भक्ति मांही।"[३]

---

१. अ० वा०, पृ० १२६।
२. वही, पृ० २२१।
३. वही, पृ० ५२५।

ग्रंथ 'अमृत उपदेश' के तीसरे प्रकाश में स्वामी रामचरण भक्ति को 'नित्यधर्म' की संज्ञा देते हुए उसे अगाध बताते हैं। भक्ति से पावनता मिलती है, यह भ्रमविनाशिनी एवं कर्म की मलिनता दूर करती है, शुद्ध चित्त में ही इसका ग्रहण होता है—

"भक्ति सो अगाध कहै वेद रु पुराण साध,
ताहू को न अन्त होय जोय धर्म नित्त है।
पावन करन सब हरन मलीन कर्म,
भ्रम को विनाश करै धरै शुद्ध चित्त है।"[1]

स्वामी जी हरिभक्ति को मानव की ऋतु कहते हैं जिसे करने से मनुष्य पावन होता है—

"नर की ऋतु हरि भक्ति है, कियांस पावन होय।
रामचरण निज भक्ति बिन, पावन करै न कोय।"[2]

रामभक्ति की गंगा के अवगाहन से ही मनुष्य निर्मल होता है, गंगा, गया के स्नान निर्मलता नहीं प्रदान कर सकते। रामभक्ति की भागीरथी में स्नान करके निर्मल हुए भक्त की प्रसिद्धि होती है, बखान होता है पर गंगा गया के स्नानार्थी को कौन जानता है? भक्ति में ऊँच-नीच के सभी कर्मों को धो डालने की क्षमता है—

"रामचरण गंगा गया निर्मल करै न कोय।
रामभक्ति भागीरथी करै स निर्मल होय।
करै स निर्मल होय, सबै विख्यात बखांणै।
गंगा गया स्नान किया ताहि कोइ न जांणै।
ऊँच नीच कुल का कर्म भक्ती डारै धोय।
रामचरण गंगा गया निर्मल करैं न कोय।"[3]

ग्रंथ 'विश्वास बोध' के चतुर्थ प्रकरण में स्वामी जी रामभक्ति की सूक्ष्मता का निरूपण करते हैं। उनकी दृष्टि में 'रामभक्ति' महाझीण' (अति सूक्ष्म) है, इसे वही कर सकता है जो सूक्ष्म हो, यह भक्ति स्थूल मन की साधना का विषय नहीं है—

"रामभक्ति महाझीण है, झीणा झीणी सोय।
मोटा मन सूं ना सधै, कोइ साधै झीणा होय।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ४४३।
२. वही।
३. वही
४. वही, पृ० ६७२।

इसी प्रकार ग्रंथ 'दृष्टान्त सागर' में अनेक दृष्टान्तों द्वारा भक्ति की महिमा स्वामी जी ने गायी है। स्वामी रामजन जी की टीका से इन दृष्टान्तों के गूढार्थ की जानकारी होती है। स्वामी जी के सम्पूर्ण साहित्य वचनिका में भक्ति की प्रमुखता है।

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य के प्रतीक

स्वामी रामचरण ने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य तीनों में भक्ति को ही प्रमुखता दी है, यह पीछे स्पष्ट किया जा चुका है। ग्रंथ 'अणभो विलास' के तीसरे प्रकरण में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य, तीनों की विशेषता[1] निरूपित करते हुए कवि ने ऋतु प्रतीक के द्वारा तीनों की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की है—

> **"शीत सरस ऋतु शीत में ग्रीषम अधिक तपांहि।**
> **तब समझ्या ऐसें कहै पावस अति बर्षांहि।**
> **पावस अति वर्षांहि चहन मन मोद उपावै।**
> **यूं प्रथम ज्ञान वैराग्य उभय मिलि भक्ति बधावै।**
> **ये अंगवांणी आगम कहै जांणे सो लखि जांहि।**
> **शीत सरस ऋतु शीत में ग्रीषम अधिक तपांहि।"[2]**

शीत, ग्रीष्म और पावस, इन तीन ऋतुओं में शीतकाल अतीव शीतल, ग्रीष्म अतीव तापमय और पावस अति वृष्टि की ऋतु है। यद्यपि पावस में अत्यधिक वृष्टि होती है पर वह ऋतु मन में मोद बढ़ाती है। इनमें शीत ज्ञान का, ग्रीष्म वैराग्य का और पावस भक्ति का प्रतीक है। इस प्रतीक में वर्षा अर्थात् भक्ति को मन मुदित करनेवाली कहा गया है। निस्सन्देह भक्ति, वैराग्य और ज्ञान से अधिक महिमामयी सिद्ध होती है। इन तीनों ऋतुओं के भेद से ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का भेद स्पष्ट हो रहा है और भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन भी। स्वामी जी के निम्नलिखित 'दृष्टान्त' एवं उसकी टीका वचनिका द्वारा यह विषय भलीभाँति स्पष्ट हुआ है—

---

१. "ज्ञान भक्ति वैराग्य की खरा खरी यह बात।
आपा अर्पै आप कूं करै नहीं परघात।
करै नहीं परघात भक्ति जहाँ भर्म न कोई।
ज्ञान सबै निर्दोष त्याग वैराग्य स होई।
रामचरण जे पहुँचसी निर्भय पदकुशलात।
ज्ञान भक्ति वैराग्य की खरा खरी यह बात।"—अ० वा०, पृ० २२१।

२. वही।

"च्यार भ्रात आगे चलै च्यार लार मधि च्यार।
च्यार सुलखणां कर रहै आठतणूं अधिकार।
आठ तणूं अधिकार च्यार बिन आदर नांही।
आठ बाट होय जाय बाल्हवा निजर छिपांही।
च्यार सध्यां आठां मिलै सज्जन हाथ पसार।
च्यार भ्रात आगे चलै च्यार लार मधि च्यार।"[1]

इस मूल प्रतीक को 'वाणी' में टीका वचनिका[2] द्वारा स्पष्ट किया गया है। प्रतीक का स्पष्टीकरण यहाँ दिया जाता है।

एक वर्ष में १२ मास होते हैं। इस एक वर्ष को पिता और १२ महीनों को पुत्र माना गया है। चार-चार महीने की एक-एक ऋतु हुई, यथा—चार महीने की ग्रीष्म ऋतु, चार महीने की पावस और शेष चार महीने की शीत ऋतु। वर्ष पिता के १२ मास-पुत्रों को तीन भागों में संगठित कर दिया गया है। इन १२ पुत्रों के १२ लक्षण हैं जिनका ब्यौरा चार-चार के तीन विभागों में अलग-अलग प्रस्तुत किया गया है। स्वामी जी धूपकाल को वैराग्य, वर्षाकाल को भक्ति और शीतकाल को ज्ञान का प्रतीक मानते हैं। फिर प्रत्येक मास को उसके साधना-भेद से जोड़ते हैं। हर महीना अपनी ऋतु के अन्तर्गत क्रमशः वैराग्य, भक्ति और ज्ञान की विभिन्न साधना अवस्थानों का प्रतीक है।

१. **धूपकाल**—यह वैराग्य का प्रतीक है।[3] इसके अन्तर्गत स्वामी जी ने फाल्गुन, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ के महीनों को रखा है। ये चारों महीने वैराग्य के चार अवस्थानों के प्रतीक हैं। यथा—

(क) फागुन—पतझड़ का महीना है। जैसे वृक्ष फागुन में पत्तों का त्याग कर देते हैं, वैसे ही साधक वैराग्य लेकर सांसारिक आचरण से मुक्त होता है। वर्णाश्रम, कनक, काम का परित्याग करता है।[4]

(ख) चैत्र—धूपकाल का द्वितीय मास चैत्र चित्त की एकाग्रता का प्रतीक है।[5]

---

१. अ० वा०, पृ० २२१।
२. वही, पृ० २२१-२२।
३. "धूपकाल वैराग्य कहिये"। वही, —पृ० २२१।
४. "प्रथम फागण मास सो फकीरी लेवै,
ज्यौं द्रुम पानन को त्याग करै,
वर्णाश्रमादिक कनक काम परिहार करै,
निर्वृत्त होय मन वचन काय कर इकंत पणौं विचारै।"—वही, पृ० २२१-२२।
५. "द्वितीय चैत्र, सो चित्त एकाग्र करै।"— वही, पृ० २२२।

(ग) वैशाख—साधक लोक और परलोक दोनों की वासना का त्याग करता है।[1]

(घ) ज्येष्ठ—यह मास ताप की चरम सीमा है। यह महीना नदी, नाले, धरती सभी को सुखा देता है। साधक इसी प्रकार वैराग्य द्वारा शरीर के गुण सुखा देता है। शरीर एवं मन को तपा कर विरहातुर होकर अतिशय वैराग्य में लीन होता है। इस प्रकार वैराग्य दृढ़ होता है।[2]

२. **वर्षाकाल**—भक्ति का प्रतीक है। वैराग्य की उष्णता भक्ति रूपी वर्षा से शान्त होती है।

(क) अषाढ़—राम भक्ति की आतुरता का प्रतीक है। यह बीजारोपण का महीना है। भक्त नाम रूपी बीज गुरु से प्राप्त करता है। हृदय की धरती में रसना की नायला से रामनाम रूपी भक्ति का बीज साधक बोता है। प्रेम की वर्षा से उसका सिञ्चन होता है।[3]

(ख) श्रावण—जैसे सावन के महीने में धरती पर हरियाली छा जाती है, वैसे ही शरीर में भजन द्वारा भक्ति की झड़ी लग जाती है, धरती की हरियाली सदृश शरीर की कान्ति बढ़ जाती है। हृदय में भजन का अंकुरण होता है।[4]

(ग) भाद्रपद—पावस का यौवन-काल है। घटाएँ उमड़ती हैं, गरजती हैं, बिजली चमकती है, नीर बरसता है, वैसे ही साधक के हृदय में प्रेम की घटा उमड़ती है, आनन्द की गाज सुन पड़ती है, नाम विज्जु का आलोक भासित होने लगता है, अमिय सदृश प्रेमरस नीर की वर्षा होने लगती है। हृदय की धरती गद्गद् हो

---

१. "तृतीये वैशाख, सो वे नाम दोय लोक की वासना तजै।"—अ० वा०, पृ० २२२।

२. "चतुर्थ जेठ, सो जेठ पृथ्वी का नदी निवांण सोषन्त करै, जैसे ही विरागी जन तप वैराग्य कर शरीर का गुण शोषन्त करै, जत्त पणों विचारै, मन तो निवांण, इन्द्रीनाला, नदी, तिनके विकार, शोषन्त करै, विरह वियोग उपजाय, तन मन तपायमान करै...ऐसे प्रथम वैराग्य की दृढ़ता होय।" —वही।

३. "अषाढ़ मास जो राम जी की भक्ति की आतरि कहिये, सो गुरु बीज रूपी रामजी को नाम प्राप्ति करै...अरु वर्षा प्रेम के आगम कुमाई करिये...रसना रूपी नायला करि कै, ज्यूं हिरदा रूपी भौमिका में राम कृपा तैं उदय होय।" —वही।

४. "द्वितीये श्रावण मास में पृथ्वी हरियाली होत है, तैसे ही शरीर मध्ये भजन को झड़ लागत है, तब शोभावान दीषत है, तबै भजन अंकुर उदयाकार होत है, हिरदा स्थान के विषय।—वही।"

जाती है, नेत्र अश्रु विमोचन करते हैं, रोमाञ्च होता है। भजन विकास के साथ प्रेमविह्वलता बढ़ती है।[1]

(घ) आसोज—जहाँ तहाँ निर्मल नीर भरा रहता है। कृषि भलीभाँति उपजती है—अकाल की अवस्था समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार साधक भक्ति की निर्मलता से पूरित होकर महाकाल की दशा से मुक्त होकर परमात्म पद को प्राप्त करता है।[2]

जिज्ञासु के जीवन में भक्ति की वही महिमा है जो मानवजीवन में पावस की। ग्रीष्म की तपी धरती पर अच्छी वर्षा का जो प्रभाव होता है, वही वैराग्य से तपे साधक के हृदय पर भक्ति का। आश्विन के महीने में जैसे अच्छी वर्षा के परिणामस्वरूप खेतों में अन्न तैयार दीखता है, वैसे ही भक्ति के विभिन्न अवस्थानों से गुजरा जिज्ञासु का हृदय प्रौढ़ होकर ज्ञान ग्रहण करने के लिए ज्ञान की परिधि में प्रवेश करता है। यह विवरण नीचे प्रस्तुत है।

३. **शीतकाल**—यह ज्ञान का प्रतीक है।[3] इसके अन्तर्गत स्वामी जी ने कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष और माघ महीनों को लिया है। इन चारों महीनों के प्रतीक द्वारा कवि ने ज्ञान के अवस्थानों को स्पष्ट किया है। वर्षान्त के बाद जैसे शीत की अनुभूति होती है, वैसे ही भक्ति की प्रौढ़ता ज्ञान का अनुभव कराती है।

(क) कार्तिक—शुभ कार्यों के आरम्भ का यह महीना है। साधक अब ज्ञान क्रियाओं में तत्पर होता है।[4]

(ख) मार्गशीर्ष—अचञ्चल भाव से मन ज्ञान की एकरसता में निमग्न हो जाता है।[5]

(ग) पौष—यह मास प्रपञ्चविहीन होने का प्रतीक है। साधक प्रपञ्चरहित होकर ज्ञान की शीतल अनुभूति करता है।[6]

---

१. "आगम भाद्रपद मास, प्रेम घटा को चढ़ाव होत है, कैसो होत है बरण बामैं आवै नहीं, ये उमंग आनंद रूपी तो गाज होती है, प्रकाश रूपी बीज खिवत है, अमृतरूपी प्रेमरस-नीर वर्षत है, त्यूं त्यूं भौमि रूप हीयो गद्गद् होत है, विह्वल होत है, नेत्रां अश्रुपात चलत है, रोमांच खड़े होत है, ज्यूं ज्यूं भजन रूपी शाख बधत है, त्यूं त्यूं प्रेम छोल मैं मगन होत है।" —अ० वा०, पृ० २२२।

२. "आसोज निर्मल नीर जहाँ तहाँ भरिया, अमूरत शाख भली तरह सूं नीपजी, वहाँ जगत में तो काल को माथो टूटो, यहाँ महाकाल को दंड छूटो, आत्मा-परमात्मा का पद नैं प्राप्त हूवौ।" —वही।

३. "तृतीये शीतकाल ज्ञान कहिये है।" —वही।

४. "प्रथम तो कार्तिक मास ज्ञान क्रिया सहित होय" —वही।

५. "द्वितीय मार्गशिर, हरसाँ मन चलायमान नहीं, नहचल वृत्ति एकरस है।"—वही।

६. "तृतीये पौष, सो जन काहू का प्रपंच में फसै नहीं।" —वही।

(घ) माघ—शीतकाल का अन्तिम महीना साधक द्वारा ज्ञान प्राप्ति का अन्तिम अवस्था है। अति सुन्दर शोभायुक्त ज्ञान की प्राप्ति साधक को होती है।[१]

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने इस प्रतीक को एक सारणी द्वारा स्पष्ट किया है। सारिणी यथावत् प्रस्तुत है।[२]

वर्ष के १२, मास	साधना के १२ तत्त्व
१. ग्रीष्मकाल=वैराग्य	
(१) फाल्गुन	(१) जन विहार त्याग व वैराग्य धारण
(२) चैत्र	(२) एकाग्रता
(३) वैशाख	(३) वासना त्याग
(४) ज्येष्ठ	(४) वैराग्य दृढ़ता
२. वर्षाकाल=भक्ति	
(५) आषाढ़	(५) गुरु से रामनाम रूपी बीज ग्रहण तथ हृदयरूपी भूमि में बोना
(६) श्रावण	(६) शरीर मे भजन की झड़ लगना अंकुर की उत्पत्ति
(७) भाद्रपद	(७) आनन्द की गणना तथा प्रकाशरूपी बिजली
(८) आश्विन	(८) महाकाल से मुक्ति तथा परमपद की प्राप्ति
३. शीतकाल=ज्ञान	
(९) कार्तिक	(९) क्रिया सहित ज्ञान
(१०) मार्गशीर्ष	(१०) निश्चयवृत्ति
(११) पौष	(११) प्रपञ्च रहित
(१२) माघ	(१२) सुन्दर शोभावान ज्ञान

इस प्रतीक द्वारा स्वामी जी ने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य को स्पष्ट तो किया ही है, साथ ही टीका वचनिका के अन्त में यह भी वे लिखते हैं कि जैसे अच्छी वर्षा के चार मास

---

१. "चतुर्थ माघ महीनों, सो महासुंदर शोभावान।"—अ० वा०, पृ० २२२।

२. डॉ० अमरचन्द वर्मा : स्वामी रामचरण—एक अनुशीलन, पृ० १८५।

के कारण शेष आठ महीनों का आदर होता है वैसे ही भक्ति से ज्ञान और वैराग्य की महत्ता है। बिना भक्ति के ज्ञान और वैराग्य को फोटक समझना चाहिए। बिना भक्ति के ब्रह्मपद की प्राप्ति नहीं होती।[1]

भक्ति निरूपण

'शांडिल्य भक्ति सूत्र', 'नारद भक्ति सूत्र' एवं श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में भक्ति का भली प्रकार निरूपण मिलता है। श्री जयदयाल गोयन्दका ने अपनी लघु पुस्तक 'नवधा भक्ति' में भक्ति विवेचना के सन्दर्भ में महर्षि शांडिल्य और देवर्षि नारद को उद्धृत किया है।[2] उक्त दोनों ऋषियों के अनुसार भक्ति, ईश्वर में परम अनुराग या परम प्रेम का नाम है। श्रीमद्भागवत में भक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—"सांसारिक विषयों का ज्ञान देनेवाली इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति निष्काम रूप से भगवान में जब लगती है, तब उस प्रवृत्ति को भक्ति कहते हैं।"[3]

स्वामी रामचरण ने अपने ग्रन्थ 'अमृत उपदेश' के तृतीय प्रकाश मे भक्ति की महिमा के वर्णन के सन्दर्भ में भक्ति के प्रकारों की चर्चा की है। वे भक्ति के तीन भेद बतलाते हैं—

१. **कनिष्ठ भक्ति**
२. **मध्यम भक्ति**
३. **उत्तम भक्ति**

> **"व्यास कही भागवत मैं भक्ती तीन प्रकार।**
> **कनिष्ट उत्तम मध्यमा जाकूं जो अधिकार।**
> **जाकूं जो अधिकार असमभ्यां कनिष्ट गाई।**
> **उत्तम उत्तम जनन समझ कूं मधि फुरमाई।**
> **पैदासी जाणै नहीं जो मतलब के यार।**
> **व्यास कही भागवत में भक्ती तीन प्रकार।"**[4]

---

१. अ० वा०, पृ० २२२।

२. "महर्षि शांडिल्य ने कहा है—'सापरानुरक्तिरीश्वरे' ईश्वर मे परम अनुराग यानी परम प्रेम ही भक्ति है।' देवर्षि नारद ने भी भक्तिसूत्र में कहा है—'सात्वस्मिन् परम-प्रेमरूपा' उस परमेश्वर में अतिशय प्रेमरूपता ही भक्ति है। 'अमृतस्वरूपा च' और वह अमृत रूप है।"—श्री जयदयाल गोयन्दका : नवधा भक्ति, पृ० ४।

३. डॉ० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ५२९।

४. अ० बा०, पृ० ४४३।

भक्ति के इस भेद-निरूपण में स्वामी रामचरण भागवत को सन्दर्भित करते हैं। वस्तुतः भागवत में भक्ति पर जो शास्त्रीय समीक्षा मिलती है, उससे स्वामी जी के इस विवेचन से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। किन्तु उन्होंने निरूपित भेदों को भलीभाँति स्पष्ट किया है। उनके अनुसार **कनिष्ठ भक्ति** में प्रतिमा-सेवा ही हरि-सेवा है, **मध्यम भक्ति** में गुणातीत होकर निरञ्जन देव का भजन अपेक्षित है और **उत्तम भक्ति** में साधक सकल कामनाहीन होकर निजस्वरूप हो जाता है। इस उत्तम भक्ति को स्वामी रामचरण ने 'अनूपा' कहा है—

> **"कनिष्ट पैड़ी प्रत्थमी प्रतिमा में हरि सेव।**
> **दूजी मध्य गुण जीतिबें भजै निरंजन देव।**
> **भजै निरंजन देव तीसरी उत्तम अनूपा।**
> **सकल कामना हीन भये जन निज्ज स्वरूपा।**
> **पैंदासी पदास परि भजन सेव नहिं भेव।**
> **कनिष्ट पैड़ी प्रत्थमी प्रतिमा में हरि सेव।"[१]**

स्वामी जी उत्तम भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं, मध्यम में निरञ्जन के भजन का विधान है पर कनिष्ठ में प्रतिमा सेवा की व्यवस्था है, अतः कनिष्ठ भक्ति पर स्वामी जी टिप्पणी लगा ही देते हैं। कनिष्ठ भक्ति की प्रतिमा सेवा बाल-बुद्धि को बहलाने के लिए है क्योंकि बालक इतना विकसित बुद्धि नहीं होता कि वह सन्तों का ज्ञान ग्रहण कर सके—

> **"बाल बुद्धि समझै नहीं, संत जनां को ज्ञान।**
> **ताकूं ये त्रिल्मावणी, कनिष्ट प्रतिमा थांन।"[२]**

दशधा-भक्ति

वैष्णवभक्त कवियों ने श्रीमद्भागवत में उल्लिखित नवधा भक्ति[३] की खूब चर्चा तो की ही है, साथ ही दसवीं भक्ति—प्रेमलक्षणा भक्ति—का भी उल्लेख किया है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने सूरदास द्वारा इसके उल्लेख किये जाने की बात लिखी है—

---

१. अ० वा०, पृ० ४४३।

२. वही।

३. "श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।"
श्री जयदयाल गोयन्दका—नवधा भक्ति, पृ० ७।

"श्रवण कीर्तन स्मरण पादरत, अरचन वंदन दास।
सख्य और आत्मनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास।"[1]

अष्टछाप के दूसरे प्रसिद्ध कवि परमानंददास ने भी दशधा भक्ति का उल्लेख अपने एक पद में किया है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने अपने शोधप्रबन्ध में उस पद को उद्धृत किया है—

"ताते दसधा भक्ति भली।
जिन जिन कीनी तिनके मन ते नेकु न अनत चली।"[2]

स्वामी रामचरण नवधा भक्ति के समक्ष दशधा को महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार नवधा भक्ति करके भक्त सुलझता नहीं, प्रत्युत् उलझता है। इससे संशय-संताप आदि की उत्पत्ति होती है। वे नवधा को त्रेता-द्वापर की भक्ति कहते हैं और कलियुग के लिए दशधा का विधान करते हैं—

"करि करि नवधा भक्ति भक्त उरझात है।
शंसो सिंह संताप सर्क उपजात है।
उर तृष्णा की तापस ज्ञान जरात है।
परिहां क्यूं ही कही न जाय अनोखी बात है।
नवधा त्रेता द्वापरा जो दशधा उपजै सोय।
कलिजुग का भक्ता करै, सो जगत रूप क्यूं होय।"[3]

नवधा में हृदय-तृष्णा के ताप से ज्ञान जलता है, ऐसा क्यों होता है, यह अनोखी बात है; पर यदि भक्त दशधा को अपनाये तो वह 'जगत रूप'[4] नहीं होगा।

अब यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्या वैष्णव भक्तों द्वारा चर्चित दशधा भक्ति ही स्वामी रामचरण की दशधा भक्ति है या दोनों में भिन्नता है? श्रीमद्-भागवत में साधक की प्रकृति के अनुसार भक्ति के चार भेद उल्लिखित हैं—१. तामसी, २. राजसी, ३. सात्विकी और ४. निर्गुणा। इस निर्गुणा भक्ति को 'सुधासार भक्ति' भी कहा गया है। "सुधा भक्ति करने वाला भक्त मुक्ति को नहीं चाहता, यह अनन्य भक्त कुछ नहीं माँगता, इसका न कोई शत्रु होता है न मित्र, इसको संसार की माया का सन्ताप

---

१. डॉ० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५४३।
२. वही।
३. अ० वा०, 'समता निवास', द्वितीय प्रकरण, पृ० ८६९।
४. स्वामी जी के अनुसार जगत का अर्थ जिसका जय गत हो जाय—लेखक।

नहीं होता।"[१] श्रीमद्भागवत में वर्णित निर्गुणा भक्ति की परिभाषा का अनुवाद डॉ० दीनदयालु गुप्त इस प्रकार करते हैं—"जो जन मेरे गुणों के श्रवण से, मुझको सब में समान जानता है और अपनी कर्मगति को अविच्छिन्न भाव से मुझमें अर्पण करता है, उस आसक्ति को निष्काम या निर्गुणा भक्ति कहते हैं। ये भक्त मेरी दी हुई पाँच प्रकार की मुक्ति को भी ग्रहण नहीं करते।"[२]

यह निर्गुणा (निष्काम) भक्ति जिसे सूर 'सुधासार भक्ति' की संज्ञा देते हैं, प्रेम लक्षणा भक्ति है।[३] स्वामी रामचरण नवधा भक्ति के नौ अंगों के ऊपर दशधा भक्ति को सबका सार कहते हैं। यदि दशधा (अनन्य भक्ति या शरणागति) भक्ति नहीं तो सब व्यर्थ समझना चाहिए। बिना दशधा भक्ति के नवधा भक्ति के सभी व्यापार फीके हैं। अतः दढ़तापूर्वक एकतानता धारण कर राम के भजन में रत होना चाहिए। यही नामोच्चारण दशधा भक्ति है—

"नव अंग नवधा भक्ति के जापर दशधा सार।
जे दशधा प्रापति नहीं तो सबही जाण असार।
तौ सबही जाण असार सार जिन कर्तब फीकौ।
देखो हिये बिचार नाम नवधा शिर टीकौ।
रामचरण भज राम कूं धार्‌या दृढ़ इकतार।
नव अंग नवधा भक्ति के जापर दशधा सार।"[४]

स्पष्ट यों कि तन्मयतापूर्वक राम का नामस्मरण ही दशधा भक्ति है। इस तन्मयता के कारण ही इसे प्रपत्ति भी कहा गया है। स्वामी जी की भक्ति निष्काम भक्ति है। 'अणभौ विलास' के तृतीय प्रकरण में 'साची भक्ति' को 'अलूणी शिला', निर्वासना, काम-कामना रहित बताते हैं—

"रामचरण साची भक्ति शिला अलूंणी जान।
करैज होय निर्वासना, काम कामना दान।"[५]

भक्ति निरूपण में स्वामी जी कहते हैं कि उत्तम भक्ति में भक्त सकल कामनाहीन होकर निजस्वरूप हो जाता है।

---

१. डॉ० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५३९।
२. वही।
३. 'सूर ने प्रेमलक्षणा भक्ति को सुधासार भक्ति भी कहा है।'
—वही; पृ० ५४५।
४. अ० वा० (समता निवास, द्वि० पृ०), पृ० ८७०।
५. वही, पृ० २२३।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह दशधा भक्ति जिसकी श्रेष्ठता स्वामी रामचरण प्रतिपादित करते हैं, श्रीमद्भागवत की निर्गुणा (निष्काम) भक्ति है जिसे सूर सुधासार भक्ति कहते हैं और जिसे परमानन्ददास भी 'दसधा' कहते हैं। इससे एक बात और सिद्ध होती है कि सन्तों की भक्ति-साधना पर वैष्णवता का जो प्रभाव पड़ा था उससे स्वामी रामचरण भी अछूते नहीं, वरन् पूर्ण प्रभावित हैं।

भाव-भक्ति

यद्यपि सन्तों का उपास्य निराकार ब्रह्म है, फिर भी वैष्णव भक्ति की भाववत्ता से संतकाव्य अछूता नहीं रह सका है। वैष्णव भक्ति-पद्धति की मान्यता है कि "भगवान सर्वदा सर्व भाव से भजनीय हैं।"[1] भावभक्ति के क्षेत्र में आकर सन्तों का उपास्य निर्गुण निराकार न रहकर सगुण निराकार का रूप ग्रहण कर लेता है; क्योंकि जब तक निराकार में सगुणता का आरोपण नहीं होगा दैन्य-प्रदर्शन, आत्मनिवेदन आदि की कल्पना असम्भव है। स्वामी रामचरण के साहित्य में भाव-भक्ति की दृष्टि से दास्य, माधुर्य एवं शांता भक्ति के दर्शन होते हैं।

दास्य-भक्ति

अपने ग्रन्थ 'विश्राम बोध' के द्वितीय विश्राम में स्वामी जी दास्य-भाव द्वारा भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं। वे कहते हैं कि दास्य भाव की करुणा के साथ हृदय में निरञ्जन राम का ध्यान करो और नित्य उनकी शरण में रहो—

> **"शिर सतगुरु उर रामनिरंजन, ऐसे ध्यानज धरना।**
> **रामचरण नित शरणं रहिये, दासभावकरिकरुणा।"[2]**

इसी ग्रन्थ में स्वामी जी 'दासभाव' शीर्षक के अन्तर्गत दास्य-भक्ति के विभिन्न पक्षों की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि यदि दास होने की अभिलाषा है तो मैली आशा और ग्लानि का परित्याग करना आवश्यक है, श्याम में एकतान लगन लगाकर मुख से राम नाम ले और हृदय में भी राम को धारण करे। मन-वाणी की एकरसता दास्य-भक्ति में सर्वथा अपेक्षित है।[3] राम तो 'गरीब-निवाज' हैं पर कोई दास गरीबी ग्रहण तो करे—

---

१. डॉ० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, पृ० ५९७।

२. अ० वा०, पृ० ७८१।

३. "रामचरण तोसूं कहूं तूं चित दे सुणियो कांन।
दास होण की हूं स तोहि तजि मैली आश गिलांन।
तजि मैली आश गिलांन श्यांम इकतार विचारो।
राम नाम मुख गाय सोही अन्तरगत धारो।

"राम गरीब निवाज है कोइ गहो गरीबीदास।"[1]

दास की महत्ता इसी में है कि वह सदैव 'दासगी' में रहे। निरन्तर दासभाव से साधनारत रहे, उसे छोड़ कर कहीं भी न जाय। दास को चाहिए कि केवल शारीरिक क्रिया के हेतु ही साधना छोड़कर कहीं जाय, अन्य सभी समय साधनारत रहे। जब स्वयं को उपास्य को अर्पित कर दिया तो फिर हृदय में भिन्न आशा को स्थान कहाँ ? अतः उसी की 'दासपदी' सही है जो निरन्तर 'दासगी' में रहता है।[2] राम के दास को केवल राम का ही विश्वास रहता है, यदि दास राम को छोड़कर किसी अन्य की आशा करता है तो फिर वह एकतान लगन का दास नहीं—

"राम तुम्हारा दास कै इक तुम्हरो ही विश्वास।
जे दास आश दूजी करै सो नहि इकतारी दास।"[3]

इसलिए 'दासपदी' की शोभा इसी में है कि साधक उपास्य के प्रति आशा विश्वास का भाव धारण करे। भ्रमरहित होकर एकतान लगन लगावे, कर्म और कामना से विरत हो और दुराशा को खण्डित करे—

"श्याम आश विश्वास धार उर सोय रे।
राख एक इकतार भर्मना खोय रे।
मना मनोरथ कृत्य कर्म सब छांडिये।
परिहां दासपदी तब शोभ दुराशा खांडिये।"[4]

मनसा वाचा एकरस तो समर्थ होय विधान।
रामचरण तोसूं कहूं तूं चित दे सुणियो कान।"
—अ० वा०, पृ० ७९१।

. वही।

. "दासपदी जाके सही जे सदा दासगी मांहि।
श्याम साधना मैं रहै तजि साधन कहूं न जांहि।
तजि साधन कहूं न जांहि जांहि तो तन किरिया कूं।
और न करै उपाय चूक साधन बिरिया कूं।
ज्यां आपा अर्प्यो श्याम कूं आंन आश उर नांहि।
दासपदी जाके सही जे सदा दासगी मांहि।"
—वही।

३. वही।

४. वही।

जब दास दासपदी में लीन रहता है तभी श्याम हाथ से सम्हालता है, जब वह अलख अगम को अन्तर में बसा कर सुमिरन करता है, तभी सनाथ होता है—

> **"दास दासगी में सरू तब श्याम सम्हावै हाथ।**
> **अलख अगम आतर बसू सुमर्यां होय सनाथ।"[1]**

दास अपनी निर्बलता के सहारे राम का बल प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार विजयी होता है और सबल अपने सामान का भरोसा लिये पराजय को वरण करता है। निर्बल के बल राम हैं और सबल का उसका सामान। कौरवों-पाण्डवों का उदाहरण प्रस्तुत कर कवि ने भगवान में विश्वास की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।[2]

स्वामी जी की दास्य-भावना

स्वामी जी ने 'वीनती को अंग' के विभिन्न छन्द शीर्षकों तथा अपने काव्य ग्रन्थों में दास्य-भाव से अपने आराध्य को पुकारा है। अपने अवगुणों को स्वीकारते हुए दीन भाव से शरणागत होकर राम से उबारने का वह निवेदन करते हैं—

> **"बहु गुणवंता सांईया मैं अवगुण भर्‌या गुलाम।**
> **जे चितवौ अजगुण दिशा तो नहीं कहूं विश्राम।**
> **तो नहीं कहूं विश्राम आप सब गुन्हा निवारो।**
> **तुम विन समर्थ और दूसरो नहीं सहारो।**
> **दास दीन बिनती करै शरण उबारो राम।**
> **बहु गुणवंता सांईया मैं अवगुण भर्‌या गुलाम।"[3]**

दास अपने निवेदन में अपनी पूरी जीवनचर्या को ही अवगुणमय बतलाता है, उसका हृदय अवगुणों की खान है, अवगुण करते वह अपने स्वामी से भी नहीं डरता। फिर

---

१. अ० वा०, पृ० ७९१।

२. "निबलां केवल राम को अरु सबलां बल सामांन।
सामांन समर्थ कैरवां पंडवां पखि भगवान।
पंडवां पखि भगवान कहो हार्‌या कुंण जीता।
सो छांना छिप्या न कोय सृष्टि ह्वै रहा बदीता।"
—वही०, पृ० ७८२।

३. वही, पृ० ७८३।

अपने 'गुणवंता रामजी' से 'अवगुणनिपात' के लिए प्रार्थना करता है।[1] उसका राम अन्तर्यामी है, उसके अन्तर में वह वास करता है, अतः अन्तर में उत्पन्न होने वाले गुण-अवगुण उससे कहाँ छिपे रह सकते हैं? अन्यत्र उसे छिपाये भी कहाँ? इसलिए दैन्य-भाव से विनय में तत्पर होता है।[2]

"राम रटावो राम जी तुम काम घटावो ताप।
भर्म उठावो जीव को कर्म कटावो पाप।
कर्म कटावो पाप छाप तुम्हरी निरबाहो।
और हटावो आश बासना सकल मिटावो।
ये अरज बीनती साम्हलो अधम उधारण आप।
राम रटावो राम जी तुम काम घटावो ताप।"[3]

'साखी बीनती को अंग' में वह अपने दीवान के समक्ष स्वयं को अनेक जन्मों का गुनहगार, खूनी-बन्दी आदि कहकर बन्धन काटने के लिए कृपा की याचना करता है—

"गुन्हगार बहोजन्म का, खूंनी बंदी वांन।
बन्दे ऊपर महरकर, काटो बंध दिवान।"[4]

अपने रामदयाल के समक्ष अनाथ निराधार कहकर दास शीघ्र उनका साथ पाकर सनाथ एवं साधार होने की कामना करता है—

"तुम तो राम दयाल हो, मैं अनाथ निरधार।
रामचरण कह राम जी, वेग लगावो लार।"[5]

---

१. 'अवगुण ऊठत बैठतां बोलत चालत खात।
अवगुण सोवत जागतां अवगुण आवत जात।
अवगुण आवत जात रैंण दिन अवगुण करिहूं।
उर अवगुण की खांन श्यांम के भय नहिं डरिहूं।
तुम गुणवंता रामजी अवगुण करो निपात।
अवगुण ऊठत बैठतां बोलत चालत खात।"—आ० ब०, पृ० ७८१।

२. "अन्तर्यामी राम जी तुम हो अंतर मांहि।
गुण अवगुण अंतर ऊपजै सो तुम सैं छांना नांहि।
सो तुम सैं छांना नांहि कहो अब कहां दुराऊं।
जो कोइ बाहिर होय जिनूं सूं कपट कुमाऊं।
जासैं करिहूं बीनती दीनपणो उपजांहि।
अंतर्यामी राम जी तुम हो अंतर मांहि।"—वही।

३. वही।

४. वही, पृ० १०।

५. वही।

'चन्द्रायणा बीनती को अंग' में भक्त अपनी एक 'अरदास' मानने का निवेदन राम से करता है। स्वयं को कामी, कपटी, क्रूर कहने के बाद भी वह राम का अपना है। यदि राम ने हाथ छोड़ दिया तो वह बेसहारा हो जायगा, अतः वह अपनी सब खोटों के लिए क्षमा के साथ स्वामी की शरण चाहता है—

"राम एक अरदास हमारी मांनियो।
कामी कपटी कूड़ आपणों जांणियो।
जे तुम छोड़ो हाथ ओर नहीं ओट जी।
परिहां रामचरण रखि सरण बक्ष सब खोट जी।"[1]

अविलम्ब दया एवं चरण शरण की इस याचना में दास्य भावना जैसे साकार हो उठी है—

"कीजै दया दयाल बिलम महि करो गुसांई।
सुरति रहे तुम मांहि चरण तजि अंत न जांई।"[2]

भक्त अपनी एक और 'अरदास' में 'राम निरंजन देव' से उनके चरणकमल की सेवा की याचना करता है। उसे ऋद्धि-सिद्धि, मुक्ति कुछ भी नहीं चाहिए। उसे केवल 'अलख' की भक्ति चाहिए।[3] वह राम के नाम पर अनेक बार न्योछावर होता है क्योंकि राम उस निराधार का एकमात्र आधार है—

"राम तुम्हारे नाम की में बलि बारंबार।
रामचरण निरधार कै एक राम आधार।"[4]

दास्य-भावना से सराबोर स्वामी रामचरण की इन पंक्तियों को पढ़कर यह आभास नहीं होता कि स्वामी जी निराकार की आराधना में रत हैं। जैसे कवि पुनः अपनी

---

१. अ० वा०, पृ० ७६।
२. वही, पृ० १४१।
३. "सुणो एक अरदास हमारी रामनिरंजन देव।
रामचरण कूं दीजिये चरण कमल की सेव।
चरण कमल की सेव छांड़ि ऋधि सिधि नहिं मांगै।
मुक्ति मांहि मन काढ़ि सुरति तुमही सूं लागै।
भक्ति बिना कैसे लहै अलख तुम्हारा भेव।
सुणो एक अरदास हमारी रामनिरंजन देव।" —वही, पृ० १४१।
४. वही।

सगुण वैष्णवता के तट पर इस भावना की तरंगों में बहता-बहता पहुँच गया है। स्वामी जी का अधिकांश साहित्य इसी दास्य-भक्ति में ओतप्रोत है।

मधुर-भक्ति

"लोक में प्रेम के जितने भिन्न-भिन्न सम्बन्ध हो सकते हैं, उन सबको भक्तों ने लोक से हटाकर ईश्वर के साथ जोड़ा है, यहाँ तक कि ऐन्द्रिय विषयों में अनुरक्त लोगों को संसार-विषय से छुड़ाने के लिए भक्तिशास्त्र के आचार्यों ने ईश्वर को ही उनकी विषय-तृप्ति का साधन बनाया।"[1] माधुर्य भाव की भक्ति-साधना वैष्णव भक्त कवियों और निर्गुणगायक संतों, दोनों को भायी है। अन्तर इतना ही है कि वैष्णव भक्तों ने परकीया-भाव से अपने आराध्य की उपासना विशेष रूप से की है जबकि संत कवियों ने स्वकीया भाव को ही अधिक महत्त्व दिया है। संयोग-वियोग के अनेक सूक्ष्म चित्र इन भक्तों की वाणी में उभरे हैं।

स्वामी रामचरण ने भी कबीर आदि संत कवियों की भाँति राम की उपासना पत्नी-भाव से की है। 'राम भर्तार' में अपनी लगन लगाने की बात 'सुख विलास' के चतुर्थ प्रकरण में कहते हैं—

"एक राम भर्तार को मनां धार इकतार।
मनां एक इक तार बिन नहिं परसन कर्तार।"[2]

इसी प्रकार 'समता निवास' के द्वितीय प्रकरण में 'एक राम भर्तार' के अतिरिक्त अन्य को जार समझने की बात भी कवि को अभीष्ट है—

"एक राम भरतार है जार दूसरा आंन।
एक एक को आशरो एक एक को ज्ञान।"[3]

'गावां का पद' में माधुर्य-भक्ति भाव के बड़े मर्मस्पर्शी पद मिलते हैं। कवि का भक्त हृदय प्रियतम राम के लिए कितना उल्लसित है। आज भक्त की पुकार पर प्रियतम उसके महल में आया है। मन-मंदिर में प्रेम का दीपक जलेगा, प्रीति की पलंग बिछेगी, शील के शृंगार से सजकर पीव के अंग से अंग स्पर्श कराने का अवसर आ गया है। बहुत दिनों के बाद 'प्रीतम' मिला है, मनोकामनाएँ पूरी हो गईं। एक चौथाई क्षण के लिए भी प्रियतम राम को छोड़ने का इरादा नहीं है—

---

१. डॉ० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ६२१।
२. अ० वा०, पृ० ३५६।
३. वही, पृ० ८७३।

"मेरे महल पधार्‌या प्रीतमा हो, सखीरी मेरै साहिब सुनी है पुकार।
पण कर पान भाव करि काथो, चूंनो कर्म जलाय।
सांच सुपारी साजकर बिड़लो, मोंहि सतगुरु दिया है झिलाय।
प्रेम का दीपक जोय मंदिर मैं, प्रीति का पिलंग बिछाय।
शील श्रृंगार साज पिय परशूं, अंग सं अंग लगाय।

× × ×

बहुत दिनां सै प्रीतम पाया, सर्‌या मनोरथ काम।
पाव पलक ढीला नहीं छाडूं, घर आया केवल राम।"[1]

और अब संयोग के बाद वियोग की वारी आती है। स्वामी जी विरह भाव की भक्ति में स्वयं विरहिणी की भूमिका में उपस्थित होते है। भक्त-हृदय अपने 'रमइया' के पधारने की प्रतीक्षा में बैचैन है, सूनी सेज दूना दुःख बढ़ाती है। विरहिणी अपने प्रिय के कारण वन-वन विचरण करती है, वह गिरगिर कर उठती है, क्योंकि प्रेम बैठने जो नहीं देता। प्रेम बिना अन्धेरा नहीं मिटेगा। पर यह अन्धेरा तभी मिटेगा जब विरहिणी के हृदय में दीवाली होगी। वह प्रेम का दीपक जलायेगी और उसके आलोक में अपने राम का दीदार करेगी—

"विरहा रूंनी प्रेम शज्या सूंनी, दूनी दूनी दुख पावै।
इत उत म्हारै कबै पधारै, आव रमईया यूं गावै।
तुमरै कारण बिचरूं आरण, जारण बिरहन तर्पावै।
परि परि उठै प्रेम न बूठै है, प्रेम बिना क्यूं तिम जावै।
अहो दिवाली मोउरां कब होसी कर्तार।
दीपक जोऊं प्रेम का करूं राम दीदार।"[2]

स्वामी जी की इन पंक्तियों ने अनेक विरही भक्तों की हठात् स्मृति करा दी। कबीर और मीरां के विरही हृदय इन पंक्तियों के आइने में अपना रूप झलकता हुआ देख सकते हैं। वियोगावस्था में विरहिणी की पलकें नहीं लगतीं। दरस की आस में रैन दिन का जागरण, दश दिशाओं में मन की आतुरता, बाट जोहने की प्रक्रिया, सभी तो हो रहे हैं। स्वाति के चातक की दशा हो रही है, पर क्या घन आशा पूरी करेगा ? जो भी हो, रामचरण की विरहिणी का निवेदन यही है कि अविलम्ब पिया दर्शन दे—

---

१. अ० वा०, पृ० ९९९-१०००।
२. वही पृ० २४५।

"रमइया मेरी पलक न लागे हो।
दरश तुम्हारें कारणै, निशिवासर जागै हो।
दशूं दिशा आतर करूं, तेरो पंथ निहारूं हो।
राम राम की टेर दे, दिन रेंण पुकारूं हो।
नैंन दुखी दीदार बिन, रसना रस आशै हो।
हृदय हुलसै हेत कूं, हरि कब परकाशैं हो।
स्वाति बूंद चातक रटै, जल और न पीवें हो।
घन आशा पूरै नहीं, तो कैसें जीवै हो।
दास की अरदास सुण, पिया दर्शण दीजे हो।
रामचरण बिरहनि कहै, अब बिलम न कीजे हो।"[1]

पर उसे तब पूर्ण सन्तोष होता है जब उसका समर्थ 'सांईया' कृपा करके उसका दर्द पहचान लेता है। उसकी सामर्थ्य पर वह रीझ उठी है।

"सांईया मैं समर्थ जांण्या हो।
महरि करी मुझि ऊपरैं, मेरा दरघ पिछांण्या हो।"[2]

अव्यक्त प्रियतम के वियोग के उपर्युक्त उद्‌गार सन्तकाव्य की माधुर्य-भक्ति में निश्चित ही अमूल्य हैं। स्वामी रामचरण के काव्य-साहित्य में मधुर-भक्ति के ऐसे अनेक उदाहरण बिखरे पड़े हैं।

शांता-भक्ति

"संसार की अनित्यता, वासनाओं का त्याग और ईश्वर भक्ति अथवा ज्ञान द्वारा प्राप्त की गयी चित्त की स्थिर अवस्था से जिस परमानन्द को भक्त अथवा ज्ञानी पाता है, वही शान्त भाव है और काव्य में व्यक्त होकर काव्यशास्त्र के अनुसार वही शान्त रस है।"[3] इसी शान्त भाव की काव्य रचना शांता भक्ति के अन्तर्गत आती है। वस्तुतः संसार की असारता, वासना-त्याग एवं ईश्वर के प्रति भक्ति भाव आदि विषय ही सन्तों के साहित्य-सृजन की प्रेरणा है। स्वामी रामचरण की कृतियों में शान्त भाव की भक्ति से सम्बन्धित पदों या छन्दों की संख्या कम नहीं है। सम्पूर्ण 'अणभैवाणी' का विशाल संग्रह शान्ता-भक्ति से भरा हुआ है।

---

१. अ० वा०, पृ० १००६।
२. वही, पृ० १००८।
३. डॉ० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० ६४९-५०।

सांसारिकता में लीन प्राणी को जीवन की अनित्यता के प्रति सजग होने की बात कवि निम्नलिखित पंक्तियों में करता है—

> "जाग जाग नर रैण बदीती।
> सोवत भोरे भयो अणचीती।
> जाम एक गयो भाल भोल मैं, दोइ मैं गुणां दबायो।
> चौथे चिन्ता जरा गिरास्यो ऐसैं जन्म गुमायो।
> यो संसार विषय को संगी, स्वारथ नहीं जगायो।
> तस्कर बास बस्यो भयो गाफिल, हीर हर्‌यां पिछतायो।"[१]

यह मानव-जीवन बड़े भाग्य से मिलता है। इसकी सार्थकता रामरस से क्षणभर के लिए विरत न होकर इसमें सदैव डूबे रहने में है। रामरस सदृश कोई रस नहीं, यह पीने में बड़ा प्यारा लगता है। स्वामी जी रामरस के पान का अवसर हाथ से न जाने देने के लिए सभी को सचेत करते हैं—

> "रामरस पलकन कीजै न्यारो।
> ऐसी सूंज बहुरि नहि पावै, नरतन को अवतारो।
> लख चौरासी भ्रम भ्रम आयो, भुगत्यो कष्ट अपारो।
> भाग भले मिनखा तन पायो, भजलै सिरजन हारो।
> ऐसो रस और नहि कोई, पीवत लगै पियारो।
> ई अवसर में पीलै प्रांणी, होय होय हुंसियारो।"[२]

चार दिन की जवानी पर गुमान करनेवालों को स्वामी जी का यह सन्देश है—

> "संसार मता ये संसार मता।
> दिनां च्यार जोबन बिभचारी। अंतकाल सब खाय खता।"[३]

इसी प्रकार 'चितावणी' एवं 'उपदेश को अंग' के विभिन्न शीर्षकों में शान्त भाव की पुष्टि में अनेक छन्द स्वामी जी ने लिखे हैं।

भक्ति के साधन

सन्तों ने भजन एवं सत्संग को भक्ति का अन्यतम साधन माना है। स्वामी रामचरण ने भजन एवं सत्संग की बड़ी महिमा गायी है और भक्ति के विकास में इन्हें साधन अंग के रूप में स्वीकार किया है।

---

१. अ० वा०, पृ० ९९३।
२. वही, पृ० १००४।
३. वही, पृ० ९९८।

भजन

भगवान के नामस्मरण को भजन भी कहा जाता है। स्वामी रामचरण ने 'अणभो-विलास' के पाँचवें प्रकरण में 'सुमरण' को भक्ति का अंग कहा है और इसे सभी अंगों का सिरताज माना है। राजा हो या रंक बिना राम-स्मरण के सद्‌गति सम्भव नहीं—

"सुमरण भक्ती अंग कहीजे,
सब मांही शिर ताजा।
सुमरै राम सोही गति पावै,
कहा रंक कहा राजा।"[1]

स्वामी जी कहते हैं कि एकाग्र मन से रमता राम का भजन करके देखिए तो जिह्वा रस चखती है या नहीं ?—

"रामचरण भज देखिए रसना सैं रस चाख।
रमता राम समोधिये एक अग्र मन राख।"[2]

यह भजन सभी नहीं कर सकते, यह कठिन है, जिस पर राम की कृपा होती है वही भजन करता है—

"भजन दुहेलो राम को जिण तिण सूं नहि होय।
जापर किरपा राम की भजन करैगा सोय।"[3]

'जिज्ञास बोध' चतुर्थ प्रकरण में 'भजन गति' शीर्षक से उद्धृत निम्नलिखित पंक्तियाँ भी भजन की महत्ता का प्रतिपादन करती हैं। राम भजन सभी कर्त्तव्यों का सार अभयशरण और कलियुग के जीवन का आधार है—

"रामचरण शरणो अभय कलि जीवन आधार।
रामभजन करिये सदा यो सब किरतब को सार।"[4]

भक्ति के साधन के रूप में सुमिरन या राम भजन को निरूपित करते हुए स्वामी जी ने भजन की बड़ी महिमा गायी है। वस्तुतः राम भजन को उन्होंने अपनी सम्पूर्ण साधना के मूल मन्त्र के रूप में स्वीकार किया था।

---

१. अ० वा, पृ० २३३।
२. वही।
३. वही (अमृत उपदेश, षष्ठोप्रकाश) पृ० ४६१।
४ वही, पृ० ५३४।

सत्संग

सत्संग स्वामी रामचरण द्वारा गृहीत भक्ति का दूसरा प्रमुख साधन है। स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में सत्संग की बड़ी महिमा गाई है। यद्यपि इस विषय का विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में किया जायगा; फिर भी भक्ति के साधन अंग के रूप में यहाँ भी उसकी संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित है। ग्रन्थ 'विश्वास बोध' के बारहवें प्रकरण में सत्संग की महत्ता प्रतिपादित करते हुए स्वामी जी ने सत्संग को ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का कारण तक कह डाला है। इसका पालन करने के लिए सदैव उल्लसित रहना चाहिए, मन भंग नहीं करना चाहिए। मनुष्य देह धारण करने का लाभ भी सत्संग ही है—

> **"ज्ञान भक्ति वैराग को है कारण सत्संग।**
> **सो सदा हुलसि कै कीजिए नां करिये मन भंग।**
> **ना करिये मन भंग लाभ नर तन को लीजे।**
> **रसना रटिये राम कर्ण चर्चा रस पीजे।**
> **रामचरण जब ही लगै जन रहणी को रंग।**
> **ज्ञान भक्ति वैराग को है कारण सत्संग।"[१]**

भक्ति-ज्ञान के लिए भक्तों का सत्संग स्वामी जी की दृष्टि में आवश्यक है। बिना सत्संग के भक्ति का ज्ञान सम्भव नहीं—

> **"भक्तां बिन पावै नहीं भक्ति ज्ञान गह तूल।**
> **और ठौर अति भर्मना लगैं ज शांसै फूल।"[२]**

सत्संग की महिमा अवर्णनीय है।[३] कितने सत्संग से निहाल हो गये, जगत्-जाल से मुक्त हो गये और 'भक्ति की चाल' से अवगत हो गये। भक्ति ने अनेक जनों को कृतार्थ किया। वे सचमुच ही 'बड़ भाग' हैं जो संसार में जोकर सत्संग करते हैं—

> **"रामचरण सत्संग में केतेहि भये निहाल।**
> **जगतजाल सूं सुलझिया पाय भक्ति का चाल।**
> **पाय भक्ति का चाल जीव केतार्थि कीया।**
> **धिन वाका बड़भाग धन्य सो जग में जीया।**
> **गर्क रहै गुरुज्ञान में नितप्रति सदा खुश्याल।**
> **रामचरण सत्संग में केतेहि भये निहाल।"[४]**

---

१. अ० वा०, पृ० ७२२।

२. वही।

३. "रामचरण सत्संग की महिमा को नहि पार"—वही, पृ० ७२१।

४. वही।

'समता निवास' के चतुर्थ प्रकरण में 'संतां को सत्संग' शीर्षक के अन्तर्गत सत्संग के युग-युगों से बखाने जाने की बात कहते हैं। सत्संग ने अनेक पतितों को अमृतरूपी ज्ञान देकर पावन कर दिया। राम भजन सत्संग की प्रेरणा से ही सम्भव है जिससे पाप-नाश होता है और सत्संग ही मानव को 'हरिभक्त' की संज्ञा दिलाता है—

"रामचरण सत्संग का जुग जुग होय बखांण।
जे बहुत पतित पावन करैं दे अमृतरूपी ज्ञान।
दे अमृत रूपी ज्ञान राम को भजन करावै।
जीं पातक होय निपात पुनह हरिभक्त कहावै।
ऐसे बड़ दातार की नहि महिमा को परमांण।
रामचरण सत्संग का जुग जुग होय बखांण।"[1]

इसी प्रकार 'अणभो विलास' के बीसवें प्रकरण में स्वामी जी सत्संग को 'रामबाग' कहते हैं। इस बाग में बैठकर रसरंग में गोता लगाइये। रामरस का प्याला पान कीजिए और युग-युगों तक जीवित रहिए। इस उद्यान में ध्यान के वृक्ष, ज्ञान के फूल और विज्ञान के फल मिलते हैं। भ्रान्तियों का शमन होता है। यह सत्संग ऐसा बाग है जो कभी नष्ट नहीं होता—

"रामबाग है सत्संग।
जामें बैठ कीजै रंग।
प्याला रामरस पीवो।
जासूं जुगे जुग जीवो॥
जहाँ अति ज्ञान भमरी फूल।
भागे भर्मना सब भूल।
जहाँ निज तरू उत्तम ध्यान।
जाकै लगै फल विज्ञान।
ताको नांहि कबहूं भंग।
ऐसो बाग है सत्संग।"[2]

स्वामी जी सत्संग को सभी साधनों में श्रेष्ठ घोषित करते हैं। 'अनन्य भक्ति', 'निजनाम की प्राप्ति', 'ब्रह्म निरूपण' ये सभी सत्संग के विषय हैं। सत्संग के समान उनकी दृष्टि में और दूसरा कोई साधन नहीं—

---

१. अ० वा०, पृ० ८८२।
२. वही, पृ० ११०।

"सब साधन के शिरै समझ सत्संगति कीजै।
तन मन धन त्रयथोक अर्पै सतगुरु कों दीजै।
अनन्य भक्ति निज नाम साध संगति सै पावै।
मिले न दूजी ठाम मर्म त्रयलोकी आवै।
रामचरण सत्संग सम ओर न दीसै कोय।
जहां निरूपण ब्रह्म को सदा सर्वदा होय।"[1]

इस सन्दर्भ में 'अणभो विलास' की निम्नलिखित पंक्ति भी महत्वपूर्ण है।

"ज्ञान भक्ति वैराग्य मिलै सत्संगति मांही।"[2]

परन्तु 'जिज्ञास बोध' के सोलहवें प्रकरण में तो स्वामी जी ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि सत्संग भक्ति का आगर है वैसे ही जैसे सुख का आगर तोष और सिद्धि का आगर साधन है—

"सत्संग आगर भक्ति को सुख को आगर लेख।
साधन आगर सिद्धि को सुत शिख निपजण पोख।"[3]

इसीलिए 'विश्राम बोध' के चौथे विश्राम में कवि को कहना ही पड़ा कि सत्संग के समान 'सुख-सार' कोई दूसरा नहीं—

"सतसंग सम सुखसार नहीं कोई ओर रे।
सब देख्या निरताय थकी मन दोर रे।"[4]

स्वामी रामचरण ने भक्ति के प्रमुख साधन अंग के रूप में सत्संग की महत्ता आँकी है। यों उनकी कृतियों में सत्संग का सत्संगति, साध संगति आदि विभिन्न शीर्षकों में बड़ा विस्तृत विवेचन किया गया है, जिसकी चर्चा लोकपक्ष के अध्याय के अन्तर्गत होगी। यहाँ सत्संग का निरूपण भक्ति के साधन रूप में किया गया है।

स्वामी रामचरण भक्त हृदय सन्त कवि थे। उनका सम्पूर्ण साहित्य भक्ति-भावना का अमित एवं अक्षय सागर है। उन्होंने भक्ति को ज्ञान-वैराग्य सभी से श्रेष्ठ घोषित किया है। यों तो उनके इस विशाल संग्रह ग्रन्थ में सर्वत्र भक्ति-भावना के अनगिनत मुक्ता-हल सघनता से व्याप्त है पर कतिपय प्रमुख शीर्षकों में उन्होंने भक्ति का निरूपण किया

---

१. अ० वा०, पृ० ११२।
२. वही, पृ० ३११।
३. वही, पृ० ६०७।
४. वही, पृ० ७९८।

है जो इस प्रकार है। शीर्षकों की पृष्ठ संख्या फुटनोट में अंकित है। निष्काम भक्ति[1], सरल भक्ति निन्दा[2], अर्चन भक्ति[3], भक्त-रक्षा[4], श्रद्धाभक्ति[5], भक्ति माहात्म्य-त्रिविध भक्ति[6], भक्ति-सिद्धान्त[7], भक्ति माहात्म्य[8], ग्रेहो भक्ति कठिनता[9], प्रतीति भक्ति[10], मूल भक्ति[11], नकल भक्ति[12] आदि।

उपर्युक्त शीर्षकों में स्वामी रामचरण ने भक्ति की कोई सैद्धान्तिक समीक्षा नही की है और यदि कहीं ऐसा प्रकरण आया भी है तो उसमें क्रमबद्धता को महत्त्व नहीं दिया है। वस्तुतः उनकी भावना में भक्ति का जो रूप जिस समय विचरण करने लगता था उसे उसी तरह निरूपित कर देते थे। उदाहरणार्थ, 'सुखविलास' की पंक्तियों में 'श्रद्धा-भक्ति' का निरूपण प्रस्तुत है—

"श्रद्धा सें सबही बर्ण बिन श्रद्धा बर्ण न काय।
धर्म अधर्म बिकर्म सब देखो अकल जगाय।
देखो अकल जगाय सती संग्राम ज होई।
तन मन श्रद्धा घट्यां भग्यो भी जाय न कोई।
तातें भजिये राम कूं श्रद्धा अविक उपाय।
श्रद्धा सें सबही बर्ण बिन श्रद्धा बर्ण न काय।"[13]

इसी प्रकार अंगबद्ध वाणी के बीनती, सुमरण आदि विभिन्न अंगों में भी उनकी भक्ति-भागीरथी का अजस्र प्रवाह देखा जा सकता है। सम्पूर्ण वाणी साहित्य ही भक्ति का दूसरा नाम है। ग्रन्थ 'अमृत उपदेश' के प्रथम प्रकाश में 'निर्णय' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी

---

१. अ० वा०, पृ० २२१।
२. वही, पृ० २२५।
३. वही, पृ० २२८।
४. वही, पृ० २३०।
५. वही, पृ० ४०८, ७९८, ९५१।
६. वही, पृ० ४४३।
७. वही, पृ० ४६१।
८. वही, पृ० ५२५।
९. वही, पृ० ६७१।
१०. वही, पृ० ७८०।
११. वही, पृ० ७८८।
१२. वही, पृ० ९१२।
१३. वही, पृ० ४०८।

अपना निर्णय भक्ति के पक्ष में देते हैं। उनके अनुसार साधु की शोभा वैराग्य, जग की शोभा व्यवहार बन्धन, विप्र की शोभा विद्या और क्षत्रिय की शोभा तलवार हो सकती है, पर भक्ति तो सबकी शोभा है—

"जन शोभा वैराग सूं जग की बंध्या विह्वार।
विद्या शोभा विप्र की क्षत्री की तरवार।
क्षत्री की तरवार भक्ति सबही की शोभा।
बड़ी कुशोभा मूल तूल तन उपजै लोभा।
रामचरण गुरु ज्ञान गहो रहो पला फटकार।
जन शोभा वैराग सूं जग की बंध्या विह्वार।"[1]

---

१. अ० वा०, पृ० ४३४।

षष्ठ अध्याय

लोकपक्ष

सन्तों की लोकजीवन पर सीधी नजर थी। लोकजीवन की उन्होंने न तो कभी उपेक्षा की और न उसकी लौकिकता में फँसे ही। वे बड़े ही सहज भाव से रामोपासना में रत रहते थे। अपने उपासक जीवन को विस्मयकारी बनाकर समाज को प्रभावित करने की दिशा में वे कभी अग्रसर नहीं हुए प्रत्युत् ऐसे तत्त्वों से समाज को सदैव सजग रहने का मंगलमय सन्देश देना वे अपना परम कर्तव्य समझते थे। सिद्धों, नाथों एवं वैष्णवों की उपासना पद्धतियों में संलग्न विकृतियाँ जो उन्हें नापसन्द थी, परम्परा से चली आती सामाजिक रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास जिन्हें वे लोकजीवन के लिए विष समझते थे तथा अनेक बाह्याचार जिन्हें उनके मस्तिष्क ने नहीं स्वीकार किया—के प्रति लोक-जीवन को दिशा देने में वे पीछे नहीं रहे। साथ ही, व्यक्ति और समाज के नैतिक मूल्यों के विकास के लिए उन्होंने जो रचनात्मक सुझाव दिये, वे सब समाज के लिए उनकी अमर देन हैं। इस सन्दर्भ में 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करना असामयिक न होगा।

"सन्त वाणी की दो धाराएँ हैं—एक धारा सींचती हुई बहती है—जीवन के उपवन को, पर मानव जीवन में जो अशिव है, अशुभ है, जीवन में जो जड़ता है, अन्धविश्वास, वैर विरोध, हिंस्र भाव हैं—उनके लिए संतवाणी की दूसरी धारा प्रलय वन्या बनकर उसे बहाती, डुबाती, उखाड़ती, गिराती—प्रचण्ड वेग से बही है। संत के एक हाथ में निर्माण का वरदान है तो दूसरे में विध्वंस का अभिशाप। निर्माण व ध्वंस दोनों कार्य संतवाणी एक ही भाव से एक ही वृत्ति से करती है। वहाँ न हर्ष है न विषाद।"[1]

उपर्युक्त दृष्टिकोण से विचार करने पर स्वामी रामचरण के साहित्य का लोकपक्ष भी खण्डन-मण्डन से पूर्ण प्रतीत होता है। स्वामी जी ने जहाँ समाज में प्रचलित बाह्याडम्बरों, अन्धविश्वासों आदि पर जोरदार शब्दों में आक्रमण किया है, वहीं उन्होंने लोकजीवन को रचनात्मक दिशा भी दी है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ध्वंसात्मक एवं रचनात्मक दो पहलुओं में हम उनके लोकपक्षीय विचारों को विभाजित कर सकते हैं।

ध्वंसात्मक

इस शीर्षक के अन्तर्गत उन विषयों का विश्लेषण हमारा अभीष्ट है जिनसे लोकजीवन के विभिन्न पहलुओं में कुरूपता समाती है। प्रतिमापूजन, रोजा-नमाज, व्रतोपवास,

---

१. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामसनेही-सम्प्रदाय, पृ० ११९।

वर्णाश्रम व्यवस्था, हिंसा, देवल-मस्जिद, कन्चनकामिनी, वहुदेववाद, पुस्तकज्ञान एवं विभिन्न सामाजिक कुरीतियों आदि पर स्वामी जी के दृष्टिकोण का संक्षिप्त विवेचन करके उनके लोक-जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझना सरल है। स्वामी जी धार्मिक आडम्बरों, सामाजिक रूढ़ियों एवं बाह्याचारों के प्रबल विरोधी थे। राजस्थान के जनजीवन में उनके लोकजीवन सम्बन्धी विचारों का जहाँ एक ओर स्वागत हुआ वहीं दूसरी ओर विरोध भी। भीलवाड़े का सूबेदार तो स्वामी जी का विरोध करने में व्यक्तिगत स्तर पर आगया था, किन्तु शाहपुरा-नरेश ने ससम्मान अपने नगर में उन्हें बसाया एवं उनके द्वारा प्रचारित 'रामधर्म' का अनुयायी भी बना। बाद में उदयपुर के महाराणा ने भी स्वामी जी का दृष्टिकोण समझा और उन्हें आदर भी दिया।

प्रतिमापूजन का विरोध

निर्गुण सन्त मूर्तिपूजा के विरोधी थे। वस्तुतः निराकार की उपासना में आकार-पूजन सम्भव नहीं। कबीर आदि सन्तों की भाँति स्वामी रामचरण भी मूर्तिपूजा का खण्डन करने में पीछे नहीं रहे। मिट्टी की गौरी और पत्थर के भगवान की पूजा करने वाले नर-नारियों की बुद्धि पर उन्हें तरस है। कभी वे इस प्रकार के प्रतिमापूजकों की खिल्ली उड़ाते हैं तो कभी उनकी मूर्खता पर रोष प्रकट करते हैं। मिट्टी की गौरी प्रतिमा के पूजन पर स्वामी रामचरण जी की प्रतिक्रिया कितनी तीखी है:—

> **"लादगार की गौरी बणाई, पाणी दे दे साधी।**
> **होय कर्ता कर जोड़ खड़ी है, ऐसी दुनियां आंधी।**
> **हार डोर अवणा पहराया, शक्ति कर कर पूजै।**
> **जढ के आगे चेतन नाचै, देखो साच न झूठै।"**[1]

मिट्टी की गौरी अपने हाथों बनाने वाली स्त्री स्वयं उस मूर्त्ति के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी होती है। उसे माला पहनाकर शक्तिरूपा मानकर पूजती भी हैं। क्या कौतुक है कि जड़ के सामने चेतन नृत्य करता है, यह दुनिया का अन्धविश्वास ही तो है। पाषाण-प्रतिमा पर स्वामी जी की दृष्टि सीधी पड़ी है। स्वामी जी को विस्मय है कि भगवान द्वारा निर्मित पत्थर को दुनिया पत्थर ही कहती है पर उसी पत्थर को जब मनुष्य गढ़कर मूर्त्ति का रूप दे देता है तो उस मानव-सृजन को लोग भगवान कहने लगते हैं—

> **"सिरज्या सिरजणहार का, जासूं कह पाषाण।**
> **रामचरण मानुष घड़्यां, ताहि कहे भगवान।"**[2]

---

१. अ० वा०, पृ० ६५।
२. वही, पृ० ६६।

इसी सन्दर्भ में कवि कहता है कि राम सब को पैदा करता है, उसे तो 'कर्ता' कहा जाता है पर जिस मूर्त्ति को मनुष्य बनाता है उसे कैसे कर्त्ता कहा जा सकता है—

"राम सकल पैदा करै, कर्ता कहिये सोय।
रामचरण मानुष किया, सो क्यूं कर्ता होय।"[१]

मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हुए स्वामी जी अवतारों की भी चर्चा करते हैं। वस्तुतः अवतारों का मूर्त्तियाँ बनाकर उन्हें संसार पूजता है पर स्वामी जी पूछते हैं कि अवतार जिस घर जाता है, कभी उस पर भी विचार किया है? स्वामी जी समाधान करते हैं कि अवतार का जन्म और मरण युग-युगों से होता आया है, किन्तु अवतार उत्पन्न होकर जिसमें समा जाता है उस घर का पता सन्त जानता है।[२] स्वामी जी कहते हैं कि यदि अवतार प्रत्यक्ष हो तो उसका सुमिरन किया जा सकता है पर वह प्रत्यक्ष है कहाँ? पाषाण का भजन तो कदापि संभव नहीं—

"जे सुमरूं अवतार कूं, जे कहूं प्रत्यक् होय।
रामचरण पाषाण कूं, भजत न आवै मोंहि।"[३]

स्वामी रामचरण पहले सगुणोपासक थे, उन्होंने सच्चे मन से प्रतिमा पूजी थी किंतु परिणाम?

"हम भी पूजी प्रतिमा, साच धारि मन मांहि।
रामचरण दुखपीड़ की, कबहूं बूझी नांहि।"[४]

परिणाम, आकार में विश्वास नहीं रहा और उन्होंने अनुभव किया कि दुनिया बड़ी नासमझ है, वह पत्थर को प्रणाम करती है पर राम ज्ञानी सन्त के निकट नहीं जाती, वह पत्थर का प्रसाद ग्रहण करती है और राम से स्नेह रखनेवाले साधुओं से व्यर्थ का विवाद करती है—

"रामचरण पाषाण कै, दुनिया लागै पाय।
साधु मिलावै राम सूं, ताक निकट न जाय।

---

१. अ० वा०, पृ० ६६।
२. अवतारां की प्रतिमा करि पूजै संसार।
रामचरण जिस घर गया, जाका नहीं विचार।
जन्म मरण अवतार का, जुग जुग होय अनन्त।
उपजि समावै तासमैं, सो घर जाणै संत।—वही।
३. वही पृ० ६६।
४. वही।

रामचरण संसार ले, पाँहण को परसाद।
रामस्नेही साथ सूं, करै खेचरी बाद।"[1]

स्वामी जी मुसलमानों के आक्रमण के संकट की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। मूर्ति को गढ़-संवार कर मन्दिर में रख दिया जाता था और उस मूर्ति से सम्बद्ध सम्पत्ति का भण्डार लूटने के लिए तुर्क आक्रमण करते थे। स्वामी जी कहते हैं कि पाषाण मूर्ति को गढ़-संवार कर प्रस्थापित तो कर देते हैं पर जब तुर्कों की तवाई पड़ती है तो डर के मारे भण्डार ही दे डालते हैं।[2] उनका तात्पर्य यह है कि मूर्तिस्थापन के कारण एक संकट को आमन्त्रण देते हैं।

'कुण्डल्या भर्म विध्वंस को अंग' में स्वामी रामचरण कहते हैं कि पत्थर की मूर्ति गिरकर फूट सकती है, उसमें जीव-प्राण है नहीं, फिर उसे देव कैसे कहा जाय? उससे काग और श्वान भी नहीं डरते, फिर मूर्ख मनुष्य की बुद्धि को क्या कहें। ऐसा लगता है कि संसार की दृष्टि से ज्ञान गत हो गया है।[3] मूर्तिपूजा के सन्दर्भ में पंडितों पर आक्षेप करते हुए स्वामी जी कहते हैं कि पत्थर को गढ़कर कर्तार नाम दे दिया पर संसार सचमुच जो 'कर्ता का कर्तार' है उसे नहीं देख पाता क्योंकि उस पर पंडितों का प्रभाव है जो अपने पेट के लिए मूर्तिपूजा का भ्रम संसार में फैलाये हुए हैं—

"टांच्या घड़ि पैदा कर्‌यो नाम धर्‌यो कर्तार।
कर्ता का कर्तार कों लखै न यो संसार।
लखै न यो संसार बसै पंडित की छाया।
उदर कोट की ओट जिनूं ये भर्म चलाया।
रामचरण सतगुरु बिना सत मत नहीं बिचार।
टांच्या घड़ि पैदा कर्‌यो नाम धर्‌यो कर्तार।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ६६-६७।
२. "रामचरण पाषाण की, मूरति घड़ी संवार।
पड़ी तवाई तुरक की, तब भै मैं दई भंडार।"
—अ० वा०, पृ० ६७।
३. "घरिया कूं धीजू नहीं घड़्यो घाट पाषाण।
पड़ि फूटै परबस रहैं तामैं जीव न प्राण।
तामैं जीव न प्रांण देव कैसो विधि कहिये।
डरै न कउवा श्वान मिनख मूरख मति बहिये।
रामचरण संसार कै दृष्टि ज्ञान गत भांण।
घटिया कूं धीजू नहीं, घड़्यो घाट पाषाण।" वही
४. वही।

पाषाण-देव की चर्चा करते हुए स्वामी जी चित्र-देवता तक पहुँच जाते हैं। मूर्त्ति-पूजा सदृश चित्रपूजा को भी वे व्यर्थ समझते हैं और संसार की बुद्धि पर तरस खाते हैं। वे कहते हैं—

"रंगदारक को मोरड़ो उड़े न चुगवा जाय।
सुण घनहर की घोर कूं खुसी न होय कुर्लाय।
खुसी न होय कुर्लाय भवंग भी देख न डर्पै।
देखो नर की समझ चित्र का दैवत थर्पै।
रामचरण संसार चख भर्म तिमिर रहे छाय।
रंगदारक को मोरड़ो उड़े न चुगवा खाय।"[1]

रंगशिल्पी का मोर न उड़ता है न चारा चुगने जाता है, न वह मेघगर्जन से प्रसन्न होकर क्रीड़ा ही करता है, सर्प भी उससे नहीं डरता पर मनुष्य का समझ को क्या कहा जाय, वह तो उस चित्र में देव की प्रतिष्ठा करता है। वस्तुत: इस संसार की आँखों में भ्रम का अँधेरा छा रहा है।

स्वामी जी की दृष्टि में धातु, काष्ठ, पाषाण की मूर्त्तियाँ और चित्र सभी मृतक समान हैं क्योंकि उनमें चेतना नहीं है—

"धातु काठ चित्राभ का, चौथा घड्या पषांण।
रामचरण चेतन बिना, सब ही मृतक जांण।"[2]

स्वामी जी अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैसे पत्थर की नाव पर चढ़े व्यक्ति का बूड़ना निश्चित है वैसे ही पत्थरप्रेमी का पार न पहुँचना भी निश्चित है।[3] इसीलिए स्वामी जी ने चेतावनी दी है कि पाषाण से अपनी रक्षा नहीं हो सकती, सेवक का उसके समक्ष हाथ जोड़ना व्यर्थ है—

"रामचरण पाषांण सूं, अपणी रख्या न होय।
कर जोड्यां सेवक खड़ा, क्या पावैगा सोय।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० १७९।
२. वही, पृ० ६६।
३. "रामचरण पाषाण की, प्रीति न पहूंचै पार।
ज्यूं पाहण का नाव चढ़ि, बूड़ै बहती धार।"
—अ० वा०, पृ० ६७।
४. वही।

इसलिए स्वामी रामचरण ने मूर्त्ति को प्रणाम करने का स्पष्ट निषेध करते हुए भगवान के चरणों में रत होने का उपदेश दिया है—

"तजि पांहण कर बंदगी, हरि चरणां में लीन।
रामचरण चरणारबिंद, तजै स होवै हीण।"[1]

धर्म विध्वंस के विभिन्न शीर्षकों में स्वामी जी ने प्रतिमापूजन का तिरस्कार करते हुए राम में लीन होने की बात कही है। निर्गुण संत की दृष्टि में मिट्टी, धातु, काष्ठ, पाषाण की मूर्त्तियों और रंगशिल्पी के चित्रों में अवतार या देवी-देवता की कल्पना मनुष्य की अज्ञानता का परिचायक है। इसीलिए कवि बार-बार मानव बुद्धि पर तरस खाता है। वह अनुभव करता है कि शठ संसार ऐसे ही धर्म में विश्वास करता है जो निस्सार है, जैसे धुँएँ की वर्षा जिससे धरती नहीं भींगती है—

"जैसे वर्षा धूंम की, धरती भीजै नांहि।
रामचरण संसार शठ, ऐसो धर्म समांहि।"[2]

निष्कर्ष यह कि स्वामी जी ने प्रतिमापूजन को धूम-वर्षा की भाँति व्यर्थ बता कर उसका पूर्णतया निषेध किया है।

व्रतोपवास की व्यर्थता

स्वामी जी ने व्रतोपवास की महत्ता नहीं स्वीकार की है। सामान्यतया एकादशी का व्रत हिन्दू-समाज में लोकप्रिय-व्रत के रूप में विख्यात है। स्वामी जी एकादशी समेत सभी व्रतों की व्यर्थता सिद्ध करते हैं। एकादशी को स्वामी जी ने 'कच्चाव्रत' कह कर निरूपित किया है—

"रामचरण एकादशी तु दृढ़ कर हिरदै धारि।
ग्यारह काचा व्रत है मोठ ले गयो मारि।"[3]

कवि एकादशी और एकादशीव्रत में अन्तर स्पष्ट करता है। उसके अनुसार एकादशी एवं एकादशी-व्रत दो भिन्न स्थितियाँ हैं। व्रत से भिन्न एकादशी वह है जिसका कभी नाश न हो—

---

१. अ० वा०, पृ० ६७।
२. वही, पृ० ६६।
३. वही।

"मुख सूं कहै एकादशी, अरु करै ग्यारस कौ वास।
एकादशी सो जांणिये, जाका कदे न होवै नास।"[१]

इसलिए स्वामी जी राम के नामस्मरण को ही सर्वश्रेष्ठ व्रत मानते हैं यदि जन्म से मरण तक एकरस निभ जाय। जो निभ न सके वह व्रत बेकाम है—

"जन्ममरण लग एक रस, निभै राम का नाम।
भीड़ पड्या भगि जात है, सोही व्रत बेकाम।"[२]

'साखी चाणक को अंग' में एक स्थल पर स्वामी जी बहुत स्पष्ट लिखते हैं कि उपवास और व्रत आदि से 'हरि मारग' की प्राप्ति नहीं होती—

"वास व्रत्त अरु पर्वी साधै, देवी देव मनावै।
रामचरण दुनियां चकचूंधी, हरिमारग नहि पावै।"[३]

हिंसा एवं मांसाहार का विरोध

स्वामी रामचरण ने हिंसा एवं मांसभक्षण का निषेध किया है। सन्तजन जीव हिंसा के प्रबल विरोधी रहे हैं। उन लोगों ने हिंसा करके मांसाहार करनेवालों को बहुत फटकारा है। समाज में हिंसा के विरुद्ध वायुमण्डल निर्मित करने में अन्य सन्तों सदृश स्वामी जी भी पीछे नहीं रहे। मांसाहारी एवं जीव-हिंसक हिन्दू और मुसलमान दोनों को स्वामी जी ने धिक्कारा है। स्वामी जी कहते हैं कि चराचर सभी में भगवान व्याप्त हैं। अतः ऐसे जीव को मारकर खानेवाला हिन्दू हो या मुसलमान, अवश्य ही नरक में जाता है—

"बधता फिरता बोलता, खाता पीता जीव।
रामचरण सचराचरां, सब मैं व्यापक शीव।
ताकूं मारै करदले, आनंद कर कर खाय।
तो रामचरण हिन्दु तुरक, दोन्यू दोजिग जाय।"[४]

जीवहत्या बहुत बड़ा जुर्म है, इससे भगवान कुपित होता है और एक जीव की हत्या का हजार बार बदला लेता है। स्वामी जी संसार को बतलाना चाहते थे कि जीवहिंसा बहुत बड़ा अपराध है, यह ईश्वरीय अपराध है।

---

१. अ० वा०, पृ० ६६।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ६४।

"बड़ा जुलम जिव मारतां, कोपै निरजणहार।
रामचरण ले जीव का, बदला बार हजार।"[1]

देवी-देवताओं के स्थान पर उनके निमित्त हत्या करने वालों की स्वामी जी ने बड़ी भर्त्सना की है। भैरव और देवी की पाषाण-प्रतिमाएँ प्रत्यक्ष जड़स्वरूप हैं, किन्तु मनुष्य उन्हीं के निमित्त परमात्मरूप जीव की हत्या करता है—

"भैरूं देवी पथर का, प्रतिम जड्ढ स्वरूप।
रामचरण ताकै निमित, हतै जीव सद्रूप।"[2]

जीव-हत्या के लिए स्वामी जी ने काजी मुल्लाओं को भी फटकारा है, समझाया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने कुरान की साक्षी भी दी है। वे कहते हैं कि सभी जीव खुदा स्वरूप पैगम्बर की उत्पत्ति हैं किन्तु काजी हाथ में छुरी लेकर उनका बध करता है। हिंसा करने वाला मनुष्य 'नापाक' होता है यह कुरान का वचन है—

"सब जीवां खुद खुद्दाय है, पैगम्बर की पैदास।
रामचरण कर कर्द ले, काजी करत बिनास।
काजी कलमां पाक है, तो खड़ी पछाड़ै कांहि।
हिंसा नर नापाक है, कह कुरांन कै मांहि।"[3]

स्वामी जी फूलपत्तियों के तोड़ने को भी हिंसा ही समझते हैं। निर्जीव की पूजा करनेवाली पुजारिन निर्दयतापूर्वक सजीव फूल पत्ती की हत्या करती है। अपने पेट के आगे उसे पाप नहीं दीखते। ब्राह्मण भी यह क्रिया करते हैं। फूल को जड़ मूर्त्ति पर ले जाकर चढ़ा देते हैं और घड़ी पहर में वह सूख जाता है। जब कर्त्ता इसका विवरण माँगता है तो उस समय जीभ नहीं डोलती—

"सरजीवत पाती फूल हत निर्जिव पूजणहारि।
पुनि राम कहां से खिज मरै ये बड़ी मोल संसार।
. . .   .
तोड़ै फलता-फूलता, ज्यां दया न दिल कै मांहि।
कारज अपणा उदर कै, पातक नींह दर्सांहि।

---

१. अ० वा०, पृ० ६४।
२. वही।
३. वही।

पातक नांहि दर्शांहि ल्याय जड़ ऊपर धरिहै।
घड़ी जाम जाय सूक विप्र यह फिरिया करिहै।
कर्ता लेखो मांगसी जब जीभ उलथसी नांहि।
तोड़ै फलता फूलता ज्यां दया न दिल कै मांहि।"[१]

स्वामी जी कहते हैं कि पात-पात में पुरुषोत्तम का निवास है, माटी का महादेव बनाकर उस पर पत्ते तोड़कर चढ़ाना, परमात्मा को दुःख देना है—

"पात पात पुरुषोत्तम व्यापक, ताकूं तोड़ संतावै।
माटी का महादेव बणावै, जापर ल्याय चढ़ावै।"[२]

स्वामी रामचरण फूल पत्ती को तोड़ने में भी हिंसा का अनुभव करते हैं, फिर निर्दोष वनवासी पशु जिसका आहार ही तृण-जल है—की हत्या करने में बहुत बड़ा पाप का बोझ सिर पर चढ़ता है—

"निरदावै वन में रहै, तृण जल करै आहार।
रामचरण ताकूं हत्या, बहुत चढ़ै शिर भार।"[३]

स्वामी जी मांसाहार के प्रबल विरोधी थे। कबीर आदि निर्गुण सन्तों की भाँति स्वामी जी भी मांसभक्षियों को धिक्कारते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार से मांस-भक्षण के प्रति घृणा भाव को उकसाते हैं। शालिग्राम की पूजा, गीता का पाठ और उसके साथ जीव हत्या कर उसका मांसभक्षण विचित्र स्थिति है। स्वामी जी कहते हैं, ऐसा करने वाला प्राणी भगवान से भी नहीं डरता—

"सेवा सालिगराम की, मुख गीता पाठ करै।
जीव मार भक्षण करै, सांई सूं न डरै।"[४]

स्वामी जी समझाते हैं कि जिस मुख में चरणामृत और तुलसी धारण करते हो, उसी से मांसाहार करना अनुचित है—

---

१. अ० वा०, पृ० ७४६।
२. वही।
३. वही, पृ० ६४।
४. वही।

"चरणामृत मुख में धरै, पुनि तुलसी का पांन।
रामचरण नहिं खाइये, ता मुख माटी खांन।"[1]

मांस कुत्ते और गीदड़ का भोजन है किन्तु कुत्ते और सियार भी निर्जीव का मांस भक्षण करते हैं पर मनुष्य तो भगवान से भी नहीं डरता। वह जीवित को भी मार कर खा जाता है—

"श्वान स्याल को खांण है, सो भी मूवां खाय।
नर निधड़क नाराण सूं, जीवत मारण खाय।"[2]

स्वामी जी बड़ी संयत भाषा में समझाते हैं कि मनुष्य का खाद्य अन्न-पानी है पर मनुष्य कहाँ मानता है, वह अपनी मूर्खतावश माटी (मुर्दा) भक्षण करता है—

"रामचरण नर देह का, अन पाणी है खज्ज।
ताहि छांड़ि माटी भखै, मूरख खाय अज्ज।"[3]

'जिज्ञास बोध' के उन्नीसवें प्रकरण में स्वामी जी हिंसकों की चर्चा उठाते हैं। वे कहते हैं कि जो पराया प्राण लेता है उस निर्दयी की गति राक्षस की होती है—

"आसुर गति सो निर्दई, जे हतै पराया प्रांन।"[4]

वस्तुतः मांसाहार के लिए जीवहत्या करनी ही पड़ती है क्योंकि मांस न तो पेड़ में फलता है और न खेत में उपजता है। जो लोग जीवहत्या करते हैं वे जिह्वास्वाद के वशीभूत असुरबुद्धि हैं। स्वामी जी कहते हैं कि जीवहत्या के समय जितनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं, उसका बदला उसी प्रकार रो-रोकर देना पड़ता है—

"मांस न वृच्छां लागि है मांस न निपजै खेत।
मांस किसी कूं चाहिये तो प्रांणघात करि लेत।
तो प्रांणघात करि लेत हेत रसना रस जांनो।
बोलत चोघत हतै ताहि आसुर बुधि मांनो।

---

१. अ० वा०, पृ० ६४।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ६२८।

आपै हँसि हँसि मारिया आगे रोइ रोइ बदलो देत।
मांस न वृच्छां लागि है मांस न निपजै खेत।"[१]

स्वामी जी ने जीवहिंसा करके मांसाहार करने वाले सभी मनुष्यों को धिक्कारा है चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान। उन्होंने हिंसा को घोर पाप कहा है और मांसाहारियों को श्वान-शृंगालों से भी गया बीता बतलाया है। रामसनेही सम्प्रदाय में जीवों की रक्षा का इतना अधिक ध्यान रखा जाता है कि रामसनेही जन पानी कपड़े से छान कर प्रयोग में लाते हैं और सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करते।

पाखण्डों पर सीधी नजर

स्वामी रामचरण ने धर्म के नाम पर समाज को डसने वाले विभिन्न कर्मकाण्डों को पाखण्ड कहा है और उनके विरोध में अपना स्वर बराबर ऊँचा करते रहे। उन्होंने पूजा, नमाज, तीर्थयात्रा, नदी-स्नान, उपवास, देवल-मस्जिद सभी पर सीधी दृष्टि डाली है और जो कुछ भी कहना था उसे बड़े निर्भीक भाव से कह गये। उनके संत हृदय ने इन सभी को आडम्बर से अधिक नहीं माना। हृदय एवं आचरण की शुद्धता पर उन्होंने विशेष बल दिया जिसके लिए उपर्युक्त सभी साधनों को उन्होंने निरर्थक माना। समाज के हर स्तर पर लोगों को उन्होंने समझाया। हिन्दू-मुसल्मान दोनों को बिना भेदभाव के खरी-खोटी सुनाकर उन्हें भगवत् भजन की ओर उन्मुख होने का संदेश दिया।

पूजा-नमाज

स्वामी जी ने माला फेरने वाले हिन्दुओं और नमाज की अजान देने वाले मुल्लाओं पर सीधे प्रहार किया है। माला और अजान दोनों की उन्होंने बड़ी कड़ी आलोचना की है। स्वामी रामचरण द्वारा पूजा-नमाज पर की गयी बौछारें कबीर की कटूक्तियों का स्मरण करा देती हैं। माला फेरने वालों को वे ठग कहने में संकोच नहीं करते—

"माला का चाला करै, मुख सूं कहै न राम।
रामचरण दे भजन शिर, ये ठिगबाजी का काम।"[२]

इसी प्रकार अजान देने वाले मुल्ला की पुकार पर स्वामी जी की प्रतिक्रिया भी कम तीखी नहीं है। स्वामी जी कहते हैं कि कान में अँगुली डालकर जिसे मुल्ला पुकारता है, क्या कभी विचार किया है कि वह कौन है?

---

१. अ० वा०, पृ० ६२९।
२. वही, पृ० ६५।

"घाल कांन में आंगली, मुल्लां करै पुकार।
बांग देय सो कूंण है, जाका करो विचार।"[1]

वह सर्वव्यापी रहीम है जो बहरा नहीं है, फिर मुल्ला किसे अपनी बांग सुनाता है?

"सकल जिहान में रमि रह्या, मुल्लां एक रहीम।
बांग सुणावे कूण कूं, बहरा नाहि करीम।"[2]

स्वामी कहते हैं कि मैं भी बांग देने को तैयार हूँ पर जब मैं यह जान लूं कि वह साहब दूर है, पर उसे तो सकलव्यापी कहते हैं, फिर वह मुझमें भी तो है। जो वस्तु जहाँ है वहाँ तो उसे खोजते नहीं, बाहर खोजने जाते हैं। दोनों में अन्तर है, अतः कैसे वह मिल सकता है—

"रामचरण मैं बांग द्यूं, जो साहिब जांणू दूर।
सकल बियापी कहत हैं, तो मुझ ही मैं भरिपूर।
बस्तु जहाँ हेरै नहीं, बाहिर हेरण जाय।
रामचरण कैसें लहैं, दूंणूं अन्तर थाय।"[3]

तीर्थ-यात्रा

स्वामी रामचरण की दृष्टि में तीर्थयात्रा, नदी-स्नान आदि व्यर्थ है यदि हृदय सत्संग से पवित्र नहीं है। वे हृदय की शुद्धता में ही सभी तीर्थयात्राओं को चरम फल पा लेने के पक्षपाती हैं—

"काशी गया पराग गंग मथुरा वृन्दावन्न।
दूर देश तै आयकै खर्चै मुक्ता धन्न।
खर्चै मुक्ता धन्न मन्न की भ्रांति न जावै।
भेदाभेद निषेध वर्ण बिधि नहीं मिटावै।
रामचरण सत्संग बिन मलवत् सभी जतन्न।
काशी गया पराग गंग मथुरा वृन्दावन्न।"[4]

लोग काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन आदि विभिन्न तीर्थस्थलों पर जाकर नदी-स्नान करते हैं, धन व्यय करते हैं पर क्या इससे मन की भ्रांति दूर होती है? नहीं, इससे न तो भेदाभेद का ही निषेध हो पाता है और न वर्ण-विधान ही मिटता है, मन सदैव भ्रान्त

१. अ० वा०, पृ० ६४।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० १७८।

रहता है। अतः तीर्थों में जाकर धन का व्यय करना या अन्य प्रकार के यत्न करना मलवत् है जब तक सत्संग न हो। 'अणभो विलास' के बीसवें प्रकरण में स्वामी जी कहते हैं कि तीर्थ-यात्रा करते आयु व्यतीत हो गयी पर मन नहीं जीता जा सका, फिर परिणाम क्या रहा? बेशरम बने, फजीहत हुई, शरीर और धन की हानि हुई—

> "कूंण करैं मन जीत, सुणै न देखै दास की।
> आयु गयी सब बीत, करता तीरथ जातरा।
> तीरथ कीता मन नहीं जीता भया फजीता बेशंर्मा।
> तन धन छीजै दुख में खीजै कहो कहा कीजै करि कर्मा।"[१]

'सुख विलास' ग्रंथ में तीर्थस्थलों की चर्चा करते हुए स्वामी जी स्पष्ट कहते हैं कि अड़सठ तीर्थों का स्नान, बद्री-केदार की यात्रा सभी व्यर्थ हैं यदि मन विकृत है। मन का विकार तो राम-भजन से ही जाता है—

> "अड़सठ तीरथ न्हाय कै, चढ़ बदरी केदार।
> एक राम का भजन बिन, मन नहिं तजै विकार।"[२]

भले ही कोई जगन्नाथपुरी और बद्री-केदारधाम की यात्रा कर आवे, पर मन में कोई अंतर नहीं आता, वही लोभ-कामना की लगन मन पर छायी रहती है—

> "भल जाओ कोइ द्वारका, भल कोई बदरीनाथ।
> लोभ कामना लगन अति, मन की वाही बात।"[३]

स्वामी जी द्वारका के साथ मक्का तक की बात कर जाते हैं। उनका कहना है कि बिना गुरु ज्ञान के मन पराजय नहीं स्वीकारता—

> "भल कोइ जाओ द्वारका भल जाओ मक्के।
> रामचरण गुरुज्ञान बिन मन नांही थक्के।"[४]

इसी सन्दर्भ में स्वामी जी कहते हैं कि कर्म-कामना तीर्थयात्रा से नहीं मिटती, संसार में आना-जाना लगा रहता है। मन की शुद्धता रामभजन से सम्भव है, तीर्थयात्रा से नहीं—

---

१. अ० वा०, पृ० ३११।
२. वही, पृ० ३४६।
३. वही।
४. वही।

"गया गया जाता हुआ आया आया आत।
कर्म कुलक्ष कामना मिटै न तीरथ जात।
मिटै न तीरथ जात, गया आया जग मांही।
रामभजन मन शुद्ध होय सो बणैज नांही।
अंतर की सोधी बिना गालगोल सी बात।
गया गया जाता हुआ आया आया आत।"[1]

देवल-मस्जिद

स्वामी रामचरण की दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान दोनों की गति क्रमशः मंदिर और मस्जिद तक है पर दोनों का भ्रम देवल-मस्जिद की उपासना से दूर नहीं होता। भ्रम-निवारण तो रामभजन से संभव है पर दोनों ही राम का नाम न लेकर भरमते रहते हैं। ग्रंथ 'विश्वास बोध' के अठारहवें प्रकरण में इस विषय पर स्वामी जी ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। उन्हें दोनों ही जातियों पर तरस आता है कि 'राम रहीम' को बिसारकर अन्य स्थानों की उपासना में दोनों ही लीन हैं।[2] कवि समाज को दोनों की स्थिति से अवगत कराता है, दोनों ही राम का स्मरण नहीं करते प्रत्युत मंदिर एवं मस्जिद में दौड़ते हैं—

"फेर सुणो दोइ आलिम की गति, नित्य राम नहि गावै।
वै मसीत वै देवल भर्मै, बिनही नहचै जावै।"[3]

हिन्दू देवल और मुसलमान मस्जिद को मानते हैं।[4] कवि मस्जिद और देवल के भीतर झाँकता है तो देखता है कि मस्जिद के ताक और देवल की 'मूरति' से उसके 'सांई' के रूप का कहीं मेल नहीं है। काजियों ने कुरान और पण्डितों ने वेद का सन्दर्भ प्रस्तुत कर मुसलमान और हिन्दू दोनों को अज्ञानता में भरमा दिया। किन्तु 'शून्य' और 'देवत' की उपासना से दुःख और खेद नहीं हटेगा। इसके लिए तो रामभजन ही आवश्यक है—

---

१. अ० वा०, पृ० ३४६।
२. दया धर्म भूला सबै आलिम दोइ अज्ञान।
राम रहीम बिसारि कै पूजै आंन स्थांन।
पूजै आंन स्थांन मांन कूं पाप कुमावै।
कारज नांही सिद्धि कुबुधि बहुभांति उपावै।
रामचरण भज राम कूं जे चाहै सुखदान।
दया धर्म भूला सबै आलिम दोउ अज्ञान।—वही पृ० ७४८।
३. वही।
४. हिन्दू मानै देहुरा, मुसलमान मसीत—वही।

"मसीत में ताक अरु देवल में मूरति है,
सूरति सांई की भिन्न जानत न भेद जू।
दोही आलिम अज्ञता कूं भरमाय दिये,
काजी अरु पंडितां कुरान मिल वेद जू।
पूजि पूजि पगां परै करै अरदास बहु।
तोहि न मिटावै पीर संशै कौन छेद जू।
राम ही चरण कहै राम का भजन बिना।
सेयें शून्य देवत हटै न दुःख खेद जू।"[1]

स्वामी जी हिन्दू और मुसलमान दोनों को भ्रम के वश में देखते हैं। दोनों का लोक-जीवन भ्रमों का आगार बना दीखता है। हिन्दू देवल-द्वारका के चक्कर में भरमता है तो मुसलमान मस्जिद और मक्का के भ्रम में पड़ा हुआ है। मुसलमान रोजा रहते हैं तो हिन्दू एकादशी रहते हैं। हिन्दू कर्म के फंदे में हैं तो मुसलमान ईद-बकरीद मनाता है। तात्पर्य यह कि देवल-द्वारका, मस्जिद-मक्का, रोजा-एकादशी, ईद-बकरीद सभी भ्रमोत्पादक हैं और मनुष्य इन्हीं में भूला रहता है। 'अलह इलफ' से भरपूर राम का भजन ही सुखदायी है। अतः दुविधा त्यागकर राम का भजन करना चाहिए क्योंकि दुविधा मे पड़ा व्यक्ति नरक का वासी होता है चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान हो—

"क्या देवल क्या द्वारका क्या मक्का महजीद।
क्या रोजा एकादशी क्या कर्म ईद बकरीद।
क्या कर्म ईद बकरीद भर्म मैं भूल्या दोई।
अलह इल्फ भरपूर राम सुमर्यां सुख होई।
दुबध्या दोजिग जाईये क्या मुसलमान क्या हींद।
क्या देवल क्या द्वारका क्या मक्का महजीद।"[2]

रोजा-एकादशी, देवल-मस्जिद, ईद-बकरीद एवं द्वारका-मक्का सभी को स्वामी जी ने निस्सार तो बतलाया ही हिन्दू और मुसलमान दोनों को भगवान को दिशाबद्ध करने से भी मना किया। उनका कहना है कि हिन्दू-मुसलमान भगवान को विरोधी दिशाओं में पाते हैं अर्थात् हिन्दुओं का भगवान पूरब की ओर है और मुसलमानों का पश्चिम की ओर, अतः दोनों दो विरोधी दिशाओं की ओर उन्मुख होकर उपासना करते हैं। किन्तु भक्त कहते हैं कि वह सूर्य की ज्योति के समान दसों दिशाओं में व्याप्त है—

---

१. अ० वा०, पृ० ७४८।
२. वही, पृ० १७८।

"हिन्दू हरि पूर्व कहै पश्चिम मुसलमान।
दशूं दिशा हरि जन कहै तिमचर ज्योति समान।"[1]

इस कथन में जहाँ हिन्दू-मुस्लिम उपासना विधियों पर स्वामी जी ने दृष्टि डाली है, वहीं उन्होंने दोनों को निकट करने का भी प्रयास किया है। दोनों ही एक परमात्मा के बंदे हैं पर यहाँ इस संसार में आकर दोनों भिन्न-भिन्न मार्ग पर चलते हैं। इस प्रकार दोनों की उलझनें बढ़ती हैं, दोनों उलझनों को सुलझाकर रामस्मरण नहीं करते वरन् मस्जिद और देवल में भरमते फिरते हैं—

"रामचरण हिन्दू तुर्क निकस्या एकै घाट।
एकै साईं सिरजिया अब चालै दो दो बाट।
अब चालै दो दो बाट उलझ की आंटी भारी।
सुलझ भजै नहि राम मिनख तन बाजी हारी।
वै मसीत वै देहवरै भर्म्या फिरै निराट।
रामचरण हिन्दू तुर्क निकस्या एकै घाट।"[2]

भिन्न धर्मों एवं उपासना पद्धतियों में आस्था होने के कारण भी हिन्दू और मुसलमानों में भेदभाव की खाईं चौड़ी थी। उपर्युक्त उदाहरणों से इस आशय की गंध मिलती है कि स्वामी जी दोनों को मतवाद की उलझनों से विरत हो परस्पर निकट होने का संदेश देते हैं। मतवादी उलझनों से विरत होने का एकमात्र मार्ग रामनाम का स्मरण है। इस संदर्भ में स्वामी जी विभिन्न मुसलमान-भक्तों का नाम भी गिनाते हैं जो रामस्मरण के द्वारा उजागर हो गये हैं—

"शाहा सुलतांनी हेत मा काजी महमद फरीद।
प्रगट दास कबीर हैं दादू अरु बाजिद।
दादू अरु बाजिन्द और हिन्दू बहु आगर।
जिन सुमर्‌या इकराम सोही सब भया उजागर।"[3]

भारतीय सन्तों की हिन्दू-मुस्लिम विचार-वैषम्य पर सदैव दृष्टि रही है। मतभिन्नता के कारण दोनों जातियों में सदा वैर-विरोध का भाव बना रहा और संत जन उसे दूरकर सद्भाव उत्पन्न करने के प्रयास में लगे ही रहे हैं। कबीर आदि संत सदैव हिन्दू और मुसलमानों को उनकी विकृत उपासना-पद्धतियों के लिए फटकारते रहे हैं जिनके कारण

---

१. अ०वा०, पृ० १७८।
२. वही।
३. वही।

दोनों में वैर-भाव स्थायित्व पाता था। वस्तुतः संतों की दृष्टि मानवतावादी रही है। स्वामी रामचरण इसी संत-परम्परा की एक सुदृढ़ कड़ी थे। अतः यदि उन्होंने भी दोनों पक्षों में सद्भाव जगाने का सद्प्रयास किया तो यह उचित ही था। निर्गुण-उपासकों ने राम को सर्वव्यापी कहा है। स्वामी जी इस राम को 'तिनचर ज्योति' के समान दसों दिशाओं में व्याप्त पाते हैं और इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान दोनों उस ज्योति से आलोकित होते हैं, अतः भेदभाव भ्रम के अलावा अन्य कुछ नहीं।

पुस्तक-ज्ञान

स्वामी रामचरण ने वेद, पुराण, कुरान आदि ग्रंथों के ज्ञान को भी निरर्थक ही कहा है यदि उस ज्ञान से राम न मिल सके। 'साखी चाणक को अंग' में वेद के जानकार वेदी के ज्ञान को सुनकर कहा हुआ कहते हैं। उनकी दृष्टि में वेद पढ़ने और तत्त्वभेद जानने में अन्तर है।[1] वेदी को भेदी (ब्रह्म का रहस्यवेत्ता) से व्यर्थ विवाद नहीं करना चाहिए क्योंकि वेदी दूसरे के कथन को दुहराता है और भेदी अनुभव करके कहता है—

> **"रामचरण बेदी अड़ै, भेदी सूं बेकाम।**
> **बेदी परभाखी कहै, भेदी परसी राम।"[2]**

वेदी तत्त्व का रहस्य-द्रष्टा नहीं, वह अपने पेट के लिए बारबार वेद का वाचन करके संसार को फँसाये रहता है।[3] वस्तुतः स्वामी जी की दृष्टि में वेद संसार का जाल है, साधु इससे विरत रहकर रामभजन में लीन होता है। उसे विधि, विद्या, यज्ञ, योग तपादि से कोई वास्ता नहीं रहता—

> **"वेद जाल संसार कूं, साधू सुमरै राम।**
> **बिधि बिद्या जिग जोग तप, इनसूं रहै नहकाम।"[4]**

'विश्राम बोध' के छठें विश्राम में स्वामी जी ने बतलाया है कि ग्रन्थ पढ़कर उसका अर्थज्ञान कर लेने के बाद मन में अहंकार का भाव जागृत हो जाता है। 'काम-दाम' की तृष्णा विकसित होकर मनुष्य को अज्ञानी बना देती है। इससे अच्छा तो अपढ़ रहना ही है क्योंकि अपढ़ को गुरु द्वारा बताये ज्ञान से ही सन्तोष होता है।

---

१. "वेद पढ्या भी भेद न पाया, देख्या नहीं सुण्या सो गाया"—अ० वा०, पृ० ७:
२. वही।
३. "बेदी ततभेदी नहीं, बाँचै बारंबार।
आप उदर कै कारणैं, उलझायो संसार"—वही।
४. वही।

"ग्रंथ अर्थ पढ़ि बांचि कै मन आयो अभिमान।
काम दाम तृष्णा बधी तो पढ़ि क्यूं पचे अज्ञान।
तो पढ़ि क्यूं पचे अज्ञान अग्नि ज्यूं घृत सिंचाई।
पाय पन्नगनी दूध मध्य मिश्री जु मिलाई।
जासूं तो अपढे भले संतोष रता गुरु ज्ञान।
ग्रंथ अर्थ पढ़ बांचि कै मन आयो अभिमान।"[1]

स्वामी जी कहते हैं कि संस्कृत और प्राकृत में निहित ज्ञान का अर्थ तो बनाकर निकाल लेते हैं पर माया में लीन प्राणी के हृदय में वह ज्ञान अपना स्थान नहीं बना पाता।[2] स्वामी जी का मत है कि कथावाचन तो जीविकोपार्जन का उपाय है, सिद्धि का उपाय कदापि नहीं। सिद्धि तो साधना से ही सम्भव है।[3]

स्वामी रामचरण की दृष्टि में विभिन्न ग्रंथों के ज्ञान की सार्थकता 'निजनाम' से ही है, फिर चाहे चारों वेद[4], षड्दर्शन[5], नौ व्याकरण[6], अठारह पुराण[7], कविता और कुरान का ज्ञान हो चाहे संस्कृत और प्राकृत भाषा का हो, बिना नाम के सम्पूर्ण ज्ञान अंधा है। यह रहस्य सभी नहीं जानते और जानने वाला कोई भगवान का भक्त ही होता है—

"चत्र षष्ट नव अष्टदश भी कवितारु कुरान।
संस्कृत प्राकृत को है निज नाम निधांन।
है निज नाम निधांन नाम बिन सब ही अंधा।
कहो कोण लखै ये भेद लखै कोई असली बंदा।

---

१. अ० वा०, पृ० ८१७।

२. "संस्कृत प्राकृत को करिहै अर्थ बणाय।
पै माया रत्ता प्रांणिया ज्यां हिरदै मिदै न काय।" —वही, पृ० ८१७।

३. "साधन करि सिधि पाईये, तो आप सुखी सुख ओर।
बिन साधन बाचक कथा, करै जीविका दोर।" —वही।

४. चार वेद—ऋक्, यजु, साम, अथर्व।

५. षडदर्शन—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त।

६. नौ व्याकरण—इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, शकटायन, पिशालि, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, सरस्वती।

७. अठारह पुराण : विष्णु, वाराह, वामन, पद्म, शिव, अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, भविष्य, भागवत, मार्कण्डेय, मत्स्य, नारद, लिंग, स्कंद, कूर्म, गरुड़।
(संत साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, संत साहित्य—डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल)।

महापतित पावन करण राम भजन निर्बाण।
चत्र षष्ट नव अष्टदश भी कवितारु कुरान।"[१]

ग्रंथ 'समता निवास' के सप्तम प्रकरण में पुराण और कुरान के पठन-वाचन पर स्वामी जी का ध्यान गया है। पंडित, काजी, मीर, मुल्ला और सुल्तान सभी पुराण और कुरान का अध्ययन करते हैं किन्तु सभी भ्रम-सरिता की धारा में पड़कर बहे जा रहे हैं। इन सभी ग्रंथों का पढ़ना व्यर्थ है क्योंकि बिना रामभजन के किसी की भी संसार-सागर से मुक्ति संभव नहीं।[२] स्वामी जी की दृष्टि में तत्त्व-चिन्तन रहित पुराण या कुरान का अध्ययन वैसा ही है जैसे जल का मन्थन। जैसे जलमन्थन से घृत की प्राप्ति सम्भव नहीं वैसे ही कुरान या पुराण के अध्ययन से तत्त्व शोधन नहीं हो सकता—

"जो पढ़्यो पुरान कुरान कहा भयो बीर रे।
जे तत्वज सोध्यो नांहि मथ्यो यू नीर रे।
घिरत चढ़्यो नहि हाथ बाद गइ खेद रे।
परिहां बिन सतगुरु की भेंट लह्यो नहि भेद रे।"[३]

पुराण और कुरान के अध्येताओं को तत्त्व नहीं मिलता, वैसे ही जैसे किसी के हाथ में अन्न न आकर भूसा आवे। स्वामी जी कहते हैं कि कुरान-पुराण पढ़कर व्यक्ति अहंभाव से भर उठता है और अभिमान में रहकर मन को तोष नहीं दे पाता और न संसार-सागर से पार होने का मार्ग ही खोज पाता है—

"पढ़ि पढ़ि पुरान कुरान जो तत्व न पाईया।
सो बिन कण आयां हाथ कि कूकस गाहिया।
पढ फूल्या भूल गुमाय न बन पर मोधिया।
परिहां कर विचार भवत्यार सार नांहि सोधिया।"[४]

---

१. अ० वा० (समता निवास, द्वि० प्र०), पृ० ८७०।

२. पड़ि भर्म नदी की धार बहै संसार रे।
कोइ बिना राम के भजन होय नहि पार रे।
कहा पंडित काजी मीर मुलां सुलतांन रे।
परिहां रामचरण पढ पुरांण बांचता कुरांन रे। —वही, पृ० ९०७।

३. वही, पृ० ९०८।

४. वही, पृ० ९०८।

इस प्रकार स्वामी जी गीता, भागवत, वेद, पुराण, कुरान, साखी, शब्द—सभी के पठन या वाचन को सारहीन समझते हैं।[1] सभी पाठों का मूल राम का नाम है जिन्होंने राम का विचारपूर्वक स्मरण किया, उनका कार्य सिद्ध हुआ—

> "सकल पाठ का मूल है, रामचरण इक राम।
> जिनूं सोधि सुमरण किया, जिनका सरिया काम।"[2]

जात-पांत

स्वामी जी ने चारों वर्ण एवं आश्रमों को भी निरर्थक बतलाया है। राममयता ही सब वर्णों एवं आश्रमों के ऊपर है—

> "च्यार वर्ण च्यारूं आश्रमा, राम बिनां सब खाली।
> रामचरण रुचि आन धर्म सूं, दुनियां दोजिग जाली।"[3]

ग्रंथ 'सुख विलास' के प्रथम प्रकरण में स्वामी जी मानव-जाति में ऊँच-नीच की भावना पर प्रहार करते हैं। स्वामी जी की दृष्टि में पाँच तत्त्व और तीन गुणों से निर्मित सभी मानव चेहरे एक हैं, इनमें भेदभाव व्यर्थ है—

> "केते ऊँच नीच मध्य विविध प्रकारन के,
> अहुं कृत्य मान भूलै न्यारी न्यारी टेक है।
> रामचरण कहै गहै गुरु ज्ञान मान,
> पांच तीन मांही तन नर चहरो एक है।"[4]

चाहे हिन्दू हो या मुसलमान सभी मानव चेहरे एक हैं, जैसे नारायण एक है। दोनों को दो कहना नारायण को दो कहने के समान है—

> "नर नामैं चहरो एक है क्या हिन्दू मुसलमान।
> ऐसैं ही नारायण इक दोय कहै अज्ञान।"[5]

---

१. पढवो गीता भागवत, भी चतुर अठारा षष्ट।
   रामचरण इक राम बिन, ज्यूं माखी कली मिष्ट। —अ० वा०, पृ० ७३।

२. वही।

३. वही, पृ० ७४।

४. वही, पृ० ३२६।

५. वही।

कर्तार की रचना में कहाँ कोई हिन्दू है, कहाँ कोई यवन या चाण्डाल, कहाँ ऊँच-नीच और चार वर्ण हैं? भगवान की सृष्टि में यह भेदभाव नहीं है, यह तो मनुष्य ने अहंकार में बँधकर अपने आप भेद उत्पन्न कर लिया है। किन्तु भगवान ऊँच और नीच का भेद नहीं गिनते, जो अपने को ऊँचा समझता है वह अभिमान वश मानव-जन्म की हानि करता है—

"कहा कोउ हिन्दू अरु जवन चण्डार जू।
ऊंच अरु नीच पुनि वर्ण च्यारी।
करी कर्तार करतूति रचना सबै।
आप अहंकार बंध होय न्यारी।
× × ×
ऊंच अरु नीच का भेद हरि ना गिणै।
वोही जन पिवत है पिवख धारा।
पिव रव निज नाम पर ब्रह्म को मांनिये,
जानिये रचे सब थाट खीना।
राम ही चरण जे ऊँचकुल मानि कै।
हांनिकर जन्म अभिमान कीनां।"[1]

भेख

स्वामी रामचरण ने साधुवेश धारणकर साधुकर्म से विरत होने वालों की अच्छी खबर ली है। उनका कहना है कि वेष धारणकर साधु की संज्ञा से तो विभूषित हो जाता है पर वह राम को स्मरण नहीं करता प्रत्युत व्यभिचारी का जीवन अपनाकर जन्म व्यर्थ नष्ट करता है—

"साधु कुहावै राम का करै न वाकूं याद।
रामचरण व्यभिचार धर, जन्म गुमायो बाद।"[2]

जगत की अधीनता में रहने वाले वेषधारी को स्वामी जी हीनभक्त की संज्ञा देते हैं। भक्त तो वह है जो संसार को भक्ति भावना से पूर्ण कर दे—

"जगत मांहि भक्ति करै, सो भक्तिवांन जन लीन।
हीण भक्ति सो जांणिये, भक्त जगत आधीन।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० ३२६।
२. वही, पृ० ६७।
३. वही, पृ० ६८।

स्वामी जी कण्ठी, तिलक, माला धारण करनेवाले पर भी दृष्टि रखे हुए हैं। यह सारा स्वांग 'हरि मिलन' के नाम पर रचा जाता है पर वस्तुतः भेखधारी भगवान से विमुख हो संसार में रत हो जाता है। वह घर-घर जाकर माया को देखता है—

"माथे तिलक बणाइ कै, कंठा कंठी धार।
रामचरण माया तकै, भटके घर घर बार।
सांग कछ्यो हरि मिलण कूं, हरि सूं फेरी पूठ।
रामचरण माया रता, चल्या जगत संग ऊठ।"[1]

स्वामी जी भेख को स्वांग की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि भेष धारण कर स्वामी बनने वाला रामविहीन भेषधारी की दशा उस विधवा सदृश होती है जो पतिहीन होने पर श्रृंगार करती है—

"सांग पहर स्यामी भया, राम नहीं उर मांहि।
तो बिधवा का श्रृंगार है, पति कहूं दीसै नांहि।"[2]

साधु का स्वांग करने वाले ढोंगियों के वेषविन्यास को देखकर कवि को वेश्या के उस श्रृंगार की स्मृति हो आयी है जिसे वह संसार को रिझाने के लिए करती है—

"जगत रिझावण कारणै, गणिका किया शिंगार।
यूं मन माया तन भेष धरि, मारि खाय संसार।"[3]

भेष धारण करने के बाद यदि हरि भजन द्वारा हृदय पवित्र नहीं किया तो स्वामी जी की दृष्टि में वह पोशाक 'बंदर की पोशाक' है—

"भेष पहर हरिभजन करि, किया नहीं दिल पाक।
तो रामचरण यूं जाणिये, करि बंदर पौसाक।"[4]

जो भेष धारण कर दूसरे का अन्न ग्रहण करते हैं पर राम का स्मरण नहीं करते, वे पाप करते हैं और इस पाप से उन्हें दुःख मिलता है—

"भजन बिना पर अन्न भेष धर खाईया।
परिहां रामचरण ई पाप इसा दुख पाईया।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० ६८।
२. वही।
३. वही, पृ० ७०।
४. वही।
५. वही, पृ० ८४-८५।

कर्तार की रचना में कहाँ कोई हिन्दू है, कहाँ कोई यवन या चाण्डाल, कहाँ ऊँच-नीच और चार वर्ण हैं? भगवान की सृष्टि में यह भेदभाव नहीं है, यह तो मनुष्य ने अहंकार में बँधकर अपने आप भेद उत्पन्न कर लिया है। किन्तु भगवान ऊँच और नीच का भेद नहीं गिनते, जो अपने को ऊँचा समझता है वह अभिमान वश मानव-जन्म की हानि करता है—

"कहा कोउ हिन्दू अरु जवन चण्डार जू।
ऊंच अरु नीच पुनि वर्ण च्यारी।
करी कर्तार करतूति रचना सबै।
आप अहंकार बंध होय न्यारी।
× × ×
ऊंच अरु नीच का भेद हरि ना गिणै।
वोही जन पिवत है पिवख धारा।
पिव रव निज नाम पर ब्रह्म को मांनिये,
जानिये रचे सब थाट खीना।
राम ही चरण जे ऊँचकुल मानि कै।
हांनिकर जन्म अभिमान कीनां।"[1]

भेख

स्वामी रामचरण ने साधुवेश धारणकर साधुकर्म से विरत होने वालों की अच्छी खबर ली है। उनका कहना है कि वेष धारणकर साधु की संज्ञा से तो विभूषित हो जाता है पर वह राम को स्मरण नहीं करता प्रत्युत व्यभिचारी का जीवन अपनाकर जन्म व्यर्थ नष्ट करता है—

"साधु कुहावै राम का करै न वाकूं याद।
रामचरण व्यभिचार धर, जन्म गुमायो बाद।"[2]

जगत की अधीनता में रहने वाले वेषधारी को स्वामी जी हीनभक्त की संज्ञा देते हैं। भक्त तो वह है जो संसार को भक्ति भावना से पूर्ण कर दे—

"जगत मांहि भक्ति करै, सो भक्तिवांन जन लीन।
हीण भक्ति सो जांणिये, भक्त जगत आधीन।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० ३२६।
२. वही, पृ० ६७।
३. वही, पृ० ६८।

स्वामी जी कण्ठी, तिलक, माला धारण करनेवाले पर भी दृष्टि रखे हुए हैं। यह सारा स्वांग 'हरि मिलन' के नाम पर रचा जाता है पर वस्तुतः भेखधारी भगवान से विमुख हो संसार में रत हो जाता है। वह घर-घर जाकर माया को देखता है—

"माथे तिलक बणाइ कै, कंठा कंठी धार।
रामचरण माया तकै, भटके घर घर बार।
सांग कछ्यो हरि मिलण कूं, हरि सूं फेरी पूठ।
रामचरण माया रता, चल्या जगत संग ऊठ।"[1]

स्वामी जी भेख को स्वांग की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि भेष धारण कर स्वामी बनने वाला रामविहीन भेषधारी की दशा उस विधवा सदृश होती है जो पतिहीन होने पर शृंगार करती है—

"सांग पहर स्यामी भया, राम नहीं उर मांहि।
तो बिधवा का शृंगार है, पति कहूं दीसै नांहि।"[2]

साधु का स्वांग करने वाले ढोंगियों के वेषविन्यास को देखकर कवि को वेश्या के उस शृंगार की स्मृति हो आयी है जिसे वह संसार को रिझाने के लिए करती है—

"जगत रिझावण कारणै, गणिका किया शिंगार।
यूं मन माया तन भेष धरि, मारि खाय संसार।"[3]

भेष धारण करने के बाद यदि हरि भजन द्वारा हृदय पवित्र नहीं किया तो स्वामी जी की दृष्टि में वह पोशाक 'बंदर की पोशाक' है—

"भेष पहर हरिभजन करि, किया नहीं दिल पाक।
तो रामचरण यूं जाणिये, करि बंदर पौसाक।"[4]

जो भेष धारण कर दूसरे का अन्न ग्रहण करते हैं पर राम का स्मरण नहीं करते, वे पाप करते हैं और इस पाप से उन्हें दुःख मिलता है—

"भजन बिना पर अन्न भेष धर खाईया।
परिहां रामचरण ई पाप इसा दुख पाईया।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० ६८।
२. वही।
३. वही, पृ० ७०।
४. वही।
५. वही, पृ० ८४-८५।

भक्त वेश में रहने वाले कलियुगी पर स्वामी जी का यह कटाक्ष भी अपनी यथार्थता के कारण ध्यान देने योग्य है—

"कलूकाल भगत की चाल यारो जाकी संगति येह निवास है रे।
पांन फूल सुगंध धुटै बिजिया जहाँ खूब तमाखू की नास है रे।
तहाँ ज्ञान बैराग भजन्न की खण्डना नाचना कूदना हांसि है रे।
जहाँ राडिया भांडिया आय मिलै विषिया रस गाय विलास है रे।"[1]

स्वामी जी कहते हैं कि संसार में साधु की पहचान भी मुश्किल हो गयी है। हाथ में धातु का पात्र, जामा और पगड़ी का पहनावा, कमर में कटारी लटकी हुई, पीठ पर गठरी का भार लिये हुए मानो कोई संसारी है। फिर कैसे उसे पहचाने और प्रणाम करे। उसमें तो रामशरण का कोई दाग भी नहीं दीखता।[2] स्वामी जी वेषधारी का आदर्श प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि वेष का यश दाम-बाम के परित्याग, लोभ-काम से उदासीनता और समता से सुमिरन करने में है। संत को आठों पहर सचेत रहना चाहिए और सहज स्वभाव ज्ञान-वैराग्यमय होकर विचरना चाहिए—

"बाना को यह बिड़द है त्यागै दाम रु बाम।
समता सूं सुमरण करै नहीं लोभ अरु काम।
नहीं लोभ अरु काम जाग अठ रहै सुचेता।
बिचरै सहज सुभाय ज्ञान वैराग्य सहेता।
रामचरण तब पाइये शोभा सुख विश्राम।
बाना को यह बिड़द है त्यागै दाम रु बाम।"[3]

अन्य देवोपासना का निषेध

स्वामी रामचरण ने राम के अतिरिक्त अन्य किसी भी देवता की उपासना का खण्डन किया है। उनकी दृष्टि में अन्य देवता का उपासक व्यभिचारिणी नारी सदृश होता है, उसका मुँह काला होता है—

---

१. —अ० वा०, पृ० १०३।

२. "क्या सूं साध पिछांणिये कैसै कीजै आध।
कर मैं पातर धातु को पहर्‌यां जामो पाघ।
पहर्‌या जामो पाघ कमर सूं बंधी कटारी।
पूठ गांठड़ी भार जांण आयो संसारी।
रामचरण दीसे नहीं रामशरण को दाग।
क्या सूं साध पिछांणिये कैसै कीजै आध।"—वही, पृ० १६८।

३. वही।

"आंन उपासै राम बिन जाका काला मुख।
रामचरण पति परिहर्‌यां स्वप्नै नांही सुख।"[1]

'चन्द्रायणा विचार को अंग' में स्वामी जी 'सबको निरजणहार' एक राम के अतिरिक्त अन्य किसी की भी उपासना का खण्डन करते हैं।[2] क्योंकि—

"रामनाम निज मूल ओर सब डार रे।
शाखापत्र अनेक बहुत विस्तार रे।"[3]

अन्य देवोपासना से 'पीव' नहीं मिलता, जैसे जार-रत नारी को उसका 'कन्त' नहीं मिलता। स्वामी जी अन्य देव की उपासना को नारी के जार-प्रेम सदृश समझते हैं—

"आंन देव की सेव पीव क्यूं पाईये।
ज्यूं तरुणीं रत जार सूं कन्त रिसाईये।"[4]

'अणभौ विलास' के चौदहवें प्रकरण में स्वामी जी इस घोषणा के साथ अन्य किसी भी देवता की उपासना का निषेध करते हैं कि **"रामसनेही राम का नहीं आन का दास"**।[5] उनका दावा है कि राम के आगे कोई देवता क्या कर सकता है। देवता का अधिकार जगत पर हो सकता है, भक्त पर नहीं—

"रावल आगै देवला कहा करैगा कोय।
देवां दावो जगत् पर नहीं भक्त पर होय।"[6]

ग्रंथ 'अमृत उपदेश' के तेरहवें प्रकाश में कवि 'खलक' को आरोपित करता है कि वह अपने 'खालक' को छोड़ कर अन्य को पूजने जाता है, इस प्रकार आँख रहते धोखा खाता है—

"खालक पालक है सदा खलक न चीन्है ताहि।
ता ऊपर अटता फिरै घटता पूजण जाय।

---

१. अ० वा०, पृ० १६।
२. यूं सबको निरजणहार एक है राम रे।
परिहां रामचरण भज ताहि आंन नहिं काम रे।"—वही, प० ४३।
३. वही।
४. वही।
५. वही, पृ० २७४।
६. वही।

घटता पूजण जाय चाहि तन ताप लगावै।
पूरा शीतल करै कामना लाय बुझावै।
रामचरण लोयन छतां देखत खोटा खाय।
खालक पालक है सदा घटता पूजण जाय।"[१]

इसीलिए कवि इस निष्कर्ष पर पहुँच जाता है कि—

"आन की सेव नहीं सुखदायक,
भेद बिना नर खेद उपावै।"[२]

'विश्वास बोध' के सत्रहवें प्रकरण में वे 'आनदेव खण्डन' शीर्षक के अन्तर्गत भैरव और भूत आदि के पूजन की निन्दा करते हैं तथा 'परमानन्द निरंजन' की उपासना में लीन होने की प्रेरणा देते हैं—

"परिहरि परमानन्द निरंजन पूजै भैरूं भूता।
जाकूं सिद्धि मिलै नहि क्यूं ही यूंही जन्म बिगूता।"[३]

अन्य देव की उपासना करने वाले को कवि 'कृतघ्नी' की संज्ञा इस तर्क के साथ देता है कि जिस कर्तार ने गर्भ से जन्म देकर पालन-पोषण किया उसे भूलकर अन्य देवता का ध्यान करता है। ऐसा व्यक्ति जो 'कर्ता की करतूति' को भूल जाता है, विपत्ति का भाजन होता है—

"गर्भ मांहि पैदा कियो पोख्यो रिछ्या कराय।
कृत्तघणी ताहि बीसर्यो आंन मनावै ध्याय।
आंन मनावै ध्याय तास कै भय करि डरि है।
कर्ता की करतूति परिहर्यां विपता भरि हैं।
रामचरण ऐसे नरा खरा खराबी पाय।
गर्भ मांहि पैदा कियो पोख्यो रिछ्या कराय।"[४]

स्वामी जी की दृष्टि में राम विमुख होकर अन्य देव की पूजा करने वाला 'प्रपंची' होता है, वह इस पूजन से पुत्र और धन की आशा करता है और आशा अपूर्ण रहने पर पछताता है। इस उपासना को वह 'हरि हेत' का नाम भी देता है। पर भगवान तो अन्तर्यामी है। वह प्रपंची के अन्तर तक में झांक लेता है—

---

१. अ० वा०, पृ० ४९५।
२. वही।
३. वही, पृ० ७४५।
४. वही।

"परपंची पूजत फिरै हर्ष हूंस उपजाय।
सुत बित की आशा धरै बिन सध्यां रहै पिछताय।
बिन सध्यां रहै पिछताय, कियो हरि हेत बतावै।
हरि अंतर की लखै कहो कैसें भरि पावै।"[1]

कवि ऐसे लोगों को 'हीण बुधी नर' नाम से अभिहित करता है जो अन्य देवों की सेवा करते हैं चाहे वह पत्थर, धातु, काठ, माटी या गोबर के बने हों—

"रामचरण जे हींण बुधी नर, और और कूं सेवत।
पाहण धात काठ रंग माटी, कै गोबर का देवत।"[2]

ऐसे ही स्वामी जी अपने ग्रंथों में विभिन्न स्थलों पर अन्य देवों की उपासना से विरत होकर केवल राम में रत होने को कहते हैं।

ढोंगी तत्त्वों का रहस्योद्घाटन

स्वामी रामचरण ने समाज में परिव्याप्त ऐसे तत्त्वों का भलीभाँति पर्दाफाश किया है जो समाज में ढोंग-ढकोसला या पाखण्डों के सहारे जीते हैं और उन्हीं के आवरण में अपने दुराचरणों को छिपाते हैं। ऐसे तत्त्व मुख्यतया पण्डित और योगी या साधु के रूप में समाज में विचरते हैं और समाज को ठगकर अपने आचरण-भ्रष्ट जीवन का पोषण करते हैं।

पण्डित रूप

स्वामी जी ने पण्डित शब्द ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त किया है। ग्रंथ 'पंडित संवाद' में प्रारम्भ में ही पण्डित के लिए ब्राह्मण शब्द का प्रयोग कर कलियुगी पण्डितों की अच्छी खबर ली है। कवि पण्डितों को व्यर्थ वाद करने के परिणाम से अवगत कराता है—

"ब्राह्मण वाद न कीजिए, तेरी लच्छ विचार।
कर्म छांड़ि कुकर्म करै, तो धका खाय दरबार।"[3]

कलियुग के पण्डितों को उन्होंने स्पष्ट रूप से पाखण्डी कहा है जिनके घर में कुबुद्धि रूपी वेश्या का वास रहता है।[4] पण्डित स्नानादि से शरीर स्वच्छ कर लेता है पर मन में कामना की मैल बैठी रहती है। स्वामी जी कुरेद कर कहते हैं कि शरीर धोने से उत्तम नहीं होता, उत्तम मन तो नामस्मरण करने से होता है—

---

१. अ० वा०, पृ० ७४५।
२. वही, पृ० ७४६।
३. वही०, पृ० ९८४।
४. "कलिजुग के पंडित पाषण्डी, घर में कुबुधि करकसा रण्डी"। —वही।

"न्हाय धोय अपरश ह्वै बैठा।
मन में मैल चाहि का पैठा।
तन धोया नहिं उत्तम होई।
उत्तम नाम लियां मन होई।"[१]

पण्डित कथा-वाचन करते हैं और अनेक अर्थ विचारते हैं पर मन में माया की आशा धारण किये रहते हैं। बहु अर्थ करने में ही पापी को धर्मी कह देते हैं और रामभक्तों से ईर्ष्या रखते हैं। ललाट पर शिव का तिलक लगा लेते हैं पर शिवस्मरण के रहस्य से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। कहने को ब्राह्मण हैं पर ब्राह्मण का लक्षण एक भी नहीं दृष्टिगत होता, धरती को छूते हुए आकाश में उड़ना चाहते हैं—

"कथा करै बहु अर्थ विचारै।
अंतर आश माया की धारै।
पापी कूं धर्मी कह भाखै।
रामजनां सूं द्रोहता राखै।
माथे शिव का तिलक बणावै।
शिव सुमरै सो भेद न पावै।
विप्र कहै पर एक न दर्शै।
चाहै उड़यो धरणि कूं पर्शै।"[२]

पण्डित ज्ञानी को कहते हैं, वह विद्वत्ता का रूप ही होता है, पर यहाँ पण्डित को ज्ञान-ध्यान से कोई नाता नहीं है।[३] पण्डित पिंड का शोधनकर्त्ता होता है, वह महाबली मन को समझाता है।[४] किन्तु कलियुग का पण्डित तो वासना की साक्षात् मूर्ति है। स्वामी जी ने वासना के पुतले पण्डित को कुत्ते सदृश वासना में लिप्त देखा है—

"कामणि संग कूकर ज्यूं लागै।
विष की लहरि सुमति नहि जागै।"[५]

स्वामी जी पण्डित से कहते हैं कि पहले तो मनुष्य योनि में उत्पत्ति, फिर ब्राह्मण की उत्तम देह तुम्हें मिली है, तुम्हें तो राम का भजन करना चाहिए। राम का नाम लेने वाले अधम भी मुक्त हो गये पर पण्डित तू क्यों चूकता है?

---

१. अ० वा०, पृ० ९८४।
२. वही।
३. "ज्ञान ध्यान दोह बैठाहार, शूद्र जुहारै हाथ पसार"—वही०।
४. "पंडित सोही पिण्ड कूं शोधै, महा अपरबल मन कूं बोधै"—वही।
५. वही।

"मिनख जन्म उत्तम द्विज देही।
जा करि भजिए राम सनेही।
राम कहत अधम तिर गया।
तू क्यों पंडित गाफिल भया।"[1]

स्वामी जी की दृष्टि में चारों वेद का वक्ता, सभी शास्त्र एवं व्याकरण का ज्ञाता, संध्या-तर्पण और गायत्री में रत रहने वाला पण्डित यदि भक्ति-विमुख है तो वह पापी है—

"वक्ता च्यारयूं वेद वखांणै।
शास्त्र षट् नव व्याकरण जांणै।
संध्या तर्पण गायत्री जापी।
भक्ति विमुख सो कहिये पापी।"[2]

ज्योतिषाभिमानी उत्तमवंशी पण्डित का रत्न सदृश जीवन नष्ट होते देख कवि को पछतावा होता है, वह कहता है—

"रतन जनम हार्यो अज्ञानी।
उत्तम कुल जोतिष अभिमानी।"[3]

परन्तु है तो वह पण्डित, अतः स्वामी जी उससे प्रश्न करते हैं कि लोभ, मोह और अज्ञान में बँधकर पण्डित तू ने क्या पाया? खैर, जो हुआ सो हुआ पर अब सजग होकर राम का नामस्मरण कर संसार-सागर से मुक्त हो जा—

"लोभ मोह अज्ञान बंधाया।
तैं पंडित होइ कहा कुमाया।
रामचरण अब ढोल न करिये।
रामसुनर भवसागर तिरिये।"[4]

योगी रूप

स्वामी रामचरण ने साधु-संन्यासी या योगियों के वेश में समाज को ठगने वाले तत्त्वों का गहरा अध्ययन किया था। वास्तव में ये सभी विभिन्न सम्प्रदायों या पन्थों का वेष

---

१. अ० वा०, पृ० ९८४।
२. वही, पृ० ९८४-८५।
३. वही, पृ० ८५।
४. वही।

धारण कर लेते थे और धर्मभीरु समाज को मूड़ने में कोई कोर-कसर न उठा रखते थे। ऐसे विभिन्न वेशी साधुओं एवं योगियों से स्वामी जी ने समाज को सजग किया था। 'विश्राम-बोध' के आठवें एवं 'समता निवास' के आठवें प्रकरण तथा 'लच्छ अलच्छ जोग', 'बेजुक्ति तिरस्कार' और 'शब्द' आदि ग्रन्थों में इन तत्त्वों का पर्दाफाश खूब हुआ है।

नागा साधु

नागाओं के समूह को स्वामी जी ने सेना के रूप में देखा है। 'विश्राम बोध' के आठवें विश्राम में 'नागी सेना' शीर्षक देकर उन्होंने नागाओं के सैनिक रूप का वर्णन किया है—

> **"तन पर खाख चढ़ाय कै, बरछी लीन्हीं हाथ।**
> **तुपक तायरी बांधि कै, चालै जोड़ जमात।"[1]**

ग्रंथ 'लच्छ अलच्छ जोग' में सभी साधुओं से बड़े विनम्र शब्दों में स्वामी जी नागाओं को साधु-समाज का अवांछित तत्त्व बतलाते हैं। कलियुग में नागा के रूप में दानव प्रकट हुए हैं। जहाँ यज्ञादि महोत्सव होते हैं, वहाँ ये दानव सदृश विध्वंस करने पहुँच जाते हैं—

> **"कलि में दानव प्रगट्या, नागा बड़ी बलाय।**
> **जिन महोछा देखिकै, दोड़ि विध्वंसै जाय।"[2]**

नागाओं की सेना काल की सेना के सदृश किसी भी नगरी में पहुँचकर नगर निवासियों को आतंकित कर देती है। स्वामी जी ने इस सन्दर्भ में विभिन्न साधु-सम्प्रदायों के नागा साधु संगठनों की चर्चा की है, जैसे—निर्वाणी, संतोषी, निर्मोही, खाकी, गूदड़िया आदि। इन सभी वैरागी अखाड़ों के नागा कुश्ती लड़ने, डण्ड-व्यायामादि में रत रहते हैं[3]—

> **"नागा की फोज बखाणूं।**
> **मैं भांति भांति परमांणूं।**
> **कटक काल को आवै।**
> **नगरी दुनिया धड़कावै।**
> **निरालंब निर्बाणी।**
> **ये संतोषी अगिवांणी।**
> **साखी धूल्या आया।**
> **निर्मोही झुण्ड बणाया।"[4]**

---

१. अ० वा०, पृ० ८३१।
२. वही, पृ० ९८६।
३. कुश्ती का पूंचा मोड़ै. . .ये पेलै डंड वियामा। —वही, पृ० ९८६।
४. वही।

स्वामी जी इस निष्कर्ष पर हैं कि नागा संगठन साधु-समाज में असामाजिक तत्त्व हैं। इनसे राजा भी डरता है, ये प्रत्यक्ष काल स्वरूप हैं—

> "रामचरण नागा नगन प्रत्यग काल स्वरूप।
> जगत बिचारो क्या करै, धड़को मानै भूप।"[1]

योगी

अपने लघु ग्रन्थ 'शब्द' में स्वामी रामचरण ने 'चौपाई' और 'निशाणी' छन्द शीर्षकों में कलियुग के योगियों का भण्डाफोड़ किया है। यहाँ योगी से स्वामी जी का तात्पर्य नाथ-योगियों से ही है जो कनफटे, मुंडित सिर एवं भगवाधारी होते हैं। **"कानफड़ाया सिर सुरड़ाया भगवा वेव बगाइन्दा।"**[2] ये आदिपुरुष का रहस्य तो जानते नहीं। हाँ, लबेद के सहारे भीख की उगाही अवश्य करते फिरते हैं, कहने को नाथ कहे जाते हैं पर घर-घर गीत गा-गाकर भड़ैती करते घूमते हैं—

> "आदि पुरुष का लखै न भेद।
> भीख उघावै लियां लबेद।
> × × ×
> गावै गीत भंडाई करै।
> नाथ कहावै घर घर फिरै।"[3]

स्वामी जी की दृष्टि में ये नाथ योगी पंच विकारों[4] से मुक्त नहीं, और नहीं तो ऊपर से योगिनी का साथ भी हो जाता है। स्वामी जी इस निष्कर्ष पर हैं कि कलियुग का योगी करणी भ्रष्ट और पंचरस भोगी है—

> "पाँचूं छूटी सकै साथ।
> बहुरि निसरड़ी जोगणि साथ।
> × × ×
> करणी भृष्ट पंचरस भोगी।
> रामचरण ये कलिजुग का जोगी।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० ९८७।
२. वही, पृ० ९९१।
३. वही।
४. काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद—संत साहित्य, पृ० २०५।
५. अ० वा०, पृ० ९९१।

अन्य सम्प्रदायों के साधु

स्वामी जी को कलियुग में विरक्त बिरला ही दीखता है, सभी कनक-कामिणी में लीन हैं। 'बेजुक्ति तिरस्कार' में उन्होंने सभी मतों के साधुओं को वासना-रत देखा है, चाहे वह भद्रवेशी हों या जटाधारी, चाहें खाकी हों या कनफटा, चाहे जैनी हों या नमाजी—सभी नारी योनि के भोग में रत हैं—

> "रामचरण कलूकाल में, बिरकत बिरला कोय।
> कनक कामणी रत घणा, बैठा जत मत खोय।
> × × ×
> कान फड़ाय र जोगी भया।
> नारि कनफड़ी सूं मन दिया।
> कर्णफूल मुद्रा इक संग।
> छैल छबीला नाना रंग।
> बार बार वाकूं धिरकार।
> शक्ति पूज भुगतै भगद्वार।"[1]

कवि ने इसी शैली में विभिन्न वेशधारी एवं मतावलम्बी साधुओं को नारी-संयोग में रत होने के लिए दुत्कारा है। अति यथार्थ के धरातल पर उतर कर उन्होंने समाज के समक्ष समाज के इन पाखण्डरूपों का सही रूप प्रस्तुत कर दिया है।

मादक वस्तुओं का सेवन-निषेध

स्वामी जी ने जीवन में सदाचार एवं सात्त्विकता को विशेष महत्त्व दिया है। उन्होंने अहिंसा पर इतना बल दिया कि पानी छानकर पीने का आदेश अपने जिज्ञासुओं को दिया। मांसाहार की तो बड़ी भर्त्सना की। इसके साथ ही उन्होंने मादक वस्तुओं—तम्बाकू, गाँजा आदि के सेवन का भी निषेध किया। अपने महाग्रन्थ 'अणभै वाणी' में उन्होंने इस आशय की चर्चा की है। 'साखी भेख को अंग' की निम्नलिखित पंक्तियाँ उपर्युक्त कथन को पुष्ट करती हैं—

> "कै आफू कै भांग तमाखू, घोटा कुण्डी लार।
> भक्त हुआ पण राम न जाणै, अमलां का अधिकार।
> भक्त हुआ छा भजन करण कूं, भजन रह गया दूर।
> भांग तमाखू लगाकर, कर्म किया भरपूर।"[2]

---

१. अ० वा०, पृ० ९८९।
२. वही, पृ० ६८।

'कुण्डल्या भेख को अंग' में स्वामी जी भाँग-तमाखू को भेष को भाँड़ने वाला कहते हैं—

"भांग तमाखू छूंतरा कियो भेष कं भांड़।"[1]

इसी प्रकार 'भेख को अंग' के सवैया और कवित शीर्षकों में भी भाँग, तम्बाकू, अफीम आदि के सेवन का निषेध स्वामी जी ने किया है।

लीला और स्वांग की भर्त्सना

स्वामी जी महापुरुषों की लीला करने और स्वांग रचने के भी कट्टर विरोधी थे। उनकी दृष्टि में ये कृत्य उनकी महत्ता तो कम करते ही हैं, अपमान भी करते हैं। 'साखी मर्म विध्वंस को अंग' के आरम्भ में ही कवि राधा और कृष्ण का स्वांग रचने वालों की तीखी आलोचना करता है। गोवर्धनधारी कृष्ण का रूप बनाकर चौराहे पर नाचने वाले भिखमंगे से चिढ़कर स्वामी जी कहते हैं कि नख पर गोवर्धन धारण करने वाला, ब्रजजनों का त्राता चौराहे पर क्यों नाचता है और क्यों भीख माँगकर खाता है?—

"गोबर्द्धन नख पर धर्‌यो, ब्रज की करी सहाय।
सो क्यूं नाचै चौहटै, भीख मांग क्यूं खाय।"[2]

सुर, नर, मुनि जिसका सदैव भजन करते हैं, जो असुरों के लिए अजेय है, उस कृष्ण की नकल उतार कर भाँड़ उनकी फजीहत करता है। स्वामी जी की दृष्टि में यह अनर्थ है पर स्वार्थवश भाँड़ इस अनर्थ का बोझ ढोता है और जो इस भाँड़ को पैसे देते हैं वे गँवार भी पाप का भार वहन करते हैं—

"जाकूं सुरनर मुनि रटै, असुरां सिरै अजीत।
ताकूं भांड बिगोवा नकलकर, भंडवा करै फजीत।
भंडवा स्वारथ कारणै, खैंचै अनर्थ भार।
रामचरण जो दांम दे, खैंचै पाप गिवार।"[3]

सत्य तो यह है कि ये नाचने वाले डोम हैं पर कहते हैं कि राधा और कान्ह हैं और पशु सदृश अन्धविश्वासी जन उन्हें ही देख कर दान देते हैं। पुरुष कृष्ण की रानी राधा का स्वांग रचकर, नारी का चेहरा लगाकर घर-घर नाचता फिरता है और इस 'प्रकट कपट' को संसार भक्ति की संज्ञा देता है—

---

१. अ० वा०, पृ० १८५।
२. वही, पृ० ६५।
३. वही।

"स्वारथ नाचै डूमड़ा कहै राधिका कान्ह।
रामचरण आंधा पशू, ताहि देख दे दान।
राधा राणी कृष्ण की, सब ही में अधिकार।
ताको नकल बणाय कै, नाचै घर घर बार।
ऊपर चहरा नारि का, मांहि पुरुष आकार।
रामचरण प्रग्गट कपट, भक्ति कहै संसार।"[1]

स्वामी जी ऐसे राधा-कृष्ण का नटन करने वालों तथा उन्हें दान देने वालों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि राधा को नाचते और कृष्ण को कूदते देखा गया है—

"राधा देखै नाचती, कूदत देखै कान्ह।
रामचरण ताहि दान दे, आंधा पशू अज्ञान।"[2]

नारी का स्वांग बनाकर नाचने वाला मूर्खों का धन-माल अपहृत करता है पर बुद्धिमान लोग जहाँ ऐसी आचरणहीनता देखते हैं, कदम नहीं रखते। इसी को संसार धर्म कहता है पर स्वामी जी की दृष्टि में यह 'प्रकट पाप' दीखता है। ऐसे पाप का निषेध स्वामी जी निधड़क करते हैं—

"नारी सांग नरतन करै, हरै मुग्ध धनमाल।
बुध जन तहां न पग धरै, दर्शै चाल कुचाल।
× × ×
धर्म कहै संसार सब, प्रग्गट दीसै पाप।
पुत्र नचावै दान दे, नाचै भाई बाप।"[3]

स्वामी जी ऐसे अधम मानव को अघबेसर की संज्ञा देते हैं जो स्त्री का स्वांग बना कर लोगों में काम-वासना का जागरण करते हैं। इनके पैर पीटने, ताली बजाने, नकल करने और गाने से आकृष्ट जनों की मनसा विचलित होती है। कवि यह देख कर अवाक् है कि संसार में ऐसे अनेक जन हैं जिन्हें ठग कर भाँड़ अपना जीवन यापन करते हैं—

"अधम गति अघबेसरा, मूर्ख डहकावै रे।
कामिणि सांग बणाय कै, मन काम जगावै रे।
× × ×
पग पीटै नकलां करै, ताली दे गावै रे।
कोतिक देखै कोतिगी, मनसा बिचलावै रे।

---

१. अ० वा०, पृ० ६५।
२. वही।
३. वही।

"रामचरण संसार की, कछु कहत न आवै रे।
ज्ञान हीण हिय अंध को, भंडवा छल खावै रे।"[1]

झीणूं सो मारग हाथ न आवै : एक समीक्षा

'सवैया साच को अंग' में स्वामी रामचरण ने परमात्मा तक पहुँचने के पंथ को 'झीणा मारग' (सूक्ष्म पंथ) कहा है। यह 'झीणा मारग' सांसारिक माया जाल, ढोंग-पाखण्ड से नहीं मिलता। इसके लिए गुरु प्रदत्त ज्ञान अपेक्षित है।[2] पर मनुष्य भौतिकता के बंधन में जकड़ा हुआ है। इस भौतिकता के भ्रम के कारण ही कोई काशी में जाकर वेदाध्ययन करता है, कोई करवत लेता है, कोई हिमालय में जाकर हड्डियाँ गलाता है तो कोई केदार तीर्थ का पत्थर लाता है।[3] स्वामी जी की दृष्टि में आबू, गिरनार पर्वतों की चढ़ान गोमती संगम स्नान; दण्डकारण्य का वास, गोदावरी की सिद्धि, केशलुंचन, मुख पर कपड़ा लगाना, कान फड़ाना; लिंग का चमड़ा कटवाना, द्वारिका, मक्का भ्रमण, पुराण-कुरान का अध्ययन तथा इसी प्रकार के अन्य विविध कर्मकाण्डों से भगवान नहीं रीझता—

"कोइक आभू चढ़ै, गिरनारहि कोइक गोमती संगम न्हावै।
कोइक वास करै दण्डकारण्य कोइक सिद्धि गोदावरी पावै॥
... ...
लूंच कियां मुख पाट दियां हरि नांहि मिलै अंग छार लगायां।
कान फट्यां लिंगचाम कट्यां यूं राम रीझै नहि मूंड मुंडायां॥
... ...
हिन्दू को देव दवारिका राजत वेद पुराण में पण्डित गावै।
कुरान कतेब तुरक्क पढ़ै सिंध बैठ जिहाज मकै चलि जावै॥"[4]

स्वामी जी की दृष्टि में कर्मकाण्डों से भ्रम उत्पन्न होता है। संसार के प्रपंचों में वृद्धि के कारण मनुष्य को मुक्ति का मार्ग नहीं मिल पाता। स्वामी जी ने इन सभी कारणों की धज्जी उड़ाई है और कर्मकाण्डों के परित्याग का उपदेश दिया है। इसके साथ सामाजिक रूढ़ियों, पाखण्डों और उनके पोषक विभिन्न वेशधारी ढोंगियों की भी अच्छी खबर ली है। उन्होंने सबसे बिरत हो रामस्मरण का पंथ सुझाया है।

---

१. अ० वा० (सुख विलास सप्तम प्रकरण) पृ० ३७६।
२. "रामचरण बिना गुरु ज्ञानहि झीणूं सो मारग हाथ न आवे।"
—वही, पृ० ९६।
३. "कोइक काशी मैं वेद पढ़ै पुनि कोइ करवत शीश चढ़ावै।
कोइक हाड़ हिवाला मैं गालत कोइ केदार को कांकण लावै।"—वही
४. वही।

रचनात्मक

स्वामी रामचरण ने जहाँ लोक-जीवन से अमंगलमयता को ध्वस्त करने का उद्घोष किया था वहीं उन्होंने जीवन को मंगलमय करने के लिए रचनात्मक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया था। इनकी कल्पना का सज्जीवन एक आदर्श जीवन था जिसके लिए उन्होंने जन-मानस को अपनी प्रेरणाओं से भर दिया था। एतदर्थ उन्होंने नामोपासना, सत्संग, अहिंसा, दया, श्रद्धा, विश्वास आदि विभिन्न आदर्शों को जीवन का पाथेय बनाने का संदेश दिया था।

नामोपासना

निर्गुण गायक संतों में से अधिकांश ने राम-नामस्मरण का उपदेश दिया था। स्वामी रामचरण ने नामोपासना की महिमा का गान करते हुए सभी को रामभजन की प्रेरणा दी। भगवान के नाम स्मरण से मनुष्य निष्पाप हो जाता है। जैसे सूर्य का प्रकाश 'शीतकोट'[1] को समाप्त कर देता है वैसे ही नामस्मरण से पाप कट जाते हैं। नाम पाप रूपी शीतकोट के लिए सूर्य है; पाप रूपी धुआँ के लिए मारुत सदृश है, यदि पाप समूह भेड़ों का यूथ है तो नाम सिंह है, पाप व्याल के लिए नाम मयूर है। पाप रूपी जंगल के झाड़ के लिए नाम पावक है—

> "पाप शीत के कोट नाम आदित्य प्रकाशैं।
> पाप धोम को धाम नाम मारूत बिनाशैं।
> पाप भेड़ के यूथ नाम केहरि मल गज्जैं।
> पाप बावनैं भजुंग नाम मोरा कोहो भज्जैं।
> अघ आरण उलझाड़ नाम पावक परजालैं।
> अघ पाला के पुंज नाम सूरज तप गालैं।
> रामचरण सोरो सुरंग गढ डडि बीखर जाय।
> इसो अपरबल राम है भजतां मुक्ता थाय।"[2]

नामोपासना से मन शुद्ध होता है। जैसे साबुन से मैल कटती है वैसे नामस्मरण से मन धुल जाता है, नाम वह अग्नि है जिससे कर्मवन जल कर नष्ट हो जाता है। एतदर्थ स्वामी जी वेद और साधुओं की साक्षी की बात भी कहते हैं—

---

१. शीतकोट—मरुभूमि में ग्रीष्मकाल के मरीची नीर सदृश शीतकाल में सूर्योदय से कुछ पहले पश्चिम दिशा में 'कोट कंगूरे' बुर्ज आदि से युक्त नगर-सा दिखाई पड़ता है पर सूर्य का प्रकाश होते ही भ्रमित करने वाला नगर अदृश्य हो जाता है। यही शीतकोट है—लेखक।

२. अ० वा० (नाम समर्थाई को अंग), पृ० १०६।

"मलचर काट मैल नाम यूं मन को धोवै।
बहु बन जालै अनल नाम ऐसें क्रम खोवै।
... ...
वेद साध सब ठीक है सुमरन सूं सुख होय।
रामचरण सतगुरु शब्द राखो हिरदै पोय।"[1]

'चन्द्रायणा नाम समर्थाई को अंग' में स्वामी जी रामनाम के प्रताप का स्मरण कराते हैं और कहते हैं कि यह एकमेव 'तारक' है। इसके प्रताप से जीव तो क्या पत्थर भी पार हो जाते हैं—

"राम नाम परताप सुरति कर जोय रे।
या बिन तारक नांहि दूसरो कोय रे।
जड़ तिरै जल मांहि लिख्यो रक्कार रे।
परिहां पांहण उतरे पार जीव क्या बार रे।"[2]

'समता निवास' के द्वितीय प्रकरण में कवि रामनाम को अनन्य 'मंगलपद' कहता है जिसके स्मरण में कुछ लगता नहीं और मन में भी कोई अन्य भाव नहीं उपजता प्रत्युत तीनों ताप से मुक्ति मिल जाती है। नामस्मरण से मन में पूर्ण शान्ति आती है और अशांति दूर होती है। यह रामनाम अनेक जन्मों के संचित पापों का अपहर्ता बड़ा चोर है—

"रामनाम सम दूसरो कोइ मंगल पद नहि ओर।
सो लेतां कछु लागत नहीं जीं आवत नांही ओर।
जीं आवत नाहीं ओर तापत्रय रहण न पावै।
सुमरत शाता पूर अशाता निकट न आवै।
संचित पाप केइ जन्म के जे हरणै बड़ चोर।
रामनाम सम दूसरो कोइ मंगल पद नहि ओर।"[3]

'राम रसायण बोध' के द्वितीय प्रकरण में कवि राम नाम को 'परमपद' की संज्ञा देता है जिसकी स्मृति से समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती है, संतोष की उत्पत्ति होती है और मन की वासनाएँ नष्ट होती हैं। 'राम जी' सूक्ष्म-स्थूल सभी में व्याप्त हैं जिनका सुमिरन 'अभंग सुख' का दाता है—

---

१. वही, पृ० १०५।
२. अ० वा०, पृ० ७६।
३. वही, पृ० ८७०।

"परमपद् इक राम कामना सबही पूरन।
उपजावै संतोष मनोरथ करिहै चूरन।
. . .
रामचरण इक राम जी सुखिमथूल सबैंग।
जाको जे सुमरण करै जाकै सुक्ख अभंग।"[१]

'विश्राम बोध' के तृतीय विश्राम में स्वामी जी राम नाम को जीव की जीविका या आधार कहते हैं। जैसे प्राण की जीविका धान है वैसे ही जीव की जीविका राम है—

"प्रांन की जीविका जांनि यह धांन है जीव की जीविका राम कहिये।
धांन सूं प्रांन अरु राम सूं जीव है ताही तैं राम का नाम लहिये।"[२]

'सुख विलास' के तृतीय प्रकरण में स्वामी जी भजन विकास को हृदय में उत्पन्न होने वाले 'आनन्द प्रकाश' का कारण मानते हैं। राम का नाम स्मरण करने से दुःख-द्वन्द्व, भय-भ्रमादि का नाश होता है—

"भजन उदय जहाँ जानिये, उर आनंद प्रकाश।
रामचरण दुख द्वन्द गया, भया भर्म भय नाश।"[३]

इसी प्रकार 'अणभो विलास' के पंचम प्रकरण में स्वामी जी नामस्मरण को भक्ति का अंग स्वीकारते हुए उसे सब अंगों में श्रेष्ठ घोषित करते हैं। राजा हो या रंक जो भी राम का नामस्मरण करता है उसे सद्गति मिलती है—

"सुमरण भक्ती अंग कही जे,
सब मांही शिर ताजा।
सुमरै राम सोही गति पावै,
कहा रंक कहा राजा।"[४]

'सवैया नाम महिमा को अंग' में स्वामी जी ने राम का नामस्मरण कर मुक्ति पाने वालों की चर्चा के साथ नामप्रताप को उजागर किया है। ग्राह से पीड़ित गज, तोता को राम-राम पढ़ाने वाली वारवधू, अघी अजामिल, ध्रुव, प्रह्लाद, कबीर आदि अनेक नाम से

---

१. अ० वा०, पृ० ८७०।
२. वही, पृ० ६६०।
३. वही, पृ० ३४९।
४. वही, पृ० २३३।

अनुरागियों के उद्धार का संदर्भ प्रस्तुत कर स्वामी जी ने नामोपासना की महिमा गाई है—

"गज ग्राह गह्यो तब राम कह्यो नहिं ढील करी तिहिकाल उबारे।
रामहि राम पढ़ावति कीर कूं बारमुखी कैसे कर्म निवारे।
रामनारायण नाम लियो सुत हेत अजामिल अघः प्रजारे।
रामचरण्ण दयासिन्धु रामजी थोरे हि में अैसे पांवर त्यारे।

. . . .

काशी में एक कबीर भयो जुलहवा घर आय प्रवेस कियो है।
छांड़ि दियो सबही कुल को धर्म नाम निरंजन सोधि लियो है।
शाह सिकंदर ताप दई तब पूरण ब्रह्म में प्राण दियो है।
रामचरण्ण ये संत न सूझत ता नर को धिरकार जियो है।"[1]

'साखी सुमरण को अंग' में कवि ईश्वर के दीदार का साधन नामस्मरण को मानता है। बिना भजन के भवपाश से मुक्ति संभव नहीं है—

"भजन बिना छूटै नहीं रामचरण भव पासि।
जे चाहवै दीदार कूं तो रटिये सास उसास।"[2]

स्वामी जी राम के नामस्मरण पर बार-बार बल देते हैं, क्योंकि वह सुख का सागर एवं दुख भंजक हैं। भाव से रामभजन करने से प्रेम का विकास होता है। अतः कवि संसार की इस रीति को छोड़ने और राम भजन को न छोड़ने का सत्परामर्श सभी को देता है। इसी सन्दर्भ में वह इसे 'आनन्दपद' कह देता है—

"सुख का सागर राम है दुख का भंजनहार।
रामचरण तजिये नहीं भजिये बारंबार।

. . .

रामभजन कर भावसूं दिनदिन बधती प्रीति।
रामचरण संसार की तजि देवै रसरीति।

. . .

रामभजन आनंदपद दुख बीर्घ संसार।
रामचरण दुख परिहरो सुखपद करो विचार।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० ८६।
२. वही, पृ० ६।
३. अ० वा०, पृ० ८।

अंत में स्वामी जी यह कहते हैं कि गुण, इन्द्रियों और मन पर विजय करके राम का नामस्मरण करना चाहिए क्योंकि यही 'मोखपंथ' है, अन्य सब नहीं—

"सुमरै रमता राम कूं गुण इन्द्री मन जीत।
रामचरण यह मोख पंथ ओर सकल विप्रीत।"[१]

यह राम का नाम 'रसायन' है, इसका पान करने वाला व्यक्ति जीवन्मुक्त हो जाता है, उसे पुनः माता जन्म नहीं देती। 'रामरसायण बोध' की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"जननी कबहूं नां जणै जो पीवै रामरसाण।
राम रसायण पीवतां मिटै जीव की बांण।"[२]

इसीलिए तो संत अब अपने 'रमइया' के दीदार के लिए बेचैन हैं, वह निशिदिन रामनाम की टेर लगाये हुए है। 'गावा का पद' का यह पद इसी भावना से ओत-प्रोत है—

"रमइया मेरी पलक न लागै हो।
दरश तुम्हारै कारणै निशिबासर जागै हो।
दशूं दिशा आतर करूं तेरो पंथ निहारूं हो।
—राम नाम की टेर वे, दिन रैण पुकारूं हो।"[३]

कवि ने रामनाम की उपासना का महत्त्व समझा है और सभी को राम के नामस्मरण की प्रेरणा दी है क्योंकि यह मंगल पद, परमपद, आनन्दप्रकाश, भक्ति का साधन आनंद पद, सुखपद, मोखपंथ आदि सभी कुछ है। यह राम का नामस्मरण सचमुच भवपाश से मुक्त करने वाला है। इसीलिए स्वामी जी सभी को नामोपासना का संदेश देते हैं।

सत्संग

स्वामी रामचरण ने सत्संग को लोकजीवन के लिए अत्यावश्यक समझा है। मन की निर्मलता, सदाचरण एवं अन्य सद्विचारों की रक्षा एवं विकास सत्संग से ही सम्भव है। समाज में कुत्सित विचारों एवं व्यवहारों वाले लोगों की संख्या कम नहीं है। उनके प्रभाव से समाज को अछूता रखने का गम्भीर प्रयास संत जीवन का प्रमुख उद्देश्य होता है। स्वामी रामचरण ऐसे सन्तों में प्रमुख स्थान रखते हैं जिन्होंने जीवन के नैतिक मूल्यों, उच्चादर्शों एवं मोक्षादि के लिए सत्संग को बड़ा ही आवश्यक बतलाया है। उन्होंने नामस्मरण के साथ

---

१. वही, पृ० ९।
२. वही, पृ० ९२९।
३. वही, पृ० १००९।

सत्संग को भी नितान्त आवश्यक अंग समझा है। 'अणभो विलास' के बीसवें प्रकरण में सत्संग को कवि ने 'रामबाग' की संज्ञा दी है जिसमें उत्तम-उत्तम गुणों वाले वृक्ष हैं—

"उत्तम उत्तम तरु सरु है सकल गुण,
राम ही चरण रामबाग सत्संग है।"[1]

सामान्य रूप से अच्छे जनों के सम्पर्क में रहकर उनसे सद्चर्चा करना सत्संग कहलाता है। स्वामी जी ने साधु संगति को सत्संग का पर्याय सदृश मान लिया है और हरि चर्चा को सत्संग के रूप में स्वीकार किया है। कहा भी है कि सत्संग वह सरोवर है जिसमें राम जल होता है और जिसका घाट कोई साधु ही बाँधता है—

"सतसंग सरवर रामजल, कोई साधू बांधै घाट।
करम कचोई आतमा, बहती रोकै बाट।"[2]

कवि सत्संग की चर्चा के साथ कुसंग से सचेत भी करता चलता है। जहाँ वह सत्संग को मोक्ष का कारण कहता है वहीं कुसंग को बंधन समझता है। नरदेह के साथ इन दोनों लक्ष्यों का लगाव प्रमाणित है—

"सत संग कारण मोख को, कुसंग बंधन जांन।
रामचरण नरदेह मैं, ये दोय लछ प्रमांन।"[3]

कुसंग का परिणाम दुःख होता है। स्वामी जी का विचार है कि सत्संगति मिलते ही कुसंगति से विरक्त हो जाना चाहिए, यदि तनिक भी लापरवाही हुई तो खेल के उल्टा हो जाने की सम्भावना हो जाती है। देखिए न, जीव ब्रह्म का अंश है पर देही का संग मिल जाने के कारण दुःख पाता है—

"जाकूं सतसंगति मिलै, सो तजै कुसंगति मेल।
रामचरण गाफिल रह्यां, होय जाय उलटा खेल।

• • •

रामचरण कुसंग का देखो फल निरताय।
जीव ब्रह्म का अंस है, देही संग दुख पाय।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ३१०।
२. वही (साखी साध संगति को अंग), पृ० २२
३. अ० वा० (साखी साध संगति को अंग), पृ० २२।
४. वही (साखी कुसंगति को अंग), पृ० २३।

सत्संग दुःख मुक्ति का सरल साधन है। सत्संग ऐसा पद है जिससे जन्म-मरण के दुःख से छुटकारा मिल जाता है। स्वामी जी का मत है कि ज्ञान की न्यूनता में राम का भजन करना चाहिए, इससे हृदय में काम-क्रोध का विकास नहीं होता और दुःख तो सभी मिट जाते हैं—

"सत्संग सुगम उपाय ध्याय के कीजिए।
उभै दुःख मिट जाय इसो पद लीजिए।
ज्ञान गरीबी पाय भजै नित राम रे।
परिहां रामचरण उर क्रोध न व्यापै काम रे।

• • •

सर्व दुःख मिट जाय कियां सत्संग रे।
तृष्णा तर्क विकार न व्यापै अंग रे।"[1]

स्वामी जी सत्संग को बुद्धि की निर्मलता का कारण घोषित करते हैं। सत्संगति से लोभ, मोह और क्रोधादि मिट जाते हैं तथा उसके स्थान पर शील, संतोष और दया जैसे सात्त्विक गुणों की उत्पत्ति होती है। सत्संग धैर्य के रस का पान कराता है और काम-कुबुद्धि को समाप्त करता है। कवि कहता है कि मानव जीवन में सत्संग बड़े भाग्य से मिलता है, इसलिए साधु संगति अवश्य ही करनी चाहिए—

"करि मन संगति साधुन की जहाँ बुद्धि निर्म्मल रामहिं गावै।
लोभ अरु मोह विरोध मिटै सब शील संतोष दया उपजावै।
धीरज को रस पाय छकाय दे काम कुबुद्धि की लहरि न आवै।
रामचरण नरातन पाय कै भाग बड़ो सत्संगति पावै।"[2]

कवि की दृष्टि में सार-असार का अन्तर भी सत्संग में ही स्पष्ट हो पाता है।

"सार-असार का भेद यारो सत्संग बिना नहि पाइयेजी।"[3]

'कवित साध संगति को अंग' में स्वामी जी स्पष्ट कहते हैं कि सत्संग के समान दूसरा कुछ भी नहीं है क्योंकि सत्संग में ही ब्रह्म निरूपण होता है और निज नाम की अनन्य भक्ति भी मिलती है। सत्संग से भय-भ्रमादि नष्ट होते हैं और आत्मा विकार रहित निर्मल हो जाती है। इसलिए सत्संग को सर्वश्रेष्ठ समझकर करना चाहिए।

"सब साधन कै शिरै समझ सत्संगति कीजे।
तन मन धन अय थोक अर्प सतगुरु को दीजे।

---

१. अ० वा० (चन्द्रायणा साधु संगति को अंग), पृ० ७८-७९।
२. वही (सवैया साध संगति को अंग), पृ० ८८।
३. वही (झूलणां साधु संगति को अंग), पृ० १०२।

अनन्य भक्ति निज नाम साध संगति में पावै।
मिलै न दूजी ठांय मर्म त्रय लोकी आवै।
रामचरण सत्संग सम और न दीसै कोय।
जहां निरूपण ब्रह्म को सदा सर्वदा होय।"[1]

'सुख विलास' के छठें प्रकरण में स्वामी रामचरण ने 'सत्संग महिमा' शीर्षक के अन्तर्गत सत्संग को 'ज्ञान का आगर' कहा है। जैसे सांभर नमक का भण्डार है वैसे ही सत्सग ज्ञान का।[2] इसीलिए स्वामी जी शुद्ध बुद्धि से साधु संगति करने का उपदेश देते हैं और सत्संग से प्राप्त ज्ञान को हृदय में धारण करने को कहते हैं।[3]

इसी प्रकरण में स्वामी जी ने संगति के दोनों प्रकारों की भी चर्चा की है। उनके अनुसार दो प्रकार की संगति होती है—१. तारक, २. नाशक अर्थात् सत्संग और कुसंग। इनमें से जो पसंद आये उसको धारण कर लेने की बात भी वे कहते हैं। किन्तु स्मरणीय है कि सत्संग तुम्बिका है और कुसंग पाषाण। तुम्बी के सहारे मनुष्य पार जा सकता है पर पत्थर तो किनारे ही डूब जायेगा।

"संगति दोय प्रकार की करिये परख विचार।
इक तारण इक बोवणी मन मांनै सो धार।
मन मांनै सो धार तुम्बिका सत्संग जांनो।
पांहण जिसो कुसंग उभय अर्था यूं मांणो।
रामचरण अपणी उक्ति ऐसी जुक्ति निहार।
संगति दोय प्रकार की करिये परख विचार।"[4]

दोनों को स्पष्ट करने के लिए कवि ने एक प्रतीक का सहारा लिया है। लोहा का स्वभाव जल में डूब जाने का है पर लकड़ी का स्वभाव तैरने का है। लोहे का काँटा नौका में जड़ा रहता है, वह भी उसी के साथ तैर जाता है। इसी प्रकार लोहे के घन में लकड़ी का बेंट

---

१. अ० वा०, पृ० ११२।
२. "सांभर आगर लूंण को यूं सत्संग आगर ज्ञान।"—वही, पृ० ३६८।
३. "संगति कीजै साध की दिल की दुर्मति खोय।
जो सत्संग मैं ज्ञान होय सो लीजै हिरदै पोय।
सो लीजै हिरदै पोय विसरिये कबहूँ नांही।
जोलूँ देह हयात बर्तिये गुरुगम मांही।
रामचरण नर देह को तबही कारज होय।
संगति कीजै साध की दिल की दुर्मति खोय।"—वही।
४. वही, पृ० ३६८-६९।

लगा रहता है, जो लोहे के साथ जल में डूब जाता है। जगत के जीव लोहे के सदृश हैं और संत-जन दास (लकड़ी) के समान। तात्पर्य यह कि संतों के सत्संग से संसारी जीव का उद्धार हो जाता है पर संसारी जीव के कुसंग में पड़ा व्यक्ति डूब जाता है—

"लोहा भव जल डूब है दारक तिरण सुभाय।
जे कांटा नौका जड़ै तो दारक संग तिर जाय।
तो दारक संग तिर जाय जगत जीव लोहा जांना।
निर्विकार निर्लोभ सोही जन दारु समांना।
तुछ बैंसो घण मैं जड़ै वै हिल मिल उभय डुबाय।
लोहा भव जल डूब है दारक तिरण सुभाय।"[1]

'अमृत उपदेश' के चतुर्थ प्रकाश में भी 'सत्संग महिमा' शीर्षक में स्वामी जी ने सत्संग की महत्ता का प्रतिपादन किया है। सत्संग प्रेमामृत की नदी है जिसमें अनेक संत डूबे हैं पर सत्पुरुष के संग बिना इस प्रेमपीयूष की सरिता में डूबते किसी को भी नहीं सुना गया—

"पेम पिवष दरियाव मैं बूड़े संत अनेक।
सत्पुरुषा का संग बिन बूड़े सुणे न एक।"[2]

सत्संगति प्रेमामृत की नदी तो है ही, वह ज्ञानजल से पूर्ण भी है। समता ही उस नदी का तट है जहाँ जिज्ञासु-हंस शांति का वरण किये मोती चुगता है और माया-मछली की ओर ध्यान भी नहीं देता—

"सत्संगति दरियाव है भरे ज्ञान जल मांहि।
समता तट शाता लियां हंस जिज्ञासी तांहि।
हंस जिज्ञासी तांहि नाम मोताहल चुगिहै।
माया मच्छी देख ताहि दिशि चित्त न धरिहै।
रामचरण तज मानसर छीलर आशै नांहि।
सत्संगति दरियाव है भरे ज्ञान जल मांहि।"[3]

'विश्वास बोध' के बारहवें प्रकरण में 'सत्संग' शीर्षक में स्वामी जी कहते हैं कि सत्संग की महिमा अपार है।[4] सत्संगति तमहर है, वह ज्ञान का उदय करती है, वह संसार समुद्र को पार करने वाला पोत है—

---

१. अ० वा०, पृ० ३६९।
२. वही, पृ० ४५०।
३. वही।
४. "रामचरण सत्संग कै महिमा को नहि पार।"—वही, पृ० ७२१।

"सत्संगति अगि तम हरै, करै ज्ञान उद्दोत।
जन दांनी निज नाम का, भवतारण बड़ पोत।"[1]

सत्संग से समता-ज्ञान की उपलब्धि होती है और शोभा बढती है, किन्तु संसार का संग दुःख की खान है—

"सत्संगति शोभा बध, प्रापति समता ज्ञान।
रामचरण संसार संग, है दुख रूपा खान।"[2]

'विश्राम बोध' के चौथे विश्राम में कवि सत्संग की धारणा को शुभ का कारण कहता है। शुभ से संतोष का उदय होता है और अशुभ इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं—

"सतसंगति की धारणा सब शुभ को कारण जोय।
शुभ संतोष उदै करै अशुभ कामना खोय।
अशुभ कामना खोय नफो टोटो दर्शावै।
टोटा से टलवाय नफा को धर्म दिढावै।
निज बोहिथ निज नाम दे जन भव जल त्यारण सोय।
सत संगति की धारणा सब शुभ को कारण जोय।"[3]

इसी विश्राम में कवि सत्संग करने के लिए श्रद्धा को आवश्यक समझता है और श्रद्धा से ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश देता है—

"सतसंग श्रद्धा सूं करो श्रद्धा सूं ल्यो ज्ञान।
श्रद्धा सूं हरि सुमरिये श्रद्धा सूं द्यो दान।"[4]

'समता निवास' के चतुर्थ प्रकरण में 'सत्संग ताको बखाण' शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने सत्संग को ज्ञान की नदी कहा है। उस ज्ञान सरि में भगवन्नाम का जल प्रवाहित होता है, जो उसका स्पर्श करता है वह निश्चित ही निष्काम हो जाता है।

"सत्संगति ज्ञाना नदी जीं शीतल जल निज नाम।
कोइ परशै आतर लियां सो निर्मल होइ नहकाम।

---

१. अ० वा०, पृ० ७२२।
२. वही, पृ० ७२३।
३. वही, पृ० ७९६।
४. वही, पृ० ७९८।

लगा रहता है, जो लोहे के साथ जल में डूब जाता है। जगत के जीव लोहे के सदृश हैं और संत-जन दारु (लकड़ी) के समान। तात्पर्य यह कि संतों के सत्संग से संसारी जीव का उद्धार हो जाता है पर संसारी जीव के कुसंग में पड़ा व्यक्ति डूब जाता है—

"लोहा भव जल डूब है दारक तिरण सुभाय।
जे कांटा नौका जड़ै तो दारक संग तिर जाय।
तो दारक संग तिर जाय जगत जीव लोहा जांना।
निर्विकार निर्लोभ सोही जन दारु समांना।
तुछ बैंसो घण मैं जड़ै वै हिल मिल उभय डुबाय।
लोहा भव जल डूब है दारक तिरण सुभाय।"[1]

'अमृत उपदेश' के चतुर्थ प्रकाश में भी 'सत्संग महिमा' शीर्षक में स्वामी जी ने सत्संग की महत्ता का प्रतिपादन किया है। सत्संग प्रेमामृत की नदी है जिसमें अनेक संत डूबे हैं पर सत्पुरुष के संग बिना इस प्रेमपीयूष की सरिता में डूबते किसी को भी नहीं सुना गया—

"पेम पिवष दरियाव मैं बूड़े संत अनेक।
सत्पुरुषा का संग बिन बूड़े सुणे न एक।"[2]

सत्संगति प्रेमामृत की नदी तो है ही, वह ज्ञानजल से पूर्ण भी है। समता ही उस नदी का तट है जहाँ जिज्ञासु-हंस शांति का वरण किये मोती चुगता है और माया-मछली की ओर ध्यान भी नहीं देता—

"सत्संगति दरियाव है भरे ज्ञान जल मांहि।
समता तट शाता लियां हंस जिज्ञासी तांहि।
हंस जिज्ञासी तांहि नाम मोताहल चुगिहै।
माया मच्छी देख ताहि दिशि चित्त न धरिहै।
रामचरण तज मानसर छीलर आशै नांहि।
सत्संगति दरियाव है भरे ज्ञान जल मांहि।"[3]

'विश्वास बोध' के बारहवें प्रकरण में 'सत्संग' शीर्षक में स्वामी जी कहते हैं कि सत्संग की महिमा अपार है।[4] सत्संगति तमहर है, वह ज्ञान का उदय करती है, वह संसार समुद्र को पार करने वाला पोत है—

---

१. अ० वा०, पृ० ३६९।
२. वही, पृ० ४५०।
३. वही।
४. "रामचरण सत्संग कै महिमा को नहि पार।"—वही, पृ० ७२१।

"सत्संगति अगि तम हरै, करै ज्ञान उद्दोत।
जन दांती निज नाम का, भवतारण बड़ पोत।"[1]

सत्संग से समता-ज्ञान की उपलब्धि होती है और शोभा बढ़ती है, किन्तु संसार का संग दुःख की खान है—

"सत्संगति शोभा बध, प्रापति समता ज्ञान।
रामचरण संसार संग, है दुख रूपा खान।"[2]

'विश्राम बोध' के चौथे विश्राम में कवि सत्संग की धारणा को शुभ का कारण कहता है। शुभ से संतोष का उदय होता है और अशुभ इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं—

"सतसंगति की धारणा सब शुभ को कारण जोय।
शुभ संतोष उदै करै अशुभ कामना खोय।
अशुभ कामना खोय नफो टोटो दर्शावै।
टोटा से टलवाय नफा को धर्म दिढावै।
निज बोहिथ निज नाम दे जन भव जल त्यारण सोय।
सत संगति की धारणा सब शुभ को कारण जोय।"[3]

इसी विश्राम में कवि सत्संग करने के लिए श्रद्धा को आवश्यक समझता है और श्रद्धा से ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश देता है—

"सतसंग श्रद्धा सूं करो श्रद्धा सूं ल्यो ज्ञान।
श्रद्धा सूं हरि सुमरिये श्रद्धा सूं द्यो दान।"[4]

'समता निवास' के चतुर्थ प्रकरण में 'सत्संग ताको बखाण' शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने सत्संग को ज्ञान की नदी कहा है। उस ज्ञान सरि में भगवन्नाम का जल प्रवाहित होता है, जो उसका स्पर्श करता है वह निश्चित ही निष्काम हो जाता है।

"सत्संगति ज्ञाना नदी जीं शीतल जल निज नाम।
कोइ परशै आतर लियां सो निर्मल होइ नहकाम।

---

१. अ० वा०, पृ० ७२२।
२. वही, पृ० ७२३।
३. वही, पृ० ७९६।
४. वही, पृ० ७९८।

सो निर्मल होइ नहकाम कामना मल न रहावै।
सुख शाता अंतर पूर अशाता अजक बिलावै।
रामचरण मृतलोक में संत सजीवण धाम।
सत्संगति ज्ञाना नदी जीं शीतल जल निज नाम।"[१]

स्वामी जी सत्संग का मिलना और करना दोनों को दुर्लभ कहते हैं—

"सत्संगति मिलिबो दुलभ, भी दुर्लभ करणो जांणि।
दुर्लभ आशै पारख्या, दुर्लभ शब्द पिछांणि।"[२]

कुसंग त्याग का सन्देश

स्वामी रामचरण ने सत्संग की महिमा का बखान करके उसे ग्रहण करने का जहाँ सन्देश दिया है, वहीं कुसंग से दूर रहने की चेतावनी भी बार-बार दी है। गंधी और कलाल के निकट बसने का प्रतीक प्रस्तुत कर वे स्पष्ट करते हैं कि जैसे गंधी के पड़ोस में बसकर 'शुभ सुवास' लेना चाहिए, कलवार के पड़ोस में बसकर 'अशुभ कुवास' लेना अनुचित है, वैसे ही अशुभ कुवास सदृश कुसंग का परित्याग और अगम अर्थ की प्राप्ति के लिए सुवास सदृश सत्संग को ग्रहण करना चाहिए—

"गंधी कै पाड़ोस बसि शुभ लीजै बास सुबास।
तज पाड़ोस कलाल को जीं घर अशुभ कुबास।
जीं घर अशुभ कुबास कुसगति यूं परिहरिये।
जहाँ लहै अगम का अर्थ ध्याय सतसंगति करिये।
ऊँच नीच परखै जिकै जा उर उत्तम आश।
गंधी कै पाड़ोस बसि शुभ लीजै बास सुबास।"[३]

स्वामी जी 'अणभो विलास' के बारहवें प्रकरण में कुसंग का बड़ा स्पष्ट निषेध करते हैं—

"कबहूँ नांहि कुसंगति कीजै।
कहा पर आपणो सब तज दीजै।
ऊँची दशा बणाया तन पर।
ज्ञान बिहूंणा फिर है घर घर।"[४]

---

१. अ० वा०, पृ० ८८२।
२. वही, पृ० ८८५।
३. वही, पृ० ८८४।
४. वही, पृ० २६५।

कवि की दृष्टि में कुसंग-वास में हरिभक्ति की आशा वैसे ही व्यर्थ है जैसे बबूल का बीज बोकर आम की आशा करना—

"बाह्वै बीज बंबूल का उर आँबा की आश।
हर्ष धरै हरि भक्ति को करै कुसंगां बास।
करै कुसगां बास बीज जैसो फल देवै।
पाप कर्म विस्तार कहो सुख कैसें लेवै।
रामचरण जैसी वस्तु तैसो होत प्रकाश।
बाह् वै बीज बंबूल का उर आँबा की आश।"[1]

स्वामी जी लोक, वेद और संतजनों की साक्ष्य देकर कहते हैं कि कुसंग भला नहीं। कुसंग से मनुष्य की गुरुता हल्केपन में बदल जाती है। रावण के कुसंग का परिणाम यह रहा कि समुद्र की गंभीरता हलकी पड़ गयी और उसमें शिला तैरने लगी—

"लोक वेद अरु संत जन कुसंग भलो कह नांहि।
कुसंग कही जे जास को निषिध चलण ता मांहि।
निषिध चलण ता मांहि जगत भल भक्तज होई।
कहा काजी पंडित कोय, बिकल बुद्धि भलो न सोई।
रामचरण नीची संगति ऊंच तौल घटि जांहि।
ज्यूं रावण का संग दोष सूं समदर सिला तिरांहि।"[2]

स्वामी रामचरण ने सत्संग की महत्ता और कुसंग के दुष्परिणामों की तुलनात्मक चर्चा करके सर्व सामान्य को सत्संग की ओर चलने का संदेश दिया है। लोकजीवन में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के लोगों से सम्पर्क होता है। ऐसा देखा जाता है कि मानव-प्रवृत्ति कुत्सा की ओर तेजी से उन्मुख होकर जीवन को पतित कर देती है। स्वामी जी ने इस प्रवृत्ति को 'सु' की ओर मोड़ने के लिए सत्संग को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना है। सत्संग से मानव-प्रवृत्ति जीवन के नैतिक मूल्यों की महत्ता आँकती है और तदनुसार मानव को सदाचरण की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देती है। सत्संगति मानव के विकासोन्मुख जीवन की आधार-शिला है।

जीव दया

स्वामी रामचरण ने 'जिज्ञास बोध' के उन्नीसवें प्रकरण में 'दया निरूपण' शीर्षक के अन्तर्गत दया की चर्चा की है। स्वामी जी ने दया को धर्म की नींव, करुणा का मन्दिर, ज्ञान

---

१. अ० वा०, पृ० २६५।
२. वही, विश्राम बोध, द्वादश प्रकरण, पृ० ७१३।

का स्थान कहा है, दया गुणियों में सुन्दरता है। दया दीनों की रक्षा करती है, परपोषण का भाव दया की उपज है। दया से हृदय शुद्ध होता है, दया किसी को सताती नहीं है। दया भाव की उत्पत्ति से मन में निर्दोषिता जन्म लेती है, दया से ही सब जीवों के प्रति मैत्री भाव का जागरण होता है, कोई शत्रु लगता ही नहीं—

> **"दया धर्म की नींव दया करुणा को मंदिर।**
> **दया ज्ञान को थांन, दया गुनियन में सुंदर।**
> **दया दीन रिछपाल दया परपोख उपावै।**
> **दया करै दिल शुद्ध दया कोई न संतावै।**
> **रामचरण निर्दोषता दया ऊपज्यां होय।**
> **सब जीवां सैं मित्रता शत्रु न भासै कोय।"[1]**

स्वामी जी दयावान को देवता समझते हैं और जो जीव हत्या करते हैं, वे निर्दय जन राक्षस हैं—

> **"देव रूप सो जांणिये, जा उर दया सथांन।**
> **आसुर गति सो निर्दई, जे हतै पराया प्रांन।"[2]**

'दया धर्म को मूल है'—कहकर कवि ने दया की श्रेष्ठता का निरूपण किया है। दया का संचार जिस जीव में होता है वह 'परघात' नहीं करता। दया करुणा के समुद्र सरिस है और पराई पीर समझने का भाव दयालु जन ही रखते हैं। दया आत्मज्ञान का पंथ है। मनुष्य देह में दया का संचरण तब होता है जब मानव 'देवबुद्धि' हो जाता है—

> **"दया धर्म को मूल है दया न अधर्म होय।**
> **दया ऊपज्यां जीव में परघात बणै नहि कोय।**
> **परघात बणै नहि कोय दया करुणा को सागर।**
> **दया लखै परपीर दया दत्तब को आगर।**
> **मारग आतम ज्ञान के है दयाज आगू सोय।**
> **रामचरण नरदेह में दया देवबुधि जोय।"[3]**

स्वामी रामचरण ने दयावंत को पवित्र और निर्दय को अपवित्र घोषित किया है।[4] दयाहीन व्यक्ति को स्वामी जी पाप कमानेवाला पापी कहते हैं। पाप करते उसके

---

१. अ० वा०, पृ० ६२८।
२. वही।
३. वही।
४. "दयावंत सो पाक है बेपाक निर्दयी जांणि।
जाकी साखी अब कहूं, सो प्रत्यग लैहु पिछांणि।"—वही, पृ० ६२९।

हृदय में पीड़ा नहीं होती, वह प्रसन्न होकर हिंसारत होता है और इस कुकर्म से डरता भी नहीं, प्रत्युत कुकर्म करते समय उसके हृदय में प्रसन्नता और श्रद्धा रहती है। वह जीवहत्या करके खाता है और मुँह से स्वाद की सराहना भी करता है। इस प्रकार रत्नसदृश नरतन को वह बिगाड़ लेता है—

"पापी पाप कुमावतां कसक नहीं उर मांहि।
हर्ष हर्ष हिंसा करै कुकर्म डरपै नांहि।
कुकर्म डरपै नांहि मोद श्रद्धा उपजावै।
परबित तन कूं हतै खात मुख स्वाद सिराहवै।
नरतन रतन बिगाड़ियो कहा कहेंगे जांहि।
पापी पाप कुमावतां कसक नहीं उर मांहि।"[१]

स्वामी जी को ऐसे पतित जनों पर तरस है जो अपने स्वाद और स्वार्थ के लिए दूसरे जीव का दर्द नहीं समझते और इस प्रकार लघु एवं क्षणभंगुर जीवन के लिए अपने माथे पर 'पाप-ताप' लेते हैं। कवि ऐसे लोगों को सचेत करता है कि आज जो ले रहे हो उसे आगे ब्याज-समेत चुकाना पड़ेगा—

"दरध बिरांणो नां लखै स्वार्थ स्वादां हेत।
थोड़ा जीवन कारणै पाप ताप शिर लेत।
पाप ताप शिर लेत लियो आगै भरि देसी।
ई मोसर जिन दियो व्याज सहितो सोही लेसी।
लैणो ज्यूं दैणो सही कोइ अंतर की ज्यो चेत।
दरध बिरांणो नां लखै स्वार्थ स्वादां हेत।"[२]

धर्म मूल दया को मानव तभी पाता है जब वह कर्त्तव्य करता है। बिना करनी के कथनी तृण और धूल के समान व्यर्थ है—

"किरतब सूं पावै सही दया धर्म को मूल।
किरतब बिन कहणी अफल सब जांणो तृण तूल।"[३]

कवि दया को धर्म की नौका निरूपित करता है, दया से उपकार का जन्म होता है, दया ही हिंसा के प्रति मानव की आँखें खोलती है और सभी कर्मों में तत्त्व दया ही है—

---

१. अ० वा०, पृ० ६२९।
२. वही, पृ० ६२८।
३. वही।

"दया धर्म की नावड़ी, दया बणें उपकार।
दया दिखावै हिंसता, दया क्रिया मैं सार।"[१]

स्वामी जी ने 'दया निरूपण' के माध्यम से हिंसकों, मांसाहारियों की जहाँ भर्त्सना की है, वहीं दया को धर्म का मूल, करुणा का मंदिर, करुणा का सागर, ज्ञान का स्थान तथा आत्मज्ञान का मार्ग कहकर दयावान को देवरूप और निर्दय को राक्षस सदृश कहा है।

श्रद्धा

श्रद्धा को परिभाषित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—**"श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य बुद्धि का संचार है।"[२]** मैं समझता हूँ कि पूज्य बुद्धि के साथ लगन भी अपेक्षित है। श्रद्धा जिसके प्रति होती है उसके लिए पूज्य भाव रहता है, साथ ही भाव की क्रियाशीलता लगन से ही संभव है। स्वामी रामचरण ने अपने ग्रंथों 'सुख विलास', 'विश्राम बोध' और 'रामरसायण बोध' में 'श्रद्धाभक्ति' शीर्षक से श्रद्धा की महत्ता का प्रतिपादन किया है। मानव, जीवन के नाना व्यापारों में जब श्रद्धा के साथ जुटता है तभी उसे सफलता मिलती है। लोकजीवन की रचनात्मकता में श्रद्धा का स्थान महत्त्वपूर्ण है। धर्म-अधर्म, कर्म-विकर्म सभी में श्रद्धा की भूमिका अपनी महत्ता रखती है। उससे सब कुछ संभव है, बिना उसके कुछ भी संभव नहीं। विकटतम कार्यों में भी व्यक्ति तब तक जमा रह सकता है जब तक उसके तन-मन में श्रद्धा का अभाव नहीं होता—

"श्रद्धा सैं सबही बणै बिन श्रद्धा बणै न काय।
धर्म अधर्म विकर्म कर्म देखो अकल जगाय।
देखो अकल जगाय सती संग्राम ज होई।
तन मन श्रद्धा घट्यां भग्यो भी जाय न कोई।
तातैं भजिये राम कूं श्रद्धा अधिक उपाय।
श्रद्धा से सबही बणै बिन श्रद्धा बणै न काय।"[३]

पर स्वामी जी श्रद्धा को अधर्म या विकर्म की ओर नहीं झुकने देना चाहते। इससे हानि निश्चित है। वे धर्म के तत्त्व 'हरि भजन' में श्रद्धा का विकास चाहते हैं—

"सार धर्म हरि भजन सैं श्रद्धा अधिक बधाय।
अधर्म विकर्म मर्म हैं आलस बैठ घटाय।

---

१. अ० वा०, पृ० ६२८।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, भाग १, पृ० १४।
३. वही (सुख विलास), पृ० ४०८।

आलस बैठ घटाय इनों में हांनो परिहै।
इनके कर्म कलेस कष्ट चौरासी भरिहै।
गुरुमुख भजिये राम कूं तजिये आंन उपाय।
सार धर्म हरि भजन सैं श्रद्धा अधिक बधाय।"[1]

'विश्राम बोध' के चौथे विश्राम में कवि सत्संग, ज्ञान ग्रहण, रामस्मरण, दान, अर्पण और सत्पुरुषों के सम्मान आदि के लिए श्रद्धा को नितान्त आवश्यक समझता है—

"सतसंग श्रद्धा सूं करो श्रद्धा सूं ल्यो ज्ञान।
श्रद्धा सूं हरि सुमरिये श्रद्धा सूं द्यो दान।
श्रद्धा सूं द्यो दान कियो श्रद्धा निरबांही।
अणश्रद्धा को कियो ठेठ लग निभै ज नांही।
सत्पुरुषां को कीजिये श्रद्धा सूं सनमान।
संतसंग श्रद्धा सूं करो श्रद्धा सूं द्यो दान।"[2]

कवि का विचार है कि किसी भी रीति से कर्त्तव्य किया जा सकता है पर श्रद्धा से करने पर यश मिलता है। श्रद्धाविहीनता से कार्य बनता नहीं वरन् खींचतान होती है—

"कोई रीति किरतब करो, श्रद्धा सैं जश होय।
अणश्रद्धा खैंचा खेंची, काज न सुधरै कोय।"[3]

'रामरसायण बोध' के तृतीय प्रकरण में श्रद्धा और भक्ति का सम्बन्ध कवि ने स्पष्ट किया है। श्रद्धा से भक्ति करने पर विकास में देर नहीं लगती पर श्रद्धारहित कर्त्तव्य करने से किया कराया मिट्टी हो जाता है—

"श्रद्धा सूं भक्ति कियां बंधता लगै न बार।
बिन श्रद्धा किरतब कियो सो कियो करायो छार।"[4]

स्वामी जी का दृष्टिकोण है कि इसी प्रकार योग-साधना और नामस्मरण के हर अवस्थान भी श्रद्धा की अपेक्षा रखते हैं। एक बात और भी, श्रद्धालु को शोक नहीं होता—

---

१. अ० वा० (सुख विलास), पृ० ४०८।
२. वही, पृ० ७९८।
३. वही।
४. वही, पृ० ९५१।

"कहा कोई साधो जोग बिना श्रद्धा नहि कोई।
श्रद्धा सूं सब बणै भजन श्रद्धा सूं होई।
रामचरण श्रद्धा लियां कदै न उपजै शोग।
करणी बिन क्या पाय है जे असलाकी लोग।"[१]

कवि उदाहरण प्रस्तुत करता है कि रामभक्त श्रद्धालु होते हैं। अतः उनके द्वारा किये गये कार्य सिद्ध होते हैं। श्रद्धा विरहित कार्य निरर्थक है—

"रामभक्त श्रद्धा लियां कियां काज सिधि होय।
बिना श्रद्धा कारज कियां फलै न फूले कोय।"[२]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रद्धा का जीवन के लिए बड़ा महत्त्व है। जीवन में सदाचरण, सत्संग, रामभजन, भक्ति, योग आदि किसी भी क्रिया या व्यवहार में यदि श्रद्धा का योग रहता है तो सार्थकता चरण चूमती है। जीवन के सम्पूर्ण व्यापार श्रद्धा की अपेक्षा रखते हैं।

विश्वास

स्वामी रामचरण ने जीवन के लिए विश्वास को भी महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक माना है। अपने ग्रंथ 'विश्वास बोध' में उन्होंने राम में विश्वास रखने की बात कही है। बिना विश्वास के कहीं भी कोई सफलता नहीं मिलती। जहाँ विश्वास है, वहाँ आदर भी होता है। इसीलिए मन, वचन और काया से अपने स्वामी राम के प्रति विश्वास रखने की सीख कवि देता है—

"सुनो शिख मन धीरकारक, एक तारक नाम है।
राखिये विश्वास याको, नाम जाको राम है।
बिना एक विश्वास भाई, कोई सिद्धि न जांनिये।
जहां तहां विश्वास आदर, सर्वथा ही मांनिये।
× × ×
ताही तैं विश्वास राखो, एक अपना श्यांम को।
मन वाच कायक दूसरो तजि, होई रहो इक राम को।"[३]

स्वामी जी ने इसी सन्दर्भ में ध्रुव, अजामिल, वाल्मीकि, गणिका आदि का नाम गिनाया है जिन्होंने अपने अटूट विश्वास के सहारे संघर्षों में सफलता पायी है—

---

१. अ० वा०, पृ० ९५१।
२. वही ।
३. वही, पृ० ६४६-४७।

"देखि ध्रुव विश्वास भक्ता, भये मुक्ता नाम सैं।
हरि आज्ञा बैकुण्ठ राजत, बहुरि मिलिहै राम सैं।
राखियो विश्वास दृढ़ता, विचलता परिहारियो।
अजामील कवि आदि गणिका, एक नाम उचारियो।"[1]

ग्रन्थ 'अणभो विलास' के चौदहवें प्रकरण में उन्होंने अविश्वासी को बावरा कहा है जिसे अविश्वास के कारण चैन नहीं। उस अविश्वासी को क्या पता कि सर्वत्र और उसके सिर पर 'समर्थ राम' है—

"बेविश्वासी बावरा जाकै नहिं आराम।
ऊ कहा जांणै सर्वभर, शिर पर समर्थ राम।"[2]

'जिज्ञास बोध' के पंचम प्रकरण में स्वामी जी विश्वासघाती की चर्चा भी कर देते हैं। विश्वासघाती को उन्होंने इस भाँति परिभाषित किया है—

"तन विरक्त आशारकत दगाबाज है सोय।"[3]

यहीं कवि किसी को दग़ा (धोखा) न देने का संदेश भी देता है—

"दगो न किसकों दीजिए दगै दगो फल पाय।"[4]

स्वामी जी ने विश्वासी, अविश्वासी और विश्वासघाती—तीनों की समीक्षा की है और राम में विश्वास धारण करने का संदेश जनसमाज को दिया है। दया और श्रद्धा सदृश विश्वास भी जीवन को सुखमय करने के लिए आवश्यक है।

संतोष

संत-साहित्य में संतोष की बड़ी महिमा गायी गयी है। संतोष, मानव हृदय से तृष्णा-लोभादि विकारों को दूर करता है। स्वामी रामचरण ने संतोष की चर्चा सद्गुण के रूप में की है। 'जिज्ञास बोध' के छठवें प्रकरण में कवि संतोष को तीनों लोक का धन बतलाता है जिसका भोग केवल हरि जन ही कर सकते हैं, लोभी कदापि नहीं।

"रामचरण संतोष मैं तीन लोक को धन्न।
लोभी जन बिलसै नहीं बिलसै हरि का जन्न।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ०६४७।
२. वही, पृ० २७६।
३. वही, पृ० ५४५।
४. वही।
५. वही, पृ० ५५१।

स्वामी जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि धर्म की शोभा संतोष में है, लोभ से धर्म की शोभा बिगड़ती है। सत्य बात का सत्यपोषण संतोष में ही होता है। इसीलिए लोभी और संतोषी के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं। लोभी लोभ में रत रहता है और संतोषी संतोष में—

"लोभ लगन लोभी मगन संतोखी संतोख।
शोभ धर्म संतोष मैं लोभ कुशोभा दोख।
लोभ कुशोभा दोख बात ये नांही छांनै।
सो पंडित परबीण लोभ सें ममता भानै।
रामचरण संतोष मैं साच बाच सतपोख।
लोभ लगन लोभी मगन संतोखी संतोख।"[1]

संतोष तृष्णा विनाशक है। कवि की दृष्टि में तृष्णा की अग्नि संतोष जल से ही शान्त होती है। **'रामचरण संतोष जल तृष्णा अनल सिराय'**[2] अर्थात् संतोष के समक्ष तृष्णा का जागरण नहीं होता और संतोषरहित व्यक्ति उसी में पच मरता है—

"संतोष सदा साबूत होय, तो तृष्णा जागै नांहि।
रामचरण संतोष विन, लागि पचै ता मांहि।"[3]

संतोषी सदा सुखी

स्वामी रामचरण की दृष्टि में संतोषी सदा सुखी रहता है। चाहे वह गृहवासी हो या वनवासी। उसका हृदय आनन्द, उदारता और उत्तम आशा का निवास है।

"संतोषी सुखिया सदा भल ग्रेही बनवास।
आनन्दकंद उदारचित्त उत्तम आश निवास।"[4]

कवि कहता है कि संसारी, भक्त, काजी, तथा पंडित में से कोई भी यदि तृष्णावंत है तो सुखी नहीं हो सकता, सुखी तो वही होगा जो संतोषी हो—

"तृष्णावंत सुखिया नहीं, सुखी संतोषी होय।
कहा जगत भक्ता कहा, कहा काजी पंडित कोय।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० ५५१।
२. वही (विश्राम बोध, अष्टम प्रकरण), पृ० ६९८।
३. वही।
४. वही, पृ० ५५१।
५. वही, पृ० ६९८।

संतोषी व्यक्ति चाहे भ्रमण करे, या एक ही स्थान पर बैठा रहे, वह जहाँ रहेगा सुखी रहेगा, किन्तु लोभी को कहीं भी सुख नहीं—

"रामचरण रामत करो, भल बैठ रहो इक ठांहि।
संतोषी जहाँ तहाँ सुखी, लोभी सुखिया नांहि।"[1]

ध्यान की अवस्था भी संतोष से ही विकसित होती है और स्वार्थ से ध्यान कुध्यान में परिणत हो जाता है। भक्ति-भावना में कमी आ जाती है और गुरुप्रदत्त ज्ञान-सम्मान सभी बिला जाते हैं—

"ध्यान बंधै संतोष सैं, स्वारथ होय कुध्यान।
भक्तिभाव घट जाय सब, बिलै मांन गुरु ज्ञान।"[2]

संतोष से आदरभाव

स्वामी रामचरण ने 'विश्वास बोध' के आठवें प्रकरण और 'समता निवास' के छठें प्रकरण में उपर्युक्त की पुष्टि की है। वे कहते हैं कि संतोष से आदर अधिक होता है और लोभ से उतना ही तिरस्कार—

"आदर अधिक संतोष सैं अत्यंत लोभ तस्कार।
गुण अवगुण अपणो आप मैं गुण जैसो अधिकार।"[3]

इसी भावना का विकास 'समता निवास' के छठें प्रकरण में भी दिखलायी पड़ता है। कवि के अनुसार संतोष के द्वारा आदर में वृद्धि होती है और लोभ से उसका विनाश होता है—

"आदर बधै संतोष सैं अरु लोभ लग्यां घटि जाय।
कहा भक्ता पढ़ि पंडिता द्विज दर्शण इक भाय।
द्विज दर्शण इक भाय आपको आप घटावै।
घर घालि चहूड़ी चाहि नीच गति कर्म कुमावै।
तातैं यह विचार कै कोइ समता रखो सम्हाय।
आदर बधै संतोष सैं अरु लोभ लग्यां घटि जाय।"[4]

---

१. अ० वा० (विश्वास बोध, अष्टम प्रकरण), पृ० ६९९।
२. वही (विश्राम बोध, एकादश विश्राम), पृ० ८४९।
३. वही (विश्वास बोध, अष्टम प्रकरण), पृ० ६९९।
४. वही, पृ० ८९८।

स्वामी जी संतोष भाव की श्रेष्ठता यह कहकर निरूपित करते हैं कि उसकी महिमा अवर्णनीय है। पर संतोष की महिमा केवल संतोषी जनों को दिखती है, लोभियों को तो वह भासित भी नहीं होती—

"रामचरण संतोष की, महिमा कही न जाय।
लोभ्यां कूं भासै नहीं, कोइ संतोष्यां दर्शाय।"[1]

स्वामी जी ने संतोष भाव के पोषण के साथ-साथ तृष्णा, लोभ आदि विचारों का तिरस्कार भी किया है। उनकी दृष्टि में तृष्णा और संतोष का मेल संभव नहीं। संतोष से जीवन में सात्त्विक गुणों का विकास होता है। लोकजीवन के रचनात्मक दृष्टिकोण में संतोष का बड़ा महत्त्व है।

सत्य

स्वामी रामचरण ने लोकजीवन एवं व्यक्तिगत जीवन में सत्य की बड़ी प्रतिष्ठा आँकी है। स्वामी जी की दृष्टि में जीवन का आदर्श ही सत्य है। सच बोलना, सच सुनना, सच देखना और सत्य का ही ध्यान करने को ही वे जीवन का आदर्श मानते हैं और इसी आदर्श को जीवन में उतारने का संदेश देते हैं। 'अमृत उपदेश' के पन्द्रहवें प्रकाश में 'सत्य प्रशंसा' के अन्तर्गत कवि ने इस आशय के वचन कहे हैं—

"मुख सूं साच उचारिये साचहि सुनिये कांन।
नैनां साच परक्खिये उर धर साचो ध्यांन।
उर धर साचो ध्यांन झूठ मैं हासिल नांही।
हासिल की कहा चली गांठ को मूल गुमांही।
रामचरण ये में कहूं कह गये संत सुजांन।
मुख सूं साच उचारिये साचहि सुनिये कांन।"[2]

सत्य इतना प्रबल होता है कि उसे दबाया नहीं जा सकता। यह एक ऐसा तथ्य है जिसे सारा संसार जानता है। यदि कोई सत्य पर आवरण डालना भी चाहे तो दो-चार दिन से अधिक यह व्यापार नहीं चल सकता। सत्य को स्वामी जी 'सूर्य' कहते हैं। सूर्य भला छिपाये से छिप सकता है। भ्रम के मेघों की आड़ में सत्य का सूर्य छिप नहीं सकता—

"साच दबायो ना दबै प्रगट सब संसार।
जे कोई दाब्यो चहै तो रहै दिनां दोइ च्यार।

---

१. अ० वा०, पृ० ५५१।
२. वही, पृ० ५०४।

रहै दिनां दोइ च्यार सूर क्यों छिपै छिपायो।
मर्म बादलां ओट कहा भयो निजर न आयो।
रामचरण घूंघट किसो जो नाची हाट बजार।
साच दबायो ना दबै प्रगटै सब संसार।"[1]

'साच झूठ को ब्योरो' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी सत्य की असहनीय प्रखरता की चर्चा करते हैं। सत्य की आँच राजा, रावत, ज्ञानी, पंडित, साधु, योगी, संन्यासी, दरवेश किसी को भी नहीं भाती। संसार में कोई बिरला ही सच्चा होगा जिसे सत्य पसन्द हो—

"राजा रावत जगत सब ज्ञानी पंडित भेस।
जोगी जंगम सेवड़ा सन्यासी दर्वेस।
सन्यासी दर्वेस साच कोई न सुहावै।
कोई बिरला संसार साच साचां कूं भावै।
कलिजुग करणी लुटि कै स्वारथ भर्‌यो विशेष।
राजा रावत जगत सब ज्ञानी पंडित भेस।"[2]

स्वामी जी सत्य भाषण पर विशेष जोर देते हैं। उनका कथन है कि स्वामी (ईश्वर) सत्य की बेलि है, झूठ से उसका रिश्ता नहीं, यह समझकर मुख से सत्य भाषण करना चाहिए—

"सांई बेली साच का, झूठा बेली नांहि।
रामचरण यूं समझ कै, साच भाख मुख मांहि।"[3]

स्वामी जी यह भी कहते हैं कि जो 'साच-झूठ' की धारणा को नहीं समझता है, उस जीव को बुद्धि भ्रष्ट ही समझा जाना चाहिए—

"साच झूठ की धारणा, समझै नांही आश।
रामचरण ता जीव कै, भयो बुद्धि को नाश।"[4]

'जिज्ञास बोध' के अठारहवें प्रकरण में 'झूठसाच को विचार' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी झूठ को अनित्य और साच को नित्य कहते हैं। इसीलिए वे झूठ को मनसा, वाचा परित्याग करने के लिए प्रेरित करते हैं—

---

१. अ० वा०, पृ० ५०४।
२. वही।
३. वही।
४. वही।

"झूठ दोउ दिन दोय की, अंत रहेगा साच।
रामचरण तजि झूठ कूं, ये जांणो मनसा वाच।"[1]

कवि का निश्चित मत है कि इस लोक में झूठ की साख नहीं चल सकती। मिथ्यावादी मिथ्या बोलकर अपनी शोभा नष्ट करता है—

"शोभ गुमावै आपणी झूठा झूठी भाखि।
रामचरण या लोक में चलै न झूठी साखि।"[2]

स्वामी जी नरतनधारी झूठे को धिक्कारते हैं और उसे पशु से भी गया गुजरा समझते हैं—

"ज्यां घट साच न संचरे, झूठ तणो विस्तार।
तासूं तो पशवा भला, वा नरतन को धिरकार।"[3]

इसलिए कवि लोकजीवन को सत्य के निम्नलिखित आदर्श को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करता है—

"मुख उचरै साचा वचन साचाहि सुणै ज बैंन।
चित चितवन साची करै साचा परखै नैंन।
साचा परखै नैंन यहै नर तन की शोभा।
झूठ कपट पाखण्ड दगा सैं होय कुशोभा।
रामचरण भज राम कूं तजो गहो यह चहन।
मुख उचरै साचा वचन साचाहि सुणै ज बैन।"[4]

निष्कर्ष यह कि स्वामी जी ने जीवन में सत्य को उतारने की प्रेरणा समाज को सदैव दी और उसे 'सांई की बेली' कहकर उसकी महत्ता प्रदर्शित की।

एकता

स्वामी रामचरण ने 'रामरसायण बोध' के तीसरे प्रकरण में एकता की महत्ता की चर्चा की है। स्वामी जी ने एकता के लिए बूंद-बूंद से धारा बनने का दृष्टान्त देकर कार्य-सिद्धि के लिए एकता-स्थापन की बात कही है—

---

१. अ० वा०, पृ० ६२३।
२. वही।
३. वही, पृ० ६२५।
४. वही।

"बहु बूंदा इकधार नीर सो प्रगट कहिये।
सब काज सुधारण जोग एक में आनंद लहिये।"[1]

स्वामी जी की दृष्टि में एकता सुख का कारण है। एकत्वहीनता से दुःख और द्वन्द्व सदैव घेरे रहते हैं। इसीलिए कोई भी निश्चय या विचार एक होकर ही करना चाहिए—

"आशैं बासैं एक होय सुख पूर है।
एक बिना दुख द्वन्द निकट पण दूर है।
तातें बात विचार एक होइ कीजिए।
परिहां रामचरण भज राम इसे सुख लीजिए।"[2]

एकता : शक्ति का प्रतीक

स्वामी रामचरण एकता में शक्ति का अनुभव करते हुए लिखते हैं कि एक और एक के मिलने से ग्यारह की शक्ति आती है। दोनों एक को अलग कर जोड़ने से केवल दो ही रह जाता है। इस प्रकार नौ की शक्ति समाप्त हो जाती है। अलग-अलग दो को दुर्जन भी घेर कर मार सकता है। नीति की बात करते-करते अध्यात्म जगत में पहुँच कर राम और गुरु की एकता का भी संदेश देने लगते हैं—

"एकै एक मिलाप में ग्यारा को बल होय।
एक एक न्यारा गिणै तो जासूं कहिये दोय।
तो जासूं कहिये दोय मिटै बल नोवां केरो।
दोइ न्यारा मारा जाय आय दुर्जन दे घेरो।
रामचरण गुरु राम को एक रूप कर जोय।
एकै एक मिलाप में ग्यारा को बल होय।"[3]

स्वामी रामचरण द्वारा एकता का संदेश जन-जागरण की दिशा में बढ़ा हुआ प्रेरक कदम के रूप में निरूपित किया जा सकता है। एकता, सुख और शक्ति दोनों को जीवन में प्रविष्ट कराती है। इसी सन्दर्भ में कवि राम और गुरु में अभेद देखने का भी संदेश जन-सामान्य को देता है। जो पृथकतावादी (अण मिलता) हैं उनसे उदासीन रहने की बात भी स्वामी जी स्पष्ट रूप से कहते हैं। जैसे सोना और राँगा का मिलाप नहीं हो सकता और यदि

---

१. अ० बा० पृ० ९५२।
२. वही, पृ० ९५२।
३. वही, पृ० ९५२-५३।

हुआ तो स्वर्ण का विनाश निश्चित है उसी प्रकार 'अन मिलता' से पहले तो मेल संभव नहीं, यदि कहीं मेल हो गया तो सोने सदृश व्यक्ति का विनाश सुनिश्चित है—

> "कनक रांग नांही मिलै मिलै तो कनक विनास।
> रामचरण तातैं रहो अणमिलतां ज उदास।"[१]

इस प्रकार स्वामी जी एकता की भावना को लोकजीवन के लिए आवश्यक समझकर उसे सभी को जीवन में चरितार्थ करने का उपदेश देते हैं।

यह रहा स्वामी रामचरण की लोकपक्ष संबंधी विचारधारा का एक संक्षिप्त निरूपण। स्वामी जी के लोकपक्षीय विचार प्रवाह पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि स्वामी जी की लोकजीवन में गहरी रुचि थी। वे भक्तहृदय संत कवि थे। जीवन और जगत में परिव्याप्त कुत्साओं की उन्होंने बड़ी तीखी आलोचना की और जन-मानस को ढोंगियों पाखण्डियों एवं अनेक सामाजिक रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों से मुक्त कराने के लिए भरपूर प्रयास किया। एतदर्थ उन्होंने प्रतिमापूजन, व्रतोपवास, रोजा-एकादशी, पूजा-नमाज, मूर्ति पूजा, मादक पदार्थों का सेवन, देवल-मस्जिद, पुस्तकज्ञान आदि विभिन्न विषयों पर लेखनी उठाई और उन सभी का निषेध किया। साथ ही उन्होंने जीवन को सुखी बनाने के लिए अनेक रचनात्मक सुझाव भी दिये, जिससे लोक का बड़ा उपकार हुआ। एतदर्थ उन्होंने राम नाम की उपासना, सत्संग, जीवों के प्रति दयाभाव, श्रद्धा-भक्ति, विश्वास, संतोष, सत्यपालन, एकता आदि मानवोचित गुणों को अपनाने की प्रेरणा दी। इसके अतिरिक्त वचन विवेक, विनयशीलता, कथनी करनी की अभेदता आदि की संक्षिप्त चर्चा उन्होंने की है। स्वामी रामचरण के सम्पूर्ण साहित्य में लोकजीवन के प्रति उनकी उदारता की एक अच्छी झाँकी देखने को मिल जाती है। इस संदर्भ में 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों का निम्नलिखित कथन युक्तियुक्त है—

"मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता है, उन गुणों की अनेक बार अनेक रूपों में 'अणभैवाणी' में चर्चा हुई है। उन गुणों को अपनाने से यह धरती स्वर्ग बन सकती है। हमारा व्यावहारिक बाह्य-जीवन सब प्रकार से सुखी, सम्पन्न और स्पृहणीय बन सकता है।"[२]

●

---

१. अ० वा०, पृ० ९५३।

२. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १२१।

तृतीय खण्ड : काव्यत्व

सप्तम अध्याय : अनुभूति पक्ष

अष्टम अध्याय : अभिव्यक्ति पक्ष

सप्तम अध्याय

काव्यत्व : अनुभूति पक्ष

संतों की काव्यरचना के उद्देश्य की चर्चा करते हुए पंडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं—"ये रचनाएँ मनोरंजन के लिए नहीं की गयी थीं और न इनका उद्देश्य कभी किसी प्रकार के 'यश' या 'धन' का उपार्जन ही रहा। इनके रचयिताओं ने अपने सामने 'कविता कविता के लिए' का भी आदर्श नहीं रखा और न अपनी उन्मुक्त कल्पना के प्रभाव में विभिन्न भावनाओं की सृष्टि कर एक अपना मनोराज्य स्थापित करने की कभी चेष्टा की। उनकी व्यक्तिगत स्वानुभूति में विश्वजनीन अनुभूति की व्यापकता थी और उनके आदर्श पद की स्थिति ठेठ व्यवहार से कहीं बाहर न थी। अपनी रचना के माध्यम को भी इसी कारण, उन्होंने उसके विषय से अधिक महत्त्व कभी नहीं दिया और न उसके शब्द और शैली में चमत्कार लाने के पीछे, उसके भाव सौन्दर्य के प्रति वे कभी उदासीन हुए। इसके सिवाय, अपने उच्च से उच्च एवं गंभीर से गंभीर भाव को भी वे सदा सर्वसाधारण की भाषा में व्यक्त करते आए और इन्हीं के दृष्टान्तों एवं मुहावरों द्वारा उन्होंने उसका स्पष्टीकरण भी किया।"[१]

उपर्युक्त उद्धरण सन्त-काव्य-रचना के उद्देश्यों पर यथार्थ टिप्पणी है। संतों ने काव्य-रचना का उद्देश्य कभी भी कला-कौशल का प्रदर्शन नहीं माना था और न उन्होंने किसी को प्रसन्न करने के उद्देश्य से ही काव्य-रचना की थी। संत वस्तुतः मस्त-मौला थे, उनकी काव्य-गंगा का प्रवाह जन-जीवन को अपने स्पर्श से परिमार्जित करता था। अपनी काव्यधारा से लोकजीवन को प्रक्षालित कर उसे निर्मलता प्रदान करना ही संतों की काव्य-रचना का उद्देश्य था, साथ ही योग-साधना का ओज, भक्ति-भावना का माधुर्य और दोनों के संयोग का प्रसाद, जो उनकी अनुभूति से निस्सृत होता था, का प्रकाशन भी वे करते थे। ब्रह्म, जीव, माया, सृष्टि आदि के प्रति उनके हृदय में जो धारणाएँ जन्म लेती थीं, वे सभी उनकी काव्य-सामग्री बनती थीं। जीवन की सहजता के प्रति आस्था, लोक-जीवन के लिए मंगल-कामना, जीवन की सामाजिकता से कुत्सा का लोप आदि विभिन्न विषय उनकी कविता में वर्णित होते थे। पर इन सभी की आधारशिला उनकी स्वानुभूति थी। उन्होंने इसी के सहारे ईश्वर को अपने प्रेम का विषय बनाया, उसकी रहस्यमयता को अपनी भावाकुलता से सराबोर कर दर्शन का नहीं कविता का विषय बनाया।

---

१. पं० परशुराम चतुर्वेदी : संतकाव्य-भूमिका, पृ० ४९-५०

स्वामी रामचरण के विशाल काव्य-साहित्य में उपर्युक्त तथा उन्हीं सदृश विभिन्न विषय उनकी कविता के वर्ण्य हैं। कबीर आदि सन्तों की भाँति अनुभवजन्य भावों का निर्भीक प्रकाशन उनके कवि-व्यक्तित्व को अत्यन्त प्रभावशाली बना देता है। स्वामी जी की कविता का साहित्यिक मूल्यांकन करते समय हमें इस संत भावधारा को ही प्रमुखतया दृष्टि में रखना होगा। पिछले अध्यायों में हम स्वामी जी के द्वारा निरूपित विभिन्न विषयों की चर्चा कर चुके हैं। इस अध्याय में उनकी रचनाओं में काव्यत्व की प्रमुख संवेदनाओं पर विचार करेंगे।

प्रेमानुभूति

संत कवियों ने जिस प्रेम की चर्चा की है वह आध्यात्मिक प्रेम है। परमात्मा के प्रति अनन्य आसक्ति ही इस प्रेम की प्रमुख विशेषता है। स्वामी रामचरण ने 'प्रेम प्रकाश को अंग' के अन्तर्गत प्रेम का वर्णन किया है। साधक का प्रेमी हृदय जब भक्ति-भावना से भावमय हो उठता है तब प्रेम की तरंगें उसके हृदय में सागर की वीचियों सदृश प्रवाहित होने लगती हैं और उन अनुराग की लहरों से उनका सर्वाङ्ग भीग जाता है—

> **"प्रेम लहरि ऐसे बहै, जैसे सिन्धु तरंग।**
> **रामचरण ता छोलसूं, भीजत है सब अंग।"[1]**

प्रियतम परमात्मा की प्राप्ति दाम्पत्य भाव की अपेक्षा रखती है। प्रेम बड़ा ही सूक्ष्म होता है। जो सच्चा 'आशिक' होगा वही 'महबूब' को पा सकेगा।

> **"राम ही चरण कहै इस्क बारीक है।**
> **होय आसिक महबूब पावै।"[2]**

प्रेमानुभूति गुरुकृपा से ही सम्भव है। गुरु प्रेम-बाण से हृदय बेध देता है और शिष्य प्रेमपूर्वक उसे झेलता है। तब उसके हृदय में प्रेम का प्रकाश होता है। प्रेम रूपी भाले की नोक हृदय में प्रवेश कर जाती है। वह बाहर नहीं दीखती, अहर्निश प्रेम की पीर हृदय को सालती रहती है—

> **"संता बांण चलाइया, धरकर सूधी मूठ।**
> **प्रेम सहित सिख झेलिया, गया कलेजा फूट।**
> **प्रेमभाल भीतर खुची, बाहर दीसै नांहि।**
> **रामचरण कसकत रहै, निसिबासर उर मांहि।"[3]**

---

१. अ० वा०, पृ० १२।
२. वही, पृ० १९३।
३. वही, पृ० १२।

प्रियतम प्रभु के लिए उसके प्रेमी साधक के हृदय में विरहाग्नि प्रज्वलित रहती है, किन्तु हृदय में जब प्रेम का प्रकाश हो जाता है तो विरहाग्नि शीतल हो जाती है और प्रेम हृदयवासी हो जाता है—

"विरह अग्नि शीतल भई, जब भया प्रेम प्रकास।
रामचरण अब पाईया, मनवै प्रेम निवास।"[1]

इसी प्रसंग में कवि प्रेमानुभूति के लक्षणों की चर्चा भी करता है। उसके अनुसार जब साधक के रोम-रोम से रामधुन का उच्चारण होने लगे तब प्रेम का उपकार समझना चाहिए। जब काम-क्रोधादि विकारों से मुक्त मन का रंग बदला हुआ प्रतीत होने लगे तब प्रेम का विकास होना समझना चाहिए। जब लोक-वेद की मर्यादा से परे होकर निःशंक और निर्गुण भाव से, साधक अभिभूत हो तब प्रेम को खुला हुआ मानना चाहिए—

"रोम रोम में होय रह्या ररंकार उच्चार।
रामचरण तब जांणिये ये प्रेम तणा उपकार।
प्रेम खुल्या तब जांणिये, मन का पलटै रंग।
काम क्रोध व्यापै नहीं कूड़ा करै न संग।
प्रेम खुल्या तब जांणिये, गुण तजि निर्गुण होय।
लोक वेद मुरजाद की, शंक न मांनै कोय।"[2]

प्रेम-पट के खुलते ही परमात्मा प्रियतम से मिलकर विरहिणी आत्मा निहाल हो जाती है। दुःख की छाया स्मृति से दूर चली जाती है और निशिवासर वह मुदित रहती है—

"प्रेम खुल्या सांईं मिल्या बिरहनि भई निहाल।
रामचरण दुख बीसर्या निसिदिन रहत खुस्याल।"[3]

स्वामी जी की धारणा है कि प्रेम का नाम तो सभी रटते हैं पर प्रेमानुभूति नहीं कर पाते क्योंकि उसकी बाधा लज्जा बन जाती है। कवि पूछता है कि लज्जानुभूति क्यों जब अपना ही प्रियतम स्पर्श कर रहा है? लोक-लाज विरहित होने पर ही प्रिय-मिलन हो सकेगा अन्यथा नहीं—

"प्रेम प्रेम सबको कहै, प्रेम लखै नहि कोय।
प्रेम जहाँ लज्जा नहीं, लज्जा प्रेम न होय।

---

१. अ० वा०, पृ० १२।
२. वही।
३. वही।

अपना सांईं परस्तां, लाज करो मति कोय।
संक करै संसार की तो सांईं मिलण न होय।"[१]

स्वामी जी घोषित करते हैं कि प्रेम के बिना सुख नहीं और इस प्रेम-सुख की प्राप्ति अपने प्रियतम के मिलन से ही सम्भव है—

"रामचरण साची कहै, प्रेम बिना सुख नांहि।
सांईं मिलै तो सुख लहै, नांतर लख चौरासी मांहि।"[२]

प्रेम की हिलोर कर्म-धूल को बहा ले जाती है और तब तन-मन में उज्ज्वल आलोक का दीदार होता है। कवि इस प्रेमालोक का अवलोकन कर विस्मित है, अँधेरी रात में चन्द्रमा सदृश यह प्रेम हृदय में विकसित है—

"करम छार सब बह गई, आई प्रेम हलूर।
रामचरण अब दरसिया, तनमन उज्जल नूर।
रामचरण इचरज भया, देख्या प्रेम उजास।
निसि अंधियारी चंद ज्यूं, मनवै किया बिगास।"[३]

उपर्युक्त पंक्तियों में निरूपित प्रेम ही स्वामी रामचरण का अभीष्ट है। प्रेमानुभूति के पलों में विरह से जली उस प्रेमी की देह की तपन मिट जाती है और उसका रोम-रोम उस प्रेम का रसपान करके शीतल हो जाता है। पर यह सब उस दयालु राम की दया से ही सम्भव है—

"राम दयाल दया करी, बरस बुझाई लाय।
रोम रोम सीतल भया, पीया प्रेम अघाय।"[४]

अथवा—

"बिरह अग्निदाधी देह, सींची प्रेम अघाय।
तप्त मिटी सीतल भई, रोंम रोंम रस पाय।"[५]

आध्यात्मिकता के उज्ज्वल आलोक में स्वामी रामचरण ने कबीर आदि अन्य संतों की भाँति प्रेमनुभूति की है। 'प्रेम का उजास' उनकी दृष्टि में चन्द्र के उजास सदृश है। वे प्रेम को ही सुख का मूल मानकर लज्जा रहित होकर प्रियतम परमात्मा से प्रेम लाभ करने का संदेश

---

१. अ० वा०, पृ० १२।
२. वही।
३. वही।
४. वही।
५. वही।

देते हैं। और इसके लिए रामभजन को ही सर्वश्रेष्ठ साधन समझते है। भजन-प्रताप से ही यह प्रेम निवास मिलता है—

> "रामभजन परताप तै, पाया प्रेम निवास।
> रामचरण निर्भय भया, मिटी काल की त्रास।"[1]

रहस्यानुभूति

संतकाव्य में रहस्यानुभूति बहुचर्चित विषय रहा है। "रहस्यवाद शब्द प्रायः काव्य की एक धारा विशेष को सूचित करता है।"[2] डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत लिखते हैं कि "जब साधक भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में सजा कर रखने लगता है तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है।"[3] डॉ० रामकुमार वर्मा ने रहस्यवाद को इस प्रकार परिभाषित किया है—"रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है, यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। जीवात्मा की शक्तियाँ इसी अनन्त शक्ति के वैभव और प्रभाव से ओतप्रोत हो जाती है। जीव में केवल उस दिव्य शक्ति का अनन्त तेज अन्तर्हित हो जाता है और जीवात्मा अपने अस्तित्व को एक प्रकार से भूल सा जाती है। एक भावना, एक वासना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावना सदैव जीवन के अंग-प्रत्यंगों में प्रकाशित होती है।"[4]

संत-साहित्य में रहस्यानुभूति विषय की चर्चा करते हुए डॉक्टर प्रेमनारायण शुक्ल ने लिखा है कि "संत-साहित्य में अनेकानेक स्थलों में रहस्यानुभूति की उपलब्धि होती है। संत प्रकृत्या तत्त्वचिंतक थे। उनका चिंतन का क्षेत्र बड़ा व्यापक एवं गम्भीर था। उन्होंने आत्मा और परमात्मा के स्वरूप का परिचय प्राप्त किया था। यह परिचय केवल बौद्धिक विकास के रूप में न होकर साधना की पूर्ण परिपक्व अवस्था के रूप में था। अतः अपनी अनुभूति की गहनता में उन्होंने जिन तथ्यों का प्रकटीकरण किया है, वे सामान्य धरातल से कहीं अधिक ऊँचे हैं जिन्हें साधारण मानव समझने में असमर्थ है। जो साधक अपनी आत्मा का जितना ही अधिक विकास कर लेगा वह उन रहस्यानुभूतियों से उतना ही अधिक परिचय भी प्राप्त कर लेगा।"[5]

रहस्यानुभूति सम्बन्धी उपर्युक्त टिप्पणियों को दृष्टि में रखकर जब हम स्वामी रामचरण की कविता पर विचार करते हैं तो स्पष्ट होता है कि तत्त्व-चिंतक रहस्यदर्शी संतों में

---

१. अ० वा०, पृ० १२।
२. पं० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर साहित्य की परख, पृ० १२१।
३. डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत : कबीर की विचारधारा, पृ० २३६।
४. डॉ० रामकुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद, पृ० ३४।
५. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल : संत साहित्य, पृ० ४६-४७।

स्वामी रामचरण का स्थान महत्त्वपूर्ण है। वे कबीर आदि निर्गुण संत कवियों की परम्परा के रहस्यदर्शी कवि थे। उनकी भक्ति साधना की सीमा में उस रहस्यमय प्रियतम के लिए आत्म समर्पण का भाव, प्रेमाकुलता और उससे एकाकार होने की स्थितियों के **चित्र** रूपायित हुए मिलते हैं। इस अनुभूति का आधार संत-हृदय की भावुकता है। इसीलिए संतों की इस रहस्यानुभूति को समीक्षकों ने भावात्मक रहस्यवाद की संज्ञा दी है। योगपरक साधना की चरम परिणति सहज समाधि है और वह भी रहस्यवाद की समीपवर्तिनी है। इसे साधनात्मक रहस्यवाद के नाम से अभिहित किया जाता है।

यद्यपि रामचरण जी हठयोग की कठिन साधना के आलोचक थे फिर भी सुरति शब्द योग की साधना ब्रह्मानुभूति का प्रमुख साधन थी। इस योग की साधना में स्वामी जी ने **'कण्ठ ध्यान'** को कठिन बतलाया है पर **'हृदय ध्यान'** की स्थिति आते ही सारे साधनों का अन्त हो जाता है। 'कण्ठ ध्यान' की स्थिति की कठिनाई का आभास 'शब्द प्रकाश' की निम्नलिखित पंक्तियों से मिलता है—

"कण्ठ स्थान बहुत कठिणाई।
मुख सूं बचन न बोल्यो जाई।"[१]

पर उसके आगे—

"हिरदै ध्यान ध्वनी जब होई।
दूजो साधन रहै न कोई।"[२]

पर योग साधना की प्रक्रिया का आरम्भ भी नामस्मरण से ही होता है। इस नामस्मरण से ही उस रहस्यमय के प्रति लगाव बढ़ता है और तभी उससे सम्बद्ध होने का भाव मन में उमड़ने लगता है। यही रहस्यमय के प्रति जिज्ञासा का भाव है। जिज्ञासु का मन अनवरत उसके प्रेम में स्नात रहता है—

"आठ पहर चोसट घड़ी, मन प्रेम मैं भीना।"[३]

यह प्रेम भीना मन लिये साधक आठों पहर नित्य 'पिया' के प्रेम में मस्त होकर घूमता रहता है। यही रहमान के रंग में सराबोर फकीर की स्थिति है—

"फकीरा रंग रता रहमान।
आठ पहर घूंमत रहै नित प्रेम पिया मस्तान।

१. अ० वा०, पृ० २०९।
२. वही (नामप्रताप), पृ० २०७।
३. वही (गावा का पद), १००५।

जग में बिचरै सहज सूं वे, ना काहू करै सनेह।
आसिक देखै रब्बदा, टुक जाकूं आपा देह।"[1]

प्रियतम के प्रेम की मादकता में संत डूब जाता है। उसे राम का व्यसन अलमस्त दीवाना बना देता है। हृदय में उसी का ध्यान सदैव बना रहता है। शरीर की सुध जाती रहती है और उस प्रेम प्याले का पान अविस्मरणीय हो जाता है—

"संत दिवाना अलमस्ताना राम अमल गलतांना वे।
तन बिसराना उर धरि ध्याना, प्याला नांहि भुलाना वे।
परगट छांना आप लुकाना, दुनिया मरम न जाना वे।
राव रंक की शंक न आंना, आनंद मैं अस्थाना वे।"[2]

साधक मन को अन्य दिशाओं से विरत कर प्रियतम के कदमों में दे देता है। वह प्रियतम (मियाँ) कभी विस्मृत नहीं होता। ज्ञान के जल से वह 'गुसल' करता है, गगन गुफा में उसका बिस्तर है जहाँ वह ध्यानमग्न है। यह संसार उस दर्वेश का रहस्य नहीं जान पाता जो अलख का 'औजूद' देख पाता है—

"आन दिशा सूं कब्ज कर वे, दिल दिया कदमूं मांहि।
निमा स्यांम फजरां बिचै, मीयां कबहूं बिसरै नांहि।
ज्ञान आब सैं गुसल कर वे, तस्वी तत्त बणाय।
गगन गुफा मैं बिस्तरा, मीयां बैठे ध्यान लगाय।
रामचरण दर्वेश का वे, खलक न जांणै भेव।
अलख लग्या औजूद मैं, मीयां सदा अखंडित सेव।"[3]

आत्मा जब परमात्मा को प्रेम करने लगती है तो पल भर का वियोग असह्य हो जाता है। आत्मा परमात्मा का मिलन ही अनन्त संयोग है। इसके लिए साधक विरहिणी सदृश बेहाल रहता है। वह प्रियतम से उसकी दया की भीख माँगता है। दीन निवेदन में वह अपनी विरहदग्धा शारीरिक स्थिति का वर्णन करता है। दीदार के लिए उसके नयन झरते हैं। उसका प्रियतम उसे न भूले, वह जहाँ भी हो आकर उसे गले से लगा ले, यही उसकी साध है—

"सांईया अरज हमारी हो।
बिरहनि ऊपर कीजिए, टुक महर तुम्हारी हो।

---

१. अ० वा०, पृ० १००५।
२. वही।
३. वही।

मेद सुखत सकुची त्वचा, मेरो बदन गयो मुरझाय।
आसकी दीदार को, दोय नैन रहे झड़लाय।
दुखी तुम्हारे दर्श बिन, तुम कबर मिलोगे आय।
रामचरण की बीनती, पिया मति मोहि बीसर जाय।
बिरहनि कूं विश्वास दीजै लीजै कण्ठ लगाय।"[1]

प्रेम की इस आकुलता में उसे नींद नहीं आती। अपने प्रियतम से उसे यही शिकायत है कि तुम्हारे दर्शन के लिए निशिवासर जागना पड़ता है—

"रमइया मेरी पलक न लागै हो।
दरस तुम्हारै कारणै निशिवासर जागै हो।"[2]

प्रियतम की मिलनोत्सुकता के लिए चातक का आदर्श स्वामी जी को अभीष्ट है—

"स्वाति बूंद चातक रटै, जल और न पीवै हो।
घन आशा पूरै नहीं, तो कैसें जीवै हो।"[3]

और अब वियोग के बाद संयोग। इस स्थिति में साधक अपने प्रियतम से एकाकार होने की स्थिति में आ जाता है। दोनों प्रेमी प्रेमिका सदृश आपस में एक दूसरे का स्पर्श करने लगते हैं। यह पति-पत्नी का होली मिलन है। अविनाशी अविगत वर और सुन्दरी नवलकिशोरी सुरति पत्नी का यह फाग दृश्य ! क्या कहना है इस फाग का...फागुन में वह फाग आरंभ हुआ और भादो आ गया, अम्बर बरसने लगा। सुरति सुन्दरी भींगकर सुख में विभोर हो गई, उसका प्रियतम मुरारी उसका रूप निहारता है। इस मिलन फाग का करारा रंग ऐसा लगा कि उसका जन्म सफल हो गया—

"ररंकार पति सुरति सुंदरी अर्श पर्श रसैं होरी हो।
वर अविगत नहचल अविनाशी, सुंदरि नवलकिशोरी हो।
पंचरंग पीस गुलाल उड़ाई, तिरगुण केसर गारी हो।
अर्थ अबीर साज करि सूंधो, भरत प्रेम पिचकारी हो।
... ...
फागुन फाग रमत भयो भादू, अम्बर बरसै भारी हो।
भीजत सुरति गरक भई सुख में, निरखत रूप मुरारी हो।

---

१. अ० बा०; पृ० १००६।
२. वही (गावा का पद), पृ० १००६।
३. वही।

जीवन सुफल भयो नागरि को, लागो रंग करारी हो।
रामचरण पिव फगवा बकस्या, पूरी आस हमारी हो।"[1]

ऐसे ही पिया के संग प्यारी नित्य ही फाग खेलती है।[2] तभी एक दिन फाग खेलते में ही प्रिय ने उसे सुहाग-दान कर दिया। प्रिय ने प्रिया को अपना लिया, सदा के लिए अपना बना लिया। साधक का भाग्योदय हो गया क्योंकि प्रियतम से उसका राग बंधन हो गया, समर्पण का यही फल है। उसका प्रियतम गुणसागर है। उसने अपना अंग देकर चंचलता को अचलता में बदल दिया। प्रियतम और प्रिया का परस्पर एक दूसरे का स्पर्श सरिता सागर के मिलन जैसा है—

"खेलत फाग री, मोहि बकस्यो राम सुहाग।
पकर्‌यो हाथ नाथ अबला को, अंतर भरम बिलायो।
जाग्यो भाग राग बंध्यो पिव सूं, शरणा को फल पायो।
भरि पिचकारी प्रेम पियारी, सनमुख स्यांम चलाई।
आवत हबस लई पतिहित सूं, सुंदरि अंग लगाई।
अपणो अंग दियो गुण सागर, चंचल अचल कराई।
जैसे नीर बहै सरिता को, समंद समंद होई जाई।
अरस परस अंतर नहि दर्शं, परसै प्रीतम प्यारी।
जैसें डरी गरी सरबस की, कूंण करै जल न्यारी।"[3]

शरणागत की यही सुखानुभूति है। प्रिया और पिया का यही तन-मन का परस्पर अर्पण और मिलन है। यह अद्वैत स्थिति अवर्णनीय है—

"तन मन अर्प मिली पिव पतनी, न्यारी नेक न जावै।
रामचरण शरणैं सुख पायो, ताकी कहत न आवै।"[4]

उसे भासित होता है कि उसका प्रियतम सर्वव्यापी है। वह कहाँ नहीं है, यह कहा नहीं जा सकता। जल-थल, वृक्ष, पुष्प, तिल सभी में विद्यमान है। यह सम्पूर्ण विश्व उसी रहस्यमय का विस्तार है—

"रमईयो सब में रमि रह्यो हो।
हा हो कहुं नांहि कह्यो नहि जाय।

---

१. अ० बा०, पृ० १००१।
२. 'पिया संग प्यारी, ऐसें नित ही खेलत फाग'—वही, पृ० १००९।
३. वही, पृ० १००९।
४. वही।

अवनी उदक दारु में हुतभुक पुष्प गंध तिल तेल।
पय में घिरत परशि परिपूरण, अैसें हो मिल्यो है सुमेल।
अगम अगोचर निकट न दर्शे, बिन करणी सुख दूर।
भजन कियां उर अंदर भासै, आपा पर मैं भरपूर।"[1]

साधक को अपने प्रियतम की सामर्थ्य का आभास हो गया, वह आभारी है क्योंकि उसने उस पर कृपा की है, उसका दर्द पहचाना है—

"सांईया मैं समर्थ जांण्या हो।
महर करी मुझ ऊपरैं, मेरा दरध पिछाण्यां हो।"[2]

स्वामी रामचरण की कविता का रहस्यवादी स्वर उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है। रहस्यवादी अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा का भाव लेकर उसकी ओर आकृष्ट होता है। उसे प्रेमी या प्रेमास्पद के रूप में देखने लगता है। उसके प्रेम की भावुकता उसे दीवाना बनाये रहती है और वियोगावस्था में वह अपने हृदय की सम्पूर्ण करुणा व दीनता अपने उपास्य के चरणों में उड़ेल देता है। भावाकुल हृदय 'पिया' के दीदार के लिए बेचैन हो उठता है—

"दास की अरदास सुण, पिया दर्शण दीजे हो।
रामचरण बिरहनि कहै, अब बिलम न कीजे हो।"[3]

आत्मा-परमात्मा के मिलन की आनन्दानुभूति का तो कहना ही क्या है, दोनों 'पिया-प्यारी', 'पिव पतनी' या 'आशिक-महबूब' सदृश एक-दूसरे में तन्मय हो विलासरत होते हैं, रहस्यानुभूति की यही चरम परिणति है। जरसन के इस कथन की पुष्टि यहीं होती है— **"पवित्र और उमंग भरे प्रेम से परिचालित आत्मा का परमात्मा में गमन ही तो रहस्यवाद कहलाता है।"[4]** इसी प्रकार आत्मा-परमात्मा का एक-दूसरे के प्रति समान आकर्षण की बात भी रहस्यानुभूति की एक विशेषता है। स्वामी रामचरण का साधक रहस्यानुभूति के इस सोपान पर पहुँच कर अनन्त संयोग का अनुभव करने में तन्मय हो जाता है। संत कवियों के रहस्यवाद की जिस विशेषता की ओर हमारा ध्यान निम्नलिखित पंक्तियाँ ले जाती हैं उसके तत्त्व स्वामी रामचरण के काव्य में वर्तमान हैं। यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो

---

१. अ० वा०; पृ० १०००।
२. वही, पृ० १००८।
३. वही, पृ० १००६।
४. डॉ० रामकुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद; पृ० २७६।

जाता है। "ऐसा ज्ञात होता है कि संत सम्प्रदाय के रहस्यवाद में वैष्णवभक्ति के प्रेम का उत्कर्ष और सूफी मत के इश्क की मस्ती का योग है।"[१]

अन्त में हम 'पीव पिछांण को अंग' की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत कर इस प्रकरण को समाप्त करेंगे जिसमें कवि रहस्यमय प्रियतम के मिलन के विवरण को 'भया जु मन का भावता' में ही समाप्त कर 'कासूं कहिये बैण' में अपनी असमर्थता प्रकट कर देता है। इस असमर्थता का कारण अनुभूति की तन्मयता ही है—

> "पीव पिछांण्या हे सखी, आदि अंत का सैण।
> भया जु मन का भावता, कासूं कहिये बैण।"[२]

रसानुभूति

विद्यावाचस्पति पंडित रामदहिन मिश्र ने 'काव्य-दर्पण' ग्रंथ की तैंतीसवीं छाया में 'अनुभूतियाँ' शीर्षक के अन्तर्गत रसानुभूति पर अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है—

"रसानुभूति—काव्य की उस अनुभूति को जिसमें मन रम जाता है, आँसू बहाता हुआ भी पाठक, दर्शक या श्रोता उससे विलग होना नहीं चाहता, रस कहा जाता है। काव्यानुभूति और रसानुभूति में कोई विशेष अन्तर नहीं, पर कुछ लोगों का विचार है कि काव्यानुभूति विशेषतः कवि को और रसानुभूति दर्शक, पाठक या श्रोता को होती है। यह कहा जा सकता है कि दोनों को दोनों प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। दोनों का अन्योन्याश्रय रहता है। कवि जब काव्य की अनुभूति करता है और पाठक को उसमें रस मिलता है तभी वह काव्य कहलाता है।"[३]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कवि और काव्यानुरागी दोनों को रसानुभूति होती है। अब यहाँ संतकाव्य में रसानुभूति का प्रश्न उठना स्वाभाविक है। यहाँ यह स्मरणीय है कि संतों ने कविता को लौकिक उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम कभी नहीं बनाया। उन्होंने सदैव कविता को आध्यात्मिकता की भावभूमि का सहारा दिया है। उनके लिए कविता साध्य नहीं, साधन थी। इसीलिए संतों की वाणी में काव्य तत्त्वों के खोजकर्त्ताओं को शास्त्रीयता का सर्वथा अभाव मिलेगा। संत काव्य की रसात्मकता पर टिप्पणी करते हुए 'संतकाव्य' शीर्षक के अन्तर्गत डॉक्टर रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "जिस अर्थ और विशेषता के साथ काव्य में रस की सृष्टि होती है वैसी विशेषता संतकाव्य में रस की नहीं है। रस का जो विशेष गुण साधारणीकरण है वह इस काव्य में अवश्य है। वस्तुस्थिति का सौन्दर्यबोध भी संतों द्वारा ग्रहण किया

---

१. हिन्दी साहित्य : द्वितीय खण्ड (सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा) के अन्तर्गत डॉ० रामकुमार वर्मा लिखित 'संतकाव्य', पृ० २२९।

२. अ० वा०, पृ० १३।

३. पं० रामदहिन मिश्र : काव्यदर्पण, पृ० १२१।

गया है। किन्तु स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों की सम्मिलित अनुभूति से रस-निष्पत्ति में संतों का काव्य नहीं लिखा गया। अपनी अनुभूति के चित्रण की विह्वलता में उनके पास इतना अवकाश भी नहीं था कि वे रस के उपकरण खोजते।"[1]

स्वामी रामचरण संत कवि थे। उनका विशाल 'वाणी' एवं ग्रंथ साहित्य विभिन्न अनुभूतियों का आगार है। यद्यपि उन्होंने रीति कवियों की भाँति रस-वर्णन की शास्त्रीय पद्धति नहीं अपनायी, फिर भी उनका काव्य उनके रस-बोध का परिचायक है। स्वामी जी ने लोक जीवन को निकट से देखा था। उसमें व्याप्त कुरता की उन्होंने भर्त्सना की और सभी स्तर के सामाजिकों को उन्होंने रामभक्ति का पुनीत संदेश दिया था। वस्तुतः यह भक्ति भावना ही उनके काव्य में व्याप्त विभिन्न रसों की प्रेरणा है। इस दृष्टि से विचार करने पर हमें उनके काव्य में शृंगार, शांत, अद्भुत, वीभत्स और हास्य रसों का प्राधान्य मिलता है। रहस्यवादी रचना में आए दाम्पत्य प्रतीकों में शृंगार रस के दोनों पक्षों, संयोग और वियोग, के बड़े ही मर्मस्पर्शी चित्र मिलते हैं। उपदेश और चिन्तावणी के अंगों में शान्त रस की अजस्रधारा प्रवाहित होती है। यों तो स्वामी जी के सम्पूर्ण काव्य-साहित्य में शान्तरस का सागर ही लहराता मिलेगा। इसी प्रकार ब्रह्म की विराटता आदि के वर्णन में अद्भुत और लोकजीवन की रूढ़ियों तथा बाह्याचारों के थोथेपन का मजाक उड़ाने में हास्य रस की अभिव्यक्ति पायी जाती है। यहाँ संक्षेप में उनके काव्य की विभिन्न रसों की दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत है।

शृंगार रस

शृंगार रस को रसराज कहा गया है। इसमें स्त्री-पुरुष के पारस्परिक प्रेम का वर्णन होता है। शृंगार की लौकिकता संतकाव्य का अभीष्ट नहीं है पर जीव और ब्रह्म के पारस्परिक मिलन की मधुर भाव-भूमि में संयोग और ब्रह्म को पाने की बेचैनी, तड़पन में वियोग शृंगार के अनेक मादक, मोहक एवं मर्मस्पर्शी चित्र स्वामी रामचरण की कविता के शृंगार बन कर आए हैं।

संयोग शृंगार

एक दूसरे के प्रेम में पड़कर नायक-नायिका जब आपस में प्रेम-क्रीड़ा (आलिंगन, चुम्बन, मधुर सम्भाषण, दृष्टि का आदान-प्रदान आदि) में रत रहते हैं तब शृंगार के संयोग पक्ष की अभिव्यंजना होती है। लोक शृंगार के संयोग पक्ष में उपर्युक्त क्रीड़ाएँ वर्णित हैं पर आध्यात्म शृंगार के संयोग पक्ष में जीव-ब्रह्म या आत्मा-परमात्मा के संयोग या मिलन की अभिव्यक्ति प्रतीकों में हुई है। स्वामी रामचरण के काव्य में आत्मा नायिका और परमात्मा नायक रूप में चित्रित है। ररंकार पति और सुरति-सुंदरी के परस्पर स्पर्श का यह चित्र कितना मादक है। होली का यह दृश्य संयोग शृंगार का सुंदर उदाहरण है—

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य, पृ० २३३-३४।

"ररंकार पति सुरति सुंदरी अर्श पर्श रमै होरी हो।
वर अविगत नहचल अविनाशी सुंदरि नवलकिशोरी हो।
पंचरंग पोम गुलाल उड़ाई, तिरगुन केसर गारी हो।
अर्क अबीर साच करि सूंधो भरत प्रेम पिचकारी हो।"[1]

ररंकार पति और सुंदरी सुरति के केलि का यह दूसरा चित्र भी सयोग शृंगार का अच्छा उदाहरण है। इसमें भी सुंदरी को उसका नायक स्पर्श सुख देता है—

"ररंकार पति परसिया सुरति सुंदरी नारि।
रामचरण केला करै, मिलकै गिगन मंझारि।"[2]

दोनों सुख-सेज पर विलासरत हैं, इसके आगे जगत विलास नीरस लगता है। आठ पहर चौंसठ घड़ी इसी सुख विलास में समय व्यतीत होता है। प्रियतम के संयोग सदृश दूसरा सुख इस धरती पर नजर नहीं आता—

"पिव पतनी सुख सेझ पर हिलमिल करत निवास।
रामचरण तबही लगै, फीको जगत विलास।
आठ पहर चौसट घड़ी, सुख विलसत दिन जाय।
पिव अविनासी संग सुरति, नास कदे नहि थाय।
रामचरण पिव पाईया तब निजर न आवै ओर।
सो सुख पिव की सेझ पर, सो नहीं दूसरी ठोर।"[3]

वियोग के बाद मिलन में जो सुखानुभूति होती है उसका चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है। सुंदरि के भाग्य से विरहिणी का प्रियतम उसकी सेज पर आ गया है। विरह की आग बुझ गयी। विरहिणी के हृदय में आनन्द का उछाह भर गया और वह प्रियतम के आलिंगन-पाश में बँधकर सो गई। बहुत दिनों का वियोगी प्रियतम मिला था, उसने स्पर्श किया और सभी काम बन गये—

"बिरहनि अंदर सुख भया, बलती बुझीज आगि।
पीव पधार्‌या सेज में, मोहिं सुंदरि के भाग।
बिरहनि अनंद उछाव कर, मिली पीव सूं ध्याय।
रामचरण सुख सेझ पर, सूती अंग लगाय।

---

१. अ० वा०, पृ० १००१।
२. वही, पृ० १४।
३. वही।

बहोत दिनां का बीछड़्या, मिल्या सनेही राम।
रामचरण पिव परस्तां, सरिया सबही काम।"[१]

'गावा का पद' से संयोग शृंगार का एक और चित्र देखिए। नायिका का हृदय संयोग सुख की कल्पना से भरा हुआ है। आज उसके महल में उसके प्रियतम का आगमन है। वह हर्षातिरेक से विभोर हो रही है, उसके साहब ने उसकी पुकार पर प्यार जो दिया है। उसका हृदय नयी-नयी कल्पनाओं का निधान बन गया है। वह अपने प्यारे को पान देगी, कत्था, चूना सुपारी सब मौजूद है। प्रेम के दीपक से उसका मन्दिर जगमगा उठेगा। वह प्रीति की सेज सजायेगी और शील का शृंगार सजा कर प्रियतम के अंग से लगकर आलिंगन सुख में जी भर डूबेगी। हृदय आनन्दोल्लास से भर उठा है। नया-नया प्यार जो हुआ है। इस नये नेह में वह अपने प्रियतम पर सर्वस्व (तन मन धन) न्यौछावर कर देने की उत्कण्ठा से विह्वल है। बहुत दिनों पर प्रियतम से मिलन हुआ है। कामनाओं को जीवन मिल गया, जैसे वे उल्लास में विलसने लगी हों। घर आये अपने स्वामी को एक पल की चतुर्थांश अवधि के लिए भी उसे ढीला नहीं छोड़ेगी। आज वह सब कुछ हो गया जो उसके 'मन का भावता' है। संशय, शोक, दुर्भाग्य कहीं जा छिपे। वह सुहागवती हो गयी, प्रियतम के संग प्रेयसी का भाग्योदय हो गया—

"मेरे महल पधार्‌या प्रीतमा हो, सखी री मेरै साहिब सुनी है पुकार।
पणकर पांन भाव करि काथो, चूनो कर्म जलाय।
साच सुपारी साजकर बिड़लो, मोहि सतगुरु दियो है झिलाय।
प्रेम का दीपक जोय मंदिर में, प्रीति का पिलंग बिछाय।
शील शृंगार साज पिव परशूं अंग सूं अंग लगाय।
उर आनंद उछाव भयो अति, लग्यो है नवलो नेह।
तन मन धन न्यौछावर करिहूं, साहिब कूं आपा देह।
बहुत दिनां सैं प्रीतम पाया, सर्‌या है मनोरथ काम।
पाव पलक ढीला नहि छाडूं, घर आया केवल राम।
अब तो मेरा भया है भावता, दरिया सबही संत।
शिव सनकादिक शेष रटत हैं, सोही में पाया है कंत।
शांशो शोक दुहाग दुर्‌यो सब, सुंदरि लह्यो जी सुहाय।
रामचरण पूरण पद पायो, पिया संग जाग्यो है भाग।"[२]

फाग के रसरंग में प्रिया को प्रियतम ने सुहाग दे दिया। उसका हाथ पकड़ कर उसके हृदय का संशय दूर कर दिया। फिर क्या, प्यारी ने प्रेमभरी पिचकारी साधकर अपने

---

१. अ० वा०, पृ० ११
२. वही पृ० ९९९-१०००।

प्रियतम पर चला दी और पति ने आकर बड़े प्यार से उस उत्कंठिता को आलिंगन में आबद्ध कर लिया। अंगों के इस विनिमय में प्रियतमा के चपल तन-मन थिर हो गए जैसे सलिला सागर में मिलकर सागर ही हो जाय। प्रेमी-प्रेमास्पद के पारस्परिक स्पर्श से अन्तर अदृश्य होगया—

"खेलत फाग री, मोहि बकस्यो राम सुहाग।
पकर्‌यो हाथ नाथ अबला को, अंतर भरम बिलायो।
जाग्यो भाग राग बंध्यो पिव सूं, शरणा को फल पायो।
भरि पिवकारी प्रेम पियारी, सनमुख स्याम चलाई।
आवत हबस लई पति हित सूं, सुंदरि अंग लगाई।
अपणो अंग दियो गुणसागर, चंचल अचल कराई।
जैसे नीर बहै सरिता को, समंद समंद होई जाई।
अरस परस अंतर नहि दशैं, परसै प्रीतम प्यारी।
जैसे डरी गरी सब रस की, कूंण करै जल न्यारी।"[1]

तन मन प्रिय को अर्पित करके पत्नी अपने प्रिय की हो गयी। अब उससे तनिक भी विलग नहीं होगी। कवि की दृष्टि में शरण सुख की इस अवस्था को वाणी नहीं दी जा सकती।

"तन मन अर्प मिली पिव पतनी।
न्यारी नैंक न जावै।
रामचरण शरणै सुख पायो।
ताकी कहत न आवै।"[2]

स्वामी जी के संयोग श्रृंगार की नायिका परकीया नहीं प्रत्युत स्वकीया है, वह अपने प्रियतम की प्रियतमा पत्नी है। आध्यात्मिक संयोग श्रृंगार के वर्णन में स्वामी जी को अन्यतम सफलता मिली है। संयोग की तीव्रानुभूति उपर्युक्त विवेचन से पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है।

वियोग श्रृंगार

परस्पर अनुरागरत नायक और नायिका जब एक-दूसरे से विलगावस्था में बिछुड़न की अनुभूति करने लगते हैं तब वियोग श्रृंगार की व्यंजना होती है। स्वामी रामचरण के काव्य में नायक ब्रह्म और नायिका जीव (परमात्मा और आत्मा) के एक-दूसरे से बिछुड़ने की बड़ी मर्मस्पर्शिनी अभिव्यक्ति हुई है। स्वामी जी के वियोग श्रृंगार में पूर्वराग की विभिन्न स्थितियां

---

१. अ० वा०, पृ० १००९।
२. वही।

के चित्र मिलते हैं। पर मान और प्रवास का कदाचित् समावेश नहीं। स्वकीया बिरहिणी अपने प्रियतम के लिए बेहाल होकर बार-बार उसका स्मरण करती है। उसके लिए तड़पती है। 'बिरह को अंग' में ऐसे अनेक मर्मस्पर्शी स्थल हैं जिसमें कवि का विरही हृदय अपने 'राम' के लिए आकुल है। कवि अपने उसी राम घन का चातक है। वह चकोर है जो सारी जिन्दगी शशि पर दीवाना रहता है। वह अपने राम को वैसे ही स्मरण करता है जैसे राही प्रभात को—

"ज्यूं चात्रग घन कूं जपै, शशि कूं जपै चकोर।
रामचरण रामै जपै, जैसे पंथी भोर।"[१]

राम के लिए उसका जी तड़पता है। अतः वह राम को बार-बार स्मरण करता है, जैसे सीप स्वाति का और दुखियारी अपने प्रिय का स्मरण करती है—

"सीप जपै ऋतु स्वाति कूं, आरतवंती पीव।
रामचरण रामै जपै, तुम बिन तलफै जीव।"[२]

विरह विकास की अवस्था में रातदिन तड़पते तड़पते हृदय में घाव हो गया है। इस घाव का उपचार केवल उसका प्रियतम राम ही कर सकता है, जो वैद्य है—

"रात-दिवस तलफत रहै, राम वैद तुम आव।
रामचरण बाघी बिरह, कियो कलेजै घाव।"[३]

इस विरह रोग की वेदना कोई नहीं जानता। इसे या तो वियोगिनी का प्रियतम या फिर स्वयं बिरहिणी या विरही—

"रामचरण बिरह रोग की, पीड़ न जांणै कोय।
कै बिरहनि का प्रीतमा, कै जा घट बिरहा होय।"[४]

विरह अग्नि है जिसमें नित्य जलना विरहिणी की रीति है। कवि कहता है कि सती तो अपना शरीर एक बार जलाती है पर वियोगिनी का रोज जलना उसकी रीति है—

"भस्म करै तन आपणो, सती विषै की प्रीति।
बिरह अग्नि में नित जलै, ए बिरहनि की रीति।"[५]

---

१. अ० वा०, पृ० १०।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ११।
५. वही।

और विरहाग्नि में सब तन जल गया, लोहू और माँस भी नहीं शेष रह पाया। तभी विरहिणी ने आर्त्त स्वर में निवेदन किया कि हे राम हे ! प्रियतम ! तुम्हारे दीदार बिना सांस नाभि का स्पर्श ही नहीं कर पाती—

"बिरह अग्नि सब तन दह्यौ, लोही रह्यो न मांस।
रामपियारे दरस बिन, नाभि न बैठे सांस।"[1]

प्रियतम के दीदार के लिए विरहिणी दिनरात जगती है। उसे पल भर के लिए भी नींद नहीं आती। बाट जोहते उमर कटती है। उसके नेत्रों को दर्शन की आशा है उस पपीहे के सरिस जो बादलों से आशा पूरी होने की प्रतीक्षा में जिया करता है। प्रिय दर्शन में तनिक भी विलम्ब उसे सह्य नहीं—

"रमइया मेरी पलक न लागै हो।
दरश तुम्हारै कारणै, निशिबासर जागै हो।
दशूं दिशा आतर करूँ, तेरो पंथ निहारूं हो।
राम राम की टेर दे, दिन रैण पुकारूं हो।
नैंन दुखी दीदार बिन, रसना रस आशै हो।
हिरदो हुलसै हेत कूं, हरि कब परकाशै हो।
स्वाति बूंद चातक रटै जल और न पीवै हो।
घन आशा पूरै नहीं, तो कैसे जीवै हो।
दास की अरदास सुण, पिया दर्शण दीजे हो।
रामचरण बिरहनि कहै, अब बिलम न कीजे हो।"[2]

प्रियतम से दया की याचना करती हुई विरहिणी अपनी वियोगावस्था की बिभिन्न स्थितियों का वर्णन करती है। अब तो साँस भी बिना पीड़ा के नहीं सरकती। दर्द के साथ जब श्वास भीतर प्रवेश कर शरीर में व्याप्त होती है तो इस शरीर के पंजर दुखने लगते हैं। शरीर की हड्डियाँ उस काठ के सदृश हो गई हैं जिसमें बिरह के घुन लग गए हैं। मज्जा सूख रही है, त्वचा में संकुचन आरम्भ हो गया है। मेरा आनन मुरझा गया है। दीदार की आशिकी में दोनों नयन झर रहे हैं—

"सांईया अरज हमारी हो।
बिरहनि ऊपर कीजिये टुक महर तुम्हारी हो॥

---

१. अ० वा०, पृ० ११।
२. वही, पृ० १००६।

सास सपीड़ा सकै व्यापै, पिंजर रह्यो है पिराय।
काठ जैसे अस्थि बीझै, बिरहा घुंण ज्यूं खाय।
मेद सुखत सुकुची त्वचा, मेरो बदन गयो मुरझाय।
आसकी दीदार की, दोइ नैंन रहे झड़लाय।"[१]

'नेत्र तुम्हारे दर्शन के बिना दुखी हैं', इस बहाने भी प्रिय से तो मिलन हो जाय। पर तभी विरह की तीव्र धार फूट पड़ी और बहाने बह चले। विरहोत्कंठिता का स्वर गूंजने लगा। वह विश्वास माँगती है, प्रियतम के गले से लग जाना चाहती है। उससे न भूलने की पुनः-पुनः विनती करती है—

"दुखी तुम्हारै दर्श बिन, तुम कबर मिलोगे आय।
सोही दिहाड़ो नीसरै सो तो एक वर्ष कै भाय।
रामचरण की बीनती, पिया मति मोही बीसर जाय।
बिरहनि कूं विश्वास दीजे, लीजे कण्ठ लगाय।"[२]

विरहिणी का जीव 'पीव' में बसता है, नित्य उसी में लीन रहता है, इस आशा में कि कभी तो उसकी मनोकामना उसका प्रिय पूरी करेगा। इस संसार में सभी सुखी हैं, केवल विरही मन ही दुखी रहता है—

"सुखिया सब संसार है बिरही चित्त उदास।
जीव बसै नित पीव में, कब हरि पुर्वै आस।"[३]

विरहिणी अन्य सभी दुख झेलने को तैयार है, पर प्रिय वियोग का दुख असह्य है। अतः वह प्रियतम से शीघ्र मिलने की आकांक्षा व्यक्त करती है। निम्नलिखित पंक्तियों में कितनी आतुरता है—

"दूजा दुख सबही सहूं, पिव दुख सह्यो न जाय।
रामचरण बिरहनि कहै, बेग मिलो हरि आय।"[४]

अब उसे केवल दीदार की लालसा मात्र रह गई है। वह प्रियतम को देखकर ही संतोष करने को प्रस्तुत है। इसीलिए कहती है, प्रियतम ! तुम क्यों छिपे हुए हो ? ऐसी निठुराई ? दरस दो प्यारे, तुम बिन रहा नहीं जाता। दर्शन दो नहीं तो प्राण शरीर छोड़ देंगे—

---

१. अ० वा०, पृ० १००६।
२. वही।
३. वही, पृ० ११।
४. वही।

"दुखी तुम्हारे दरस बिन, तुम क्यूं रहे लुकाय।
कै दरसो कै तन तजूं, तुम बिन रह्यो न जाय।"[1]

स्वामी रामचरण के विरह दर्पण में आदर्श विरही का रूप झलकता है। विरहानुभूति की विभिन्न दशाओं के अनेक मार्मिक चित्रों का चित्राधार स्वामी जी का विरह काव्य है। इस विरह निवेदन में पपीहे की आर्त्त पुकार है, चकोर की तन्मयता है, घायल हृदय की तड़पन है और है प्रिय मिलन की तीव्र उत्सुकता तथा दीदार के अभाव में तन त्यागने की चुनौती। बिरह की आग बढ़ती गई, दर्शन की आतुरता सीमा पार कर गई। विरहिणी की कातर पुकार कातरतर से कातरतम होती चली गई। विरहिणी का सर्वाङ्ग वियोगानल की लपटों में आ गया, अब बुझने की आशा नहीं दीखती। क्या करती बेचारी, 'रमइया मित्त की चाह' हृदय में संजोये विरह में जलती रही। तभी विरह की लपटों से एक बेदस स्वर सुनाई पड़ा—

"विरह बधो विस्तार कर फैली सब घर मांहि।
रामचरण क्यूं ही कियां, बुझती दीसै नांहि।"[2]

तभी उसे विदित हुआ कि उसका महबूब निरंजन राम तो उसके अति निकट था, पर माया ने पर्दा डाल रखा था, जिससे दर्शन दुर्लभ हो गया। निकट की दूरी खल गई। आशा बँधी 'पीव हजूर' के दर्शन की। अब उसे प्रतीक्षा है पर्दा के मिट जाने तक की। माया का पर्दा विरहिणी और उसके प्रियतम निरंजन राम के बीच से जब हटेगा तो वह उसका दीदार कर निहाल हो जायेगी—

"राम निरंजन निकट है माया पड़दै दूर।
बिरहनि का पड़दा मिटै तो दरसै पीव हजूर।"[3]

यही है स्वामी रामचरण की विरहानुभूति। इसमें विरही हृदयों की कसकों के अनेक सवाक् चित्र दृष्टिगत हो रहे हैं। स्वामी रामचरण का विरह वह आईना है जिसमें मीरां सदृश विरहिणियाँ अपना रूप देख सकती हैं।

शांत रस

संतों ने सर्वाधिक प्रमुखता से जिस रस की अनुभूति की है वह शान्त रस ही है। असार संसार के प्रति निर्वेद भाव के जागरण होने पर ही शांतरस की अनुभूति होती है। स्वामी रामचरण के काव्य में शांत रस का प्राधान्य सर्वत्र दृष्टिगत होता है। यों तो उनके सम्पूर्ण साहित्य में

---

१. अ० वा०, पृ० ११।
२. वही।
३. वही।

शांत रस की अनुभूति होती है पर चितावणी और उपदेश के अंगों में इस रस का वर्णन विशेष रूप से हुआ है। शांतरस के कतिपय छंद इस विवेचना में प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

'कुण्डलिया चितावणी को अंग' में सांसारिक संबंधों एवं उपकरणों की नश्वरता पर प्रकाश डालते हुए स्वामी जी इन सभी से परे होकर भजन द्वारा मुक्ति का उपाय सुझाते हैं। धरा-धाम-धन, रिश्ते-नाते सभी छूट जाते हैं, केवल यश-अपयश संसार में रह जाता है—

"धरा समंधी धाम धन संग ले चल्यो न कोय।
जश कुजश संसार मैं, पीछे रह गया दोय।
पीछे रह गया दोय संग शुभ अशुभ सिधाया।
शुभ स्वर्गादिक सुख अशुभ दुख नरक भुगाया।
रामचरण इनकै परै मुक्ति भजन सूं होय।
धरा समंधी धाम धन संग ले चल्यो न कोय।"[1]

'गावा का पद' का निम्नलिखित पद भी मन में निर्वेद का संचार करता है। यह शरीर पाहुने के समान है, इस पर गर्व करना निरर्थक है। मेहमान सदृश आज या कल में इसे उठकर चले जाना है। संसार का मोह मिथ्या है। तन, धन, धाम सभी झूठ हैं। इसीलिए सजग होकर राम का स्मरण करना चाहिए—

"यो तन पाहुवणो रे, मति कोई करो गुमान।
पिरसूं काल्ह कि आज मैं रे, उठ चले मिझमान।
नदिया नाव संजोग है रे, बिछड्या मेला रे नांहि।
गया सो फेर ना वाहुड्या रे, समझ देख मन मांहि।
छत्र सिंहासन छांडि कै रे, मर मर गया रे अमीर।
तू क्यों गाफिल होइ रह्यो रे, काचा धार शरीर।
मोत खड़ी शिर ऊपरै रे, जीवण झूठी रे आश।
कहा जांणूं कब चालसी रे, बाट बटाऊ सास।
झूठी जग की मोहणी रे, झूठां तन धन धाम।
रामचरण अब चेत कै रे, सुमर सनेही राम।"[2]

इसी प्रकार प्रकट जल को छोड़कर मरीची नीर के पीछे भटकते मन को कवि सचेत करता है—

---

१. अ० वा०, पृ० १७२-७३।
२. वही, पृ० १००९।

"मन तू भरम भूल्यो बीर।
मृगतृष्णा जल देखि ध्यायो, परिहरि परगट नीर।
सांचा प्रीतम परिहर्‌या रे, कूड़ै कीयो सीर।
भीड़ पड़्यां भग जायगा रे, कोई न बँधावै धीर।
माता पिता सुत भामिनी रे, इन संग पावै पीर।
धन जोबन मति देखि भूलै, ये सब नांही थीर।
जगत धार्‌यो राम बिसार्‌यो, गह कौड़ी तज हीर।
अन्त काल पछितायगो रे, सुन काफर बे पीर।
मर्म कर्म सूं लागियो रे, समझ्यो नीर न खीर।
काचा सब कल जायगा रे, ज्यूं पावक संग कथीर।
सतगुरु शब्द पिछांण कै रे, छाडि छीलर तीर।
रामचरण दरियाव भजिये, राम गुणां गंभीर।"[1]

रामस्मरण के साथ संतों की संगति भी शांत रस का विषय है। संसार से विरक्त होकर संत सागर में निवास करने का उद्देश्य स्वामी जी निम्नलिखित पद में देते हैं—

"कर मन संत सागर बास।
यो संसार विनाश छीलर, देख होय उदास।
ज्ञान जल मुर्जाद मत दृढ, थाग पावत नांहि।
शब्द साखी सीप भरिया, राम मुक्ता मांहि।
समंद सूभर सीप सूभर, चुगत हंसा दास।
आन दिशा को उड़त नांही, पाय परम निवास।
तीन बिधि की ताप सैं जग जलत छीलर तीर।
रामचरण जहाँ जाईये, जहाँ ब्रह्म सुख की सीर।"[2]

जीवन भाग रहा है, मृत्यु निकट आती जा रही है। संत सचेत कर हरिस्मरण के लिए प्रेरित करता है। सोते-सोते जीवन बीत गया। पर इस जीव ने हरि से हेत नहीं लगाया। उपर्युक्त भाव से पूरित यह पद शान्त रस की अनुभूति कराता है—

"जागो रे जीवन जाइ भागो, मरणो आवै आघो रे लो।
संत जगावै मर्म नशावै, हरि के सुमरण लागो रे लो।
ज्यो सोया ज्यां सरबस खोया, हीरा-सा जन्म बिगोया रे लो।
जन जाग्या हरि सुमरण लाग्या, कर्म कालम्यां धोया रे लो।

---

१. अ० वा०, पृ० १०१०।
२. वही, पृ० १०१०।

सूतां कूं जम आप पहूंता, जागत देख डराया रे लो।
गज गणिका पशुवां के हनतां, आपो आप बचाया रे लो।
... ...
सोवत सोवत जन्म बिदिता, तस्कर मुसै न चिता रे लो।
रामचरण हरि हेत न जाग्या, आदि अंत रह्या रीता रे लो।"[1]

इसी प्रकार स्वामी रामचरण के काव्य-साहित्य में शांत रस के छंदों की भरमार है। वस्तुतः संतों का जीवन ही शान्ति का स्रोत है। उनसे शांत भाव की प्रेरणा मिलती है। फिर उनके साहित्य से शांत रस की अनुभूति क्यों न हो ?

अद्भुत रस

अलौकिक प्रसंगों से उत्पन्न विस्मय से अद्भुत रस की अनुभूति होती है। संत-साहित्य में ब्रह्म की विराट कल्पना, अगम देश, अगम पुरुष आदि के वर्णन में विस्मय भाव का परिपोष हुआ है। स्वामी जी के साहित्य में अद्भुत रस के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। 'दृष्टान्त सागर' के दृष्टिकूटों में भी अद्भुत रस के उदाहरण प्राप्त हैं। अगम देश की चर्चा में कवि अद्भुत रस की अनुभूति कराने में सफल हुआ है। निम्नलिखित पंक्तियाँ इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं—

"बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजै तूर।
बिन श्रवणां अनहद सुणैं जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर।
जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर ओर कोई निजर न आवै।
सूरति रही मठ छाय देह तहाँ जाण न पावै।
रामचरण वा देश में बहु परकाशै सूर।
बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजै तूर।"[2]

'नाम प्रताप' में सागर का हंस में प्रवेश का विस्मयकारी वर्णन अद्भुत रस की अनुभूति कराता है—

"सायर तट हंस बैठा जाई।
सायर हंस में रहा समाई।
ओतप्रोत भया द्वैत न दर्शै।
संत गरक ब्रह्म सुख कूं पर्शै।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० १०१२।
२. वही, पृ० १४१।
३. वही, पृ० २०७।

गगनवासी अलेख पुरुष का आश्चर्यमय वर्णन भी इस संदर्भ में द्रष्टव्य है—

"गिगन मण्डल में रम रह्या, रहता पुरुष अलेख।
रूप रेख जाकै नहीं, नहि कोइ स्यांम न सेत।"[1]

'दृष्टान्त सागर' में सीप मोती के दृष्टान्त द्वारा अद्‌भुत रस की प्रतीति इन पंक्तियों में होती है—

"दोय नारि को उदर इक, मिली नहीं भरतार।
बिन्दु झेल पैदा किया, पीहर पूत अपार।"[2]

इसी सन्दर्भ का दूसरा उदाहरण भी प्रस्तुत है—

"तात सही माता नहीं, नहीं तात की आस।
भई सपूती पूत जण, गई न सासर वास।"[3]

स्वामी रामचरण को अद्‌भुत रस के वर्णन में सफलता मिली है। उपर्युक्त विवेचन से इस बात की पुष्टि होती है।

बीभत्स रस

घृणित उपकरणों को देखने या तद्विषयक चर्चा से जिस जुगुप्सा की अनुभूति होती है, उसे वीभत्स रस कहते हैं। वैराग्य उत्पन्न होने पर सांसारिक वस्तुओं के प्रति जिस स्वाभाविक घृणा की अनुभूति होती है वह भी वीभत्स के सीमान्तर्गत है। जैसे श्रृंगार रस के उद्दीपक शरीर के विभिन्न अंगों का सौन्दर्य विराग के कारण वीभत्स की अनुभूति करने में सहायक होता है। संत काव्य में वीभत्स रस की अनुभूति इसी रूप में हुई है। 'पंडित संवाद' ग्रंथ की निम्नलिखित पंक्तियों को पढ़कर जुगुप्सा की अनुभूति होती है—

"कामणि संग कूकर ज्यूं लागै।
विष की लहरि सुमति नहिं जागै।
तन मन मेल्यो मूत बिकारा।
मोहि बताय कहां आचारा।
जीं द्वारे होइकै तूं आया।
सोई फिर भुगतण कूं ध्याया।

१. अ० वा०, पृ० १३।
२. वही, पृ० १०३५।
३. वही।

रह्या मास दश ग्रभ के मांही।
काया रस सूं रुचि उपजांही।
विष्टा मूत्र अंत रस पीयो।
ता आधार गर्भ में जीयो।"[१]

'चन्द्रायणा माच को अंग' का यह अंश भी वीभत्स रस की अनुभूति कराने में समर्थ है—

"हाड़ चाम अरु रक्त मांस की पोट रे।
आंत ओझ मल मूत्र भर्‌या मन खोट रे।
ऊपर कीयां स्नान घुपै नहि कर्म रे।
परिहां रामचरण भज राम ओर तज धर्म रे।
देह भरी दुर्गन्ध बहै नव द्वार रे।
चोको चूल्हो पोत कहै आचार रे।
नरनारी का मांस मदन मद पीवणां।
परिहां शुचि राम बिसार वृथा जग जीवणां।"[२]

इसी प्रकार 'कामी नर को अंग' में नारी संग के प्रति जुगुप्सा का भाव उत्पन्न कर कवि वीभत्स की सृष्टि करने में सफल हुआ है—

"तन मन मैली नार, मैला नर संगति करै।
ले जाय नरक दुवार, जहां मैल दुर्गन्ध भरै।"[३]

स्वामी रामचरण को वीभत्स रस के वर्णन में उपर्युक्त स्थलों पर पर्याप्त सफलता मिली है। संत कवि मानव हृदय में लौकिकता के प्रति वीभत्स रस का भाव जगा कर विराग ग्रहण करने की प्रेरणा देता है। स्वामी रामचरण ने नारी के तन मन के प्रति घृणा तो जगाई ही है, हाड़-मांस के शरीर के प्रति भी जुगुप्सा उत्पन्न करने में सफल हुए हैं।

हास्य रस

हास स्थायी भाव की पुष्टि के द्वारा हास्य रस की अनुभूति होती है। हिन्दी काव्य साहित्य में निर्मल हास्य का प्रायः अभाव ही है। फिर संत काव्य में तो उसका और भी गुजारा नहीं। हास्य के नाम पर व्यंग्य को प्रश्रय मिला है। स्वामी रामचरण की कविता में भी हास्य

---

१. अ० वा०, पृ० ९८४।
२. वही, पृ० ८४।
३. वही, पृ० ५६।

के नाम पर व्यंग्य ही मिलेगा। ग्रंथ 'पंडित संवाद' में स्वामी जी कलियुगी पंडितों का मजाक उड़ाते हुए इस प्रकार व्यंग्य करते हैं—

"कलिजुग के पंडित पाखण्डी।
घर में कुबुधि करकसा रण्डी।"[1]

'बेजुक्ति तिरस्कार' ग्रंथ में साधु सन्यासियों के वेष की नारी वेष से तुलना करके उन सभी का मजाक उड़ाने में स्वामी जी हास्य रस की सृष्टि करते हैं। मुंडित संन्यासी और नारी की अनुरूपता का चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णित है—

"भद्र भेष नारी सूं संग।
बिना मूंछ दोन्यू इक रंग।
मूंछा बिना पुरुष नहि दीसै।
जैसे रांड रांड मिल पीसै।"[2]

इसी प्रकार कनफटा योगी और कनफटी नारी की अनुरूपता दिखाकर स्वामी जी कनफटे योगियों पर व्यंग्य करते हैं—

"कान फड़ायरु जोगी भया।
नारि कनफड़ी सूं मन दिया।
कर्णफूल मुद्रा इक संग।
छैल छबीला नाना रंग।"[3]

"साच को अंग' में स्वामी जी मुल्ला की अजान का मजाक यह कह कर उड़ाते हैं कि वह सर्वव्यापी करीम बहरा नहीं है, फिर तू क्यों बांग देता है—

"सकल जिहान में रमि रह्या, मुल्ला एक रहीम।
बांग सुणावै कूंण कूं, बहरा नांहि करीम।"[4]

स्वामी रामचरण के काव्य में यद्यपि हास्य प्रचुर मात्रा में नहीं है, फिर भी व्यंग्य प्रधान उक्तियों से वे हास्य रस की सृष्टि कर सके हैं। इतने विशाल काव्य-भण्डार में जहाँ जीवन का कोई पक्ष अचर्चित नहीं है, यह कैसे संभव था कि हास्य की चर्चा न हो। अनेक लौकिक

---

१. अ० वा०, पृ० ९८४।
२. वही, पृ० ९८८।
३. वही, पृ० ९८९।
४. वही, पृ० ६४।

रूढ़ियों, साम्प्रदायिक बाह्याचारों और जीवन की कुरूपताओं पर हुए व्यंग्यों में हास्य रस की अनुभूति हम कर सकते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि स्वामी जी सामाजिक जीवन में रुचि रखते थे।

भक्ति रस

ईश्वर, देवता और गुरु के प्रति श्रद्धामय प्रेम भाव से ही भक्ति रस की अनुभूति होती है। क्या भक्ति को एक स्वतंत्र रस की मान्यता मिलनी चाहिए यह विवाद पुराना है। हिन्दी के आचार्यों ने भक्ति को रस रूप में मान्यता दी है। विद्यावाचस्पति पं० रामदहिन मिश्र ने अपने 'काव्य-दर्पण' में इस विवाद का अन्त करते हुए लिखा है, "इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय साधु-संतों ने भक्ति का जो रूप खड़ा किया है वह सांगोपांग है। शास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर भक्तिरस परिपूर्ण तथा खरा उतरता है और रसश्रेणी में आने के उपयुक्त है। भक्तिरस के विरुद्ध जितने तर्क हैं वे निस्सार हैं। **भक्ति रस की आस्वाद्य योग्यता निर्बाध है।**"[1] अतः भक्ति का रस रूप में निरूपण करने में कोई आपत्ति नहीं है। संत काव्य का मूल ही भक्ति है। संत चाहे वे निर्गुणोपासक हों या सगुणोपासक, सभी ने भक्तिभाव से अपने आराध्य को स्मरण किया है।

भक्ति निरूपण के प्रकरण में भावभक्ति शीर्षक के अन्तर्गत भक्ति-भावना का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। यहाँ कवि की रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन के संदर्भ में भक्ति को रस रूप में निरूपित करते समय स्वामी रामचरण के काव्य में भक्ति रस की संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित लगी। स्वामी जी का भक्त-हृदय उनकी सम्पूर्ण कविता में परिव्याप्त है। उन्हें सम्पूर्ण चराचर में 'राम' की सत्ता के दर्शन होते हैं। यह राम उनके आराध्य हैं। वे भक्ति रस को ही 'रामरस' कहते हैं। 'गावा का पद' की ये पंक्तियाँ इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य हैं—

"रामरस पलक न कीजै न्यारो।
ऐसी सूंज बहुरि नहि पावै नर तन को अवतारो।"[2]

'गावा का पद' में भक्ति रस के अनेक आदर्श पद भरे पड़े हैं। साधु-दर्शन पाने के बाद भाव-विह्वल कवि गा उठता है—

"आज भया मन भाया रे।
मैं साधू दर्शण पाया रे।
हरिजन भला पधार्‌या रे।
जड़ जीवन कूं निस्तार्‌या रे।

---

१. पं० रामदहिन मिश्र : काव्यदर्पण, पृ० २१४।
२. अ० वा०, पृ० १००४।

साधू पर उपकारी रे।
ये तो भव दुख के परिहारी रे।
प्रीति जगत सूं न्यारी रे।
उन संतन की बलिहारी रे।
हरि रस पीवण हारा रे।
जन विषिया रस सूं न्यारा रे।
रामचरण धुनि गाई रे।
मोहि लीज्यो बांह सम्हाई रे।"[1]

भक्त भगवान के प्रेम में डूब कर नर्तन करने की अभिलाषा व्यक्त करता है। वह प्रभु के चरणाब्ज में लीन होना चाहता है। उसे स्वर्गलोक का सुख नहीं चाहिए। वह तो केवल अपने भगवान के दास रूप में प्रसिद्ध होना चाहता है। वह चारों पदार्थों को भूलकर भक्ति धारण करने के लिए तत्पर है। उसे ऋद्धि-सिद्धि, लक्ष्मी का वैभवादि कुछ नहीं चाहिए। वह अपने उपास्य की शरण में रहकर उसकी चरण सेवा का अभिलाषी है—

"निशिबासर हरि आगे नाचूं।
चरण कमल की सेवा जाचूं।
स्वर्गलोक का सुख नहि चाहूं।
जनम पाय हरिदास कुहाहूं।
च्यार पदारथ मनां बिसारूं।
भक्ति बिना दूजो नहि धारूं।
ऋधि सिधि लक्ष्मी काम न मेरै।
सेऊं चरण शरण रहूं तेरै।
शिव सनकादिक नारद गावैं।
सो साहिब मेरै मन भावैं।
राम राय इक अर्ज हमारी।
रामचरण कूं द्यो भक्ति तुम्हारी।"[2]

भक्ति रस में सराबोर स्वामी जी के हृदयोद्गार की निम्नलिखित पंक्तियों में अनेक भक्तों की चर्चा हुई है जिनका उद्धार भगवान ने किया। कवि अपने उसी प्रभु की विनय करता है—

---

१. अ० वा०, पृ० ९९६।
२. वही, पृ० १००२।

"बिनऊं रे म्हारो रामसनेही, सब बिधि काज सँवारै रे लो।
अधम उधार बिड़द है जाको, चरण गह्यां भवतारै रे लो।
जल बूड़त गज राखि लियो है, अजामील निस्तार्‌यो रे लो।
पावक में प्रह्लाद सम्हार्‌यो, असुर रह्यो पचि हार्‌यो रे लो।
ध्रू नहचल नीकां बैठार्‌यो, गणिका राम उबार्‌यो रे लो।
रामचन्द्र के सायर पाट्‌यो, अर्ध नाम शिर धार्‌यो रे लो।
... ...
अनंत कोटि जन महिमा गाई, निगम सुजश विस्तार्‌यो रे लो।
रामचरण को समर्थ स्वामी, नाम लेत अघ टार्‌यो रे लो।"[१]

स्वामी जी के काव्य का उपर्युक्त निरूपण सिद्ध करता है कि उनकी कविता में भक्ति रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। ईश्वर के अतिरिक्त संतजन एवं गुरु के प्रति श्रद्धामिश्रित अनुराग से भरे अनेक पदों एवं छन्दों से स्वामी जी का विशाल काव्यभंडार भरा पड़ा है। यहाँ अति संक्षेप में भक्ति का निरूपण रस रूप में किया गया है। स्वामी रामचरण की कविता में वर्णित प्रमुख रसों की इस संक्षिप्त चर्चा के साथ रसानुभूति का यह प्रकरण यहीं समाप्त होता है।

प्रकृति-चित्रण

संत-साहित्य में प्रकृति चित्रण विषय पर पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने 'संत-काव्य' की भूमिका में विचार किया है। वे लिखते हैं—"संतों की साधना अन्तर्मुखी वृत्ति के आधार पर चलती थी और वे अधिकतर अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति में ही लगे रहते थे। बाह्य जगत की चर्चा छेड़ते समय भी वे बहुधा अहमन्य व्यक्तियों वा पाखण्डियों आदि के विविध आचरणों का उल्लेख कर दिया करते थे...प्राकृतिक दृश्यों के प्रसंग वे केवल ऐसे अवसरों पर लाते थे जहाँ उन्हें सर्वव्यापी परमात्मा के अस्तित्व एवं प्रभाव की ओर संकेत करना रहता था अथवा अपनी विरह दशा के वर्णन वा अन्योक्तियों की रचना करते समय उनका ध्यान इधर चला जाता था। इसीलिए प्राकृतिक वस्तुओं के स्वरूपादि के वर्णन सम्बन्धी उल्लेख उनकी रचनाओं में बहुत कम देखने को मिलते हैं।"[२]

स्वामी रामचरण के काव्य में भी प्रकृति का उपयोग परमात्मा के रूपाभास या कविता के उद्दीपन, प्रतीक आदि रूपों में हुआ है। 'रमइया मित्त' की चाह के लिए वियोगिनी का आदर्श है मोर जो घन का प्रेमी है और कोयल जो वन-वन विचरण करती है—

---

१. अ० वा० पृ० १०११।
२. पं० परशुराम चतुर्वेदी : संत काव्य, पृ० १०३।

"कोयल चाहै विविध बन, मोरा पावस ऋत्त।
रामचरण यूं बिरहनी चहै, रमइया मित्त।"[1]

कमल और मधुकर भी माया और जीव के प्रतीक बनकर 'कवित माया को अंग' में उपस्थित हैं—

"माया कमल स्वरूप ज्यूं मधुकर सब झूले।
विखिया रस मोहीत होय निज घर कूं भूले।"[2]

इसी प्रकार कीचड़ के मध्य स्थित कमल के फूल का निकट निवासी दादुर और कमल के पुष्प की गंध का प्रेमी भ्रमर दोनों ही 'शिष्य निरणां को अंग' की शोभा बढ़ा रहे हैं—

"कमल मूल मधि कीच नीच मिण्डुक अधिकारी।
भँवर वासना लेते बसै नहिं तास मंझारी।
अलि दादुर क्यूं मेल आश पुनि वास विवर्जित।
सुख गत बढ़ै कलेश होय कबहूं जो संगति।"[3]

गगन मण्डल में विराजमान 'प्राण-पुरुष' का रूपवर्ण प्रभात वेला के सौन्दर्य-सदृश अवर्णनीय है, जो 'नाम प्रताप' की इन पक्तियों में चित्रित है—

"रूप वर्ण कैसो तड़का को।
ऐसो कहां बखानों जाको।"[4]

'अमृत उपदेश' के आठवें प्रकाश का आरम्भ ही रवि और शशि के उदयास्त के वर्णन से होता है। सरक्त और विरक्त को कवि ने क्रमशः चन्द्रमा और सूर्य के रूप में देखा है—

"रवि के आथ्यां रैण होइ उदै भया दिन होय।
शशि ऊग्यां नांही दिवस, आथ्यां निशा न कोय।
आथ्यां निशा न कोय साध यूं चाहि अचाही।
चाही शशि सामांन अचाही अर्क सदा ही।
रामचरण लछ अलछ कूं लखै विचक्षण सोय।
रवि के आथ्यां रैण होइ उदै भया दिन होय।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० ११।
२. वही, पृ० १२६।
३. वही, पृ० १२३।
४. वही, पृ० २०७।
५. वही, पृ० ४६९।

शीत, उष्ण और पावस ऋतुओं को कवि ने 'जिज्ञास बोध' के पहले प्रकरण में 'त्रय ताप' के रूप में निरूपित किया है। ऋतुएँ आते समय प्यारी लगती हैं और पीछे संताप देती हैं—

"शीत उष्ण पावस ऋतु है अतिसैं त्रयताप।
आवत सी प्यारी लगै पीछे लगै संताप।"[1]

'गावा का पद' में स्वामी जी ने विरहिणी को निर्वाण पद स्पर्श की राय दी। इस सन्दर्भ में असाढ़, सावन, भादो और आश्विन मासों की चर्चा बड़ी मोहक लगती है—

"बिरहनि परस पद निर्वाण।
अचल के संग होय नहचल मिटै आवण जांण।
असाड आगम राम घन को, चातक चित्त उछाव।
आनंद अंग न मावही, भयो शरद ऋतु को चाव।
सावन भावन घटा घमण्डी, गावन रसना राम।
सुमरण की झाड़ लूंब लागी, बरसत आठूं जाम।
भादवै भिदि गयो हिरदै, भरै सागर पूर।
निकट नागर प्रेम पीवै, नांहि भर्मै दूर।
आसोज आरत प्यास भागी, भरे चातक चंच।
स्वाति शीतल अधर झेलै, भई तिरपति पंच।
गगन मैं बस मगन बोलै, अकल सुख आराम।
रामचरण मिल ब्रह्म पूरण, सरे सरबस काम।"[2]

संतों ने प्रकृति वर्णन को अपने काव्य में वर्णन का अभीष्ट नहीं बनाया था, फिर भी उद्दीपन प्रतीक आदि के रूप में प्रकृति की सुन्दरता तक उनकी दृष्टि पहुँची अवश्य है। स्वामी रामचरण के काव्य के कतिपय स्थलों को उद्धृत कर कवि और प्रकृति के संबंधों को स्पष्ट किया गया है। स्वामी जी के लिए प्रकृति-चित्रण की उतनी महत्ता नहीं, पर प्रकृति के उपादानों से उनका लगाव किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होता रहता है।

पौराणिक तथा अन्य सन्दर्भ

क्रान्तिदर्शी संत कवि अपनी वाणी के माध्यम से समाज को नवजागरण का संदेश देते थे। एक ओर वैष्णव भक्ति-भावना के पोषक साधुओं के सुव्यवस्थित मठीय संगठन थे जो सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं से समन्वय स्थापित करके अपना भक्ति संदेश समाज को देकर उसे धन्य करते थे। इन साधुओं और इनके सम्प्रदाय के महंतों या आचार्यों का समाज में बड़ा

---

१. अ० वा०, पृ० ५१६। २. वही, पृ० १००६-७।

सम्मान था। उच्च वर्णी समाज इन्हें श्रद्धा अर्पित करता था। दूसरी ओर ये निगुनिये संत थे जो सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं से निःसंकोच टकरा गए। इन्हें लोकजीवन की कुरूपताओं से समझौता पसंद न था। समाज का उच्च वर्ग इनसे बचने की कोशिश करता था, किन्तु निम्न मध्य वर्ग के प्राणी इनकी अटपटी वाणी में रुचि लेते थे। वे इन लोगों की खरी-खोटी से प्रभावित हो इन्हें अपनी श्रद्धा का भाजन समझते थे।

संतों को अपनी बात सम्पूर्ण समाज को सुनानी ही नहीं मनवानी भी थी। उधर सगुणोपासक वैष्णव संत-महंत पौराणिक सन्दर्भों का साक्ष्य उपस्थित कर समाज को अपनी ओर आकृष्ट कर अपने द्वारा प्रचारित सिद्धान्तों, कर्मकाण्डों को धर्म का मूल घोषित करते थे। पौराणिक सन्दर्भों को अपने रग रग में सजाए भारतीय समाज का उधर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। निर्गुण गायक संतों को भी अपने कथनों के प्रतिपादन के लिए उन्हीं सन्दर्भों का सहारा लेना पड़ा। संतों ने उन संदर्भों का निरूपण अपने ढंग से प्रस्तुत किया और इस प्रकार समाज जीवन को अपने प्रभाव क्षेत्र के घेरे में करने में सफल हुए।

स्वामी रामचरण ने अपनी अंगबद्ध वाणी और ग्रंथों में अनेक स्थलों पर भागवत आदि पुराण ग्रंथों के साक्ष्यों का सहारा लिया है। व्यास के कथनों का संदर्भ उपस्थित कर अपने मत का प्रतिपादन करने में वे पीछे नहीं रहे हैं। गणिका, गीध, अजामिल आदि की कथाएँ, ध्रुव-प्रह्लाद की त्याग-तपस्या आदि की चर्चा उन्होंने बारम्बार की है। अपने पूर्ववर्ती संतों कबीर, गोरख, नानक आदि का नाम भी आदर के साथ लिया है और इन लोगों को आदर्श भक्त चित्रित कर समाज को उनके बताये संदेशों की ओर आकृष्ट करने की भरपूर कोशिश भी की है। ऐसे ही कतिपय संदर्भों का संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकरण का अभीष्ट है।

स्वामी जी ने व्यास और भागवत की चर्चा स्थान-स्थान पर की है। भक्ति निरूपण में उन्होंने भागवत में वर्णित भक्ति का उल्लेख किया है। अपने ग्रंथ 'अमृत-उपदेश' के तृतीय प्रकाश में भक्ति के प्रकारों की चर्चा में व्यास और भागवत का नाम उन्होंने लिया है।

"व्यास कही भागवत में भक्ती तीन प्रकार।
कनिष्ट उत्तम मध्यमा जाकूं जो अधिकार।"[1]

ग्रंथ 'पंडित संवाद' में पंडितों की अच्छी खबर लेने के बाद वे गीता, भागवत, वेद आदि की चर्चा करते हैं और पंडितों को तदनुसार आचरण करने का उपदेश देते हैं। सच कहने के लिए उन्होंने गीता की साखी दी है—

"साच कहत हम शंक न राखी।
नव जोगेश्वर गीता साखी।"[2]

---

१. अ० वा०, पृ० ४४३। २. वही, पृ० ९८५।

चारों वर्णों की चर्चा में स्वामी जी भागवत की साक्ष्य का उल्लेख करते हैं

"च्यारूं वर्ण राम की उत्पति।
ताहि तज्यां पावै कैसी गति।
रामचरण भागवत बतावैं।
पंडित होइ सो तत कूं पावै।"[१]

स्वामी जी पंडितों को अपने मन की उलझन दूर कर रामभजन के लिए प्रेरित करते हैं; पर पण्डित उनके कथन को सिद्धान्त वाक्य कैसे मानेंगा, अतः पण्डितों को विश्वास दिलाने के लिए स्वामी जी वेद की साखी भरते हैं—

"राम भजन बिन पार न पावो।
पंडित अपना मन सुलझावो।
मेरी बात नहीं पतियाना।
तो वेद मांहि फिर देख सयाना।
वेद बतावै सो अब कीजै।
रामचरण कूं दोष न दीजै।"[२]

ग्रंथ 'अणभो विलास' के अठारहवें प्रकरण में परनारी पर कुदृष्टि रखने वालों पर प्रहार करते समय स्वामी जी को चन्द्रमा, इन्द्र, रावण, कीचक, बालि, भस्मासुर आदि की स्मृति हो आई है, ये सभी परनारी पर आसक्त थे—

"चन्द इंद रावण जिस्या कीचक बालि विचार।
कला हीन अरु सहंस भग और मिलाये छार।
और मिलाये छार पाप पर नारी केरो।
हिर्दय ज्ञान विचार दृष्टि करनो का हेरो।
रामचरण ई कलंक सूं जहां तहां नहीं उबार।
चन्द इन्द रावण जिस्या कीचक बालि बिचार।
भस्मासुर भस्मी कर्यो चितवत ही परनारि।
जो प्रत्यग् ही भोगवै तो उबरै कोण विचार।"[३]

स्मरणीय है कि चन्द्रमा और इन्द्र ने गौतम पत्नी अहिल्या को छला था, रावण ने सीता का अपहरण किया था। अज्ञातवास के समय पाण्डवों के साथ द्रौपदी विराट् के वहाँ सैरन्ध्री के

---

१. अ० वा०, पृ० ९८५।
२. वही।
३. वही, पृ० २९९।

रूप में थी। कीचक ने उस पर कुदृष्टि डाली थी। बालि ने अनुज वधू को ही अपनी रखैल बना लिया था और भस्मासुर पार्वती पर ही आसक्त हो गया था। इन सभी को जो भुगतना पड़ा उसकी ओर संकेत कर स्वामी जी ने जहाँ एक ओर जन मानस को परनारी के प्रति कुभाव न रखने का संदेश दिया है, वहीं उन्होंने रामायण और महाभारत के विभिन्न प्रसंगों की दाद भी दिलायी है। रामायण और महाभारत के विभिन्न प्रसंगों की चर्चा स्वामी जी ने अपने ग्रंथ 'नाप-प्रताप' में की है। इन प्रसंगों की चर्चा स्वामी जी ने अन्य ग्रंथों में भी यथास्थान की है। ऐसा लगता है कि ये सन्दर्भ स्वामी जी को बड़े प्रिय थे—

१. ध्रुव प्रसंग

"रामनाम ध्रुव ध्यान लगावै।
बसि बैकुण्ठ बहुरि नहि आवै।
राम भजत छूटा सब कर्मा।
चन्दरु सूर देय परिकर्मा।"[१]

अन्तिम पंक्ति में ध्रुव के अटल होने का संकेत कवि ने दिया है।

२. प्रह्लाद प्रसंग

"राम राम प्रह्लाद पुकार्यो।
ताको पिता बहुत पचि हार्यो।
संकट सह्यो पण राम न छांड्यो।
राम भरोसे मरणहि मांड्यो।
अनिधार पर्वत सूं राख्यो।
सिंह सर्प गज परिहरि नाख्यो।
अंधकूप में राम बचायो।
जन को जश हरि जग दिखरायो।
कोप्यो असुर खड्ग लियो कर में।
जन के हित प्रगट्यो हरि खंभ में।
मार्यो असुर भक्ति विस्तारी।
जन प्रह्लाद की मीच निवारी।"[२]

'कुण्डल्या बिलासी को अंग' में स्वामी रामचरण सप्तम स्कंध भागवत में दासपन के संदर्भ में प्रहलाद के कथन को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते हैं—

---

१. अ० वा०, पृ० २०३।
२. वही।

"सेवा कर फल बंछवै सो सब भाड़ैती जांन।
करत मजूरी मांग लै तब दास पणां की हांन।
तब दास पणां की हांन मान यूं हिरदै धारो।
स्कंध सातवाँ मांहि साखि प्रह्लाद विचारो।
रामचरण तुछ आश धरि सुखपद नहीं पिछांन।
सेवा करि फल बंछवै सो सब भाड़ैती जान।"[1]

इसी प्रसंग में [illegible] की चर्चा भी अनपेक्षित न होगी—

"राम राम प्रह्लाद उचारै, होरी जर भई छारा हो।
जै जैकार भयो हरिजन कै रामविमुख सुखकारा हो।"[2]

३. अजामिल प्रसंग

"द्विज अजामेल मद मांस अहारी।
गणिका रति विषय अति भारी।
कर्म करत तृप्ती नहि भयो।
विषय संग आयु क्षीण ह्वै गयो।
अन्त समय जम दूतन घेर्यो।
रामनरायण सुत को टेर्यो।
जमदूतन सूं लियो छुड़ाई।
आपणो जाण र करी सहाई।"[3]

४. गणिका प्रसंग

"गणिका एक गरक कर्मन में।
हरि की शंक कछू नहिं मन में।
जाकूं संता सैन बतायो।
राम राम कहि कीर पढ़ायो।
सुवा पढ़ावत विषया भूली।
रामप्रताप सुख सागर झूली।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० १५८।
२. वही, पृ० १०००।
३. वही, पृ० २०४।
४. वही, पृ० २०४।

५. वाल्मीकि प्रसंग

"वाल्मीकि बहु जीव सताया।
जीव शीव का भेद न पाया।
संतां शब्द मरां कहि भाख्यो।
गहि विश्वास हृदय धरि राख्यो।
तीजे शब्द उलटि भये रामा।
वाल्मीकि का सरिया कामा।
शत कोटी रामायण गाई।
रामप्रसाद असो है भाई।"[1]

६. गज ग्राह प्रसंग

"गहि गज ग्राह समंद में घेर्यो।
राम राम ऊँचे स्वर टेर्यो।
राम रटत छुट्यां सब फंदा।
मुक्त भयो तत्काल गयंदा।"[2]

७. राजा परीक्षित प्रसंग

"नरप परीक्षित भयो परायण।
शुकदेव सूं शब्द पिछायण।
राम राम दिन सात पढायो।
तजि नरलोक परमपद पायो।"[3]

८. हनुमान प्रसंग

"हनूमान अंजनि को पूता।
रामचन्द्र को कहिये दूता।"[4]

९. अंबरीष-दुर्वासा प्रसंग

भक्ति महिमा के प्रसंग में अंबरीष पर दुर्वासा के क्रोधित होने की चर्चा स्वामी जी ने की है। उन्होंने यही प्रसंग उद्धृत कर बतलाया है कि भगवान का भक्त ही बड़ा होता है, चाहे विप्र हो या शूद्र—

---

१. अ० वा०, पृ० २०४।
२. वही।
३. वही, पृ० २०५।
४. वही, पृ० २०४।

"अंबरीष पर कोप कहा दुर्वासा कीयो।
द्वादश क्रोड सिखाय सरगरै जिज्ञ जश लीयो।
राम भजै तेही बड़ा आदि विप्र कहा शूद्र।
भक्ति बिना कुल ऊँच को आपो खेंचै भूंद।"[१]

१०. भरथरी-गोरख प्रसंग

"भरथरि कूं गोरख मिल्या, मोह मेट दिया ज्ञान।
रामचरण अैसा गुरू, करै तुरत कल्यान।
गोरख सिरषा गुरु मिलै, भरथरि सा सिख होय।
रामचरण ऐसा बिना, ज्ञान कथो मति कोय।"[२]

११. रामानन्द-कबीर प्रसंग

रामानन्द ही कबीर के गुरु थे, यहाँ यह भी स्पष्ट होता है—

"मिलिया दास कबीर कूं, सतगुरु रामानन्द।
चरण परस निर्भै भया, छूट गया दुख द्वन्द।
परे हुते जो पंथ में, दास कबीरा आप।
रामानंद की लात सूं मिट गयी तीनूं ताप।"[३]

१२. सिकंदर लोदी-कबीर प्रसंग

"काशी में एक कबीर भयो जुलह्वा घर आय प्रवेस कियो है।
छांडि दियो सबही कुल को धर्म रामनिरंजन सोधि लियो है।
शाह सिकंदर ताप दई तब पूरण ब्रह्म में प्रांग दियो है।
रामचरण्ण ये संत न सूझत ता नर को धिरकार जियो है।"[४]

स्वामी जी ने सिकंदर लोदी द्वारा कबीर को कष्ट दिए जाने की चर्चा अपने साहित्य में एकाधिक बार की है। इससे यह भ्रम तो दूर हो ही जाता है कि कबीर सिकंदर लोदी के समकालीन नहीं थे। फिर कबीर काशी में हुए थे, यह भी स्पष्ट समझने की गुंजाइश यहाँ स्वामी जी कर देते हैं।

---

१. अ० वा०, पृ० १२६।
२. वही, पृ० ४०।
३. वही, पृ० ४०।
४. वही, पृ० ८६।

१३. दादू प्रसंग

स्वामी रामचरण ने संत कवि दादू का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया है। 'नाम प्रताप' में उन्हें नीच कुलोद्भव बतलाया है और रामस्मरण द्वारा उनके ऊँचे पद पर पहुँचने की बात भी कही है—

"दादू दास जन्म कुल नीचैं।
राम रटत पहुँच्यो पद ऊँचै।
नीच ऊँच कुल भेद विचारै।
सो तो जन्म आपणां हारै।"[1]

दादू के साथ स्वामी जी ने रज्जब की आदर्श शिष्य के रूप में चर्चा की है—

"दादू सिरषा गुरु मिलै, शिख रज्जब बहो बांण।
एक शब्द में सुलझिया, फिर रही न खेंचातांण।"[2]

१४. नगर बलख का मीर

नगर बलख के मीर की चर्चा स्वामी जी ने अपने काव्य में कई स्थानों पर की है। गुरु गोरखनाथ के प्रभाव में आकर इस मीर ने राजपाट छोड़ दिया था—

"सोला सै हुर्मी तजी नगर बलख के मीर।
गैंवर हैंवर करहला उमरावां को भीर।
उमरावां की भीर खीर घृतपाक रसोई।
माल मुलुक तुछ जांण त्याग जोगेश्वर होई।
रामचरण जग जाल का जालिम काट जंजीर।
सोला सै हुर्मी तजी नगर बलख के मीर।
नगर बलख का मीर कूं मिलिया गोरखनाथ।
भवसागर में बूड़तां गहकर काढ्या हाथ।
गहकर काढ्या हाथ जोग कै मारग लाया।
हिरदा का पट खोल नाम का भेद बताया।
रामचरण पूरा पर्श भरी अगह की बाथ।
नगर बलख का मीर कूं मिलिया गोरखनाथ।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० २०५।
२. वही, पृ० ४०।
३. वही, पृ० १५६।

१५. जंगड़ जाट प्रसंग

स्वामी जी ने इस जाट की चर्चा की है। इसे भी गोरखनाथ का शिष्य कहा गया है जिसे चौथे जन्म में मुक्ति मिली—

"मिलिया जंगड़ जाट कूं साधु गोरखनाथ।
रामचरण चौथे जन्म, गहकर काढ्यो हाथ।"[१]

यहाँ स्वामी रामचरण के काव्य में वर्णित कतिपय प्रमुख सदर्भों की चर्चा हुई है। किन्तु ये केवल कुछ प्रसंग हैं। इस विशाल साहित्य में ऐसे अनेक प्रसंग आए हैं जिन्हें अलग लेखन के लिए चुना जा सकता है। स्वामी जी की इन विभिन्न प्रसंगों में गहरी पैठ देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे एक विद्वान् संत थे और उनकी साधु समाज तथा लोकजीवन में अच्छी पैठ थी। यहाँ 'गावा का पद' से एक पद उद्धृत है जिसमें अनेक देवी-देवताओं, भक्तों और आचार्यों का नाम स्वामी जी ने बड़ी श्रद्धा के साथ लिया है—

"भइया अैसो नगर मैं छाडूं नांहि।
जाके अनंत कोटि जन बसैहै मांहि।
जहाँ शिव सनकादिक शेष साध, मुनि नारद शारद ध्रुव प्रह्लाद।
कमला ऊमा हनूमान, जहाँ नेति नेति कहै निगम ज्ञान।
जहाँ ऋषभदेव जड़भरत थाय, तहाँ नव जोगेश्वर जनक राय।
कपिलदेव अरु वाल्मीकि, जहाँ ध्यान धरै शुक अंबरीष।
जहाँ रामानंद नीमानंद नाम, तहाँ माधवाचार्ज विष्णुश्यांम।
ओर शिखां लिया संग साथ, इन च्यारन पकर्यो सबको हाथ।
जहाँ गोरख भरथरि गोपीचंद, तहाँ नानक फरिंगा अरु बाजिद।
महमद दादू करि निवास, जहाँ सहित एकादश हरीदास।
अल्प अकल गिणती न आय, या पद की महिमा कही न जाय।
अगम पूरि भरपूरि बास, जहाँ घरघर आनंद सुख विलास।
जहाँ सब संतन को पाय शीत, चरणांजल रज सूं गयो है भीत।
मैं संतदास को पनई दास, राखो रामचरण कूं चरण पास।"[२]

---

१. अ० वा०, पृ० ३७।
२. वही, पृ० ९९९।

अष्टम अध्याय

काव्यत्व : अभिव्यक्ति पक्ष

"कलात्मक कौशल की दृष्टि से संत-साहित्य का परिशीलन करने वालों को प्रायः निराश ही होना पड़ेगा। रचना की काव्यमयता की ओर इन संतों का ध्यान नहीं था। वे अपनी अनुभूतियों का दान मानव समाज को देना चाहते थे और वह भी केवल इसीलिए कि बिना ऐसा किए उनकी कल्याणकारिणी प्रवृत्ति को परितोष नहीं होता था।"[1] डॉक्टर प्रेमनारायण शुक्ल के इस कथन से पूर्णतया सहमत होते हुए निवेदन है कि संतों ने काव्य-सृजन करते समय काव्य-कौशल को कोई महत्त्व नहीं दिया। विचारगत अनुभूतियों का प्रकाशन ही उनका लक्ष्य था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन लोगों ने कविता को अच्छा माध्यम समझा। ऐसा करते समय उनका ध्यान काव्य के कलापक्ष पर नहीं जा सका जो स्वाभाविक भी लगता है। बात यह है कि अनुभूतिवादी संतों को काव्य की शास्त्रीयता से कोई मतलब नहीं था। उन लोगों ने अपने विचारों की बोधगम्य अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों, प्रतीकों आदि का विधान किया और प्रचलित छंदों एवं रागों में अपनी वाणी को बाँधकर उसे जनोपयोगी बनाया। संत पर्यटनशील प्राणी होते थे। अतः उनकी वाणी में विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं, आंचलिक बोलियों और विदेशी मूल के शब्द मिल जाते हैं। संतों ने भाषा में शब्दों की तत्समता के लिए आग्रह नहीं किया। सुगमतम शैली में वे समाज को अपना संदेश देने के पक्षपाती थे। स्वामी रामचरण भी कबीर आदि संत कवियों की परम्परा के अनुगामी थे। उन्होंने भी भावाभिव्यक्ति के लिए शास्त्रीयता का आग्रह नहीं किया प्रत्युत लोकजीवन में समरस भाषा में अपनी अनुभूति समाज को देते रहे। ऐसा करते समय उन्हें कतिपय अलंकारों, प्रतीकों आदि का सहारा लेना पड़ा है और विभिन्न छन्दों तथा रागों की योजना भी करनी पड़ी है। यहाँ इन्हीं प्रकरणों का निरूपण हमारा अभीष्ट है।

अलंकार विधान

"संतों के काव्य को कृत्रिम अलंकरण की आवश्यकता कभी अनुभव नहीं हुई, लेकिन कहीं-कहीं अलंकार अनायास ही उनकी वाणी से अलंकृत होकर गौरवान्वित होने चले आए।"[2]

---

१. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल : संत-साहित्य, पृ० ४७।

२. सं० पं० परशुराम चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, चतुर्थ भाग, पृ० ५२२ [नागरी प्रचारिणी सभा, काशी]।

अलंकार विधान की दृष्टि से जब हम स्वामी रामचरण के काव्य पर विचार करते हैं तो उद्धृत वाक्य के विचारों से पूर्णतया सहमत होना पड़ता है। स्वामी जी ने अपनी अनुभव वाणी को व्यक्त करने में कहीं-कहीं अलंकारों को सचमुच गौरव ही दिया है। यहाँ अलंकार विधान की दृष्टि से स्वामी जी के काव्य पर संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है।

यों तो हिन्दी साहित्य में अलंकार अगणित हैं, पर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, विशेषोक्ति, उदाहरण, लोकोक्ति आदि अर्थालंकार और अनुप्रास, यमक आदि कतिपय प्रमुख शब्दालंकार हैं। स्वामी जी के काव्य में भी ये सभी अलंकार अपनी स्वाभाविक गति से शोभित हुए हैं। नीचे हम स्वामी जी के वृहत् काव्य-भण्डार से कतिपय प्रमुख अलंकारों के उदाहरण उद्धृत करेंगे।

अनुप्रास

अनुप्रास अलंकार में वर्णों की आवृत्ति होती है जिसके कारण काव्य-पंक्ति श्रवण सुखद हो जाती है—

"नाड़ि नाड़ि में चलै गिलगिली।
सुखधारा अति बहे सिलसिली।"[१]

• • •

"घरर घरर अनहद घररावै।
परम ज्योति दामिनि झलकावै।"[२]

• • •

"करुणामय करतार करम सब दूरि निवारै।
भक्त बिछलता बिरद भक्त ततकाल उधारै।"[३]

यमक

भिन्न अर्थवाची वर्णों या निरर्थक वर्णों की आवृत्ति में यमक अलंकार होता है।[४] शब्द की आवृत्ति में अर्थ भिन्नता से काव्य में चमत्कार उत्पन्न होता है—

"जल वर्ष्यां भीजै नहीं नहिं दामनि सूं जल जांहि।
नहिं गर्ज सैं थर्स लै यह बरतै नभ मांहि।"[५]

---

१. अ० वा०, पृ० २०६।
२. वही, पृ० २०७।
३. वही, पृ० ३।
४. "वहै शब्द फिरि फिरि परै अर्थ और ही और।"
५. अ० वा०, पृ० २५२।

यहाँ पहले 'जल' का अर्थ पानी और दूसरे का अर्थ जलना है—

पुनरुक्ति प्रकाश

सौन्दर्य वृद्धि के लिए जब काव्य में किसी एक ही शब्द की उसी अर्थ में आवृत्ति होती है तब पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार होता है। यह अलंकार स्वामी जी के काव्य में जहाँ-तहाँ दृष्टिगोचर होता है।

> **"रोंम रोंम में होय रही, ररंकार झुणकार।**
> **रामचरण कहिवे कहा, यो अद्भुत सुख अपार।"**[1]
>
> ... ...
>
> **"रामचरण बिभचारिणी, जन्म जन्म होय खवार।**
> **पतिबरता पति सूं मिलै, बिलसै सुक्ख अपार।"**[2]
>
> ... ...
>
> **"पतिबरता को पीव के, दिन दिन आदर मांन।**
> **रामचरण बिभचारिणी, निकट न पावै जान।"**[3]

उपर्युक्त उद्धरणों में रोम-रोम, जन्म-जन्म, दिन-दिन में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

उपमा

साहित्य का सर्वाधिक प्रिय अलंकार जिसमें किसी वस्तु का वर्णन करके उसकी तुलना किसी समान धर्मा उपमान से की जाती है—

> **"सतगुरु बरसै मेघ ज्यूं, शिख जिग्यासी होय।**
> **रामचरण तब नीपजै, निरफल जाय न कोय।"**[4]

इसमें सतगुरु की उपमा मेघ से दी गई है।

रूपक

उपमेय में उपमान के निषेधरहित आरोप को रूपक कहते हैं। स्वामी जी के काव्य में रूपक अलंकार की छटा खूब देखने को मिलती है—

---

१. अ० वा०, पृ० १४।
२. वही, पृ० १५।
३. वही।
४. वही, पृ० ४।

"सतसंग सरवर रामजल, कोइ साधू बाँधै घाट।
करम कचोई आत्मा, बहती रोकै बाट।"[१]

... ...

"रामचरण बिरहा भवंग, डस्यो कलेजो आय।
राम गारडू बिष हरै, जे कोइ देय मिलाय।"[२]

... ...

"प्रेम भाल भीतर खुची, बाहर दीसै नांहि।
रामचरण कसकत रहै, निसिबासर उर मांहि।"[३]

उपर्युक्त उद्धरणों में सत्संग को सरोवर, राम को जल, विरहा को भुजंग, राम को गारडू [विष वैद्य] का रूप दिया गया है। रूपक के अनेक उदाहरण स्वामी रामचरण के काव्य से संचित किए जा सकते हैं।

विभावना

जहाँ कारण के बिना ही कार्य हो जाय, वहाँ विभावना अलंकार होता है—

"बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजै तूर।
बिन श्रवणां अनहद सुणै, जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर।
जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर ओर कोइ निजर न आवै।
सुरति रही मठ छाय देह तहाँ जांण न पावै।
रामचरण वा देश में, बहु परकाशै सूर।
बिन रसना गुण गाइये, बिन कर बाजै तूर।"[४]

रेखांकित में विभावना अलंकार है।

विशेषोक्ति

कारण रहते जहाँ कार्य न हो सके वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है—

"सहँस सूर शशि कै उदय हीये न होय उजास।
सतगुण ज्ञान उद्योत सैं हिर्दय होत प्रकास।

---

१. अ० वा०, पृ० २२।
२. वही, पृ० १०।
३. वही, पृ० १२।
४. वही, पृ० १४१।

हिर्दय होत प्रकास भर्म अंधियारो भागैं।
स्वप्नावत संसार जाण सोवत सो जागैं।
परख भजै परमातमा रखै न मैली आस।
सहँस सूर शशि कै उदय होवे न होय उजास।"[१]

लोकोक्ति

काव्य में लोकप्रसिद्ध कहावत के प्रयोग में लोकोक्ति अलंकार होता है। संतकाव्य में लोकोक्ति अलंकार का प्राधान्य है—

"आन धर्म कूं साधता मुक्ति न पावै कोय।
जो सींचै पेढ बबूल का, तो आंब कहां सूं होय॥"[२]

उदाहरण

साधारण रूप से कही गई बात की ज्यों, जैसे आदि वाचक शब्दों द्वारा जब किसी अन्य बात से समता की जाती है तब उदाहरण अलंकार होता है।

"कपटी की किरपा बुरी, जैसे बीज बबूल।
ऊपर सूं अति सुलसुलो अंतर भरीज शूल।"[३]

. . . .

"काशी भया कबीर जी, ज्यूंही भया दांतड़ै संत।
भवसागर की धार सैं, ज्यां तार्‌या जीव अनन्त।"[४]

. . . .

"प्रेम लहरि जैसे बहै जैसे सिन्धु तरंग।"[५]

उदाहरणमाला

साधारण रूप से कही गई बात की समता के लिए जब एक से अधिक उदाहरण दिए जाते हैं तब उदाहरणमाला अलंकार होता है। 'विरह को अंग' की निम्नलिखित साखी इस अलंकार के उदाहरण रूप में प्रस्तुत है—

१. अ० वा०, पृ० २११।
२. वही, पृ० ७४५।
३. वही, पृ० २८४।
४. वही, पृ० ८५९।
५. वही, पृ० १२।

"ज्यूं चात्रग घन कूं जपै, शशि कूं जपै चकोर।
रामचरण रामैं जपै, जैसे पंथी भोर।"[1]

उल्लेख

जब किसी वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है। तब उल्लेख अलंकार होता है। 'रामरसायण बोध' से निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत है जिसमें गुरु का वर्णन अनेक रूपों में कवि ने किया है:—

"गुरुपारख सोही गुरु गुणातीत गंभीर।
आदीत जैसा परकाशवत् निर्मल जैसा नीर।
निर्मल जैसा नीर धीर धर शांति शशी है।
रामनाम दातार गुरु गति जान इसी है।
रामचरण ये लक्षणा सो मेरै शिर पीर।
गुरुपारख सोही गुरू गुणातीत गंभीर।"[2]

दृष्टान्त

जहाँ उपमेय और उपमान के साधारण धर्म का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव में कथन हो, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है:—

"ज्ञानदग्ध महा मूढ को कहा करै सतसंग।
रामचरण कर दीप ले परै कूप मतिभंग।"[3]

अतिशयोक्ति

किसी वस्तु के वर्णन की अतिशयता जब लोकसीमा का उल्लंघन कर जाती है तब अतिशयोक्ति अलंकार की सृष्टि होती है:—

"राम तुमारे नाम को कोंन करै परमान।
होय सहँस जिह्वा रटै तोहि शेष न पावै मयान।
तोहि शेष न पावै मयान जहाँ नर की कहा ताकति।
गिण्या न आवै पार होय रहै नित शरणागति।
तुम तो समर्थ नाथ जी मैं अनाथ बिन ज्ञान।
राम तुमारे नाम को कोंन करे परमान।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० १०।
२. वही, पृ० ९३४।
३. अ० वा०, पृ० ११२।
४. वही, पृ० २३८।

विनोक्ति

जहाँ 'विना', 'रहित' आदि शब्दों की सहायता से एक के विना दूसरे को शोभित अथवा अशोभित कहा जाता है, वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है—

> **"राम बिना बेहाल चैन कहुं पावैं नांही।"[1]**

यहाँ 'विना' के सहारे चैन को अशोभित किया गया है।

अन्योक्ति

जहाँ अप्रस्तुत [उपमान] के द्वारा प्रस्तुत [उपमेय] का वर्णन किया जाता है वहाँ अन्योक्ति अलंकार होता है—

> **"काग उड्या बुगला बस्या, तरुवर भया दुरंग।**
> **जो माली मूल धपाय दे, तो कूंपल काम सुरंग।"[2]**

अर्थान्तरन्यास

जहाँ विशेष से सामान्य का या सामान्य से विशेष का समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। यथा—

> **"पतिव्रत को व्रत हरत कहो कूंणे सुख पायो।**
> **हरणकशिप दशकंध मंदमति नाश गुमायो।**
> **तपरासुर भये भस्म चाहि शिव को अर्धंगा।**
> **विष्णु पथर तन लह्यो व्रत वृन्दा को भंगा।**
> **द्रौपदि को पट पांणि गहै दुःशासन नासै गये।**
> **रामचरण इतिहास दे पतिव्रत खंड ऐसै भये।"[3]**

इस काव्य खण्ड में स्वामी जी ने 'पतिव्रत-हरण से किसी को सुख नहीं मिलता, यह एक सामान्य बात कहकर उसका समर्थन पाँच विशेष बातों से करते हैं, अतः यहाँ अर्थान्तर-न्यास अलंकार हुआ।

---

१. अ० वा०, पृ० २४४।
२. वही, पृ० १०१७।
३. वही, पृ० १०८।

तद्गुण

जहाँ कोई वस्तु अपना गुणत्याग कर अपने समीपवर्ती का गुण ग्रहण कर लेती है वहाँ तद्गुण अलंकार होता है। यथा—

> "रामचरण बहती नदी सागर पहुंती ध्याय।
> नहचल संग नहचल भई, चंचल गई बिलाय।"[१]

नदी चंचल होती है और सागर निश्चल। नदी सागर के पास पहुँचकर अपना गुण चंचलता छोड़कर सागर का गुण निश्चलता ग्रहण कर लेती है। तद्गुण अलंकार का यह बड़ा सुन्दर उदाहरण स्वामी जी ने दिया है।

अतद्गुण

जब कोई पदार्थ अन्य समीपस्थ पदार्थ के गुण नहीं ग्रहण करता तो अतद्गुण अलंकार होता है। स्वामी जी की निम्नलिखित पंक्तियों में अतद्गुण अलंकार के लक्षण विद्यमान हैं—

> "भवंग टिपारै सेइये तोहि मिटै नहीं निज बांण।
> पय पावै शत वर्ष लूं विष की होय न हांण।"[२]
> . . . .
> श्वान पूंछ बारा वर्ष गडी रहै भू मांहि।
> तो भी मिटै न बांक बल सूधी होयज नांहि।"[३]

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में अतद्गुण अलंकार के दर्शन होते हैं। सर्प को शत वर्ष दूध पिलाया जाय पर उसका विष नहीं मिटता, कुत्ते की पूंछ बारह वर्ष जमीन में गाड़ कर सीधी की जाय पर उसका टेढ़ापन नहीं मिटता।

मानवीकरण

भावनाओं अथवा वस्तु में जब मानव गुणों का आरोप किया जाता है तब मानवीकरण अलंकार होता है। नीचे की पंक्तियों में विरहभाव का मानवीकरण स्वामी जी ने किया है—

> "बिरहा कर ले करद कलेजा काटि है।
> पीव न सुणै पुकार कि हिवरा फाटि है।

---

१. अ० वा०, पृ० १०८।
२. वही, पृ० १५३।
३. वही १६४।

सबै बटाऊ लोग न पूछै पीड़ रै।
परिहां रामचरण बिन राम करै कूंण भीड़ रै।"[1]

रूपकातिशयोक्ति

जब उपमेय और उपमान इतना अभेद हो जाता है कि उपमेय का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है, केवल उपमान से ही उपमेय जान लिया जाता है तब रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है। यह स्वामी जी का बड़ा प्रिय अलंकार है। 'दृष्टान्त सागर' में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं—

"गज मृग कीर कपोत हंस, केहरि कोयल सात।
इन मिल कदली बास करि, जोध बोध भखि जात।"[2]

यहाँ नारी शरीर के रूप में कदली (केला) है। इस केला पर सात जीवों का वास है। ये सातों नारी के विभिन्न अंगों के उपमान रूप में चित्रित हैं। गज-जंघा, मृग-नयन, कीर-नाक, कपोत-ग्रीवा, हंस-चाल, केहरि-कमर, कोयल-बयन। ये सातों मिलकर योद्धा अर्थात् शूर (पंडित) का बोध (ज्ञान) खा डालते हैं। इन अलंकारों के अतिरिक्त और भी अनेक अलंकार स्वामी जी के काव्य में पाए जाते हैं।

प्रतीक विधान

'प्रतीक' का अर्थ है चिह्न। पं० परशुराम चतुर्वेदी द्वारा प्रतीक की व्याख्या में लिखी गयीं पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—"प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु की ओर इंगित करने वाला न तो संकेत मात्र है, न उसका स्मरण दिलाने वाला कोई चित्र वा प्रतिरूप ही है। यह उसका एक जीता-जागता तथा पूर्णतः क्रियाशील प्रतिनिधि है जिसके कारण इसे प्रयोग में लाने वाले को इसके व्याज से उसके उपर्युक्त सभी प्रकार के भावों को सरलतापूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है।...इसकी सहायता बहुधा ऐसे अवसरों पर ली जाती है जब हमारी माया पंगु और अशक्त सी बनकर मौन धारण करने लगती है और जब अनुभवकर्त्ता के विविध भाव, शिला से चतुर्दिक टकराने वाले स्रोतों की भाँति फूट निकलने के लिए मचलने से लग जाते हैं। ऐसी दशा में हम उनकी यथेष्ट अभिव्यक्ति के लिए उनके साम्य की खोज अपने जीवन के विभिन्न अनुभवों में करने लगते हैं और जिस किसी को उपयुक्त पाते हैं उसका प्रयोग कर उसके मार्ग द्वारा अपनी भावधारा को प्रवाहित कर देते हैं।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० ७७।

२. वही, पृ० १०१८।

३. पं० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर साहित्य की परख, [तृतीय संस्करण], पृष्ठ १४६-४७

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि प्रतीकों का विधान भावों के प्रकाशन के लिए होता है। विशेषतः ऐसे भावों के प्रकाशनार्थ जिन्हें हम भाषा की अभिधा या लक्षणा शैलियों में भी नहीं व्यक्त कर पाते। ऐसी स्थिति में प्रतीक हमारी भावधारा को गति देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साहित्य में प्रतीकों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति की परंपरा पुरानी है। "उपनिषदों में अनेक भाषायें पूर्णतः प्रतीक पर आश्रित हैं।"[१] हिन्दी भक्ति-साहित्य में प्रतीकों का अच्छा विधान हुआ है, विशेष रूप से निर्गुण गायक संत कवियों ने अपनी आध्यात्मिक भावधारा की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक शैली का अवलंबन किया है। ये प्रतीक हमारे जीवन के नाना व्यापारों एवं प्रकृति के अनेक रूपों से ग्रहण किए गए हैं।

स्वामी रामचरण भावाभिव्यक्ति के लिए प्रतीक शैली का अवलंबन करने वाले निर्गुण गायक संत कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कबीर, दादू आदि संत कवियों द्वारा अपनायी गयी प्रतीक शैली का विकास स्वामी जी के काव्य-भण्डार में भरा हुआ दृष्टिगत होता है। यों तो स्वामी जी के इस विशाल साहित्य-भण्डार में स्थान-स्थान पर इस शैली में भावाभिव्यक्ति मिलती है, पर 'गावा का पद', 'दृष्टान्त सागर' एवं 'परचा' अंगों में प्रतीकों की अच्छी योजना दृष्टिगत होती है। स्वामी जी ने अपने भाव प्रकाशन के लिए दाम्पत्य भाव, दास्य भाव और कहीं-कहीं सख्य भाव के प्रतीकों का भी सहारा लिया है। प्रकृति मानव जीवन की सहचरी है। प्रकृति के नाना दृश्यों को भी प्रतीक विधान के लिए उन्होंने अपनाया है। संख्यावाची एवं पारिभाषिक प्रतीकों का भी यथास्थान ग्रहण हुआ है। यहाँ स्वामी रामचरण द्वारा उनके काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों की संक्षिप्त समीक्षा हमारा उद्देश्य है।

दाम्पत्य प्रतीक

स्वामी रामचरण की रचनाओं में दाम्पत्य भाव के प्रतीक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इन प्रतीकों के सृजन में उन्हें विशेष सफलता मिली है। इन दाम्पत्य प्रतीकों में संयोग और वियोग दोनों पक्षों के प्रतीकों का विधान स्वामी जी ने किया है। जीव और ब्रह्म के मिलन और बिछोह की अत्यन्त मार्मिक स्थितियों को लेकर प्रतीकों के सहारे आध्यात्मिक श्रृंगार के वर्णन में कवि अद्वितीय हो गया है।

संयोग पक्ष——

संयोग पक्ष में स्वामी रामचरण ने आत्मा-परमात्मा या जीव-ब्रह्म के मिलने के बड़े ही भावमय और मादक चित्र निर्मित किए हैं। 'परचा को अंग' में पति-पत्नी के प्रतीक द्वारा संयोग की बड़ी मर्मस्पर्शी व्यंजना हुई है। सुरति शब्द के ब्याह का यह चित्र ध्यान देने योग्य है——

> "सांसो रतो सुरति में कहा मिलेंगे राम।
> सुरति ब्याह कै ले गया, शब्द आपणै धाम।"[२]

---

१. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल : संत-साहित्य, पृष्ठ ८४। २. अ० वा०, पृ० १४।

प्रियतम का स्पर्श कर सुरति प्रियतममय हो गई जैसे पाला गल कर नीर में मिल जाता है। अद्वैत का यह भाव निम्नलिखित पंक्तियों में है—

"रामचरण पिव परसि कै, सुरति भई गलतांन।
जैसे पाला नीर मैं, गलि कै भया समान।"[1]

पीव की पहचान उसे काया नगरी में ही हो जाती है—

"पीव पिछाण्या हे सखी, काया नगरी मांहि।
रामचरण गाढा गह्या, बाहर भरमै नांहि।"[2]

संयोगात्मक प्रतीक के श्रेष्ठतम उदाहरण 'गावा का पद' में संग्रहीत हैं। नीचे एक पद प्रस्तुत है जिसमें प्रियतम प्रियतमा के महल में पधार रहा है। प्रियतमा हर्षित है उसके साहब ने उसकी पुकार जो सुन ली है। वह प्रेममय हो रही है, चारों तरफ प्रेम ही प्रेम छाया है। वह महल में प्रेम का दीपक जला कर प्रीति का पलंग बिछायेगी और शील से श्रृंगार कर अंग-से-अंग लगाकर प्रियतम का स्पर्श करेगी। बहुत दिनों के बाद प्रिय-मिलन हो रहा है, अतः वह उसे 'पाव पलक' भी ढीला छोड़ने को तैयार नहीं है—

"मेरे महल पधार्‌या प्रीतमा हो।
सखीरी मेरै साहिब सुनी है पुकार।
. . . .
प्रेम का दीपक जोय मंदिर मैं,
प्रीति का पिलंग बिछाय।
शील श्रृंगार साज पिव परशूं,
अंग सूं अंग लगाय।
. . . .
बहुत दिना सैं प्रीतम पाया,
सर्‌या है मनोरथ काम।
पावपलक ढीला नहि छांडूं,
घर आया केवल राम।"[3]

वह अपने रूठे प्रियतम को रिझाकर मना लेगी। नाटक और संगीत के राग का प्रतीक तो प्रस्तुत है ही, शील, संतोष, दया के गहने से सजकर प्रियतम का हृदय जीत लेगी—

---

१. अ० वा०, पृ० १४।
२. वही, पृ० १३।
३. वही, पृ० ९९९-१०००।

"रूठा राम रिझाय मनाऊँ, निशिबासर गुण गाऊँ हो।
नटवा ज्यूं नाटक करि मोहूं, सिन्धू राग सुणाऊँ हो।
शील संतोष दया आभूषण, खम्या भाव बधाऊँ हो।
सुरति निरति साईं में राखूं, आन दिशा नहिं जाऊँ हो।"[1]

और यहीं 'फाग' का भी एक प्रतीक प्रस्तुत है जिसमें ररंकार पति और सुरति सुंदरी स्पर्श की सुखानुभूति करते हुए होली खेलने में रत हैं—

"ररंकार पति सुरति सुंदरी।
अर्श पर्श रमै होरी हो।
वर नहबल अविगत अविनाशी।
सुंदरि नवल किशोरी हो।"[2]

प्रिय के संग उसका यह फाग नित्य ऐसे ही चलता रहता है। कवि के शब्दों में देखिए; प्रतीकों में यह संयोग सुख कितना मोहक बन पड़ा है—

"पिया संग प्यारी, ऐसें नित ही खेलत फाग।
रसना राम उचार सुहागणि, पिव सूं प्रीति बधावै।
काम कपट पडदा करि न्यारा, अरस परस गुण गावै।
चित चंदन समता शिल घिसकै, पिव कै अंग चर्चावै।
चर्चत मगन भई महासुंदरि, सांगोपांग लगावै।
ज्ञान गुलाल अबीर अर्ध करि, झोरी भरभरि ल्यावै।
हंसि हंसि हर्ष हर्ष पति सनमुख, प्रेमसहित परचावै।
कंत कामना के सर मारी, ताको अंग चढ़ावै।
पांचू ठाम रंगे रंग भीनी, दूजो रंग न भावै।
तन मन अर्प मिली पिव पतनी, न्यारी नैक न जावै।
रामचरण शरणै सुख पायो, ताको कहत न आवै।"[3]

संयोगात्मक प्रतीकों के विधान में स्वामी जी सचमुच अद्वितीय प्रतीत होते हैं। यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है। ऐसे अनेक संयोग प्रतीक स्वामी जी के काव्य में पाए जाते हैं।

वियोग पक्ष—दाम्पत्य भाव की वियोगावस्था की तीव्र अनुभूति स्वामी रामचरण के काव्य में मिलती है। इस वियोगानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए स्वामी जी ने प्रतीकों का

---

१. अ० वा०, पृ० १००१।
२. वही, पृ० १००१।
३. वही, पृ० १००९।

विधान किया है, जिनमें से कुछ उद्धरणों का विवेचन यहाँ प्रस्तुत है। प्रिय वियुक्ता विरहिणी प्रियतम राम के दीदार के लिए बेचैन हो उठी है। वह अपने सांई को दयासागर, निरधारों के आधार, जग जीवन, जगदीश आदि अनेक सगुण सम्बोधनों से पुकारती है। उसका प्रियतम अधम उधारण पतितपावन सब कुछ है, वह उसे इन सभी विरुदों की संभाल करने को कहती है। पर प्रियतम जब इन प्रशंसात्मक वचनों पर ध्यान नहीं देता तो वह अपनी दशा का वर्णन करने लगती है। वह कहती है कि सब सखियों की सेज 'सलूंणी' है, पर उसकी ही 'अलूंणी' है। प्रियतम! एक नजर इधर भी देखो, अकेली न छोड़ो। राजा की रानी कहाँ जाय, दूसरे घर में उसका गुजारा भी तो नहीं हो सकता है। प्यारे! तुमने मेरी बाँह पकड़ी है, हृदय से लगाया है, अब मुझे छोड़ो नहीं। स्वामी! प्रेमजल की वर्षा करके मेरा विरह शांत करो। माना तुम्हारे मेरी जैसी अनेक हैं पर तुम तो मेरे लिए एक ही हो, इसलिए वियोगिनी को व्याकुल न करो, इसका भार तुम्हारे कंधों पर है—

"मोंहि राम दया कर दर्श द्यो हो।
दर्श द्यो मेरा मन की पुर्वो आश।
तुम हो दयाल दया के सागर, निरधारां आधार।
जगजीवन जगदीश गुसांई, सब विधि जांणनहार।
तुम रीझो तो हम नहि साध्यो, भई है दुहागणि नारि।
अधम उधार पतित के पावन, अपणो विरद संभार।
ओर सखिन की सेझ सलूंणी, मेरी अलूंणी खाट।
नैक निहार निजर भर स्वामी, तजिये नहीं निराट।
भूपति नारि कहो कहां जावै, दूजै घर न समाय।
बांह पकड़ि छाडो मति सईयां, अपणी कर अंग लगाय।
मेरी बिरह बुझाय गुसांई, बरसि प्रेमजल धार।
बिरहनि कूं व्याकुल नहिं कीजै, कंध तुम्हारै भार।
तुम्हरै हमसी नारि घणेरी, तुम हो हमारै एक।
रामचरण कूं करो रावरो, बकसीजे गुन्हा अनेक।"[1]

विरहिणी अपने प्रियतम 'रमइया' के दीदार के लिए अहर्निश जागती है, उसकी पलकें नहीं लगतीं। नयन दर्शन के लिए दुखी हैं, हृदय प्यार के लिए उमड़ रहा है, पता नहीं प्रियतम कब प्रत्यक्ष होगा। उसकी दशा उस पपीहे सदृश हो गयी है जो स्वाति की एक बूंद पर आशा लगाए रहता है। यदि घन उसे निराश कर दे तो वह कैसे जीवित रहेगा। अतः कवि की विरहिणी अविलम्ब दर्शन देने के लिए प्रियतम से विनती करती है—

---

१. अ० वा०, पृ० ९९९।

"रमइया मेरी पलक न लागै हो।
दरस तुम्हारै कारणै, निशि बासर जागै हो।
दशूं दिशा आतर करूं, तेरो पंथ निहारूं हो।
रामराम की टेर दे, दिन रैण पुकारूं हो।
नैन दुखी दीदार बिन, रसना रस आशै हो।
हिरदो हुलसै हेतकूं, हरि कब परकाशै हो।
स्वाति बूंद चातक रटै जल और न पीवै हो।
घन आशा पूरै नहीं तो, कैसे जीवै हो।
दास की अरदास सुण, पिया दर्शण दीजै हो।
रामचरण बिरहनि कहै, अब बिलम न कीजै हो।"[1]

आर्त्त स्वर में वह प्रियतम से 'महर' की याचना करती है—

"साँईया अरज हमारी हो।
बिरहनि ऊपर कीजिये टुक महर तुम्हारी हो।"[2]

क्योंकि विरहाग्नि में उसका सारा शरीर जल गया है, अब न रक्त है न मांस। प्रियतम मेरे राम! तुम्हारे दर्शन के बिना मेरी नाभि में साँस का बैठना मुश्किल हो गया है—

"बिरह अग्नि सब तन दह्यौ, लोही रह्यौ न मांस।
राम पियारे दरस बिन, नाभि न बैठे सांस।"[3]

'चन्द्रायणा विरह को अंग' में घटा, निर्झर, विद्युत के प्रतीकों द्वारा विरह भाव का विकास दिखाया गया है। बेहाल विरहिणी का यह प्रतीक चित्र कितना पूर्ण बन पड़ा है—

"विरह घटा घररात नैण नीझर झरै।
चित्त चमंकं बीज की हिरदो ओल्ह रै।
बिरहनि है बेहाल दयाकर न्हालियो।
परिहां रामचरण कूं राम वेग सम्हालियो।"[4]

विरह स्वयं हाथ में छुरी लेकर कलेजा काटने आ रहा है। हृदय फट जायगा क्योंकि पुकार प्रियतम नहीं सुन रहा है। सभी राही हैं, पर उनमें से कोई पीड़ा के विषय में नहीं पूछता है, बिना राम के कोई भी भीड़ क्या कर सकती है?—

---

१. अ० वा०, पृ० १००६।
२. वही।

"बिरहा कर ले करद कलेजा काटि है।
पीव न सुणै पुकार कि हिवरा फाटि है।
सबै बटाऊ लोग न पूछै पीड़ रै।
परिहां रामचरण बिन राम करै कूंण भीड़ रै।"[1]

हृदय में विरह का छुरा लगा हुआ है, सांस पीड़ा के साथ आती है। घाव फट जाने से दर्द और बढ़ गया है, निशि दिन वह रामवैद्य के आगमन के लिए पुकारती रहती है क्योंकि बिना राम के यह विरहोत्पन्न घाव भरेगा नहीं।

"बिरह सपीड़ा सास बहै उर करद रे।
घाव गयो है फाटि बध्यो अति दरघ रे।
निशि दिन करै पुकार वैद्य हरि आवही।
परिहां रामचरण बिन राम भरै नही घाव ही।"[2]

इसीलिए हे हरि! विरहिणी की पुकार सुनते ही दौड़ आइए और सभी आवरण हटाकर स्वयं दर्शन दीजिए—

"सुण बिरहनि तणीं पुकार बेगि हरि ध्याईयो।
सब पड़दा कर दूर आप दिखलाईयो।"[3]

दास्य प्रतीक

दास्य भाव में द्वैत प्रवृत्ति के कारण निर्गुण का द्योतन करने वाले प्रतीकों के सृजन में कठिनाई पड़ती है। स्वामी जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में 'स्वामी' और 'गुलाम' के प्रतीक के सहारे दास्य भाव की समर्पण स्थिति निर्माण करने में सफलता पाई है—

"स्यांम के उतार दोष, लागत गुलाम कूं।
त्रिगुण पार गुण अधार, जांणिये ज स्यांम कूं।
. . .
जैसो जांन गायो तिन, तैसो पद पायो मानि।
आप है अनामी नाम, सुमरण काम कूं।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ७७।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ९९४।

स्वामी रामचरण ने संख्यामूलक, पारिभाषिक एवं प्राकृतिक प्रतीकों का विधान किया है। भाव की दृष्टि से प्रतीकों के विवेचन में इनमें से कुछ की चर्चा भी हुई है। यहाँ इन्हीं विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत स्वामी जी के प्रतीक विधान का अध्ययन प्रस्तुत है।

संख्यामूलक प्रतीक

योग-साधना के संख्यामूलक प्रतीकों का विधान स्वामी जी के काव्य में मिलता है। कतिपय उदाहरण देना समीचीन होगा। यहाँ एक पद उद्धृत है जिसमें शरीर को अद्भुत नगर मानकर उसमें विभिन्न संख्यामूलक प्रतीकों का विधान किया गया है—

> **"करता अद्भुत नगर बसाया।**
> **जाका बहु विधि जतन बणाया।**
> **ताहि नगर के नव दरवाजा।**
> **पाधर पांच च्यार कै छाजा।**
> **आवै जाय सप्त कै मांही।**
> **दोय निकासू पैसण नांही।**
> **सात पोल का हासिल च्यार।**
> **कहू बाकूं सातूं ही द्वार।**
> **मुसरफ च्यार एक दातार।**
> **तीन खाय खरचै न लगार।**
> **एक दरा में भरती आवै।**
> **दोय मांहि नीसर कै जावै।"[1]**

एक और उदाहरण जिसमें पाँच, पचीस और तीन अंक प्रतीक के रूप में आए हैं—

> **"पांचू पकड़ पाचीसूं चूरूं।**
> **तिरगुण को बिसराऊं हो।**
> **चौथे दांव चेत कै खेलूं।**
> **मोज मुक्ति की पाऊं हो।"[2]**

पारिभाषिक तथा अन्य प्रतीक

योग मार्ग में प्रचलित पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग संत साहित्य में हुआ है। संत कवियों ने इन शब्दों को नाथों से ग्रहण किया था। स्वामी रामचरण की रचनाओं में उन सभी शब्दों का प्रयोग मिलता है। कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं जिनमें ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अन्य प्रतीकों में प्राकृतिक एवं पारिवारिक प्रतीक सम्मिलित हैं।

---

१. अ० वा०, पृ० १००१। २. वही।

त्रिवेणी—इडा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों का मिलनस्थल दोनों भौहों के मध्य में स्थित है।

"इंगला पिंगला सुखुमणा मिले त्रिवेणी घाट।
जहाँ झाझें जल झूलि कै, निर्मल होय निराट।"[1]

त्रिकुटी—भौहों के मध्य का स्थान। इसे त्रिवेणी भी कहते हैं।

"त्रिकुटी संगम किया स्नाना।
जाइ चढ़्या चौथे अस्थाना।"[2]

अनहद नाद—योगियों को समाधि अवस्था में शरीर के भीतर सुनाई पड़ने वाली मधुर ध्वनि जिसमें संत डूबा रहता है—

"अनहद नाद गिणत नहिं आवे।
भाँति भाँति की राग उपावे।"[3]

गगन—शरीर के भीतर का आकाश जहाँ ज्योतिर्मय ब्रह्म का प्रकाश दीखता है। इसको 'शून्य' भी कहा जाता है—

"अब त्रिवेणी न्हाइ कै कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अलघ सुख या कोइ चौथा देश।"[4]

हंस—नव द्वार के पिंजड़े [शरीर] में बंद जीव ही हंस है।

"सायर तट हंस बैठा जाई।
सायर हंस में रह्या समाई॥"[5]

भ्रमर—मन, जीव के लिए भ्रमर का प्रतीक स्वामी जी ने अपनाया है।

"नौ सै नारी मंगल गावै।
तहँ मन भँवरा अति सुख पावै।"[6]
... ...
"अर्ध उर्ध जहं कमल प्रकासा।
सुरति भँवर होइ करत विलासा।"[7]

---

१. अ० बा०, पृ० २०७।
२. वही, पृ० २०९।
३. वही, पृ० २०९।
४. वही, पृ० २०७।
५. वही।
६. वही।
७. वही।

दसवाँ द्वार—ब्रह्म रन्ध्र को कहते हैं।

"द्वारे दशवें स्यास ध्यान खंडित नहि होई।
परा मुक्ति परवेश जहाँ जन पहुँचै कोई।"[१]

अगम देश—शरीरस्थ गगन प्रदेश जहाँ ब्रह्म का निवास है—

"सुंणो सांमली सब कहै जासूं भर्म न जात।
रामचरण देखी कहै अगम देश की बात।
अगम देश की बात जहाँ सब संत पधारे।
मिले ब्रह्म में जाय बहुरि होवें नहि न्यारे।
अचल देश आसण किया मिटी काल की घात।
सुंणो सांमली सब कहै जासूं भर्म न जात।"[२]

इसी को स्वामी जी ने अचल देश भी कहा है। यही **चौथा स्थान** या **चौथा घर** भी है।

"अब चौथे घर पहुँचा जाई।
जहाँ का चहन मैं कहूं सुणाई।"[३]

नाभिकमल—नाभि स्थित कमल जिसे मणिपूर चक्र कहा गया है। इस कमल में दस दल होवे हैं और यह नील वर्ण का होता है—

"नाभि कमल मैं शब्द गुंजारे।
नौ सै नारी मंगल उचारे।"[४]

उपर्युक्त के अतिरिक्त औ भी पारिभाषिक एवं संख्यामूलक प्रतीक हैं, जिनका स्वामी रामचरण के साहित्य में बाहुल्य है। अब कतिपय अन्य प्रतीकों की चर्चा करके यह प्रकरण समाप्त करेंगे।

बाजार मेला का प्रतीक—स्वामी जी ने संसार को बाजार मेला कहा है जो साँझ होते ही उठ जाता है—

"यो संसार बजार मेलो, सांझ बीछड़ जाय।
लाभ टोटो बिणज दोई, लेय आप कुमाय।"[५]

---

१. अ० वा०, पृ० १४२।
२. वही।
३. वही, पृ० २०७।
४. वही, पृ० २०९।
५. वही, पृ० १०१०।

"यो संसार हटवाड़ा को मेलो।
निशि पड़ियाँ बीछड़ जासी रेलो।"[1]

विवाह का प्रतीक

स्वामी जी ने सुरति और शब्द को दुलहिन और वर के रूप में प्रस्तुत कर विवाह का प्रतीक खड़ा किया है। इस विवाह की चौरी गगन में है। इसी चौरी पर सुरति सुहागिन शब्द वर से वरी गई। यहीं दोनों का विलास हुआ और मोक्षपद रूपी मिष्ठान्न से झोली भर उठी। बड़ा ही सुन्दर प्रतीक बन पड़ा है—

"चौरी गगन मंझार रची है रंग भरी।
सुरति सुहागणि नारि शब्द बर सूं बरी।
अरस पर्श होय एक पिया संग रमत है।
परिहां मोख पद मिष्ठान्न की झोरी भरत है।"[2]

एक और उदाहरण—

"सुरति व्याह कै ले गया शब्द आपणै धाम।"[3]

ऋतु प्रतीक

ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के निरूपण के लिए स्वामी जी ने ऋतुओं का प्रतीक प्रस्तुत किया है। शीत को ज्ञान, ग्रीष्म को वैराग्य और पावस को भक्ति का प्रतीक कहा है—

"शीत सरस ऋतु शीत में ग्रीषम अधिक तपांहि।
तब समझ्या ऐसें कहै पावस अति वर्षांहि।
पावस अति वर्षांहि चहन मन मोद उपावै।
यूं प्रथम ज्ञान वैराग्य उभय मिलि भक्ति बधावै।
ये अगवांणी आगम कहै जांणे सो लखि जांहि।
शीत सरस ऋतु शीत में ग्रीषम अधिक तपांहिं।"[4]

मास प्रतीक

'गावा का पद' में महीनों के प्रतीक का एक बड़ा सुंदर पद स्वामी जी ने प्रस्तुत किया है। असाढ़, सावन, भादो, आसोज महीनों को लेकर रचा गया प्रतीक यहाँ प्रस्तुत है—

---

१. अ० वा०, पृ० १०११।
२. वही, पृ० ७७।
३. वही, पृ० १४।
४. वही, पृ० २२१।

"बिरहनि परसपद निर्वाण।
अचल कै संग होय नहचल, मिटै आवण जांण।
असाड़ आगम राम घन को, चातक चित्त उछाव।
आनंद अंगन माव ही, भयो शरद ऋतु को चाव।
सावन भावन घटा घमण्डी, गावन रसना राम।
सुमरण की झड़ि लूंब लागी, बरसत आठूं जाम।
भादवै भिदि गयो हिरदै, भरे सागर पूर।
निकट नागरि प्रेम पीवै, नांहि भरमै दूर।
आसोज आरत प्यास भागी, भरे चातक चंच।
स्वाति शीतल अधर झेलै, भई तिरपति पंच।
गगन में बस मगन बोलै, अकल सुख आराम।
रामचरण मिल ब्रह्म पूरण, सरे सरबस सकाम।"[१]

फाग का प्रतीक

दाम्पत्य प्रतीकों में फाग या होली की चर्चा हो चुकी है। यहाँ अलग से भी इसका वर्णन इसलिए अपेक्षित है क्योंकि यह स्वामी जी का बड़ा ही प्रिय प्रतीक है। अनेक स्थलों पर जीव ब्रह्म के बीच होली का रंग स्वामी जी के पदों में मचा है—

"पिया संग प्यारी, ऐसें नित ही खेलत फाग।"[२]

. . . .

"खेलत फाग री मोहि बकस्यो राम सुहाग।"[३]

. . . .

"ररंकार पति सुरति सुंदरी, अर्श पर्श रमै होरी हो।"[४]

आरती का प्रतीक

स्वामी जी ने 'गावा का पद' के अंत में तीन आरती के पदों की रचना की है। इन पदों में संख्यामूलक, पारिभाषिक प्रतीकों का विधान तो स्वामी जी ने किया ही है, अन्तिम पद में 'आरती' को ही प्रतीक मान लिया है। इसमें आरती की पाँच स्थितियों का प्रतीकात्मक वर्णन हुआ है—

---

१. अ० वा०, पृ० १००६-७।
२. वही, पृ० १००९।
३. वही, पृ० १००९।
४. वही, पृ० १००१।

"आरति अचल पुरुष अविनाशी।
घट घट व्यापक सकल प्रकाशी।
परथम आरति मंदिर बुहार्या।
राम राम रटि कर्म निकार्या।
दूसरी आरति दीपक जोया।
हिरदै प्रेम चाँदणा होया।
तीसरि आरति कुम्भ भराया।
नाभि कमल सूं गगन चढ़ाया।
चौथी आरति चौकि बिराजै।
जहाँ अनहद का बाजा बाजै।
पंचइ आरति पूरण कामा।
सुरति परसिया केवल रामा।
सेवक स्वामी भया समाना।
रामहि राम ओर नहिं आना।
रामचरण ऐसी आरति कीजै।
परसि अमर वर जुग जुग जीजै।"[1]

स्वामी जी ने पशु-पक्षियों को भी अपने प्रतीक का विषय बनाया है। चातक, मोर, कोयल आदि की चर्चा तो सामान्य ढंग से हुई है, संतों की दुनिया का बहुचर्चित पक्षी 'इण्डल' या 'अनलपंख' भी प्रतीक रूप में स्वामी जी के काव्य में सम्मिलित है। यहाँ 'टेक को अंग' की कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत हैं जिनमें टेक के लिए उन्हें आदर्श माना गया है—

अनल पक्ष

"अंडल पंख आकाश में, रहै अधर मठ छाय।
रामचरण घर ना बसै, अपणा मत्त लजाय।"[2]

चकोर

"देखो टेक चकोर की, पावक करै अहार।
रामचरण छाँडै नहीं, जो जल बल होवै छार।"[3]

हंस

"रामचरण मुक्ताल बिन हंसा चंच न बाहि।
सोग सरः भर बुगला, कर्म कीट चुगि जाहि।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० १०१२-१३।
२. अ० वा०, पृ० ४६।
३. वही।
४. वही।

चातक

"आश करै आकाश की, चातक रहै उदास।
भूमि पड्यो जल ना पिवैं, एक राम विश्वास।"[१]

स्वामी जी ने सूर्य, चन्द्र, गंगा, यमुना, अम्वुज, कुमुद तथा अन्य अनेक प्राकृतिक उपादानों को प्रतीक रूप में ग्रहण कर अपने काव्य में स्थान दिया है। यहाँ संक्षेप में थोड़े प्रतीकों की चर्चा हुई है।

स्वामी जी का ग्रंथ 'दृष्टान्तसागर' प्रतीकों का भण्डार है। उल्टवांसियों एवं दृष्टिकूटों की रचना करके स्वामी जी ने जहाँ अपने पाण्डित्य ज्ञान का परिचय दिया है वहीं उन्होंने संत-साहित्य की उलटवांसी परम्परा का भी निर्वाह किया है। इन्हें स्वामी जी ने दृष्टान्त कहा है। इन दृष्टान्तों की टीका इनके शिष्य स्वामी रामजन जी ने बनाई है, जो हर दोहे के साथ सम्बद्ध है।

पंडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि 'उल्टवांसी' शब्द को ही 'उलटा' तथा 'अंश' जैसे दो शब्दों को जोड़कर बनाया गया माना जा सकता है।[२] व्युत्पत्तिमूलक अर्थ जो भी हो किन्तु उलटवांसियों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। संत कवियों ने रहस्यात्मक प्रतीकार्थों के लिए उलटवांसियों की रचना की है। इनमें से कुछ प्रतीकों पर आधारित हैं और कुछ अलंकार से जुड़ी हुई हैं। स्वामी जी के ग्रंथ 'दृष्टान्तसागर' की उलटवांसियों पर टिप्पणी करते हुए 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने लिखा है"..इस ग्रंथ में स्वामी जी ने जीव, ब्रह्म, सृष्टि आदि के रहस्यों को छिपाकर प्रकट किया है।"[३] यहाँ स्वामी जी की उलटवांसियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१—"पिता मरण सुत जन्मियो, निकसे लूकी लाय।
पुत्र उदै तन त्यागियो, लूकी मांहि समाय।"[४]
२—"पीह रम्हाली जन्म लग, बाहिर निकसी नांहि।
कन्या कँवारी सुत जण्यो, सुत शोभा जग मांहि।"[५]
३—"रैण भई क्यूं दिवस में, दिवस रैण क्यूं एक।
सब पृथ्वी में है नहीं, कहुं कहुं भूमि विसेख।"[६]

---

१. अ० वा०, पृ० ४६।
२. पं० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर-साहित्य की परख, पृ० १५५।
३. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ७१।
४. अ० वा०, पृ० १०२५।
५. वही, पृ० १०३३।
६. वही, पृ० १०३४।

दृष्टिकूट

दृष्टिकूटों का निर्माण भी पाण्डित्य प्रदर्शन एवं चमत्कार प्रकाशन के लिए संतों ने किया था। सूर के दृष्टिकूट प्रसिद्ध हैं। स्वामी रामचरण के 'दृष्टान्त सागर' में 'दृष्टिकूटों' के उदाहरण मिलते हैं। यहाँ दृष्टिकूट के कतिपय उद्धरण दिये जाते हैं—

(१) "भूमि डसन रिपु तास रिपु जा शिख पर असवार।
ता सुत वाहन ज्यूं फिरै, काछ लंपट संसार।"[1]

[भूमिडसन-दीमक-रिपु-मुर्गा-रिपु-बिलाव-शिष्य-सिंह-असवार-भवानी-सुत-भैरव-वाहन-कुत्ता-अर्थात् लंपट संसार कुत्ते की तरह भटकता फिरता है।]

(२) "दधिसुत और सुमेरु सुत, रविसुत तीन मिलाप।
ये बांणक तो जब बणै, सिरी संग त्रय ताप।"[2]

[दधि सुत-मोती। सुमेरु सुत-सोना। रवि सुत-करण अर्थात् तूफान। इन तीनों के मिलाप का अर्थ हुआ सोना में मोती पिरो कर कान में पहनना। यह बानक तब बन सकता है जब श्री-लक्ष्मी के साथ त्रयताप-माया हो।]

(३) "गज मृग कीर कपोत हंस, केहरि कोयल सात।
इन मिल कदली बासकरि, जोध बोध भखि जात।"[3]

[कदली-केला-स्त्री का तन। इस तन में इन सातों का वास है। गज-जंघा, मृग-नयन, कीर-नाक, कपोत-ग्रीवा, हंस-चाल, केहरि-कमर, कोयल-बयन। स्त्री तन के उपर्युक्त आकर्षण जोध-शूर का बोध-विवेक (ज्ञान) खा जाते हैं।]

(४) "सप्त वीर में सुर गुरू, ता पतनी सुत सोय।
तास पिता मुख ओपमा, हरि जन संग न होय।"[4]

[सप्तवीर—सात वार में सुरगुरु-बृहस्पति की पत्नी का सुत-बुध का पिता-चन्द्रमा। चन्द्रमा जिसके मुख की उपमा है वह है स्त्री। स्त्री का हरिजनों से संग नहीं हो सकता।]

(५) "अवनी सुत सुत शैल सुत, पृथ्वी के सुत सोय।
समंद सुता जग भावता, हरिजन संग न होय।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० १०१८।
२. वही, पृ० १०१९।
३. वही, पृ० १०१८। ४. वही, पृ० १०२७। ५. वही।

[अवनी सुत-सीसा (एक धातु विशेष)-सुत-रुपया। शैल सुत-सोना। पृथ्वी सुत-तांबा। [illegible]। अर्थात् रुपया, सोना, ताँबा और कौड़ी संसार को अच्छे लगते हैं, इनसे हरि जनों का साथ नहीं हो सकता]।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि स्वामी रामचरण दृष्टिकूटों की रचना में निपुण थे। सूर ने दृष्टिकूटों के लिए पदशैली अपनायी है पर स्वामी जी ने दोहा छन्दों में ही दृष्टिकूटों की रचना कर अपने पाण्डित्य का परिचय दिया है। 'दृष्टांत सागर' में ऐसे अनेक कूट दोहे भरे पड़े हैं।

इन पृष्ठों में स्वामी रामचरण के प्रतीक विधान का संक्षेप में निरूपण किया गया है। स्वामी जी के संत हृदय से निस्सृत उद्गारों से प्रतीक योजना सजती चली गयी है। स्वामी जी के काव्य ग्रन्थों एवं अंगबद्ध वाणी में इतने प्रतीक हैं कि उनका अलग से अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। इनमें से कतिपय उद्धरणों के सहारे स्वामी जी की प्रतीक योजना की विवेचना की गई है। दृष्टिकूटों और उलटवांसियों का अध्ययन भी प्रतीक के अन्तर्गत ही मुझे उचित लगा क्योंकि इनका सृजन भी प्रतीकों द्वारा ही स्वामी जी ने किया है। एक बात और, 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने 'दृष्टान्त सागर' में प्रकाशित स्वामी जी के पांडित्य और वाग्वैदग्ध्य को स्वीकार तो किया है किन्तु वे लोग इसे स्वामी जी की स्वाभाविक शैली नहीं मानते।[1] इस सन्दर्भ में इतना ही कहना है कि स्वामी जी के विशाल साहित्य में उनके द्वारा अपनायी गई विभिन्न शैलियों में से कूट और उलटवांसियों की भी शैली है। जहाँ तक इसकी स्वाभाविकता का प्रश्न है, मैं समझता हूँ कि दोहों में लिखे गए इन दृष्टिकूटों एवं उलटवांसियों में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। भाव प्रकाशन में न तो उन्हें कहीं कठिनाई हुई है और न ग्रहण में टीकाकार को ही।

संगीत विधान

संतों का काव्य संगीतमय है। संत कवि संगीत प्रेमी थे। यह बात भिन्न है कि संगीत की शास्त्रीयता में वे बहुत पारंगत न रहे हों, पर संगीत से उनकी अच्छी जान-पहचान थी, यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं। कतिपय समीक्षक कहते हैं कि संतों को संगीत का बिल्कुल ज्ञान ही न था क्योंकि वे पढ़े-लिखे नहीं थे। निवेदन है कि आज अनेक पढ़े-लिखे लोगों में बहुमत संगीत न जानने वालों का ही है। संतों ने जैसे सत्संगों के द्वारा वेद, उपनिषद् एवं शास्त्र पुराणों की अनेक बातें जान ली थीं, वैसे ही संगीत शास्त्र से भी उनका परिचय हुआ होगा, इसमें संदेह का कोई कारण नहीं दीखता। यों सम्पूर्ण भक्ति-साहित्य पर दृष्टिपात किया जाय तो विदित होगा कि भक्त-कवियों की प्रवृत्ति संगीत की ओर थी। विद्यापति, तुलसी, सूर, कबीर और मीराँ आदि के काव्यों में संगीतात्मकता वर्तमान है। कबीर, दादू आदि लगभग सभी संत कवियों ने पद शैली में काव्य-रचना की थी और उसे विभिन्न रागों में बाँधा गया था।

---

१. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्रीरामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १३४।

यह बात भिन्न है कि उन्हें रागबद्ध स्वयं कवियों ने किया था या बाद के किसी उनके भक्त या प्रशंसक ने।

स्वामी रामचरण के काव्य में संगीत तत्त्व उपलब्ध हैं। 'गावा का पद' शीर्षक उनकी काव्य-रचना पद शैली में लिखी विभिन्न रागों में बद्ध संगीत प्रधान रचना है। वैसे उनके अन्य ग्रंथों में भी बीच-बीच में रागबद्ध पद मिल जाते हैं। डॉ० **अमरचन्द वर्मा** लिखते हैं कि—**"स्वामी रामचरण भी इसी मस्ती में संगीत की ओर झुक गए परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे संगीतशास्त्र के ज्ञाता थे।"**[1] स्वामी जी भक्ति भावना की मस्ती में संगीत की ओर झुके होंगे, इससे तो मैं पूर्णतया सहमत हूँ पर उन्हें संगीत से कोई जान-पहचान नहीं थी, यह विचार चिन्त्य है।

पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने 'कबीर साहित्य की परख' में 'कबीर साहित्य और संगीत' शीर्षक लेख में यह सिद्ध किया है कि कबीर संगीत में रुचि रखते थे, उनकी संगीत में गति भी थी। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे पर मैं समझता हूँ कि उन्होंने भी संगीत की जानकारी सत्संग में ही की होगी। फिर स्वामी रामचरण तो सम्पन्न वैश्य परिवार में उत्पन्न हुए थे, पढ़े-लिखे थे एवं जयपुर राज्य के उच्चपदस्थ अधिकारी भी रह चुके थे। जयपुर राज्य भारतीय विद्या एवं कला का केन्द्र रहा है। ऐसी स्थिति में यह कहना कि स्वामी रामचरण संगीत से अपरिचित थे, कुछ युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता।

स्वामी रामचरण के साहित्य के विषय में यह भी कहने की गुंजाइश नहीं है कि उनके काव्य-ग्रंथों या वाणी का सम्पादन उनके जीवन-काल में नहीं हुआ था। स्मरणीय है कि उनके सम्पूर्ण साहित्य को उनके शिष्य स्वामी रामजन एवं नवलराम जी ने उनके जीवन काल में ही सम्पादित कर डाला था। यह तथ्य भी इससे स्पष्ट होता है कि स्वामी जी के साहित्य का सम्पादन उनकी देखरेख में ही हुआ होगा। इतना ही नहीं उनके गुरु दाँतड़ा गद्दी के महंत स्वामी कृपाराम जी ने स्वामी जी की 'वाणी' देखी भी थी। अतः उनके पदों को उनकी देखरेख में ही रागबद्ध किया गया होगा या उन्होंने स्वयं उन्हें रागों में बाँधा होगा, इसमें संशय का कोई कारण नहीं।

जहाँ तक स्वामी जी के संगीत ज्ञान का प्रश्न है उन्हें संगीत की जानकारी थी। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर 'छत्तीस राग' की चर्चा की है। अनहद नाद को उन्होंने संगीत के इन सभी रागों से भिन्न एवं अलौकिक बतलाया है। 'साखी परचा को अंग' में लिखते हैं—

"रामचरण संसार में, राग छत्तीस बखांण।
संत सुनत हैं गिगन में, अनहद बेपरमांण।"[2]

---

१. डॉ० अमरचन्द वर्मा : स्वामी रामचरण—एक अनुशीलन, पृ० २८७।
२. अ० वा०, पृ० १४।

छत्तीस रागों की चर्चा तो वे करते ही हैं, विभिन्न वाद्य यंत्रों एवं उनसे निकलने वाले स्वरों पर भी उन्हें स्वामित्व प्राप्त था। वे झालरी, वीण, मृदंग, शहनाई, बाँसुरी, भेरी, रणसिंग, करनाल, चंग, उपंग, मंजीरा, ढोलक और रायमोहचंग का नाम गिनाते हैं। नृत्य-घुंघरू की रुनझुन से भी उनकी जान-पहचान है। इन सभी से यदि वे परिचित न होते तो अनहद नाद में इन सभी वाद्यों के नाद का आनन्द अनुभव कर उसे व्यक्त कैसे करते। 'रेखता प्रचा को अंग' में उन्होंने 'अनहद नाद' की अनुभूति के वर्णन में इन सभी वाद्यों के मधुर-मधुर स्वर की मधुर चर्चा की है—

"घोर अनहद की गगन गिरणाईया,
होत बहु सौर नहिं कहत आवै।
झालरी वीण मरदंग सहनाईयां,
बांसुरी तान झुणकार लावै।
भेरि रणसिंग करनाल बंक्या बजै,
चंग अरु उपंग गति करत न्यारी।
एक एक नाद में मैं, राग नाना उठै,
मधुर स्वर मधुर स्वर, चलत भारी।
मंजीरा मान धधकार धोलक करै,
गिड़गिड़ी रायमोहोचंग बाजै।
रुणझुणूं रुणझुणूं नृत्य ज्यूं घुंघरू,
घटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै।"[१]

उपर्युक्त चर्चा के बाद मैं इस निष्कर्ष पर हूँ कि स्वामी रामचरण को संगीत के सभी रागों एवं वाद्यों की जानकारी भलीभाँति थी। यह कहना कि वे संगीत के ज्ञाता नहीं थे अनुचित है। इसी सन्दर्भ में एक अंतःसाक्ष्य और प्रस्तुत कर उनके द्वारा प्रयुक्त रागों की चर्चा करूँगा। 'ताल धमाल' में लिखे अपने एक पद में अपने रूठे राम को मना कर प्रसन्न करने के लिए जहाँ वे नट सदृश नाटक करके उसे मोहेंगे, वहीं उसे मोहने के दूसरे उपक्रम के रूप में 'सिन्धू राग' भी सुनाएंगे। 'आसा सिन्धू' राग में उन्होंने पद रचना की है—

"रूठा राम रिझाय मनाऊं,
निशिबासर गुण गाऊं हो।
नटवा ज्यूं नाटक करि मोहूं,
सिन्धू राग सुणाऊं हो।"[२]

---

१. अ० वा०, पृ० १९२-९३।
२. वही, पृ० १००१।

उपर्युक्त साक्ष्य से यह भी स्पष्ट हो गया कि स्वामी जी स्वयं भी एक अच्छे गायक थे। उन्होंने 'गावा का पद' में निम्नलिखित रागों में पद रचे हैं—

१. भैरव
२. ललित
३. विभास
४. बिलावल
५. जै जैवन्ती
६. आसा
७. गोंड
८. सारंग
९. गोड़ी
१०. वसंत
११. धमाल
१२. काफी
१३. आसा सिन्धू
१४. कल्याण
१५. कनड़ो
१६. कनड़ी
१७. बिहाग
१८. मंगल
१९. पंजाब
२०. सोरठ
२१. सूवा सोरठ
२२. मारू
२३. जैतश्री
२४. धनाश्री
२५. केदारो
२६. जोग धनाश्री
२७. गिरनारी सोरठ
२८. आरती

स्वामी जी ग्रंथारंभ में राग भैरव का प्रयोग अपनी रचना में करते हैं।

राग भैरव

"मनवा एक एक घर राख्या,
दूजा घर सूं दिल असलाक्या। (टेक)
एको ब्रह्म दूसरी माया,
दूज तज्या एकै घर आया।
एक आशरै नेक उपाया।
एकै मांहि अनेक समाया।
जहाँ जाऊँ जहाँ एक अकाशा।
एक सूर ब्रह्मण्ड प्रकाशा।
एक पवन अरु एकहि पाणी।
एक धरणि पर सब घट जांणी।
एक जीव एकै सच पावै।
नाना मारग क्यूं उलझावै।
सोही सतगुरु ऐक बतावै।
गुरु बिन फिर फिर जन्म गुमावै।
एक रमइया रसना भाख्या।
रामचरण जिन राम रस चाख्या।"[1]

---

१. अ० वा०, पृ० ९९१-९२।

राग ललित के एक पद में वे अपने नाथ से हाथ पकड़कर सनाथ करने का निवेदन कर रहे हैं—

"मैं हूं अनाथ नाथ साहि हाथ मेरो।
कीजिए सनाथ तात आप साथ तेरो। (टेक)
जगत को जंजाल जाल भर्म कर्म घेरो।
ज्ञान हरण भरण व्याधि जन्ममरण फेरो।
. . . .
मोह के समूह परत करत काल हेरो।
रामचरण रामशरण साध संगति सेरो।"[1]

राग **विभास** में स्वामी जी मानव को जागरण का संदेश सुनाते हैं—

"जाग जाग नर रैंण बदीती।
सोवत भोर भयो अणचीती। (टेक)
जांम एक गयो भोल भाल मैं, दोइ मैं गुणा दबायो।
चौथे चिंता जरा गिरास्यो, असै जन्म गुमायो।"[2]

राग विलावल में लिखित पद में कवि राम के नाम पर न्यौछावर है। राम की महत्ता में तल्लीन होकर वह उनके प्रति समर्पित हो जाता है—

"राम तुम्हारे नाम की, मैं बलि बलिहारी।
जीव तिरत कहा बेर है, सायर शिल तारी। (टेक)
मैं अघघाती मनमुखी, नहि साच बिचारी।
कूड़ो कपटी कातरी, मनहीण विकारी।
अजामील सूं अधिक मैं, अघ ऊमर सारी।
गणिका कैसी गिणति मैं, असी मति म्हारी।
अवगुण भर्या अपूर करि, मेरी बोहिथ भारी।
दशूं दिशा कोई दूसरी, नहि ओट करारी।
खुद बड़ खेवट राम जी, शरणागत थारी।
रामचरण जो बूडि है, होइ हांसि तुम्हारी।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० ९९२।
२. वही, पृ० ९९३।
३. वही।

राग जैं जैवन्ती का एक पद यहाँ उद्धृत है जिसमें स्वामी जी मन को संबोधित करते हैं। मन ! तू सोता क्यों है ? पलकें उठाकर देख दिन भाग रहा है।। रामनाम के स्मरण की प्रेरणा से पद पूर्ण है।

"रे मन सोवै कहा राम राम गाय रे।
पलक उघारि देखि दिन चल्या जाय रे। (टेक)
पाछलो पहर रह्यो, आगलो गयो है हांनि।
अबही सम्हाल प्यारे, चूक तें खलां न रे।
सुत दारा धन धांम, सबही ठिगइया जांन।
चित मै सुचेत होय पिया कूं पिछांनि रे।
काल की अवाई आई, धर लै तवाई कांन।
सजन सगाई त्याग, तेरो सुख मांन रे।
चलो चलि भाई आंन, संगी सो गयो पलांन।
रामचरण रामध्याय हरि हेत आन रे।"[1]

राग सारंग के अधोलिखित पद में स्वामी जी अपनी तपोभूमि 'कुहाड़ै' का स्मरण करते हैं। कुहाड़ै को भक्ति का प्रतीक मानकर आत्मा को उसी की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देते हैं। पद में स्मरण संचारी की प्रतीति होती है—

**"गैबो चलो तो कुहाड़ै जाईये।
ओर दिशा कूं गमन न कीजे, सुरति सहज घर लाईये। (टेक)
ऊँचा नगर कलोर्‍या मंदिर, निर्मल भूमि सुहाईये।
चोड़ी शिला बड़ला की छाया, जहाँ गोविन्द गुण गाईये।
गोकुलदास धना के बंशी, जिनकूं हरि पंथ लाईये।
ठंडा जल सरिता का अचवन, शीतल ठोर सुपाईये।
जन सुंदर अरु रामसनेही, उन कूं संग लगाईये।
रामचरण सतगुरु के शरणें, सब संता मन भाईये।"[2]**

राग विहाग में स्वामी जी ने भक्तिरस में सराबोर बड़े ही मधुर पदों का निर्माण किया है। सबके 'सिरजनहार' राम की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि वह ऊँच-नीच के भेदभाव से परे है, जो उसे स्मरण करता है उसी का उद्धार करता है—

---

१. अ० वा०, पृ० ९९५।
२. वही, पृ० ९९७।

"रामजी सबका सिरजनहारा।
ऊंच-नीच कोई भेद न जाणै, भज्यां उतारै पारा।
पंडित गावै वेद पुराणा, दुनियां आंन पसारा।
हरि मारग की खबरि न पाई, भूल्यो सब संसारा।
संत मिल्या सबही विधि पावै, भजन भेद अधिकारा।
रामनाम निर्पक्ष बतावै, नहिं कोइ म्हारा थारा।
घट घट व्यापक राम कहीजे, उत्तम मधिम विहवारा।
जो ध्यावै सोही पद पावै, जामैं फेर न सारा।
तन मन जीत रामरस पीवै, जीवै इ आधारा।
रामचरण ताहि और न भावै, सब रस लागै खारा।"[१]

राग पंजाब में फकीरी की मस्ती में कवि जैसे डूब गया है। किसी पद में संत के दीवानेपन की चर्चा करता है तो किसी में फकीरी की श्रेष्ठता घोषित करता है। यहाँ एक पद उद्धृत हैं जिसमें रहमान के रंग में डूबा संत आठों पहर 'पिया' के प्रेम में मस्त रहता है। सूफियाना इश्क और अगम दिशा की चर्चा से ओतप्रोत इस पद में स्वामी जी 'दरवेश' की चाल से अवगत होते हैं—

"फकीरा रंगरता रहमान।
आठ पहर घूंमत रहै, नित प्रेम पिया मस्ताना। (टेक)
अगम दिशा सूं आईया, वे काया किया प्रवेश।
देख दुनी का दरध कूं, पुनि उलटि गया वोही देश।
जब लग बास सराय में वे, तब लग भाड़ा देह।
अपणी इच्छा छाडि कै, भख पर इच्छा का लेह।
जग मैं बिचरै सहज सूं वे, ना काहू करै सनेह।
आसिक देखै रब्बदा, टुक जाकूं आपा देह।
पंथ बतावै भिस्त का वे, काढै दोजग मांहि।
दीन दुनी का मेल करि, कछु आपण चाहवै नांहि।
रामचरण दर्वेश की वे, कोइ बिरला पावै चाल।
दुनिया कूं दिल ना देवै, रसै अपणै ह्वाल खुस्याल।"[२]

राग सोरठ के अन्तर्गत **गिरनारी सोरठ** और **सूवा सोरठ** तथा **सोरठ** शीर्षकों के अन्तर्गत पदों के संग्रह मिलते हैं। यहाँ सूवा सोरठ राग का एक पद प्रस्तुत है जिसमें संसार

१. अ० वा०, पृ० १००४।
२. वही, पृ० १००५।

को समुद्र का रूपक देकर उसके खारे जल से विरत एवं वैराग्य को सरोवर का रूपक देकर उसके शीतल जल से आनन्दित होने की बात स्वामी जी करते हैं—

"संसार समंद जल खारो रे।
पीवत प्यास मिटत नहिं कबहू, उठत अधिक धकारो रे। (टेक)
सौ के भये सहँस की तिरखा, सहँस भया लख हारो रे।
लखहूं सें क्रोड़ी धज अड़बां, खंडबा पद्म पसारो र।
सुख चाहूं तो दुख अगवांणी, अहनिशि अजक अथारो रे।
सिद्ध भया भी प्रापति नांही, रोग शोक शिर भारो है।
जो में जाति जगत जश चाहूं, मति अपजश होइ म्हारो रे।
बिगड़ी में कोइ वल्लभ नांही, सबही दे दुर्कारो रे।
भेली कूं भय कटक राज को, तस्कर अग्नि अहारो रे।
ज्यूं देखूं ज्यूं सुख नहिं दीशै, संता शरण सहारो रे।
ज्ञान भक्ति में निरभैताई, जहां न म्हारो थारो रे।
रामचरण बैंराग सरोवर, शीतल अनंद अपारो रे।"[1]

और यह राग धनाश्री का एक पद है जिसमें पत्नी भाव से कवि मन को पति की ओर से विमुख होने के लिए उलाहना देता है। यौवन के जोर में तूने मुझे खराब कर दिया। यदि मुझे पता होता कि यौवन यम का गुलाम है तो उससे रूठ कर उदासीन हो जाती—

"फिट जोबन जोरें लिया रे,
तैं मोहि करी रे खराब।
पति कूं पूठ दिखावता,
म्हारी कछू न राखी आब। (टेक)
दिवस अंधेरी निशि गिणी रे, बस्ती गिणी रे उजाड़।
विषिया रस छकियो फिर्‌यो रे, तोडि सरम की बाड़।
पर को गिण्यो न आपणो रे, ऐसो तूं अंध अमांन।
दिना च्यार को गारबो रे, फल सैंमल सामांन।
माया केरा कीच में रे, कल भूल्यो भगवान।
तूं तो फटक परो गयो रे, मोहि पीव करी हैरान।
पांन उड़्यां खंखर रह्या रे, शोभ न पावै रे ढाक।
भई निलाजी नाह सूं, म्हारी बाद गुमाई छाक।
जे हूं ऐसो जाणती रे, जोबन जम को रे दास।
रामचरण करि रूसणो, में रहती निपट उदास।"[2]

---

१. अ० वा०, पृ० १००७। २. वही, पृ० १००९।

राग केदारो में स्वामी जी भ्रम में भूले मन को समझाते हैं—

"मन तू भरम भूल्यो बीर।
मृगतृष्णा जल देखि ध्यायो, परिहरि परगट नीर। (टेक)
साचा प्रीतम परिहर्‍या रे, कूड़ै कीयो सीर।
भीड़ पड्या भग जायगा रे, कोइ न बंधावै धीर।
मात पिता सुत भामिनी रे, इन संग पावै पीर।
धन जोबन मति देखि भूलै, ये सब नांही थीर।
जगत धार्‍यो राम बिसार्‍यो, गह कौड़ी तज हीर।
अंतकाल पछितायगो रे, सुण काफर बेपीर।
भर्म कर्म सूं लागियो रे, समझ्यो नीर न खीर।
काचा सब कल जायगा रे, ज्यूं पावक संग कथीर।
सतगुरु शब्द पिछांण कै रे, छाडि छीलर तीर।
रामचरण दरियाव भजिये, राम गुणां गंभीर।"[1]

उपर्युक्त उद्धरणों के द्वारा स्वामी रामचरण की संगीतात्मकता से हमारा परिचय हो जाता है। स्वामी जी के केवल ग्यारह रागों के उद्धरण यहाँ दिए गए हैं, विस्तारभय के कारण अन्य रागों में लिखित पदों के उदाहरण नहीं दिए जा सके। इन पदों में स्वामी जी के वैयक्तिक स्पर्श की जहाँ झलक मिलती है वहीं संसार की असारता, रामनाम-स्मरण आदि की प्रेरणा भी। स्वामी रामचरण का भावुक कवि हृदय संत से भक्त हो गया है। संगीत की रागोर्मियों में डूबते-उतराते कवि अपने 'खावंद' की शरण पा गया है—

"वार पार कहुं थाह न आवै, सुमर सुमर जन मज्झि समावै।
अैसा साहब खावंद मेरा, रामचरण चरणों का चेरा।"[2]

छंद विधान

स्वामी रामचरण के छंद विधान का अध्ययन अपने में एक रोचक विषय है। यों संत कवियों ने छंद विधान को बहुत गंभीरता से नहीं लिया है। उनमें से अधिकांश ने 'साखी' और 'सबद' शीर्षकों में काव्य रचना कर छुट्टी ली है। उन्होंने छंदों के नियम-उपनियमों, भेद, मात्रा, वर्ण, गण-विचार आदि के चक्कर में पड़ना या तो उचित नहीं समझा या फिर इन सबकी व्यापक जानकारी उन्हें न थी। स्वामी रामचरण इस भावधारा के अपवाद लगते हैं, यद्यपि संत परिपाटी के निर्वाह के प्रयास में उनके छंद विधान में भी थोड़ी अव्यवस्था

---

१. अ० वा०, पृ० १०१०।
२. वही, पृ० १०१२।

दृष्टिगत होती है। स्वामी जी के 'अणभै वाणी' नामक विशाल संग्रह महाग्रंथ में ३० छन्द शीर्षकों के अन्तर्गत काव्य रचना हुई मिलती है। छन्दों में से लगभग सभी छन्द पिंगल शास्त्र में उल्लिखित छन्द-लक्षणों की कसौटी पर खरे उतरते हैं। पर इनके अध्ययन में थोड़ी कठिनाई यह होती है कि कुछ छन्दों के अलावा शेष छन्दों में से कतिपय ऐसे हैं जिनके नाम हिन्दी छन्दशास्त्र के प्रचलित ग्रंथों जैसे 'छन्द प्रभाकर' में नहीं हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न नाम से वे मौजूद हैं। दूसरी कोटि उन छन्दों की है जिनके लक्षण से विदित होता है कि वे किसी एक ही छन्द के विभिन्न नाम धारण कर आए हैं। एक कोटि और भी है। यह कोटि उन छन्दों की है जो नाम तो प्रसिद्ध छन्दों का धारण किए हुए हैं, पर उनके नामों के छन्दों के लक्षणों से उनका कोई मेल नहीं है। नाम की गड़बड़ी से थोड़ा भ्रम अवश्य उत्पन्न होता है। पर यदि नाम की गड़बड़ी को हटा दिया जाय तो वे छन्दशास्त्रीय कसौटी पर खरे हैं। यहाँ इसी क्रम में हम स्वामी रामचरण के छन्दों का अध्ययन करेंगे।

[क] पहले उन छन्दों का विवेचन प्रस्तुत है जिनके नाम एवं लक्षण के सम्बन्ध में छन्दशास्त्र के ग्रन्थों से कहीं भी अनमिल स्थिति नहीं है। ये छन्द हैं—दोहा, सोरठा, चौपई, चौपाई, सवैया, मनहर, त्रोटक या तोटक, पद्धरि, गीतिका, कुण्डलिया और चान्द्रायण।

१. दोहा

१३ और ११ मात्राओं (विषम चरण में १३ और सम चरण में ११) की यति से २४ मात्राओं का यह छन्द साहित्य की एक गौरवमयी परम्परा अपने साथ रखता है। संत कवि, भक्त कवि, रीति कवि और नीति कवि सभी का यह प्रिय छन्द रहा है। स्वामी जी ने अपनी रचनाओं में इसका खूब प्रयोग किया है। एक उदाहरण उद्धृत है—

> "जगत अंधेरो बाग है, विविध फूल फल रंग।
> रामचरण मन भँवर होय, जहाँ किया परसंग।"[1]

२. सोरठा

दोहे का उल्टा छन्द सोरठा भी स्वामी जी के काव्य में पर्याप्त संख्या में है—

> "संग्रह स्वाद सिंगार, रामचरण ये जगत सुख।
> संतां कै तस्कार, जे जन रत्ता राम सूं।"[2]

३. चौपई

१५ मात्राओं के इस छन्द का एक उदाहरण स्वामी जी के काव्य से यहाँ प्रस्तुत है—

---

१. अ० वा०; पृ० १०।
२. वही, पृ० १८।

"वांम- दाम कै निकट न जाय।
हाथ न परसै छिवै न पाय।"[१]

४. चौपाई

१६ मात्राओं का यह छन्द संतों और भक्त कवियों का अत्यन्त प्रिय छन्द है। स्वामी रामचरण ने इसे अपनी अंगबद्ध वाणी तथा ग्रन्थों में प्रचुरता से प्रयोग किया है—

"मन उपजा कर पड़ै अयांगा।
उपजी राखै संत सुजांणा।"[२]

५. सवैया

वाणी साहित्य में स्वामी जी ने इस छन्द शीर्षक के अन्तर्गत विभिन्न अंगों की रचना की है। इस छन्द के कई भेद हैं। स्वामी जी ने सवैया नाम पर **मत्तगयंद सवैया** की ही बहुतायत से रचना की है। प्रत्येक चरण के २३ वर्ण वाले इस छन्द में ७ भगण और २ गुरु होते हैं। 'नाम महिमा को अंग' से एक सवैया यहाँ उद्धृत है—

"काशी में एक कबीर भयो जुलह्वा घर आय प्रवेश कियो है।
छांडि दियो सबही कुल को धर्म, रामनिरंजन सोधि लियो है।
शाह सिकंदर ताप दई तब पूरण ब्रह्म मैं प्राण दियो है।
रामचरण्ण ये संत न सूझत ता नर को धिरकार जियो है।"[३]

६. मनहर

प्रत्येक चरण में १६, १५ की यति से ३१ वर्णों के इस छन्द में भी स्वामी जी ने प्रचुर काव्य रचना की है। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"साही है फकीरी जिन खाई दिलगिरी सब,
आई है गरीबी मगरूरी कूं गुमाई है।
भाग्यो है अभाग राग जागियो बैराग भाग,
नीति कूं निवास दे अनीति कूं न्हसाई है।
धकायो दह्वाग दूर पायो है सुहाग पूर,
रामजी सूं प्रीति रीति भावना बधाई है।

---

१. अ० वा० पृ० १८।
२. वही, पृ० २०।
३. वही, पृ० ८६।

ताही को सन्यास तिन त्यागो है जगत्त बास।
रामचरण ऐसी गुरु ज्ञान में बताई है।"[1]

७. त्रोटक या तोटक

१२ वर्णों के इस वृत्त में चार सगण होते हैं। स्वामी जी का यह प्रिय वर्णवृत्त है। 'अणभो विलास' के सप्तम प्रकरण से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"मुख राम भजन्न गलै मन रे।
क्रम काम विकार तजै तन रे।
अप लख्खन तख्खन होय जिता।
सब जाय बिलाय कहूंज किता।"[2]

८. पद्धरि

इस छन्द के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। स्वामी जी के ग्रन्थों में इस छन्द में रचे पद्यों की संख्या भी पर्याप्त है। पर कहीं-कहीं मात्रा दोष मिल जाते हैं। लेकिन बहुधा ऐसा नहीं हुआ है—

"वैराग्य रूप सुख सर्व त्याग।
उपदेश ज्ञान दे नहीं राग।
किरपाल मिले किरपाज कौन।
अब परो पाय ह्वै ह्वै अधीन।"[3]

९. गीतिका

१४, १२ की यति से इसके प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ होती हैं। यह छन्द स्वामी जी के ग्रन्थों में नहीं के बराबर प्रयुक्त हुआ है। 'सुख विलास' के चौथे प्रकरण में इसका एक उदाहरण मिलता है जिसका प्रथम चरण ही मात्रा की दृष्टि से दोषपूर्ण है। नीचे के दोनों चरण भी दोषपूर्ण हैं—

"संत बकसै राम निज धन, तन मन्न पावनकार है।
परम धर्म प्रकाश निर्मल, परम आप उदार है।

---

१. अ० वा०, पृ० ८८।
२. वही, पृ० २४२।
३. वही, पृ० २११।

सुमरण साख सुग्रीव ने पै महा अगम फल दर्श ही।
यह सुकाल जो होय साता राम रसायण वर्ष ही॥"[1]

१०. कुण्डलिया

स्वामी जी इसे 'कुण्डल्या' लिखते हैं। १४४ मात्राओं का यह पूर्ण छन्द ६ चरणों वाला है। आरम्भ के दो चरण दोहा के और शेष चार रोला के होते हैं। स्वामी जी के काव्य में साखी के बाद इसी छन्द का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है—

"अैसो अणभो अमर घन बकसै संत सुजाण।
लेवै लगन लगाय कै बड़भागी बहु जाण।
बड़ भागी बहु जाण जाणपण वाका साचो।
गुरुगम ज्ञान विचार ओर घन दर्श्यो काचो।
वाकी नहचै समझि को करिये कहा बखाण।
अैसो अणभो अमर घन बकसै संत सुजाण।"[2]

११. चान्द्रायण

इसे स्वामी जी ने 'चन्द्रायणा' कहा है। ११, १० की यति से इसके प्रत्येक चरण में २१ मात्राएँ होती हैं। ११ मात्रा जगणान्त और १० मात्रा रगणान्त होनी चाहिए। स्वामी जी के प्रिय छन्दों में इस छन्द का भी स्थान है। 'नाम समर्थाई को अंग' से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"आभा केरी छाँह, सीत का कोट रे।
ओस नीर यूं जांन, आंन की ओट रे।
ज्ञान भांण मारुत, उवै उड जाय रे।
परिहां रामचरण भज राम सबल शरणाय रे।"[3]

१२. बेताल

छन्दशास्त्र में उल्लिखित 'कामरूप' छन्द का दूसरा नाम बेताल छन्द है।[4] १६, १० की यति से प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ होती हैं। 'सुख विलास' के प्रथम प्रकरण से एक छन्द उद्धृत है—

---

१. अ० वा०, पृ० ३५२।
२. वही, पृ० ३५२।
३. वही, पृ० ७६।
४. भानु रचित 'छन्द प्रभाकर' में द्रष्टव्य 'कामरूप' छन्द, पृ० ६७।

"मानवं तन धारि कलि मैं, होय सन्मुख राम सूं।
बिमुखता बेअकल तजिये, नांहि भजिये काम कूं।
सज्जना ये सीख मेरी, कहै टेरी संत जू।
आदि अंत जू राम रिच्छक, आप आतम कंत जू।"[1]

स्वामी जी ने कहीं-कहीं बेताल छन्द को ६ चरणों का भी कर दिया है पर मात्रा दोष से मुक्त रखा है।

[ख] इस कोटि में उन छन्दों का निरूपण हमारा अभीष्ट है जिनके नाम 'छन्द-प्रभाकर' में दूसरे हैं। यहाँ स्वामी जी द्वारा उल्लिखित नाम ही के शीर्षकों में उनकी चर्चा हो रही है।

१३. रेखता

यह 'छन्द्र प्रभाकर' का 'करखा' छन्द है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में ८-१२-८-९ की यति से ३७ मात्राएँ होती हैं। अन्त में यगण होता है। 'सुमरण को अंग' का यह छन्द यहाँ उद्धृत है—

"राम का नाम कूं जप्प रे बावरे, राम का नाम बिन मुक्ति नांही।
शिव्व सनकादिका शेष भी रटत है नाम की रटत है गवरि ध्यांही।
नव्व जोगेश्वरा नाम कूं रटत है शुक्क हनुमंत अरु वेद गांही।
नारदा शारदा रटत मौनी जना नाम तत्सार तिहूं लोक मांही।"[2]

इस छन्द में भी स्वामी जी ने कहीं चार चरण और कहीं छः चरण रखे हैं पर मात्रा भेद कहीं भी नहीं रखा है।

१४. निसाणी या निशाणी

यह छन्दशास्त्र का 'शोकहर' छन्द है। भानु जी ने 'छन्द प्रभाकर' में यही नाम दिया है। इसका एक नाम 'शुभंगी' भी है।[3] इस छन्द के प्रत्येक चरण में ८-८-८-६ की यति से ३० मात्राएँ होती हैं, अन्त में 'गुरु' होना चाहिए—

" ·लिका जोगी बिपति बियोगी जोग जुक्ति बिसराइंदा।
कान फड़ाया शिर मुरड़ाया भगवां भेष बणाइंदा।

१. अ० वा०, पृ० ३३०।
२. वही, पृ० १९०।
३. भानु : छन्द प्रभाकर, पृ० ७४।

खाख चढाया, खोल कढाया जोगी जगत जणाइंदा।
सार न पाया तार बजाया घर घर भरथरि गाइंदा।"[१]

१५. निराज

'हीर' छन्द को स्वामी जी ने 'निराज' कहा है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में १२-११ की यति से २३ मात्राएँ होती हैं। इसका आदि वर्ण गुरु हो और अन्त में रगण अपेक्षित है। 'अणभो विलास' के पन्द्रहवें प्रकरण का निम्नलिखित छन्द उदाहरण रूप में प्रस्तुत है—

"झूठ सूं अरूठ सदा, साच को विचार हैं।
और न उपाय कोई, राम ही उचार हैं।
उत्तम अगाध सदा, एक रस ज्ञान हैं।
राम ही चरण वाच, साच ही समान हैं।"[२]

१६. झंपाल

'छन्द प्रभाकर' का 'सार' छन्द ही स्वामी जी का 'झंपाल' है। प्रत्येक चरण में १६-१२ की यति से २८ मात्राओं वाले इस छन्द के अन्त में दो गुरु अपेक्षित हैं--

"जंतर मंतर करि है, करि है औषधि बूंटी।
डंडा फंडा डोरा कंडा, करि है कांमण मूंठी।
नाना विधि परपंच पसारै, माया आश न छूटी।
स्वाद सिगारा अति हुंसियारा, पांचूं फिरै न पूठी।"[३]

१७. उद्धोर

प्रसिद्ध 'रूपमाला' छन्द ही स्वामी जी का 'उद्धोर' छन्द है; इसके प्रत्येक चरण में १४-१० की यति से २४ मात्राएँ होती हैं, इस छन्द का प्रयोग स्वामी जी ने कम किया है। एक उदाहरण 'सुखविलास' के बारहवें प्रकरण से उद्धृत किया जाता है—

"विभव मंदिर देख सुंदर, कांइ गर्वै अंध।
सबै ऊभा मेल्ह जासी, काल ले जाइ बंध।
नाम निधि है अजर अम्मर, कोइ गंजै नांहि।
भय न भूपर सुर न संसै, मिलै निजपद मांहि।"[४]

---

१. अ० वा०, पृ० ९९१।
२. वही, पृ० २८०।
३. वही, पृ० ८३२।
४. वही, पृ० ४१३।

१८. चम्पक

छन्दशास्त्र में उल्लिखित 'सखी' छन्द ही कवि का 'चम्पक' छन्द है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ होती हैं। भानु जी ने 'छन्द प्रभाकर' में 'चम्पकमाला' छन्द का उल्लेख किया है किन्तु वह वर्णवृत्त है और उसका स्वामी जी के इस 'चम्पक' से कहीं मेल नहीं। वस्तुतः स्वामी जी का चम्पक 'छन्द प्रभाकर' का सखी छन्द ही है। 'लच्छ अलच्छ जोग' नामक लघु ग्रन्थ का अधिकांश इसी छन्द में है। उसी से एक उदाहरण दिया जाता है—

"साधां की मंडली आवै।
सब नगरी कै मन भावै।
ये साध गरीब निवाजा।
ये सब राजां का राजा।"[1]

[ग] इस श्रेणी में उन छन्दों का निरूपण इष्ट है जिनके नाम छन्दशास्त्र में प्रसिद्ध हैं। पर उन छन्दों के लक्षणों से स्वामी जी द्वारा उद्धृत छन्दों के लक्षणों का मेल नहीं है। किन्तु वे सभी छन्द शुद्ध हैं और छन्दशास्त्र में दूसरे नामों से जाने जाते हैं। ये छन्द हैं—झूलणां, शिखरणी, अरेल, त्रिभंगी, भुजंगी, मोतीदाम, हंसाल और चामर।

१९. झूलणां

'झूलना' नाम के तीन छन्दों का उल्लेख भानु जी ने 'छन्द प्रभाकर' में किया है। १. झूलना (प्रथम),[2] २. झूलना (द्वितीय),[3] ३. झूलना (तृतीय)[4], किन्तु स्वामी जी का झूलणां इनमें से कोई नहीं है। यह छन्द स्वामी जी के साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि इस छन्द में उन्होंने कई अंगों का निर्माण किया है। यह 'झूलणां' छन्दशास्त्र का प्रसिद्ध छन्द 'सवैया' है। इस सवैया में भी दो प्रकार के प्रमुख सवैया छन्दों का झूलणां के नाम पर स्वामी जी के काव्य में समावेश है। ये छन्द हैं—१. मदिरा सवैया, २. दुर्मिल सवैया।

१. मदिरा सवैया का उदाहरण

"यूं कोउ मांनव मान के कारन कूरहि गाल बजावता है।
पढि वेद पुरान कुरान घना बाणी आप बखाण बणावता है।

---

१. अ० वा०, पृ० ९८७।
२. भानु : छन्द प्रभाकर, पृ० ६७।
३. वही, पृ० ७८।
४. वही, पृ० ७९।

करणी जु बिना कछु काज नहीं कहीं ठोर न आदर पावता है।
ऐसें वो वाच की लच्छ बिना मन रंजन फोकट गावता है।"[१]

२. दुर्मिल सवैया का उदाहरण

"बिन साधन सिद्धि न होय प्यारे कोइ बात अनेक बनाय है जी।
कोउ मन्न लडू करि पेट भरै ताकी भूख किसी विधि जाय है जी।
बहु भांति सूं सांति विहीन फिरै समता लवलेश न पाय है जी।
जन रामचरण्ण भजन्न बिना जैसें बांझ धतूरो मचाय है जी।"[२]

उपर्युक्त दोनों छन्द झूलणां शीर्षक के अन्तर्गत एक ही स्थान पर उद्धृत हैं। वास्तव में सवैया को ही उन्होंने झूलणां कहा है। पर सवैया के दोनों प्रकारों का एक ही शीर्षक के अन्तर्गत उल्लेख चिन्त्य अवश्य है। 'अणभैवाणी' में ऐसा कई स्थानों पर दीखता है।

२०. शिखरणी

प्रसिद्ध वर्णवृत्त '**शिखरिणी**' से स्वामी जी के शिखरणी छन्द का मेल नहीं है। वस्तुतः यह '**छन्द प्रभाकर**' में उल्लिखित '**भव छन्द**' है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में ११ मात्राएँ होती है, अन्त में गुरु होना चाहिए। 'अणभो विलास' के सप्तम प्रकरण में हमें इसका एक उदाहरण मिल जाता है—

"विरह रूप सापणी।
डस्यो है मन्न पापणी।
लगत तन्न कांपणी।
मिलत नांहि बापणी।"[३]

२१. त्रिभंगी

स्वामी जी के छन्द निशाणी और त्रिभंगी में अन्तर नहीं हैं। दोनों एक ही छन्द हैं। निशाणी 'छन्द प्रभाकर' का 'शोकहर' छन्द है, यह पीछे स्पष्ट किया जा चुका है। रही बात प्रसिद्ध ३२ मात्रा वाले त्रिभंगी छन्द की। उस छन्द का प्रयोग स्वामी जी ने नहीं किया है।

---

१. अ० वा०, पृ० ३८९।
२. वही, पृ० ३८९।
३. वही, पृ० २४५।

२२. अरेल

छन्द प्रभाकर में 'अरिल्ल' छन्द का लक्षण लिखा गया है। किन्तु स्वामी जी का 'अरेल' 'अरिल्ल' नहीं है। 'अरेल' छन्द के वही लक्षण हैं जो स्वामी जी के चन्द्रायणा (चान्द्रायण) के हैं, अर्थात् अरेल छन्द चान्द्रायण छन्द ही है।

२३. चामर

स्वामी जी का चामर छन्द 'छन्द प्रभाकर' में उल्लिखित 'विधाता' नामक छन्द है, छन्दशास्त्र का बहुचर्चित चामर छन्द से यह बिल्कुल भिन्न है। १४-१४ की यति से इस छन्द में २८ मात्राएँ होती हैं। वैसे तो इस छन्द का प्रयोग उनके ग्रन्थों में यत्र-तत्र हुआ है पर लघु ग्रन्थ 'चिन्तावणी' में इसका अधिक प्रयोग मिलता है। उसी से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"अब तू राम रसना गाय।
बीतो जन्म अहलो जाय।
तेरा जन्म की गुण आदि।
मूरख खोइये नहि बादि।"[1]

२४. मोतीदाम

२५. हंसाल

२६. भुजंगी

उपरिलिखित तीनों छन्दों का वर्णन छन्दशास्त्र के ग्रन्थों में मिलता है। पर 'छन्द प्रभाकर' में इनके उल्लिखित लक्षणों और स्वामी जी द्वारा लिखित इन छन्दों की रचनाओं के लक्षण बिल्कुल भिन्न हैं। दूसरी बात यह भी कि मोतीदाम, हंसाल और भुजंगी—इन तीनों नाम से निर्मित छन्द रचनाओं का लक्षण एक है अर्थात् एक ही छन्द को तीन नामों से तीन स्थलों पर लिखा गया है। इन तीनों छन्दों की रचनाओं को देखने से विदित होता है कि वे रचनाएँ 'भुजंगप्रयात' छन्द में रची गई हैं।

'भुजंगप्रयात' १२ वर्णों का वर्णवृत्त है जिसमें चार यगण होते हैं। उक्त तीनों छन्दों की रचना नीचे उद्धृत है जिसमें भुजंगप्रयात के लक्षण विद्यमान हैं—

---

१. अ० बा०, पृ० ९७७।

१. मोतीदाम के नाम पर प्राप्त छन्द का उदाहरण

"रहे राम रामं, दहे कूर कामं।
अकामं अरूपं, अखण्डे स्वरूपं।
नहीं पांचतीनं, परापार लीनं।
महा तेज नूरं, उदै बोहो सूरं।"[१]

२. भुजंगी के नाम पर प्राप्त छंद का उदाहरण

"नमो राम रूपं गुरूजी अगाधै।
तुम्है सेव सानंद सूं सर्व साधै।
ब्रह्मा ईस विष्णवादि औतार धारै।
सदा एक म्हैमा गुरूजी उचारे।"[२]

३. हंसाल के नाम पर प्राप्त छन्द का उदाहरण

"गुरु ज्ञान रूपं, महिमा अनूपं।
गुणा तीन पारं, सबै तो आधारं।"[३]

उपर्युक्त उद्धरणों की जाँच करने से स्पष्ट हो जाता है कि सभी में 'भुजंगप्रयात' छन्द के लक्षण वर्तमान हैं। इन तीनों छन्दों की छन्दशास्त्र में महत्ता है साथ ही 'भुजंगप्रयात' भी कम महत्त्वपूर्ण छन्द नहीं है, फिर कैसे यह सब हो गया? चिन्त्य है।

२७. कवित

'छन्द प्रभाकर' में भानु जी ने मनहर या मनहरण का पर्याय कवित को लिखा है।[४] मनहर ३१ वर्ण का छन्द होता है। इसकी चर्चा पीछे हो चुकी है। स्वामी जी का **'कवित'** **'मनहर'** नहीं है। इसके लक्षण का कोई दूसरा छन्द भी नहीं मिलता है। मात्रा की दृष्टि से यह छन्द नितान्त शुद्ध है। ६ पद के इस छन्द में १४४ मात्राएँ होती हैं। आरम्भ के चार चरणों में रोला और बाद के दो चरणों में दोहा के लक्षण मिलते हैं। यह कुण्डलिया का उलटा है। इस छन्द में भी स्वामी जी ने पर्याप्त लिखा है। इस छन्द शीर्षक में विभिन्न अंग रचे गए हैं—

"कमल मूल मधि कीच नीच मिण्डुक अधिकारी।
भँवर बासना लेत बसै नहिं तास मँझारी।

---

१. अ० वा०, पृ० ४२९।
२. वही।
३. वही, पृ० ८५६।
४. भानु : छन्द प्रभाकर, पृ० २१४।

अलि दादुर क्यूं मेल आश पुनि बास विवर्जित।
सुख गत बढै कलेश होय कबहूं जो संगात।
गुरु पूजा कूं खैंचि ले सो कहा करै शिखज्ञान।
ज्ञान भक्ति वैराग्य सूं रखै दोष अभिमान।"[1]

२८. जुगती

इस छन्द के नाम पर एक पद्य ग्रन्थ 'अणभो विलास' के चौदहवें प्रकरण में उपलब्ध है। १५-१३ की यति से इसमें कुल २८ मात्राएँ हैं। 'छन्द प्रभाकर' में इस नाम और लक्षण का कोई छन्द मुझे नहीं मिला। उद्धरण रूप में इसकी एक पंक्ति दी जाती है—

"राम सदा सुख दानियां, सब वेद पुराण बखानियां।"[2]

२९. साखी

यह संत कवियों का सर्वाधिक प्रिय छन्द है। पंडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि "साखी शब्द "साक्षी' का अन्यतम रूप मान लिया जा सकता है।"[3] डॉक्टर रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "साखी वस्तुतः दोहा ही है किन्तु उसे आध्यात्मिक नाम 'साखी' दे दिया गया है। जो कथन सत्य के साक्षी स्वरूप है वही साखी है।"[4] चतुर्वेदी जी का अनुमान है कि, "साखी रचना की परम्परा कबीर साहब के समय से अधिक प्राचीन अवश्य रही होगी।"[5] दोहा छन्द का प्रयोग भी प्राचीन अपभ्रंश काव्यों में मिलता है। अतः यह मान लेने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि साखी दोहा का ही रूप है। लक्षण की दृष्टि से समता भी लक्षित होती है। कहीं-कहीं अन्तर भी दीखता है। एक उदाहरण देना समीचीन होगा—

"संतां बांण चलाईया धर कर सूधी मूंठ।
प्रेमसहित सिख झेलिया, गया कलेजा फूट।"[6]

किन्तु साखी का दूसरा उदाहरण जो नीचे उद्धृत है, मात्रा दोष से रहित नहीं—

---

१. अ० वा०, पृ० १२३।

२. वही, पृ० २७५।

३. पं० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर-साहित्य की परख, पृ० १८४।

४. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत डॉ० रामकुमार वर्मा का 'संतकाव्य' शीर्षक लेख, पृ० २३८।

५. पं० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर-साहित्य की परख, पृ० १८५।

६. अ० वा० पृ० १२।

"गिरिवर कूं मोरा जपै, सायर जपै मराल।
रामचरण रामै जपै, तुम रंकां करण निहाल।"[१]

इसमें नीचे की पंक्ति में दो मात्राएँ अधिक हैं। साखी के उपर्युक्त दोनों रूप स्वामी रामचरण के काव्यग्रन्थों एवं 'वाणी' में उपलब्ध हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी रामचरण को पिंगलशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने अपने भाव प्रकाशन के लिए ऊपर वर्णित सभी छन्दों का विधान किया है। विशेष बात यह है कि मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग उन्होंने किया है। पर मात्रा, वर्ण या गण सम्बन्धी दोष अपवाद स्वरूप ही मिल सकते हैं। स्वामी जी छन्द विधान के शिल्पी थे, इस कथन में अत्युक्ति नहीं।

भाषा

यद्यपि स्वामी रामचरण जी की काव्यभाषा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन हमारा उद्देश्य नहीं है, फिर भी स्वामी जी की भाषा के सामान्य गुणों, शब्द-भण्डार, लोकोक्ति-मुहावरों आदि से परिचित होना हमारा अभीष्ट है। संत कवि अपने सिद्धान्तों के प्रचार के उद्देश्य से काव्य-रचना करते थे। जन सामान्य तक अपने सन्देश प्रेषित करना उनका ध्येय होता था। इन उद्देश्यों के लिए ये विचरण करते थे और जनजीवन के निकट सम्पर्क में भी आते थे। पर्यटन-शीलता के कारण उनके शब्द-भण्डार में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं एवं बोलियों के शब्दों का सम्मिलित हो जाना स्वाभाविक था। दूसरी बात यह है कि अपनी विचार-सामग्री को सर्वग्राह्य बनाने के लिए सहज स्तर की भाषा का प्रयोग करते थे। कदाचित् इसी गुण के कारण सामान्य जन संतों के विचार से प्रभावित होकर उन्हें ग्रहण कर लेता था। हाँ, जहाँ संतों को पाण्डित्य प्रदर्शन की अभिलाषा हो जाती थी, वहाँ वे भाषा में रहस्यात्मकता का समावेश कर दिया करते थे।

स्वामी रामचरण की भाषा के विषय में 'अणभै वाणी' के प्रस्तावनाकार साध कार्य्यराम लिखते हैं—"इन महावाक्यों की रचना सरल भाषा में होने के कारण सर्व स्त्री-पुरुषों को पठन-श्रवण में सुगम और सहज कल्याण मार्ग दर्शक कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।"[२] इसी सन्दर्भ में 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों का मत उद्धृत करना भी असंगत न होगा। वे लिखते हैं—"**अणभैवाणी की भाषा लोकभाषा के वैभव को लिए है।**"[३] स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण की भाषा संत परम्परा की अनकूलता से समन्वित है। यहाँ हम स्वामी जी की काव्यभाषा की विशेषताओं का संक्षेप में निरूपण करेंगे।

---

१. अ० वा० पृ० १०।
२. अणभैवाणी की प्रस्तावना, पृ० २।
३ वैद्य। केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १३२।

नाद की ध्वनि कवि सुन रहा है। [illegible] झंकार हम भी सुन रहे हैं जैसे। यह अनुरणन भी ध्यान देने योग्य है—

"घोर अनहद्द को गगन गिरणाईया होत बहु सौंर नहि कहन आवै।
झालरी बीण मरदंग सहनाईयां बांसुरी ताल झुणकार लावै।"[1]

निम्नलिखित पंक्तियों में घटा, निर्झर और बिज्जु के रूपकों द्वारा विरह को रूपायित करने में कवि को जितनी सफलता मिली है उसका बहुत कुछ श्रेय शब्दों की अनुरणनशीलता को है—

"बिरह घटा घररात नैंन नोझर झरै।
चित्त चमंकै बोज कि हिरदो ओल्ह रे।"[2]

सचमुच जैसे घटा घहरा रही है, निर्झर झर रहे हैं और बिजली चमक रही हो। हृदय इस अनुभूति से उल्लसित हो रहा है। कवि के हृदय का यह उल्लास साकार हो उठा है।

रूपात्मकता

स्वामी जी की भाषा वर्ण्य का रूप खड़ा करने में समर्थ है। होली का एक चित्र है। पिया-पियारी का फाग, गुलाल उड़ रहा है, केसर गारी जा रही है, रंग अबीर की धूम मची है, पिचकारी में रंग भरा जा रहा है। अनहद नाद सुनाई पड़ रहा है। रंगों की यह बरसात फागुन को भादो बना रही है। इसी वर्षा में भीगकर सुख में तन्मय प्रिया का रूप उसका प्रियतम निरख रहा है—

"पच रंग पोस गुलाल उड़ाई, तिरगुण केसर गारी हो।
अर्थ अबीर साच करि सूंधो, भरत प्रेम पिचकारी हो।
शील सिंगार नेह अति नीतम, खेलत पिया पियारी हो।
अनहद नाद बैंन धुनि ऊठै, गरजत गगन मझारी हो।
फागुन फाग रमत भयो भादू अंबर बरसै भारी हो।
भीजत सुरति गरक भई सुख मैं, निरखत रूप मुरारी हो।"[3]

शब्द भण्डार

स्वामी रामचरण राजस्थानी थे। उनकी भाषा राजस्थानी है किन्तु उसमें अन्य प्रादेशिक भाषाओं, बोलियों एवं विदेशी मूल के शब्दों का बाहुल्य है। लोक-भाषा का अक्षय

---

१. अ० वा० पृ० १९२।
२. वही, पृ० ७७।
३. वही, पृ० १००१।

शब्द भण्डार उनकी अंगबद्ध वाणी एवं काव्य ग्रन्थों में भरा पड़ा है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के अलावा अनेक तद्भव, देशज शब्द विभिन्न बोलियों का परिवेश धारण करके स्वामी जी के शब्द भण्डार में समाविष्ट हुए हैं। पंजाबी, ब्रजी, खड़ी बोली एवं गुजराती भाषाओं के अनेक शब्दों का प्रयोग तो उन्होंने किया ही है, अरबी-फारसी मूल के भी अनेक शब्दों को निःसंकोच भाव से अपनाया है।

संस्कृत

राजस्थानी प्रान्तीयता के प्रभाव स्वरूप संस्कृत के तत्सम शब्दों के रूपों में विकृति स्वाभाविक है किन्तु स्वामी जी ने संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है। अनेक काव्य पंक्तियाँ उन्होंने संस्कृत में ही लिखी हैं। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है। 'साखी गुरुदेव को अंग' में लिखते हैं—

"गुरोर्पादौ तु स्पर्शेन पातकं तु विनश्यति।
ज्ञानोदयं रामचर्णः मुक्तेर्भागं तु लभ्यते।
गुरोर्मंत्रेस्तं चित्तं मोहवित्तेन लिप्यते।
स्वच्छं शुद्धं गतद्वन्द्वं प्राप्यते सुखसागरम्।"[१]

स्वामी जी ने अपने काव्य में संस्कृत के ऐसे तत्सम शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से किया है जिन्हें सरलता से ग्रहण किया जा सकता है। उनका रूप परिवर्त्तन उन्हें अभीष्ट नहीं। कुछ शब्द उदाहरण रूप में प्रस्तुत हैं—

"रामचरण वंदन करै सब ईशन के ईश।
जगपालक तुम जगतगुरु जगजीवन जगदीश।"[२]

'स्तुति का कविता' से उद्धृत उपर्युक्त पंक्तियों में 'वंदन', 'ईश', 'जग', 'पालक', 'जगत', 'गुरु', 'जीवन' और 'जगदीश' आदि शब्द तत्सम शब्द हैं। राजस्थानी में 'व' का 'ब' रूप में उच्चारण होता है। स्वामी जी ने भी अन्य स्थानों पर 'व' के लिए 'ब' लिखा है पर 'व' का 'ब' लिखना भी अपवाद नहीं है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली का एक और उदाहरण भी प्रस्तुत है—

"चिदानन्द चिरंजीव है, है सुखसागर राम।
रामचरण सुख राम में, ओर सबै बेकाम।"[३]

---

१. अ० वा०, पृ० ३।
२. वही, पृ० ३।
३. वहीं, पृ० ६।

चिदानंद, चिरंजीव, सुखसागर, सुख तत्सम शब्द हैं।

तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों का मेल

स्वामी जी ने शब्द प्रयोग में पर्याप्त स्वतन्त्रता से काम लिया है। एक ही शब्द के तत्सम और तद्भव रूप उनके काव्य में मिलते हैं। यह भिन्न बात है कि तद्भवता का कारण राजस्थानी रूप हो। जैसे—

१. उपकार—लोहा सें कंचन भया, ये पारस उपकार।[१]
   उपगार—रामचरण सतगुरु मिल्या, किया बहोत उपगार।[२]

२. गगन—अब त्रिवेणी न्हाई कै, कीया गगन प्रवेश।[३]
   गिगन—कूप गिगन मधि ऊरध मुख, निसिदिन अमी झरंत है।[४]

३. सागर—चिदानंद चिरंजीव है, है सुख सागर राम।[५]
   सायर—शुँन सायर हंस का वासा।[६]

४. निशि—राम नाम निशिवासर गासी।[७]
   निसि—निसिदिन भजिये राम कूं, तजिये नहीं लगार।[८]

५. प्रकाश—राम रट्यां का यह प्रकाशा।[९]
   प्रकास—सतगुरु ज्ञान उद्योत सें हिर्दय होत प्रकास।[१०]
   परकास—यह उजास गुरु ज्ञान सें, उर लोचन परकास।[११]
   परकाश—सब अंधियारा मिट गया, राम शब्द परकाश।[१२]

१. तत्सम और देशज शब्दों का एक साथ प्रयोग नीचे उल्लिखित साखी में उपलब्ध है।

---

१. अ० वा०, पृ० ८।
२. वही, पृष्ठ ४।
३. वही, पृ० २०७।
४. वही, पृ० १४।
५. वही, पृ० ६।
६. वही, पृ० २१०।
७. वही, पृ० २१०।
८. वही, पृ० ६।
९. वही, पृ० २१०।
१०. वही, पृ० २११।
११. वही, पृ० २११।
१२. वही, पृ० ११।

"टटपूंज्या धनवंत भया, सतगुरु सरणै आय।
रामचरण अब रामधन, मुक्ता खरचै खाय।"[1]

यहाँ टटपूंज्या (टुटपुंजिया) देशज और धनवंत तत्सम साथ-साथ प्रयुक्त हुए हैं।

२. इसी प्रकार तत्सम और तद्भव शब्दों का साथ भी नीचे की साखी में देखा जा सकता है—

"रामचरण खेती फल्यां, तृष्णा गई बिलाय।
निरधनिया धनवंत भया, अब धन खरचै खाय।"[2]

निरधनिया तद्भव और धनवंत तत्सम साथ प्रयुक्त हैं।

३. एक उदाहरण विदेशी मूल के शब्द और तत्सम के एक साथ प्रयोग का भी नीचे प्रस्तुत है—

"रामचरण करसण भक्ति, सुद्ध हिरदो सूं खेत।
नाम बीज गुरु महर जल, तब ब्रह्मज्ञान फल देत।"[3]

यहाँ महर (कृपा) फारसी और जल तत्सम का साथ प्रयोग हुआ है। इस प्रकार के प्रयोगों की भरमार है। स्वामी जी के पास विभिन्न भाषाओं के शब्दों का भण्डार था।

'न' के स्थान पर 'ण'

राजस्थानी भाषा में बहुधा 'न' के स्थान पर 'ण' बोला जाता है। स्वामी जी की रचनाओं में 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग खूब हुआ है। जैसे—हांणि (हानि), बखांण (बखान), साबण (साबुन), आवण-जाण (आना-जाना), बांण (बानि), अपणै (अपने); आसण (आसन)।

'उ' के स्थान पर 'ओ'

उकार के स्थान पर ओकार का समावेश भी स्पष्ट दीखता है। जैसे—बहोत (बहुत), बाहोबली (बाहुबली)।

---

१. अ० वा०; पृ० ४।
२. वही।
३. वही।

अनुनासिकता

राजस्थानी भाषा अनुनासिकता प्रधान भाषा है। स्वामी जी की भाषा में अनुनासिकता का बाहुल्य यह सिद्ध करता है। जैसे—

"राम बिनां भावै नहीं रामचरण कूं आंन।"[1]

यहाँ बिना, कू और आन को अनुस्वार लगाकर अनुनासिक बना दिया गया है। **अधिकरण के चिह्न 'में' के स्थान पर 'मैं' और 'में'** दोनों का प्रयोग 'अणभैवाणी' में मिलता है।

१. **"छै ऋतु बारा मास मैं पावस जीवन जांन।"**[2]
२. **"नाम बिनां त्रय लोक में, सुख कहुं दीसै नांहि।"**[3]

विदेशी (अरबी-फ़ारसी) शब्दों का प्रयोग

विदेशी मूल के शब्दों को स्वामी जी ने निःसंकोच भाव से अपनाया है। कतिपय शब्दों के उदाहरण देना असंगत न होगा—

खसम—	नारि कहावै **खसम** की पाडोसी सूं मेल।[4]
दीदार—	नैंन दुखी **दीदार** बिन, रसना रस आशै हो।[5]
अदल—	संत सिपाई **अदल** जमाई, तत तरवार सम्हाई वे।[6]
आसिक (आशिक)—	**आसिक** देखै रब्बदा, टुक जाकूं आपा देह।[7]
गुसल, आब—	ज्ञान **आब** सैं **गुसल** कर।[8]
दर्वेश, खलक—	रामचरण **दर्वेश** का वे, **खलक** न जांणै भेव।[9]
दिल, साबूत—	जा का **दिल साबूत** है।[10]

---

१. अ० वा०, पृ० १४०।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ४२।
५. वही, १००६।
६. वही, पृ० १००५।
७. वही।
८. वही।
९. वही।
१०. वही।

मुरशिद— तत की तबल बजाई मुरसद।[1]
असल, पीर, असल फकीरी पीर बतावै।
मीर, मुरीद, फकीरी मीर मुरीद सम्हावे वे।[2]

कब्ज— मनवा कब्ज करै धरि कदमां।[3]
बंदगी, बेअदबी— छांड़ बंदगी करै बेदबी, अपणै ही मन दासा वे।[4]
बरकत, ईमान— बरकति है ईमान मैं ईमान तज्यां नहि कोय।[5]
असनाई— तजि अज्ञान ज्ञान गहि लीजे, आनन करि असनाई।[6]
मगरूर— मैं मेरी संसार मैं अहूं मांन मगरूर।[7]
मोहब्बत (मुहब्बत)— मुहबत से दुख होय पीड़ पर की बर्तावै।[8]
कहर— बिकर्म कृत्य कहर लियां मैं मेरी ममता।[9]

ग्रन्थ 'विश्वास बोध' के छठें प्रकरण के पृष्ठ ६८७-८८ में विदेशी मूल के शब्दों की भरमार है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ इनके प्रयोग में स्वामी जी को अद्भुत सफलता मिली है। 'फकीरी' शीर्षक के अन्तर्गत इस शब्द समाज को संजोया गया है। उदाहरण रूप में कतिपय अंशों को यहाँ उद्धृत किया जाता है।

"फकीरी फकत या जगत सैं भिन्न है,
मन्न कोइ रीति की फिकर नांही।
हूवाल मैं मस्त शिर पीर का दस्त है,
बसत एकान्त रब ध्यान मांही।"[10]
... ...
"सफा सबूरी बंदगी अडिग एक इकतार।
महर मोम दिल पाक सद तज्यां ताक विस्तार।

१. अ० वा, पृ० १००५।
२. वही पृ १००६।
३. वही।
४. वही।
५. वही, पृ० ८१२।
६. वही, पृ० ७४८।
७. वही, पृ० ७४४।
८. वही, पृ० ७१०।
९. वही, पृ० ७०८
१०. वही, पृ० ६८७।

अनुनासिकता

राजस्थानी भाषा अनुनासिकता प्रधान भाषा है। स्वामी जी की भाषा में अनुनासिकता का बाहुल्य यह सिद्ध करता है। जैसे—

"राम बिनां भावै नहीं रामचरण कूं आंन।"[1]

यहाँ बिना, कू और आन को अनुस्वार लगाकर अनुनासिक बना दिया गया है। **अधिकरण के चिह्न 'में' के स्थान पर 'मैं' और 'में'** दोनों का प्रयोग 'अणभैवाणी' में मिलता है।

१. "छै ऋतु बारा मास मैं पावस जीवन जांन।"[2]
२. "नाम बिनां त्रय लोक में, सुख कहुं दीसै नांहि।"[3]

विदेशी (अरबी-फ़ारसी) शब्दों का प्रयोग

विदेशी मूल के शब्दों को स्वामी जी ने निःसंकोच भाव से अपनाया है। कतिपय शब्दों के उदाहरण देना असंगत न होगा—

खसम—	नारि कहावै **खसम** की पाडोसी सूं मेल।[4]
दीदार—	नैंन दुखी **दीदार** बिन, रसना रस आशै हो।[5]
अदल—	संत सिपाई **अदल** जमाई, तत तरवार सम्हाई वे।[6]
आसिक (आशिक)—	**आसिक** देखै रब्बदा, टुक जाकूं आपा देह।[7]
गुसल, आब—	ज्ञान **आब** सैं **गुसल** कर।[8]
दर्वेश, खलक—	रामचरण **दर्वेश** का वे, **खलक** न जांणै भेव।[9]
दिल, साबूत—	जा का **दिल साबूत** है।[10]

---

१. अ० वा०, पृ० १४०।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ४२।
५. वही, १००६।
६. वही, पृ० १००५।
७. वही।
८. वही।
९. वही।
१०. वही।

मुरशिद— तत की तबल बजाई **मुरसद**।[1]
असल, पीर, **असल फकीरी पीर** बतावै।
मीर, मुरीद, फकीरी मीर मुरीद सम्हावै वे।[2]

कब्ज— मनवा **कब्ज** करै धरि कदमां।[3]
बंदगी, बेअदबी— छांड़ **बंदगी** करै **बेदबी**, अपणै ही मन दासा वे।[4]
बरकत, ईमान— **बरकति** है **ईमान** मैं **ईमान** तज्यां नहि कोय।[5]
असनाई— तजि अज्ञान ज्ञान गहि लीजे, आनन करि **असनाई**।[6]
मगरूर— मैं मेरी संसार मैं अहूं मांन **मगरूर**।[7]
मोहब्बत (मुहब्बत)— **मुहबत** से दुख होय पीड़ पर की बर्तावै।[8]
कहर— बिकर्म कृत्य **कहर** लियां मैं मेरी ममता।[9]

ग्रन्थ 'विश्वास बोध' के छठें प्रकरण के पृष्ठ ६८७-८८ में विदेशी मूल के शब्दों की भरमार है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ इनके प्रयोग में स्वामी जी को अद्भुत सफलता मिली है। 'फकीरी' शीर्षक के अन्तर्गत इस शब्द समाज को संजोया गया है। उदाहरण रूप में कतिपय अंशों को यहाँ उद्धृत किया जाता है।

"फकीरी फकत या जगत सैं भिन्न है,
मन्न कोइ रीति की फिकर नांही।
हृवाल मैं मस्त शिर पीर का दस्त है,
बसत एकान्त रब ध्यान मांही।"[10]
. . . .
"सफा सबूरी बंदगी अडिग एक इकतार।
महर मोम दिल पाक सद तज्यां ताक विस्तार।

---

१. अ० वा, पृ० १००५।
२. वही पृ १००६।
३. वही।
४. वही।
५. वही, पृ० ८१२।
६. वही, पृ० ७४८।
७. वही, पृ० ७४४।
८. वही, पृ० ७१०।
९. वही, पृ० ७०८
१०. वही, पृ० ६८७।

तज्यां ताका विस्तार नहीं उपजै फिकराई।
फैसल फैल फितूर फकीरां ये फुरमाई।
नरमाई नेकी लियां कियां कब्ज तकरार।
रामचरण कीजै सवां हुलस उसे दीदार।"[१]

. .   . .

"माल मुल्क अैसैं तज्यां, ज्यूं खोर किया शिर केश।"[२]

. .   . .

"कर्मों को नांहि पार मार मोहोकम भुगतासी।
दीन दरग्गह मांहि मियां जी जाब न आसी।"[३]

. . .   .

"खालक मांहीं खलक, खलक मैं खालक जांण्या।"[४]

. . .   .

"आसिक इस्क लगाय कै जीं प्रसन्न किया महबूब।
इस्क जिनूंदा जांणिये सब इस्कां शिर खूब।
सब इस्कां शिर खूब मीर मुल्ला कितबाई।
काजी राजी होय पीर भी करत बड़ाई।
बिन रहीम पाजी इस्क जनि इस्कां सें डूब।
आसिक इस्क लगाय कै जीं प्रसन्न किया महबूब।"[५]

. . .   .

"दोजग दरध देखि भिस्त को उपाव किये,
नेकी सो निकट राखि बदी हूं से डर है।"[६]

उपर्युक्त उद्धरणों में विदेशी मूल के अनेक शब्द हैं। इनमें से कतिपय शब्दों का रूप स्वामी जी ने परिवर्तित भी कर दिया है। यथा—ह्वाल (हाल), दरग्गह (दरगाह), आसिक (आशिक), इस्क (इश्क), फुरमाई (फरमाई), भिस्त (बहिश्त), दोजग (दोजख), दरध (दर्द)। इसके अलावा काफिर, नूर, मोजूद (मौजूद), ओजूद, खिलबत, हुरमा तथा अन्य अनेक विदेशी शब्दों से स्वामी जी ने अपनी वाणी का शृंगार तो किया ही है, उन शब्दों का नया संस्कार भी कर दिया है।

---

१. अ० वा०, पृ० ६८७
२. वही, पृ० ६८८।
३. वही।
४. वही।
५. वही, पृ० ६८८।   ६. वही।

पंजाबी

स्वामी रामचरण की 'वाणी' में पंजाबी के शब्द भी पाये जाते है। जैसे—

शिख्खां—"सतगुरु ज्ञान ध्यान का दाता।
शिख्खां आश न करि है।"[1]
रिछपाल—"तुम कर्ता रिछपाल तुम तुमही गरीब निवाज।"[2]

पृष्ठ ७७९ पर बिसराइन्दा, वणाइन्दा, जणाइन्दा, गाइन्दा, पाइंदा, लाइन्दा, भराइन्दा आदि शब्द पंजाबी बोली के हैं। पंजाब और राजस्थान की सीमाएँ एक-दूसरे से मिलती हैं। अतः पंजाबी और राजस्थानी में बहुत अन्तर नहीं दिखाया जा सकता।

खड़ी बोली

संतों ने खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया था। स्वामी जी की रचना में भी खड़ी बोली उपस्थित है। यथा—

"कलिजुग के पंडित पाखण्डी।
घर में कुबुधि करकसा रण्डी।
. . .
ईश्वर इच्छा रहै उदास।
भिक्षा भोजन परम निवास।"[3]

खड़ी बोली के अनेक शब्दों को स्वामी जी ने अपनाया है। कहीं-कहीं पूरी पद संघटना ही खड़ी बोली में मिल जाती है।

व्रजभाषा का प्रभाव

स्वामी रामचरण की काव्य भाषा पर ब्रज भाषा का भी प्रभाव है—

"जगत अंधेरो बाग है विविध फूल फल रंग।
रामचरण मन भँवर होइ जहाँ किया परसंग।"[4]

अथवा—

"रामचरण रामै जपै जैसे पंथी भोर।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० २१७।
२. वही, पृ० २४४।
३. वही, पृ० ९८४।
४. वही, पृ० १०।
५. वही।

खड़ी बोली, पंजाबी, ब्रजभाषा और स्वामी रामचरण की काव्यभाषा राजस्थानी के शब्द-भण्डारों में पर्याप्त समता है। वस्तुत: ये सभी हिन्दी भाषा की शाखाएँ हैं। इन सभी के व्याकरण में भी समता है। ऐसी स्थिति में इन सभी का राजस्थानी से अलग करके विवेचन करना भाषाविज्ञान का विषय है। यहाँ सामान्य रूप से स्वामी जी की काव्यभाषा का विवेचन किया जा रहा है। हाँ, विदेशी मूल के शब्दों की ओर हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है क्योंकि उन शब्दों का प्रयोग स्वामी जी ने जितने धड़ल्ले से किया है वह हमारे अध्ययन की अपेक्षा रखता है।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

स्वामी रामचरण की भाषा लोकभाषा है। फिर उसमें लोकोक्तियों और मुहावरों का होना स्वाभाविक है। स्वामी जी ने 'कविता कविता के लिए' नहीं की थी। उनकी काव्य-रचना का उद्देश्य लोकमंगल था। लोकमंगल की इस भावना के प्रचारार्थ उन्होंने कतिपय सिद्धान्त निश्चित किए थे और रामसनेही सम्प्रदाय नामक पंथ का निर्माण भी किया था। अपनी कविता में उन्होंने अपनी विचारधारा को सजाया और जनमानस का स्पर्श करने में सफल हुए। लोकोक्तियों और मुहावरों के माध्यम से लोकमानस को सरलतापूर्वक मापा जा सकता है और इनकी उपस्थिति से किसी भी काव्यभाषा का सौन्दर्य निखरता है। स्वामी जी का काव्य मुहावरों और लोकोक्तियों का कोष ही है। यहाँ उनमें से कुछ की चर्चा आवश्यक है।

१. लै लगना (लौ लगना)

"लै लागी तब जांणिये निसिदिन छूटै नांहि।"[१]

२. काल की जाल कटना

"रामचरण लै कै लग्यां कटी काल की जाल।"[२]

३. मीन नीर सम होना

"पतिबरता पति सूं कहै सुण हो कंत सुजांण।
मीन नीर सम होय रही, बिछड़त तजूं परांण।"[३]

४. घर घर की पणिहारि

"पण पकड़ी हरि भक्ति की सो पणहारी नारि।
रामचरण अब हरि करी घर घर की पणिहारि।"[४]

---

१. अ० वा०, पृ० १२। २. वही।
३. वही, पृ० १५। ४. वही, पृ० १६।

५. धक्का खाना

"रामचरण बिभचारिणी धका खाय दरबार।"[१]

६. राम का हजूरी

"संत हजूरी राम का सबसूं रहे उदास।"[२]

७. नूर झलकना

"सूर का बदन पर नूर झलकै सदा।"[३]

८. अंधे की गाँठ

"परख बिन अंध की गाँठ खोटा गरथ अंत की बेर दुख अधिक होवे।"[४]

९. आक सींच कर आम पाना

"अम्ब का वृक्ष कै अम्ब फल लाग है आक कूं सींच नहीं अम्ब पावै।"[५]

१०. च्यार दिना की चाँदणी

"च्यार दिनां की चाँदणी बहु अंधियारी रात।

. . .

दिना च्यार की चांदणी, चेते नहीं अमांन।"[६]

११. फिटफिट होना

"जो बेटी का दाम लै जग में फिट फिट होय।"[७]

१२ गरी गरी भटकना

"गरी गरी में भटकता हार्‌यो हरि गिवार।"[८]

१३. काम सँवारना

"अपणूं काम संवार ले कहा जानै परपीर।"[९]

१४. श्वान की पूँछ

"श्वान पूंछ करडी रहै स्वारथ ढीली होय।"[१०]

---

१. अ० वा०; पृ० १६। २. वही, पृ० १९। ३. वही, पृ० १९३। ४. वही। ५. वही, पृ० १९४। ६. वही, पृ० २२०। ७. वही, पृ० २२३। ८. वही, पृ० २२४, ९. वही, पृ० २४०। १०. वही, पृ० २६०।

१५. जोरू तणां गुलाम

"जोरू तणां गुलाम को नर तन जाय निकाम।"[१]

१६. रोयां मिलै न राबड़ी

"रोयां मिलै न राबड़ी तो रोयां कुंण दे राज।"[२]

१७. ऊँची दुकान फीका पकवान

"ऊंची हैं दुकान जामैं फीकै पकवान भरे,
खड़े हैं गिंवार लोग जांणै हलवाई है।"[३]

१८. फूटा ढोल

"जहां तहां बकता फिरे जैसें फूटा ढोल।"[४]

१९. बट्टा लगाना

"कैसै कहै बणाय साच कूं बटो लगावै।"[५]

२०. काँटे से काँटा निकालना

"काँटै काँटो नीसरै बिन काँटै निकसै नांहि।
कोई पपोलो प्रीति कर भल केती फूंक दिवाहि।"[६]

२१. माथा मारना

"भटकै मर्मक गरल जहाँ तहाँ माथो मारै।"[७]

२२. दो अंधों के बीच दीपक रखना

"दोय आंधा बिच दीपक मेल्हयौ कूंण लहै परभावं।
श्रोता वक्ता रत्ता माया तातै तिमिर न जावं।"[८]

२३. कानी कौड़ी चलना

"काणी कौडी ना चलै जम पकड़ैतीं बार।"[९]

---

१. अ० वा०, पृ० २९७। २. वही, पृ० २९६। ३. वही, पृ० १००। ४. वही, पृ० २८२। ५. वही। ६. वही। ७. वही, पृ० २३२। ८. वही, पृ० २६९। ९. वही, पृ० ३६६।

२४. कागद की नाव से सागर तिरना

"बिधि भूषण जल पोस कै जाको किसो बणाव।
कहो सायर कैसे तिरै चढ़ि कागद की नाव।"[१]

२५. मन मैला तन उजला

"मन मैला तन ऊजला अैसा ज्ञान अनंत।
रामचरण मन ऊजला को इक बिर्लो संत।"[२]

ऊपर स्वामी रामचरण के विशाल संग्रह में से थोड़े से मुहावरे छांट कर यहाँ एकत्र किए गए हैं। सागर सदृश विशाल ग्रन्थ में मुहावरों का वृहत् कोष सुरक्षित है। केवल बानगी रूप में कुछ मुहावरे यहाँ उद्धृत किए गए हैं।

लोकोक्तियाँ

स्वामी जी की काव्य-रचनाओं में से थोड़ी सी लोकोक्तियाँ यहाँ दी जाती है—

१—बाह्वै बीज बबूल का उर अम्बा की आश।[३]
२—मैलो कपड़ो मैल सूं कदे न उज्ज्वल थाय।[४]
३—जे वृक्ष ऊखल्या मूल सूं सींच्या हरा न होय।[५]
४—कहा रेत को चूंतरो, कहा इरण्ड को बाग।[६]
५—नारि कुहावै खसम की, पाडोसी सूं मेल।[७]
६—वैद्य मित्र रोगी तकै, नहीं निरोग सुह्वाय।[८]
७—काजल तजै न कालम्यां गरल न तजै भुजंग।[९]
८—नीर तीर कर बास पियासौं मरत है।[१०]
९—आंवा सूं चूंधर बुरा, भ्यासै अरु भूलै।[११]
१०—बाजीगर को बाग कहो कूंणै फल पायो।[१२]
११—खांड गलेफ्यां भींगणां कदे न खुरमा होय।[१३]
१२—ओछा जल की मांछरी कदे न पावै चैन।[१४]
१३—अकल गई आकाश कूं सिकल गई पाताल।[१५]

---

१. अ० वा०, पृ० ३७६। २. वही, पृ० ४९६। ३. वही, पृ० २६५। ४. वही, पृ० ७। ५. वही, पृ० २३४। ६. वही, पृ० ४४। ७. वही, पृ० ४२। ८. वही, पृ० ४२। ९. वही, पृ० ४३। १०. वही, पृ० ८०। ११. वही, पृ० ७४। १२. वही, पृ० ११५। १३. वही, पृ० १३९। १४. वही, पृ० १५१। १५. वही, पृ० ३५४।

१४—मिजनू सैं लैलै भया लैलै लग्न लगाय।[1]
१५—देवालां की दिलबरी करण लगे कंगाल।[2]
१६—सागर जांचै सागरी गागरि जांचै नांहि।[3]
१७—मोती नाही समंद का स्वाति बूंद का होय।[4]
१८—भूखा मांगै राबड़ी धायो बकसै ज्ञान।[5]
१९—आंबा के फल आंब बूंल के बूंल्या लागै।[6]
२०—आंबा गाय बबूल जमावै तो आंबा उदै न होय।[7]
२१—जो आंसूं पूंछै नहीं जासूं किसी पुकार।[8]
२२—कोयल कउवा उडि गया बुगला पैठा आय।[9]
२३—सूरां की तरवार को कोइ सूराहि करै दखांण।[10]
२४—घोड़ा पर असवार होइ, गधा चराबा जाय।[11]
२५—दूध भवंगा पाइये तो पलट जहर करि लेह।[12]

स्वामी जी के काव्य में मुहावरों और लोकोक्तियों का विपुल भण्डार है, उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है। इस भण्डार में से चुनकर कतिपय लोकोक्तियों एवं मुहावरों को उद्धृत किया गया है। 'अणभैवाणी' में उपलब्ध लोकोक्तियों और मुहावरों का अलग से अध्ययन किया जा सकता है।

लोकोक्तियों एवं मुहावरों के अतिरिक्त स्वामी जी की भाषा में कवि समय के संकेतक शब्दों की भी बहुतायत है। अनल पक्ष, चातक, चकोर, मोर, हंस आदि विभिन्न पक्षियों से संबद्ध कवि सत्यों के सहारे कवि अपनी बात जन-समाज तक ले जाने में पूर्ण सक्षम रहा है। स्वामी जी के काव्य का कलापक्ष सर्वाङ्गपूर्ण है।

यद्यपि स्वामी रामचरण ने किसी प्रबन्ध महाकाव्य की रचना नहीं की, फिर भी उनका यह विशाल काव्य भण्डार महाकाव्य से किसी भी प्रकार कम नहीं। उन्होंने यद्यपि काव्य-रचना के लिए मुक्तक एवं गीति-काव्य की शैली अपनायी है, फिर भी उनका सम्पूर्ण साहित्य उन्हें महाकवि कहने को बाध्य करता है। उनके काव्य में तत्कालीन समाज का जीवन मुखर है। संत कवि विचारक होने के साथ-साथ भावावेशी भी होते हैं। सामाजिक कुरीतियों, रूढ़िगत परम्पराओं पर क्षुब्ध होकर जब प्रहार करते हैं तो अनजाने ही सही, काव्यदोषों से भी मुक्त नहीं रह पाते। स्वामी रामचरण के काव्य में भी इस आवेश के कारण कहीं-कहीं अश्लीलत्व का दोष झाँकने लगा है, जिसकी समीक्षा मैंने अति यथार्थ कह कर की है। काव्यत्व की दृष्टि

---

१. अ० वा० पृ० ४५८। २. वही, पृ० ५५४। ३. वही, पृ० ५८६। ४. वही, पृ० ५९५। ५. वही, पृ० ६००। ६. वही, पृ० ६०९। ७. वही, पृ० ६३५। ८. वही, पृ० ७४६। ९. वही, पृ० ७५८। १०. वही, पृ० ८१९, ११. वही, पृ० ८२८। १२. वही, पृ० ८७८।

से भले ही उसे दोष कह लिया जाय किन्तु समाज के प्राणियों की दृष्टि पर पड़े आवरण को हटाने के लिए जिस स्पष्टवादिता की अपेक्षा समाज के किसी भी अगुवा से की जाती है, स्वामी जी के काव्य का यह दोष उसी अगुवाई का प्रतीक बन कर आया है। इस दृष्टिकोण से उसे हम गुण ही समझेंगे।

काव्यत्व की दृष्टि से अन्य सभी प्रकार की पूर्णता 'अणभैवाणी' में पायी जाती है। भावपक्ष और कलापक्ष दोनों के निरूपण में यह बात भली प्रकार स्पष्ट हो गयी है। स्वामी [illegible] का श्रृंगार है।

उपसंहार

स्वामी रामचरण युगपुरुष थे। उनका आविर्भाव अठारहवीं शताब्दी में हुआ था। यह समय उथल-पुथल का था। राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्तर पर देश और विशेषकर राजस्थान प्रदेश की दशा पर्याप्त चिन्त्य थी। दिल्ली के तख्त पर कठपुतली एवं दुर्बल मुगल बादशाह विराजते थे। स्वामी जी के आविर्भाव काल में फर्रुखसियर का वध हो चुका था और मुहम्मदशाह ने शासन की बागडोर सम्भाल रखी थी। राजस्थान के कमजोर राजपूत शासक मराठों के आक्रमणों के शिकार बने राजा-महाराजा कहलाने का शौक पूरा कर रहे थे। जयपुर, जोधपुर और उदयपुर जैसे प्रसिद्ध राज्य मराठों द्वारा अनेक बार रौंदे जा रहे थे। स्वामी रामचरण ने जिस समय भीलवाड़ा छोड़ शाहपुरा प्रस्थान किया था, मराठों ने आक्रमण कर भीलवाड़ा की बुरी तरह लूटा और बर्बाद कर दिया था। स्वामी जी के जीवनीकार ने अपने जीवनी ग्रंथ 'गुरलीलाविलास' में इस आक्रमण की चर्चा की है। उस आक्रमण के परिणामस्वरूप समस्त भीलवाड़ा वीरान हो गया था और नरनारी बारावाट हो गए थे। स्मरणीय है कि भीलवाड़ा उदयपुर के महाराणा के अधीन नगर था।

देश की धार्मिक स्थिति में भी गिरावट आ गयी थी। मुस्लिम आक्रमण एवं बर्बरता का शिकार हुई जनता प्रभु-स्मरण के सहारे जीने का प्रयास कर रही थी। अठारहवीं शताब्दी आते-आते धार्मिक आडम्बरों की चरम सीमा भी आ पहुँची। राजस्थान, स्वामी रामचरण की जन्म तथा कर्मभूमि, स्वयं धार्मिक असंतुलन की चपेट में था। निर्गुण-सगुण विवाद, नागा साधुओं की फौज का अनाचार, जैन यतियों की भ्रष्टता, विभिन्न छोटे-मोटे सम्प्रदायों की आपसी नोक-झोंक से समाज-जीवन त्रस्त था। जयपुर की समीपवर्त्तिनी गलता गद्दी प्रसिद्ध वैष्णव गद्दी थी। स्वामी रामचरण की गुरुगद्दी दाँतड़ा के महंत भी इसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे। एक बार सम्पूर्ण राजस्थान वैष्णव-भक्ति-भावना से भर उठा था, किन्तु कालान्तर में इस भक्तिभावना का स्थान धार्मिक रूढ़ियों एवं पाखण्डों ने ले लिया। स्वामी रामचरण स्वयं कृपाराम जी से दीक्षित हुए थे, पर बाद में पंथ में 'खड़-भड़' देख सगुणोपासना से विरत हो गये और भीलवाड़ा में आकर निर्गुणोपासना का प्रचार आरंभ किया। इसे उन्होंने 'रामधर्म' की संज्ञा दी और संगठन को 'रामसनेही सम्प्रदाय' कहा।

अब यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि अनेक सगुण-निर्गुण पंथों के होते हुए स्वामी जी ने नये पंथ की स्थापना क्यों की। वस्तुतः स्वामी रामचरण साधु वेष धारण करने के पहले जयपुर राज्य के उच्चपदस्थ कर्मचारी थे। उन्होंने विरागी होने के बाद विभिन्न पंथों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं पाखण्डों को देखा। अपने विभिन्न ग्रंथों में उन्होंने साधु-समाज की

कुरूपताओं के चित्र प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने सच्चे साधु के लक्षण निर्धारित किये और रामसनेही साधुओं में उन लक्षणों को साकार देखना चाहा।

गृहस्थों को भी स्वामी जी ने पंथ में महत्त्व दिया। उन्होंने घरबारियों को शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) पालन करने के लिए प्रेरित किया। अनेक गृहस्थ शीलव्रत ग्रहण कर पवित्राचरण में रत हुए। स्वामी जी ने पंथ की व्यवस्था का भार भी गृहस्थ राम-सनेहियों को सौंपा था और साधुओं को भजनरत रहने का निर्देश दिया था। बारह थम्बे के साधुओं में ग्यारह साधु और एक नवलराम जी गृहस्थ थे। साधु-गृहस्थ समन्वय के कारण ही रामसनेही सम्प्रदाय आज भी व्यवस्थित रूप से संगठित है।

स्वामी रामचरण का तत्कालीन जनजीवन पर गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं रूढ़ियों पर प्रहार किया और समाज को उनसे विरत होने की प्रेरणा दी। एतदर्थ समाज के रूढ़िवादियों से उन्हें संघर्ष भी करना पड़ा था। एक बार तो उन्हें महाराणा के आदेश से भीलवाड़ा नगर से निकलना भी पड़ा था। किन्तु उनके जागरूक अनुयायियों ने संगठित होकर महाराणा के समक्ष अपना पक्ष रखा और उन्हें इसमें विजय भी मिली। शाहपुरा आगमन के बाद उन्हें अपने मत एवं पंथ के प्रचार-प्रसार की पूर्ण सुविधा रही।

स्वामी जी समन्वयशील मध्यमार्गी संत थे। निर्गुनिया होने के बाद भी सगुण वैष्णवों से उनका मेल-मिलाप बना रहा। वे स्वयं को दाँतड़ा से बराबर जोड़े रहे। स्वामी कृपाराम के देहावसान के बाद दाँतड़ा गद्दी के उत्तराधिकारी को स्थापित कराने में स्वामी जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। आज भी शाहपुरा के पीठाधीश दाँतड़ा के आचार्य का वैसा ही सम्मान करते हैं जैसा स्वामी रामचरण करते थे।

स्वामी रामचरण साधक संत थे। उन्होंने भीलवाड़ा को अपनी साधनास्थली बनायी थी और अनेक वर्षों साधनारत रहे थे। उनकी अणभैवाणी, जिसकी रचना भीलवाड़ा में ही हुई थी, उनकी साधनानुभूतियों से पूर्ण है। 'नाम प्रताप' और 'शब्द प्रकाश' नामक ग्रंथों तथा परचा अंगों में सुरति-शब्दयोग की बड़ी स्पष्ट कल्पना मिलती है। भजन प्रताप की चारों चौकियों का बड़ा स्पष्ट विवेचन उन्होंने किया है।

स्वामी रामचरण का विशाल साहित्य उनकी व्यक्तिगत साधना की अनुभूतियों से ओतप्रोत तो है ही, समाज-जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण का भी परिचायक है। उन्होंने एक ओर अध्यात्म के ऊँचे शिखर का स्पर्श किया है तो दूसरी ओर समाज-जीवन के धरातल पर इतना अधिक चले कि आज भी उनके उदार चरणों के अनेक निशान पश्चिमी भारत (राजस्थान, गुजरात और मध्यप्रदेश) की धरती पर दृष्टिगोचर होते हैं। उनका साहित्य हिन्दी संत-साहित्य की अमूल्य निधि है।

सहायक-ग्रंथों की सूची

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डॉ० दीनदयालु गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००४ वि०।

२. आधुनिक हिन्दी साहित्य, डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, लोकभारती, इलाहाबाद।

३. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९५२।

४. उत्तरी भारत की संत-परंपरा, पं० परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, प्रयाग, सं० २००८।

५. उपदेशामृत (तृतीय पुष्प), स्वामी दर्शनराम जी, जरीवाला, सूरत, गुजरात।

६. कबीर, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९७१।

७. कबीर साहित्य की परख, पं० परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, प्रयाग, सन् १९७२।

८. कबीर ग्रंथावली, डॉ० भागवतस्वरूप मिश्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, सन् १९७३।

९. कबीर ग्रंथावली, श्री पुष्पपाल सिंह, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६९।

१०. कबीर का रहस्यवाद, डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, १९७२।

११. कबीर की विचारधारा, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन, कानपुर, सं० २००९।

१२. काव्यदर्पण, पं० रामदहिन मिश्र, ग्रंथमाला कार्यालय, बाँकीपुर, सन् १९५१।

१३. काव्यप्रदीप, पं० रामबहोरी शुक्ल, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, सन् १९४८।

१४. काव्यशास्त्र, डॉ० शम्भूनाथ पाण्डेय, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, सन् १९५८।

१५. गुरलीलाविलास, श्री जगन्नाथ, हस्तलिखित प्रति।

१६. चिन्तामणि, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, प्रयाग, सं० २०२७ वि०।

१७. छन्द प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर, सन् १९३९।

१८. तुलसीदास, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद्,प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।

१९. नाथ-सम्प्रदाय, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, सन् १९६६।

२०. नवधा भक्ति, श्री जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर।

२१. निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ० मोती सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०१९।

२२. प्रामाणिक हिन्दी शब्दकोष, श्री रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, सं० वि० २००७।

२३. फूलडोल समाद, श्री जगन्नाथ, हस्तलिखित प्रति।

२४. ब्रह्मसमाधि लीन जोग, श्री जगन्नाथ (अणभैवाणी के अन्तर्गत)।

२५. भारतीय अनुशीलन ग्रंथ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

२६. भारत का धार्मिक इतिहास, पं० शिवशंकर मिश्र।

२७. वीर विनोद, भाग १, २, कविराज श्यामलदास।

२८. रामस्नेही धर्म दर्पण, साधु मनोहरदास जी।

२९. रामचरण चरित्तावली, सं० प्र० पं० मानकराम, दिल्ली।

३०. राजस्थान का इतिहास, कर्नल जेम्स टॉड, हिन्दी संस्करण, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, सन् १९६५।

३१. राजपुताने का इतिहास, डॉ० जगदीश सिंह गहलोत।

३२. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पं० मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९५१।

३३. रामपद्धति, स्वामी रामजन जी (अणभैवाणी के अन्तर्गत)।

३४. रहस्यवाद, श्री राममूर्ति त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६६।

३५. संत कबीर, डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद, सन् १९६६।

३६. संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सं० २०११।

३७. संत साहित्य, डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल, ग्रंथम, कानपुर, सन् १९६५।

३८. संत साहित्य और साधना, श्री भुवनेश्वर मिश्र 'माधव', नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, सन् १९६९।

३९. संतकाव्य, पं० परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९५२।

४०. सिद्ध-साहित्य, डॉ० धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९६८।

४१. संत कवि दादू और उनका पंथ, डॉ० वासुदेव शर्मा, शोधप्रबंध-प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् १९६९।

४२. सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली १९७०।

४३. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, डॉ० अमरचन्द्र वर्मा, प्र० जरीवाला, सूरत, गुजरात।
४४. स्वामी रामचरण जी की अणभैवाणी, स्वामी कार्य्याराम जी, राम निवासधाम शाहपुरा, सन् १९२५।
४५. स्वामी रामचरण जी की परची, हस्तलिखित प्रति।
४६. सूरदास, डॉ० ब्रजेश्वर, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९५०।
४७. संतकाव्य में परोक्ष सत्ता का स्वरूप, डॉ० बाबूराम जोशी, कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर, सन् १९६८।
४८. हिन्दुत्व, रामदास गौड़, ज्ञानमण्डल, वाराणसी।
४९. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, गार्सा द तासी (अनु०—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय), हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९५३।
५०. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, आचार्य चतुरसेन।
५१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा।
५२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, चतुर्थ भाग, सं०—पं० परशुराम चतुर्वेदी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०२५।
५३. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, अनु०—पं० परशुराम चतुर्वेदी, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, सन् १९६८।
५४. हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड), सं०—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग, सन् १९५९ ई०।
५५. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पं० केवलराम जी तथा अन्य, आयुर्वेद सेवा निकेतन, ट्रस्ट बीकानेर, राजस्थान।
५६. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० २००५।
५७. हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, डॉ० ओमप्रकाश, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, सन् १९५७।
५८. हिन्दी मुहावरा कोष, डॉ० भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९६४।

अंग्रेजी

१. श्री रामकृष्ण सेण्टिनरी मेमोरियल, वाल्यूम—२।
२. कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया, एडिटेड : हरिदास भट्टाचार्य।

३. ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दू सिविलिजेशन डूरिंग ब्रिटिश रूल, वाल्यूम-१, प्रमथनाथ बोस।
४. ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दू लिटरेचर, एफ० ई० के।
५. कबीर एण्ड हिज़ फालोअर्स, एफ० ई० के।
६. मिस्टिक्स, एसेटिक्स एण्ड सेन्ट्स ऑफ इण्डिया, जान कैम्पवेल ओमन।
७. इण्डिया सोसाइटी इन द एटीन्थ सेन्चुरी, वी० पी० एस० रघुवंशी, [illegible] हाउस, न्यू डेलही।

पत्र-पत्रिकाएँ

१. जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल, फेब्रुअरी, १८३५।
२. 'कल्याण' संत-अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर।
३. प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथो की खोज का चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९२९-३२)।
—डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, ना० प्र० स०, काशी।
४. प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज (१९३८-४०), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।